

# द्विवेदीयुगीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन



डॉ. रमेशलाल शर्मा



डॉ० रोशनलाल ऐमा का प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ डॉ० रामकुमार वर्मा के निर्देशन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डॉ० फिल० उपाधि के लिए परिश्रम और मौलिक सूझ-बूझ के साथ लिखा गया एक ऐसा प्रबन्ध है जिसमें द्विवेदीयुगीन काव्य का मूल्यांकन पूर्व-व्यक्त मतों के पिष्टपेषण से अलग हटकर तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के गहन अध्ययन के आधार पर किया गया है। द्विवेदीयुग में तत्कालीन काव्य के प्रति जो प्रतिक्रियाएँ हुई थीं उनमें से विवादास्पद मुद्दों पर व्यवस्था देते समय साहित्यिक न्याय-बुद्धि का परिचय डॉ० ऐमा ने अपने इस ग्रन्थ में दिया है। इस शोध-ग्रन्थ की एक मुख्य विशेषता यह है कि विद्वान लेखक ने अपने इस कार्य से पूर्व के समस्त शोध-कार्यों एवं ग्रन्थों का अध्ययन किया है तथा अनेक समीक्षकों से सम्पर्क स्थापित करके उनके विचारों का दोहन किया है तदुपरान्त अपने निरान्त मौलिक निष्कर्षों की दिशा में वह अग्रसर हुआ है।

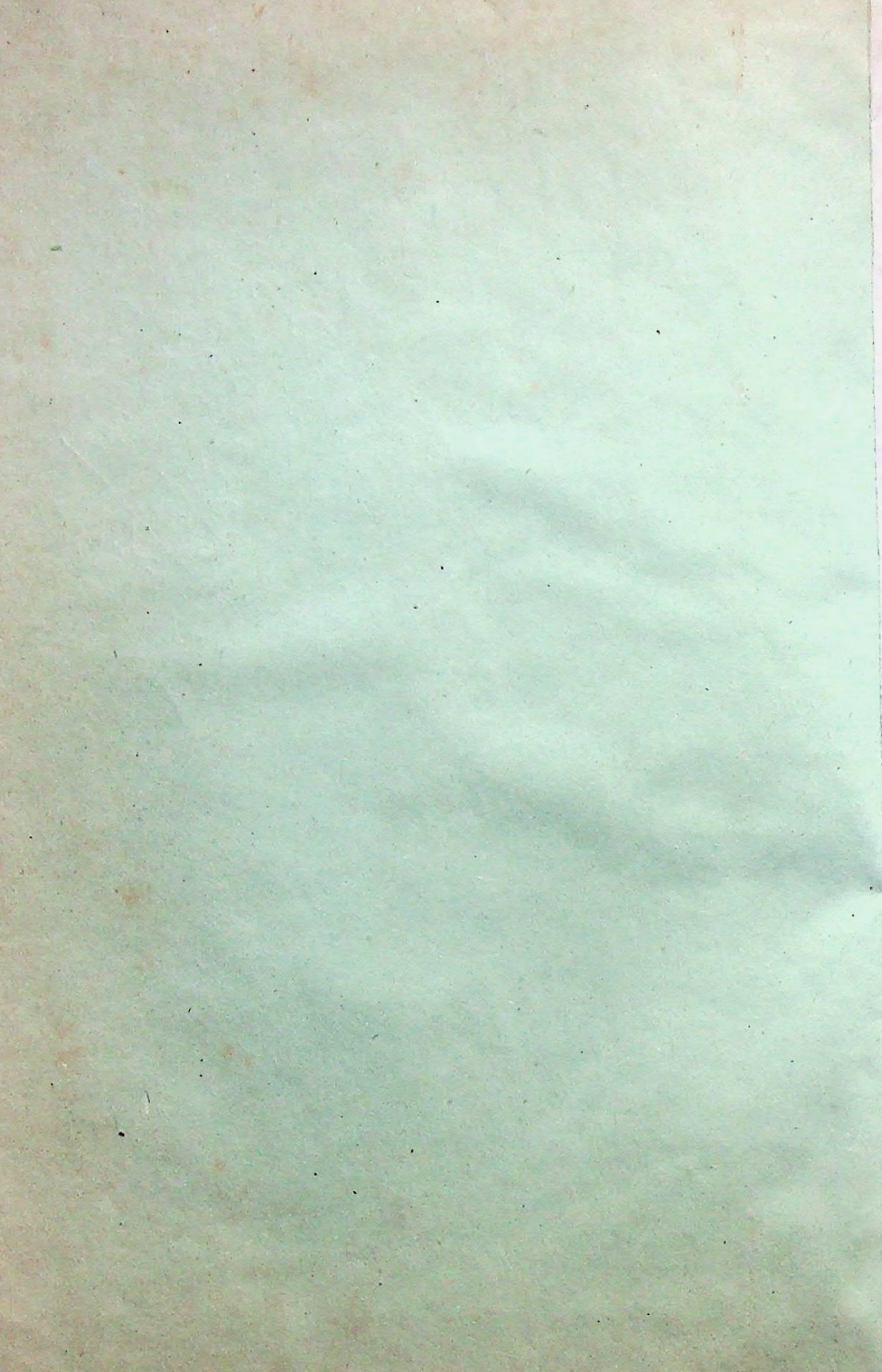
सही साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाले इस ग्रन्थ के अध्ययन से अध्येताओं की द्विवेदीयुगीन काव्य सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ दूर हो सकेंगी, ऐसा हमारा विश्वास है।



प्रिय अरि जी भूषण लाल कोल  
को आदर

२/११/८८  
३/२/८८







द्विद्वेदीयुगीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन





# द्विवेदीयुगीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन

महर्षि साहित्य संस्थान

डॉ० रोशनलाल ऐमा

रीडर

हिन्दी विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर



इन्दु प्रकाशन

१४/११२ अचल तालाब, अलीगढ़



कृतीक्षाओं एवं उद्धरणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से किसी भी रूप में इस पुस्तक का अथवा इस पुस्तक के किसी भी अंश का पुनर्प्रस्तुतीकरण अथवा पुनर्मुद्रण अथवा पुनर्प्रकाशन अथवा अनुवाद प्रकाशक की पूर्व-अनुमति के बिना अवैध होगा ।

© डॉ० रोशनलाल ऐमा

प्रथम संस्करण : १९८८

मूल्य : एक सौ पच्चीस रुपये

प्रकाशक : इन्दु प्रकाशन, १४/११२ अचल तालाब, अलीगढ़-२०२००१

मुद्रक : सुनील प्रिंटिंग वर्क्स, फ्री गंज, आगरा / आवरण : सुरेश कुमार

DWIVEDIYUGREEN KAVYA KA PUNARMULYANKAN  
(CRITICISM)

Rs. 125/-

## आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

(क) आबरणीय टाठाजी

(ख) आबरणीय अम्मा

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय

आबरणीय टाठाजी और अम्मा को—



— १७ —

## विषयानुक्रम

|                                                           |    |
|-----------------------------------------------------------|----|
| आमुख                                                      | ६  |
| प्रावकथन                                                  | १२ |
| एक—भारतेन्दुयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ            | १७ |
| प्राचीनता का मोह                                          |    |
| नवीनता का आग्रह                                           |    |
| खड़ी बोली के साहित्यिक व्यवहार की भूमिका                  |    |
| गद्य की भाषा                                              |    |
| पद्य की भाषा                                              |    |
| निष्कर्ष                                                  |    |
| दो—द्विवेदी-युग में खड़ी बोली-आन्दोलन                     | ४६ |
| नवीन रचनात्मक आन्दोलन                                     |    |
| (क) आन्दोलन की प्रक्रिया                                  |    |
| (ख) द्विवेदी जी की भाषा-नीति                              |    |
| ब्रजभाषा कवियों का विरोध                                  |    |
| विरोध का अवसान                                            |    |
| निष्कर्ष                                                  |    |
| तीन—सरस्वती का वैभव काल                                   | ७६ |
| ‘सरस्वती’ की पूर्वपीठिका                                  |    |
| ‘सरस्वती’ के प्रारम्भिक तीन वर्ष                          |    |
| द्विवेदी जी का आगमन                                       |    |
| ‘सरस्वती’ में कविता के विषय                               |    |
| निष्कर्ष                                                  |    |
| चार—द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य की साहित्यिक विशेषता १४८ |    |
| परम्परागत विषयों में व्यापक विस्तार की चेष्टा             |    |
| नवीन प्रयोगात्मक प्रयास                                   |    |
| रस                                                        |    |
| छन्द                                                      |    |
| अलंकार                                                    |    |
| पद-योजना एवं भाषा                                         |    |
| निष्कर्ष                                                  |    |



# पाँच — द्विवेदीयगीन खड़ी बोली काव्य की साहित्यगत विशेषता

२००

इतिवृत्तात्मकता

गीतात्मकता

भावात्मकता

रस

छन्द

अलंकार

भाषा

पद-योजना

निष्कर्ष

छः—यग-बोध के सन्दर्भ में खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य २६१

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

सामाजिक परिप्रेक्ष्य

धार्मिक परिप्रेक्ष्य

निष्कर्ष

सात—काव्य-रूप

प्रबन्ध-काव्य

महाकाव्य

खण्डकाव्य

कथात्मक-कविता

मुक्तक-काव्य

गीति-काव्य

निष्कर्ष

परिशिष्ट

३०५

३४६

## आमुख

आजी

उद्धारिता

डॉ० रोशनलाल ऐमा कश्मीरी भाषा और श्रीनगर (कश्मीर) के मूल निवासी हैं। उनके पिताश्री ने उन्हें चारित्रिक स्वच्छता, अस्मिता, राष्ट्रीय-भावना तथा हिन्दी-प्रेम विरासत में दिये हैं। समाज-सेवा तथा पर-दुःखकातरता के लिए वे कश्मीरी (हिन्दू तथा मुसलमान दोनों) समाज में प्रसिद्ध हैं। सन् १९५८ ई० में तत्कालीन जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय के श्रीनगर परिसर में ए० ए० (हिन्दी) की कक्षाएँ आरम्भ हुईं और उसकी आरम्भिक कक्षाओं में प्रवेश लेने वाले मेधावी छात्रों में रोशनलाल जी अग्रणी थे। स्वभाव से परिश्रमी, मृदुभाषी परन्तु समयानुसार आक्रोश से सुलग उठने वाले उस नौजवान ने एम० ए० की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण करने के बाद पी-एच० डी० की दिशा में शोध-कार्य करने का निश्चय किया परन्तु उन दिनों श्रीनगर में शोध-कार्य की सुविधा विश्वविद्यालय में नहीं थी, इस कारण वे प्रयाग विश्वविद्यालय चले गये और वहाँ से उन्होंने डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। अनेक संस्थानों में अनुवाद, प्रकाशन, पाठ-शोध तथा सम्पादन का अनुभव प्राप्त करने के बाद डॉ० ऐमा अपने प्रदेश लौट आये तथा सोपोर (कश्मीर) के इस्लामिया महिला महाविद्यालय में हिन्दी अध्यापन का कार्य आरम्भ किया। प्रदेश का जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय तब तक दो विश्वविद्यालयों में विभाजित हो चुका था। श्रीनगर परिसर अब कश्मीर विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है तथा जम्मू परिसर का नाम जम्मू विश्वविद्यालय हो गया है। सोपोर से डॉ० रोशनलाल ऐमा को कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में आने के लिए मैंने बड़े प्रयत्नों से राजी किया और मुझे हर्ष है कि वे जब 'मेरे विभाग' में वरिष्ठतम रीडर के पद पर आसीन हैं। विश्वविद्यालय जीवन में परम् सक्रिय डॉ० रोशनलाल ऐमा ने अनेकानेक प्रशासनिक पदों को अतीत में सुशोभित किया है। आज भी वे कश्मीर विश्वविद्यालय के शिक्षक संघ के महामन्त्री हैं। शिक्षक संघ की गतिविधियों में परम् सक्रिय रहते हुए भी उन्होंने अपने अध्ययन अध्यापन कार्य में कभी कोई ढिलाई नहीं की है। विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारियों से उनके सम्बन्ध सदा-सर्वथा मधुर परन्तु सच्चाई पर आधारित रहे हैं। डॉ० रोशनलाल ऐमा को हिन्दी विभाग में



जाना मैं अपनी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानता हूँ। उन्होंने विभाग के शोध-कार्य में अपने अनुभव का सदुपयोग निरंतर किया है। वे उन विरले अहिन्दी-भाषी अध्यापकों में से हैं, जिनकी हिन्दी में (लिखने, पढ़ने तथा बोलने में) कोई त्रुटि शेष नहीं है तथा जो अपनी मातृभाषा (कश्मीरी) के साथ-साथ उर्दू भी भली-भाँति जानते हैं और अंग्रेजी भाषा पर उनका अधिकार जिस स्तर का है, वैसा बहुत से अंग्रेजी के शिक्षकों का भी नहीं होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में डॉ० रोशनलाल ऐमा ने द्विवेदीयुगीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन अपनी मान्यताओं के आधार पर किया है। यद्यपि अपने निर्देशक की मान्यताओं का समादर करने के कारण कहीं-कहीं उन्हें अपनी बात 'दबी भाषा' में कहनी पड़ी है, परन्तु उन्होंने अपनी बात कही अवश्य है। इस शोध-ग्रन्थ की एक मुख्य विशेषता यह है कि विद्वान लेखक ने अपने इस कार्य से पूर्व के सारे शोध-कार्यों एवं ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया है तदुपरान्त अपने शोध की दिशा में वह अग्रसर हुआ है।

प्रचुर मात्रा की सामग्री का संकलन-आकलन करने के बाद लेखन ने उस सब सामग्री का परित्याग कर दिया जिसमें पिष्ट-पेषण की गन्ध आती थी। तत्कालीन परिस्थितियों के 'सेकिण्ड हैण्ड' विवेचन से आज शोध-ग्रन्थों में सैकड़ों पन्ने भर दिये जाते हैं जिससे केवल कलेवर की वृद्धि होती है। इस ग्रन्थ में विषय के सन्दर्भ से कटा हुआ तथा अनावश्यक कोई 'मसाला' नहीं है।

शृंगालकाल के सन्दर्भ में लेखक ने जो प्रस्थापनाएँ की हैं, वे यद्यपि परम्परागत हैं परन्तु द्विवेदीयुगीन काव्य के परिप्रेक्ष्य में शृंगालकाल (जिसे लेखक ने रीतिकाल नाम से ही पुकारा है) की सम्वेदना तथा उसकी प्रभविष्णुता को लेखक ने नजरन्दाज नहीं किया है। खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा के तत्कालीन विवाद के विवेचन में अधिक न उलझ कर उन्होंने 'सरस्वती' तथा उसके यशस्वी सम्पादक महामना महावीरप्रसाद द्विवेदी के महत्त्व को रेखांकित करके उन दोनों के प्रति न्याय किया है।

द्विवेदीयुगीन काव्य के भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष के विषय में अनेक प्रकार के परस्पर विरोधीमत अभिव्यक्त किये जाते रहे हैं। डॉ० ऐमा ने तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का गहन अध्ययन किया था तथा उस काल में तत्कालीन काव्य के प्रति जो प्रतिक्रियाएँ हुई थीं, उनका विद्वतापूर्ण विवेचन करके आज के सन्दर्भ में ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले हैं। मुझे यह कहते हुए परम हर्ष हो



रहा है कि उन्होंने अपनी प्रस्थापनाओं में संयम का प्रयोग किया है तथा विवादास्पद मुद्दों पर 'व्यवस्था' देते समय साहित्यिक न्याय-बुद्धि का परिचय दिया है। द्विवेदीयुगीन काव्य के सर्वांगीण अध्ययन तथा पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्वितीय है तथा भविष्य के शोधार्थियों के लिए सन्दर्भ-ग्रन्थ की दृष्टि से परम् उपयोगी है। डॉ० ऐमा ने अनेकानेक समीक्षकों तथा साहित्य-कारों से सम्पर्क स्थापित करके उनके विचारों का दोहन भी किया था और यही कारण है कि उनके निर्णयों में कहीं भी असन्तुलन अथवा घातक पूर्वाग्रह का दोष नहीं आ पाया है।

लेखक ग्रन्थ के अन्त में सामान्यतः एक भारी-भरकम 'सहायक ग्रन्थ सूची' जोड़ देते हैं, जिसमें वर्णित ग्रन्थों के अधिकांश से उनका परिचय मात्र नाम का होता है। इस ग्रन्थ में उस बड़बोलपन से बचा गया है और एक संक्षिप्त-सी सूची दी गयी है।

सही एवं साहित्यिक मूल्यांकन उपस्थित करने वाले इस ग्रन्थ के अध्ययन से अध्येताओं की द्विवेदीयुगीन काव्य सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ दूर हो सकेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं डॉ० रोशनलाल ऐमा को इस विद्वतापूर्ण ग्रन्थ के प्रणयन के लिए बधाई का पात्र मानता हूँ तथा इस तथ्य पर विशेष हर्षित हूँ कि एक विद्वान एवं निर्भीक लेखक के इस परमोत्तम ग्रन्थ का प्रकाशन एक साहित्यानुरागी तथा हिन्दी के विद्वान डॉ० राजेन्द्र गढ़वालिया के प्रकाशन-संस्थान इन्दु प्रकाशन, अलीगढ़ से हो रहा है। इन्दु प्रकाशन ने हिन्दी जगत् को अनेक मौलिक एवं उपयोगी शोध-ग्रन्थ प्रकाशन के माध्यम से दिये हैं। लेखक तथा प्रकाशक दोनों के प्रति मैं अपना स्नेह प्रकट करता हूँ तथा कामना करता हूँ कि वे दोनों भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोग करके और भी अनेक उत्तम ग्रन्थ साहित्य संसार में प्रकट करेंगे।

श्रीनगर (कश्मीर)

दीपावली, १९८७

रमेश कुमार शर्मा

एल-एल०बी०, एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०

भूतपूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

हिन्दी तथा संस्कृत विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर)





## प्राक्कथन

खड़ी बोली आधुनिक भारत की राष्ट्रभाषा है। अतः उसके साहित्यिक रूप की विशिष्ट महत्ता है। उसके साहित्यिक-व्यवहार का इतिहास अधिक प्राचीन न होते हुए भी उसका आधुनिक स्वरूप निश्चय ही हिन्दी काव्य-साहित्य के विगत तीनों कालों से अधिक विषद् एवं समृद्ध है। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली-हिन्दी की महत्ता हम अहिन्दी भाषियों के लिए भी अत्यधिक है। अहिन्दी भाषी हिन्दी के खड़ी बोली रूप से अपेक्षाकृत अधिक परिचित रहते हैं। अतः साहित्य के विद्यार्थी के नाते, जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय में एम० ए० करते समय ही मेरे मन में आधुनिक खड़ी बोली काव्य के प्रारम्भिक काल पर व्यवस्थित रूप से कार्य करने की अभिलाषा थी। निश्चय ही उन दिनों यह आकांक्षा एक शिशु-आकांक्षा ही थी, किन्तु प्रयाग में आकर गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा के सम्पर्क, आचार्यत्व एवं स्नेहसिक्त दिशा-बोध ने मुझे इस ओर अधिक प्रवृत्त किया।

विगत तीनों कालों की काव्य-साधना की प्रतीक ब्रजभाषा काव्य-धारा के सम्मुख आधुनिक जन-जीवन की अभिलाषाओं एवं आकांक्षाओं की प्रमुख वाणी खड़ी बोली का उपस्थित होना हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। द्विवेदी-युग में नवीन भाषा खड़ी बोली का काव्य-साहित्य में साधिकार प्रवेश समस्त काव्य-परम्परा के प्रति विद्रोह की घोषणा से कम न था। ऐसी स्थिति में कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। क्या खड़ी बोली में यह समर्थता थी कि वह ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण करे? क्या खड़ी बोली, ब्रजभाषा की विराट् परम्परा के सम्मुख अपनी 'परम्परा-विहीनता' को लेकर उपस्थित हो सकती थी? क्या ब्रजभाषा अपनी भव्य परम्परा तथा कई सौ वर्षों तक काव्य-क्षेत्र में अक्षुण्ण राज करने के पश्चात् खड़ी बोली के साहस का उत्तर दे सकती थी? क्या इन दोनों काव्य-धाराओं के समन्वय अथवा इनके एक समान धरातल पर संचरित होने की सम्भावना हो सकती थी? आदि आदि।

द्विवेदीयुगीन काव्य पर अभी तक एक ही ग्रन्थ 'हिन्दी कविता में युगान्तर' प्रकाश में आया है। डॉ० सुधीन्द्र का यह ग्रन्थ कई दृष्टियों से उपयोगी होते हुए भी उपयुक्त सन्दर्भ में कई अभावों की पूर्ति की अपेक्षा रखता है। इसमें



मात्र खड़ी बोली काव्य का विवेचन किया गया है जो ब्रजभाषा काव्य के सापेक्षत्व के अभाव में अपूर्ण ही लगता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में कई स्थानों पर गम्भीर विवेचना का अभाव खटकता है, जैसे विद्वान् लेखक ने 'काव्य-रूप' के अन्तर्गत किसी विशेष विवेचना को प्रस्तुत न करके मात्र निर्देश देकर ही अपने कर्तव्य की इति समझी है। इस ग्रन्थ में निष्कर्षों का अभाव भी खटकता है। डॉ० उदयभानु सिंह का ग्रन्थ 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग' एकपक्षीय विवेचन ही कहा जायेगा, तथापि इसमें आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन सुन्दर ढँग से किया गया है। आधुनिक साहित्य के अध्ययताओं के लिए डॉ० श्रीकृष्णलाल का ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' एक मार्ग-चिह्न है, तथापि इसमें भी विशद् विवेचना नहीं हो पायी है। डॉ० रमेशकुमार शर्मा ने अपने ग्रन्थ "रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता" में अपने विशिष्ट ढँग से इस काल का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न आलोचनात्मक पुस्तकों, लेखों आदि में इस युग के काव्य पर फुटकर रूप से भी विचार किया गया है। इन प्रयासों में भी व्यापक दृष्टिकोण की सम्भावना कम ही थी, अतः इनकी महत्ता स्वमेव स्पष्ट है। अतएव यह कहना अनावश्यक न होगा कि उपर्युक्त सन्दर्भ में प्रस्तुत प्रबन्ध प्रथम विनम्र प्रयास है।

आलोच्य-काल का सीमा-निर्धारण विभिन्न मत-मतान्तरों का विषय है। किसी ने इस युग का प्रारम्भ सन् १६००, किसी ने १६०३ तो किसी ने सन् १८६३ माना है। इसी प्रकार अन्तिम सीमा सन् १६२० से १६३०-३३ तक मानी गयी है। डॉ० सुधीन्द्र ने उपर्युक्त ग्रन्थ में इस काल की सीमा को सन् १६०० से १६२० तक माना है। वस्तुतः इस प्रकार के मतभेद में एक निश्चित सीमा निर्धारित करना कठिन ही है, तथापि इस प्रबन्ध में इस युग की सीमा को सन् १६०० से १६२५ तक स्वीकार किया गया है। यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक साहित्य के सन्दर्भ में 'सरस्वती' पत्रिका का अत्यधिक महत्त्व है। 'सरस्वती' का प्रकाशन सन् १६०० में हुआ था, अतः इस काल का प्रारम्भ इसी वर्ष से माना जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस युग के नियन्ता एवं आधुनिक हिन्दी साहित्य के कर्मठ साधक आचार्य द्विवेदी जी के साथ इस युग का विशिष्ट सम्बन्ध है। सन् १६०० से द्विवेदी जी ब्रजभाषा छोड़ खड़ी बोली काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए, अतः इसके साथ ही एक निश्चित विचार-धारा का सूत्रपात हुआ। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी सन् १६०३ में जिस विचार-



धारा के साथ 'सरस्वती' के सम्पादन में प्रवृत्त हुए, उसका सूत्रपात उनसे पूर्व 'सरस्वती' के प्रकाशक महोदय बाबू चिन्तामणि घोष तथा बाबू ध्यामसुन्दरदास जी द्वारा हुआ था। अतः सन् १९०० को द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक सीमा स्वीकार करना संगत है। उत्तर-सीमा निर्धारण में द्विवेदी जी के 'सरस्वती' सम्पादन-काल (१९२० ई० तक) को मान्यता प्रदान करना इस युग की महत्ता और द्विवेदी जी की साधना को संकुचित कर देना है। वस्तुतः द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं उनके साहित्यिक आचार्यत्व का प्रभाव 'सरस्वती' सम्पादन-पद से हट जाने के पश्चात् भी कई वर्षों तक हिन्दी-जगत पर रहा। उन्होंने जिस व्यापक दृष्टि से हिन्दी काव्य-साहित्य का दिशा-निर्देशन किया, उसकी इति सन् १९२० में ही नहीं हुई, अपितु उसका विकास सन् १९२५ तक बराबर देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त आलोच्य-काल की ब्रजभाषा काव्य-धारा सन् १९२५ तक स्फुट रूप से निरन्तर प्रवाहशील रही। ब्रजभाषा काव्य-वातावरण का प्रभाव भी सन् १९२५ तक खड़ी बोली-काव्य में देखा जा सकता है। प्रसाद जी की रचना 'आँसू' के प्रथम संस्करण (सन् १९२५) तक इस युग की उत्तर सीमा मान लेना संगत होगा। ब्रजभाषा काव्य-धारा सन् १९२५ के पश्चात् क्षीण सी हो गयी। छायावादी काव्य-वातावरण में इस काव्य के साहित्यिक रूप का प्रायः सम्पूर्ण ह्रास हो गया। अतः इस कारण से भी सन् १९२५ तक आलोच्य-काव्य की सीमा को मान लेना ठीक होगा। इस सीमा-निर्धारण से निश्चय ही इस काल की परिधि अधिक व्यापक एवं विस्तृत हो जाती है, जिसके अध्ययन से आधुनिक काव्य-साहित्य के विकास और उसकी प्रगति का समुचित ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सात अध्याय हैं। प्रायः सभी अध्यायों में खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य-धाराओं का विश्लेषण सापेक्ष दृष्टि से किया गया है। ये दोनों काव्य-धाराएँ समानान्तर धारातल पर प्रवाहित हो रही थीं। अतः इनके पार-स्परिक आदान-प्रदान को भी दृष्टि में रखा गया है। युग की सीमा विस्तृत होने के कारण इस युग में रचे जाने वाले काव्य का परिमाण बृहद् है तथा कवियों की संख्या भी कम नहीं है। प्रायः प्रमुख रचनाओं और प्रमुख कवियों को ही विवेचन का आधार बनाया गया है तथापि अन्य कवियों के महत्व को विस्मृत नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, विशेषकर 'सरस्वती' में प्रकाशित होने वाली कविताओं को भी इस अध्ययन का विषय बनाया गया है, जिससे प्रायः सभी प्रमुख एवं गौण कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का आकलन इस विवेचना में सम्भव हो पाया है।



प्रस्तुत प्रबन्ध श्रद्धेय गुरुवर डॉ० रामकुमार वर्मा के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। गुरुवर के आभार को शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं हिन्दी विभाग के आदरणीय डॉ० जगदीश गुप्त तथा भाई डॉ० राजेन्द्र कुमार के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरी अनेक शंकाओं का समाधान किया।

इलाहाबाद प्रवास के गत चार वर्षों में पूज्यनीय जीवनकृष्ण जी शर्मा ने मेरे इस कार्य में अत्यधिक रुचि ली। साथ ही उन्होंने जो वात्सल्यमय स्नेह-भाव प्रदर्शित किया है, उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना उनकी महानता को संकुचित करना है।

सामग्री संकलित करने में मुझे नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता; श्रीरामपुर कालेज, श्रीरामपुर, कलकत्ता; पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय, पटना; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय, बनारस; काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; भारती भवन पुस्तकालय, प्रयाग आदि से जो सहायता प्राप्त हुई है उसके लिए मैं उपर्युक्त सभी संस्थाओं के अधिकारियों का आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त मैं प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय के अधिकारी जी तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग के श्री मोहन जी मेहरोत्रा एवं शर्मा जी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। सम्मेलन के विशेष कार्याधिकारी श्री विद्याभास्कर जी तथा हस्तलिखित ग्रन्थ विभाग के अध्यक्ष श्री वाचस्पति गौरीला के प्रति भी आभार प्रकट करना अपेक्षित है। इन दोनों व्यक्तियों ने सम्मेलन के हिन्दी संग्रहालय से सामग्री संकलित करने के लिए मुझे विशेष सुविधाएँ प्रदान की हैं।

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार को भी धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे दो वर्ष तक हिन्दी की उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए अहिन्दी भाषियों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति प्रदान की। अन्त में इस ग्रन्थ के प्रकाशक इन्दु प्रकाशन, अलीगढ़ के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ तथा डॉ० कुन्दनलाल उप्रेति, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री वाष्ण्य महाविद्यालय, अलीगढ़ को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव बनाया।

शिवरात्रि, १९८७

हिन्दी विभाग,

कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर, कश्मीर।

—रोशनलाल ऐमा



## अध्याय—एक द्विवेदीयुगीन काव्य की पूर्व-पीठिका

### भारतेन्दुयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

“भारतेन्दु-काल के अधिकांश में काव्य-साहित्य की प्राचीन परम्परा का अवलम्बन ही मिलता है किन्तु समय के साथ नवीन भावनाओं का संचार होता गया और आगे चलकर उसने अपनी रूपरेखा ही बदल दी।”<sup>1</sup> प्रोफेसर वर्मा के इस कथन से स्पष्ट है कि भारतेन्दुयुगीन काव्य में जहाँ परम्परागत काव्य-प्रवृत्तियों को प्रथम मिला वहाँ सांस्कृतिक आन्दोलनों तथा राष्ट्रीयता के प्रथम प्रस्फुरण से उसमें जन-जागरण की युगान्तरकारी प्रवृत्तियों का भी किंचित समावेश हुआ। एक ओर रीतिकालीन काव्य से निकटतम सम्बन्ध होने के कारण इस युग के कवियों ने अपने-आप को परम्परा से प्राप्त शृंगारिकता के ऊहापोह से निवृद्ध पाया। साथ ही वैष्णव भक्त होने के नाते भारतेन्दु ने सूर और मीरा की परम्परा में भक्ति-रस की मधुरतम अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया। दूसरी ओर साम्राज्यवादियों के दिनों-दिन बढ़ते हुए आर्थिक शोषण तथा सामाजिक पतन से इस युग में काव्य को अभिव्यक्ति की नवीन प्रखरता प्राप्त हुई। विदेशी शिक्षा और सभ्यता से सम्मोहित विशिष्ट वर्ग के प्रति इस युग का काव्य आक्रोश से तिलमिला कर तीव्र ध्वन्य की धाराओं में प्रवाहित हुआ। इस प्रकार भारतेन्दुयुगीन काव्य को दो भागों में सरलता से विभाजित किया जा सकता है—प्राचीनता का मोह एवं नवीनता का आग्रह।

#### (क) प्राचीनता का मोह

**भक्ति**—प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत सर्वप्रथम इस युग के भक्ति-काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है। भारतेन्दुयुग रीतिकालीन परम्पराओं का उत्तराधिकारी था, किन्तु रीतिकालीन शृंगारिकता मिश्रित भक्ति इस युग में आकर परिवर्तित हुई। भक्ति को सामान्यतः शृंगार से मुक्त करके शुद्ध भक्त की भावनाओं से अभिव्यक्त किया गया। स्वयं भारतेन्दु ने भक्ति-युग के प्रसिद्ध कवियों की परम्परा में विपुल मात्रा में पदों की रचना की जिनमें भक्ति-भाव की तन्मयता का दिग्दर्शन होता है। रीतिकालीन शृंगारिकता से भक्ति को अलग करने के इस सराहनीय प्रयत्न के अतिरिक्त प्रस्तुत भक्ति-काव्य

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा—रामनारायणलाल पब्लिशर्स, प्रयाग, १९५६ ई०, पृ० २८८।



में उल्लेखनीय मौलिकता का अभाव है। भारतेन्दु ने सूर की ही भाँति पदों में अपनी कृष्ण विषयक भक्ति को व्यक्त किया। भारतेन्दु की गोपियाँ सूर की गोपियों की उक्ति 'ऊधो मन नाहि दस बीस' की भाँति ही 'ऊधो जो अनेक मन होते' कहती हैं। परन्तु सूर की गोपियों की उक्ति और उसमें सन्निहित मर्मस्पर्शी भावुकता के उदात्त स्तर तक भारतेन्दु की गोपियाँ नहीं पहुँच पाती हैं। वास्तव में युग के सन्दर्भ में इस भक्ति-काव्य को विवेचित करने पर कहा जा सकता है कि यह युग भक्ति का युग नहीं था। देश में जो नवीन वैचारिक क्रान्ति हो रही थी उसे भारतेन्दुयुगीन भक्ति-काव्य समेटने में असमर्थ रहा। परिणामतः इस भक्ति-काव्य में विशेष प्रभावोत्पादकता एवं मौलिकता के दर्शन नहीं होते। अतः यह भक्ति युगानुकूल न होकर 'मानसिक ईश्वर रति' है, कहना उचित ही होगा।

### शृंगारिकता

भारतेन्दुयुग में यद्यपि रीति-ग्रन्थों की रचना नहीं हुई तथापि रीतिकालीन शृंगारिकता की परम्परा में, प्रभूत मात्रा में शृंगारिक काव्य की रचना अवश्य हुई।<sup>१</sup> भारतेन्दु के शृंगारिक-काव्य को रीतिकालीन परम्परा में स्वीकार करते हुए डॉ० रामबिलास शर्मा उनके विरह-वर्णन को 'रोमांटिक रंग' में रंगा पाते हैं।<sup>२</sup> दुर्गाशंकर मिश्र कृष्ण-जन्मोत्सव के पश्चात् उनके राधा-जन्मोत्सव-वर्णन में नवीन मौलिकता का परिचय प्राप्त करते हैं।<sup>३</sup> भारतेन्दु का विरह-वर्णन निस्सन्देह मर्मस्पर्शी है। और यह भी सत्य है कि अष्टछाप के कवियों ने केवल कृष्णजन्मोत्सव का ही वर्णन किया था। किन्तु यह 'रोमांटिक रंग' तथा यह नवीनता परम्परागत रीतियुगीन शृंगारिकता से कितने पग आगे है, यह विचारणीय है। इस युग के शृंगारिक काव्य में हमें उसी परम्परा-अनुमोदित रुढ़ वासना के विलास का चित्रण प्राप्त होता है, जो देव, पद्माकर, विहारी इत्यादि में मिलता है। भारतेन्दु का रोमांटिक रंग उनके विपरीत-रति चित्रण के सामने फीका पड़ जाता है। इस काव्य में हमें प्रेम अथवा शृंगार की किसी नवीन उद्भावना या स्वच्छन्द प्रवृत्ति का आभास नहीं मिलता। श्रीधर पाठक ने प्रेम की जिस स्वच्छन्द भावना का प्रणयन किया था, उसका इस शृंगारिक काव्य में कोई स्थान ही नहीं है। इसके

१. रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता : रमेशकुमार शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६०, पृ० ६३।
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : रामबिलास शर्मा—विद्याधाम, १३७२ बल्लीमाराण, दिल्ली, १९५३ ई०, पृ० १५८।
३. हिन्दी काव्य मंथन : दुर्गाशंकर मिश्र—रामा प्रकाशन, लखनऊ, १९६१ ई०, पृ० २४६।



अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थितियाँ और राष्ट्रीय उन्मेष के सन्दर्भ में इस प्रकार के काव्य की उपयोगिता ही क्या है ? आगे चलकर इस युग के कवियों ने इन परम्पराओं को त्याग कर जन-जीवन की विविध समस्याओं, समाज-सुधार इत्यादि की ओर प्रवृत्त होकर इस काव्य की अनुपयुक्तता को स्वयं सिद्ध किया। संक्षेप में कहा जाये कि भारतेन्दुयुगीन शृंगारिक काव्य की आन्तरिक भावना रीतियुगीन वासना और मानसिक विलास की धारा से निमित्त हुई थी।<sup>१</sup> उसमें किसी क्रान्तिकारी दृष्टिकोण-परिवर्तन का सर्वथा अभाव है। उनके राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम तथा घोवी-धोवन के लौकिक दाम्पत्य-प्रेम में एक ही भावना प्रवाहित है।

### राज-भक्ति

भारतेन्दुयुगीन कवियों की राष्ट्रीयता हिन्दू-देशप्रेम तक ही सीमित थी। राष्ट्रीयता के विकास-क्रम में यद्यपि यह एक आवश्यक एवं अनिवार्य सोपान था तथापि इसका स्वरूप अविकसित एवं सीमित राष्ट्रीय दृष्टिकोण का द्योतक है। इस स्थिति का एक मनोवैज्ञानिक कारण इस काव्य से अनुस्यूत है। मुसलमानों ने धर्म के नाम पर हिन्दुओं और हिन्दू धर्म पर जो अत्याचार किये थे, उनका अन्त अंग्रेजों के शुभागमन से हुआ था।<sup>२</sup> हिन्दू धर्म विदेशी आततायियों की छाया में युगानुयुग से दबता चला आ रहा था। विक्टोरिया के घोषणा-पत्र से प्रथम बार विदेशी राज्य-सत्ता के अन्तर्गत देश में धर्मनिरपेक्ष राज की स्थापना हुई थी। इससे हिन्दू जनता अत्यधिक आश्वस्त हुई। इसके अतिरिक्त तत्कालीन जनता अंग्रेजों के नवीन आकर्षक व्यक्तित्व से भी सम्मोहित थी। फलतः भारतेन्दुयुगीन कवियों की राजभक्ति तथा उनका कृतज्ञता-प्रदर्शन सर्वथा स्वाभाविक ही है। विक्टोरिया की प्रशंसा, अंग्रेजी राज की प्रशंसा, ड्यूक ऑफ एडिनबरा का भारतागमन तथा उनका काशी आगमन, प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वस्थ होने की प्रार्थना इत्यादि प्रसंगों के माध्यम से भारतेन्दु ने अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन किया। अपने युग की इस विशिष्ट भावना का प्रतिनिधित्व पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' निम्न शब्दों में करते हैं—

घन्य तिहारो राज अरी मेरी महारानी।

सिंह अजा संग पियत जहाँ एकहि थल पानी ॥<sup>३</sup>

१. शृंगारकाल तथा उसकी कविता का पुनर्मूल्यांकन : रमेशकुमार शर्मा, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, १९८०, पृ० १०४।

२. परम दुःखमय तिमिर जब भारत में छाया।

गृह विछेद बहु खण्ड राज्य, सब प्रजा सतायो,

तबहि कृपा करि ईश, ब्रिटिश सूरज प्रकटायो।

—राधाकृष्णदास

३. प्रेमघन सर्वस्व—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग-१९६६ वि०, पृ० २७३।



राज-भक्ति तथा स्तुतिपरक काव्य की परम्परा हिन्दी काव्य में काफी प्राचीन है। मध्य युग के प्रायः सभी दरबारी कवियों ने अपने राजाओं या सामन्तों में सूर्य की-सी प्रखरता एवं न्यायप्रियता के दर्शन किये। युग के बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में भारतेन्दुयुगीन काव्य की यह प्रवृत्ति नवीनता की सूचक न होकर न्यूनाधिक परम्परा-पालन मात्र है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अन्तर्गत राजा को ईश्वर तथा राज्यसत्ता को ईश्वरीय सत्ता मानने की प्रवृत्ति से उत्पन्न यह मानसिक निष्क्रियता मात्र है। वास्तव में यह प्रवृत्ति तत्कालीन बुद्धिजीवी-वर्ग में सामान्यतः प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए कांग्रेस की गतिविधियों—जिनका उल्लेख किया जा चुका है, को लिया जा सकता है। विदेशी सभ्यता के कुप्रभावों और साम्राज्यवादियों के आर्थिक शोषण के प्रति इस युग के कवियों का आक्रोश इस तथ्य की ओर इंगित करता है, क्योंकि अंग्रेजों की शोषण-नीति से भली-भाँति परिचित होने पर इस युग के काव्य में राज-भक्ति की मात्रा कम हो जाती है और एक नवीन मानसिक चेतना का प्रस्फुरण होने लगता है।

### (ख) नवीनता का आयतन

राजनीतिक जागरण—उपर्युक्त प्रतिक्रिया से इस युग के काव्य में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का संचार हुआ। भुखमरी, काल, मँहगाई और आर्थिक शोषण से साम्राज्यवादियों के भव्य मुखौटे उतर गये। उनकी धार्मिक निरपेक्षता को ईसाई मिशनरियों की स्वच्छन्दता ने खोखला कर दिया। देश भर में व्याप्त दरिद्रता और दुःख के वातावरण से संतप्त होकर भारतेन्दुयुगीन कवि आठ-आठ आँसू बहाते हैं। इस नवीन जागरूकता के नायक भी भारतेन्दु ही बने। 'भारत-दुर्दशा' नाटक में उन्होंने तीव्र संवेदना से तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण किया। यथार्थ और व्यंग्य की तीव्र धारा का अद्भुत प्रस्फुटन इस रचना में हुआ।<sup>१</sup> भारतेन्दु के साथ ही बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बाल-मुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास इत्यादि कवियों ने इस नवीन जागरण की बेला में अपने काव्य की दिशाओं को परिवर्तित किया। इस काव्य में अंग्रेजों की आर्थिक-नीति तथा उनके शोषण की तीव्र आलोचना की गयी। साथ ही इन्होंने नवीन सांस्कृतिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर वर्तमान की हीन अवस्था की तुलना प्राचीन की भव्य परम्पराओं से करके जन-जागरण का प्रयास किया। आत्मविश्लेषण से ये कवि इसी निर्णय पर पहुँचे कि पराधीनता और परवशता के हम स्वयं कारण हैं। आपसी कलह और फूट के कारण ही

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली—भाग १ : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ४६९, ४६२-६३ इत्यादि।



हमें विदेशियों के अत्याचार सहने पड़ रहे हैं।<sup>१</sup> इस प्रकार देश की तत्कालीन स्थितियों की खोज की गई और उस पर शोभ एवं दुःख प्रकट किया गया। भारतेन्दुयुगीन कवियों का इस स्थिति पर व्यक्त दुःख वास्तव में ममस्पर्शी है। किसानों इत्यादि की कष्टाजनक स्थिति के भी इन्होंने यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किये। इस प्रकार हिन्दी-काव्य अभिजात्य-वर्ग से सामान्य जनता की ओर प्रवृत्त हुआ।

इस जागरण की एक विशेषता यह रही कि इसमें देश की स्थिति पर दुःख तो प्रकट किया गया परन्तु उसके निवारण के लिए किसी ठोस कार्यक्रम को प्रस्तुत नहीं किया गया। वस्तुतः ऐसी प्रौढ़ता का यह युग न था। इस दृष्टि से इनके इस काव्य का मूल्यांकन इनके प्रति अन्याय होगा। इस काव्य की अपनी ऐतिहासिक महत्ता है। स्तुति, वीर-भावना, भक्ति और श्रृंगार की परम्पराओं में बँधे हुए हिन्दी-काव्य के लिए यह परिवर्तन युगान्तरकारी था, जिसका समुचित विकास द्विवेदी युगीन काव्य में ही सम्भव हो सका।

### सामाजिक नवजागरण

पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के अध्यानुकरण से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के प्रति प्रबुद्ध आकर्षण इस काव्य में प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति की भव्य परम्पराओं के नवीन मूल्यांकन ने इन्हें आत्मविश्वास प्रदान किया। अतः प्रतिक्रियास्वरूप रूढ़ परम्पराओं से उत्पन्न सामाजिक ह्रास का इन्होंने तीव्र विरोध किया। समाज के नवीन 'सभ्य' वर्ग को इन्होंने व्यंग्य-बाणों से छिद्रित किया। वेदों और पुराणों की आड़ में हो रहे अत्याचारों की इन्होंने तीव्र आलोचना की।<sup>२</sup> विदेशी सभ्यता और संस्कृति से सम्मोहित वर्ग अपने धर्म और अपनी संस्कृति की अवहेलना करके फैशनपरस्ती और मदिरापान में व्यस्त रहा करता था। दूसरी ओर समाज के प्राचीन पंडित रूढ़ परम्पराओं का पालन धर्म के नाम पर करवा रहे थे। विधवाओं की कष्टाजनक अवस्था सामाजिक जीवन का आवश्यक अंग बन गयी थी। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने इन्हीं दुर्व्यवस्थाओं एवं परम्पराओं के प्रति तीव्र व्यंग्यात्मक आक्रोश का परिचय अपनी रचनाओं में दिया है। सामाजिक पतन की हृदय-विदारक स्थिति से प्रेरित इस काव्य को इस युग की दूसरी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

१. राधाकृष्ण ग्रन्थावली : सं० श्यामसुन्दरदास—इंडियन प्रेस, प्रयाग, (विजयिनी विलाप)।

२. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पृ० ३५७ एवं ४७५ तथा भारतेन्दु नाटकावली : सं० श्यामसुन्दरदास—इंडियन प्रेस, प्रयाग, पृ० ३५७-६३।



## लोकजीवन तथा लोकसाहित्य

इस युग के काव्य की तीसरी विशेषता ग्राम जीवन तथा सामान्य जनता के जीवन की ओर प्रवृत्त होना है। मई १८७६ की 'कवि वचन सुधा' पत्रिका में भारतेन्दु ने ग्रामीण भाषा में रचित ग्राम गीतों के महत्त्व की ओर तत्कालीन कवियों का ध्यान आकर्षित किया था। भारतेन्दु की यह महती आकांक्षा थी कि लोकसाहित्य की रचना प्रभूत मात्रा में हो। फलस्वरूप उनकी रुचि भी इस ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होती गयी। उन्होंने स्वयं अनेकानेक लोकछन्दों—लावनी, ठुमरी, होली, कहरवा, चैती, विरहा इत्यादि की रचना की। इसके साथ ही उन्होंने वे विषय भी प्रस्तुत किये जिन पर यह साहित्य रचा जा सकता था। उदाहरण के लिए अंग्रेजी फंशन का विरोध, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग, देशप्रेम, बालकों की शिक्षा, भ्रूण हत्या का तिरस्कार, धार्मिक रूढ़ियों का त्याग, विधवा-सुधार, फूट-वैर के दुष्परिणाम इत्यादि। लोकजीवन के दाम्पत्य-प्रेम का भी चित्रण इस काव्य में हुआ है। प्रेम की यह भावना रीति-कालीन शृंगारिकता की छाया में ही किंचित मात्रा में पल्लवित हुई। तथापि इसमें कृत्रिमता के स्थान पर वास्तविकता को भी स्थान दिया गया। भारतेन्दु युग में इस प्रकार लोकसाहित्य की रचना प्रचुर मात्रा में हुई। वास्तव में यदि लोक-काव्य शुद्ध साहित्य में ही माना जाये तो यह रचना-समष्टि इस बात को प्रमाणित करती है कि अब हिन्दी कवि का हृदय लोक-हृदय के साथ एकाकार हो गया।

## प्रकृति-चित्रण

भारतेन्दु-युग तक हिन्दी-काव्य में प्रकृति-चित्रण उद्दीपनगत-चित्रण तक ही सीमित था। प्रकृति के स्वतन्त्र मनोरम एवं भयावह रूप को काव्य में स्थान नहीं मिला था। भारतेन्दु-युग प्रधानतया यद्यपि परम्परा-अनुस्यूत ही रहा तथापि प्रकृति के आलम्बनगत चित्रणों के यदा-कदा दर्शन इस युग के काव्य में प्राप्त होते हैं। ये चित्रण परिमाण में बहुत कम हैं। इनमें भावना का वह तीव्र प्रवाह तथा चित्रण की वह सूक्ष्मता नहीं मिलती जो परवर्ती प्रकृति-काव्य में प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में भारतेन्दु की 'गंगा वर्णन', 'यमुना वर्णन', 'प्रातः समीरण', 'बरसात' एवं 'बसन्त' कविताएँ उल्लेखनीय हैं। प्रकृति के आलम्बनगत चित्रणों के प्रारम्भिक प्रयास के रूप में इन कविताओं का महत्त्व है। वैसे सामान्य रूप से इस युग के कवियों की चित्तवृत्ति प्रकृति के अलंकृत और उद्दीपनगत वर्णन में अधिक रमी है, जिसमें किसी प्रकार की उल्लेखनीय नवीनता का आभास नहीं है।

भारतेन्दु-युग की काव्य-भाषा पर दो शब्द कहना अनुचित न होगा। इस युग में ब्रजभाषा ही काव्य भाषा के रूप में सम्मानित रही। भारतेन्दु ने ब्रज-



भाषा के रूढ़ प्रयोगों का परिमार्जन करके उसे जन-जीवन के निकट लाकर अधिक प्रेषणीय बनाने के सराहनीय प्रयत्न किये। सरल, स्वच्छ, मुहावरेदार भाषा भारतेन्दु की विशेषता है। प्रतापनारायण मिश्र की मुहावरेदार भाषा तो प्रसिद्ध ही है। भारतेन्दु की भाषा-स्वच्छन्दता निरंकुशता में परिवर्तित नहीं हुई। अपने जीवन-काल के अन्तिम चरण में भारतेन्दु ने यद्यपि खड़ी बोली पद्य के भी कुछ प्रयोग किये थे तथापि उससे वे स्वयं संतुष्ट नहीं थे। ब्रजभाषा के इस महान् कवि की यह नवीन प्रवृत्ति भावी खड़ी बोली काव्य की सफलता की संकेत ध्वनि कही जा सकती है। छन्दों के विषय में भी इस युग के काव्य में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। कवित्त, सवैया, दोहा, पद, छप्पय जैसे परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त लोकछन्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ। लोक-जीवन के चित्रण में कवियों ने लावनी, कजली, आल्हा, बन्ना, होली इत्यादि के नवीन प्रयोग किये। हिन्दी काव्य-धारा में यह प्रयोग सचमुच सराहनीय प्रयास थे।

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर निष्कर्षतः भारतेन्दु-युग की नवीन विचार-धारा को इस प्रकार रखा जा सकता है। नवीनता के आग्रह के अन्तर्गत सर्वप्रथम इस युग में देश अथवा राष्ट्र के स्वरूप की अनुभूति कवियों को हुई। यद्यपि हिन्दू राष्ट्रियता से यह अनुभूति सम्पृक्त थी तथापि हिन्दी-साहित्य के लिए यह एक नवीन क्रान्तिकारी मोड़ था। वास्तव में १८५७ ई० की असफल क्रान्ति के स्फुरित सन्धे देश में कहीं-न-कहीं लोकसाहित्य में विद्यमान थे जो तत्कालीन शिष्ट-साहित्य में भी ज्योतिषित हुए। कदाचित् इसीलिए पूर्ण स्वतन्त्रता के भाव को भारतेन्दु ने 'सत्त्व निज भारत गहै कर दुख बहै'<sup>१</sup> उक्ति से प्रकट किया था। असन्तोष की यह भावना व्यंग्य, परिहास और वक्रोक्ति के माध्यम से हमारे सामने आती है। इस युग की यह राष्ट्रियता समाज-सुधार और धार्मिक रूढ़ियों के उन्मूलन के आन्दोलनों से घुल-मिल गयी है। विदेशी राज्यसत्ता के उन्मूलन की कोई महान् और व्यवस्थित कल्पना इस काव्य में नहीं है। राष्ट्रियता का यह स्वरूप बाह्य ही था। सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के लिए लिखी गयी विपुल कविताओं में लोकजीवन और लोकानुभूतियों की व्यापक एवं गहरी छाप देखी जा सकती है। इस काव्य को अधिक जनोपयोगी बनाने के लिए लोकछन्दों और जनबोध के समीप की भाषा का व्यवहार किया गया। किन्तु दूसरी ओर इस काव्य में अभिव्यक्त अत्यधिक राज-भक्ति का स्वर विरोधाभास के रूप में उपस्थित होता है।

१. भारतेन्दु नाटकावली-पृ० ४६० तथा दे० साहित्य चिन्तन : डॉ० राम-कुमार वर्मा—किताब महल, प्रयाग १९६५ ई०, पृ० ८८।



भारतेन्दु का विक्टोरिया को 'राज राजेश्वरी ! विजयिनी' कहना तथा युवराज का स्वागत करते हुए १८७७ ई० में 'हम सब स्वभावसिद्ध राजभक्त हैं..... राजभक्ति भरतखण्ड की मिट्टी का सहज गुण और कर्तव्य धर्म है।' <sup>१</sup> कहना उनके उपर्युक्त उद्धरण की तुलना में इस काव्य के अध्येताओं को असमंजस में डाल देता है। परन्तु इस राज-भक्ति के मनोवैज्ञानिक कारण हैं, जिन्हें स्पष्ट किया जा चुका है। यह राज-भक्ति तत्कालीन राजनीतिक जागरूकता के परिवेश के अन्तर्गत एवं उससे सर्वथा प्रभावित है। इसीलिए इस युग की राष्ट्रीय भावना को अविकसित एवं अपरिपक्व कहा गया है।

द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीय भावना अपरिपक्वता से प्रौढ़ता की ओर, सामाजिक एवं धार्मिक सुधार से सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की ओर अग्रसित हुई। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता ही वास्तविक राष्ट्रीयता का आधार है। द्विवेदी-युग में यह भावना बाह्य न रहकर आन्तरिक हो गयी। इस युग में हिन्दी-काव्य सांस्कृतिक गरिमा से अनुस्यूत होकर प्राचीन संस्कृत साहित्यादर्शों की ओर प्रवृत्त हुआ। इस युग के प्रारम्भिक वर्षों में भाषा, छन्द और भाव को संस्कृत-काव्य की परम्परा से जोड़ने के भरसक प्रयत्न हुए। आधुनिक बुद्धिवाद से प्रभावित होने के कारण इस भावधारा में गाम्भीर्य और विवेचना की वैज्ञानिक दृष्टि का समावेश हुआ। संस्कृत वृत्तों की परम्परा में 'प्रियप्रवास' की रचना तो हुई किन्तु उसमें राष्ट्रीयता की जिस उदात्त भावना की अभिव्यक्ति है, वह किसी भी महान् देश का आदर्श बन सकती है। संस्कृत साहित्य का अवलम्बन, संस्कृत छन्दों के प्रयोग तथा संस्कृत भाषा के आधार बन जाने के कारण इस युग में लोक-छन्दों और लोकजीवन की भारतेन्दुयुगीन परम्परा को अवश्य आघात पहुँचा, किन्तु खड़ी बोली के इस नव निर्माण-काल में यह आघात सहज ही भुलाया जा सकता है। वास्तव में खड़ी बोली को राष्ट्रभाषा के सम्मान से मंडित करने के लिए उसे सांस्कृतिक परम्परा से अनुस्यूत करना आवश्यक था। इस उद्देश्य की पूर्ति संस्कृत-साहित्य एवं भाषा की सहायता से ही हो सकती थी।

### खड़ी बोली के साहित्यिक व्यवहार की भूमिका

यह कहा जा चुका है कि स्वयं भारतेन्दु ने ब्रजभाषा के समर्थ पोषक एवं महान् कवि होते हुए भी खड़ी बोली में काव्य-रचना की थी। द्विवेदी-युग में खड़ी बोली ने साहित्यिक भाषा का स्वस्थ रूप धारण किया। खड़ी बोली की इस साहित्यिक भाषा की पूर्वापीठिका भारतेन्दु-युग तथा विशेषकर भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् १९०० ई० तक मानी जानी चाहिए। इस युग में खड़ी

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली—पृ० ७२१-२२ (मानसोपाख्यान-१८७७ ई० : भूमिका भाग)।



बोली में गद्य और पद्य दोनों की रचनाएँ होती रहीं। नवीन भाषा का आग्रह जहाँ कई कवियों को काव्य-रचना के लिए उत्साहित किये जा रहा था, वहाँ प्राचीन ब्रजभाषा के समर्थक इस प्रवृत्ति का उग्र विरोध भी कर रहे थे। इस विरोध और भाषागत सीमाओं के रहते हुए भी खड़ी बोली अपने मार्ग पर अग्रसर होती रही। उपर्युक्त ब्रजभाषा काव्य के मूल्यांकन के संदर्भ में प्रस्तुत युग के खड़ी बोली प्रयोगों का सामान्य परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। द्विवेदी-युग को खड़ी बोली के भाषारूप को व्यवस्थित, परिमार्जित एवं साहित्यिक रूप देने का श्रेय मिलता है। अतः यहाँ पर खड़ी बोली की इस पूर्व पीठिका को गद्य की भाषा एवं पद्य की भाषा के प्रमुख शीर्षकों में विवेचित किया जा रहा है।

### (क) गद्य की भाषा

ब्रजभाषा में गद्य की किसी सुव्यवस्थित परम्परा का सर्वथा अभाव रहा है। भक्तों के जीवन सम्बन्धी कतिपय गद्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रचलित गद्य ब्रजभाषा में नहीं रहा है। वस्तुतः ब्रजभाषा पद्य की ही भाषा बनी रही। खड़ी बोली उतनी ही प्राचीन है जितनी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हुई ब्रजभाषा आदि अन्य उपभाषाएँ हैं। खड़ी बोली जनभाषा के रूप में प्रारम्भ से ही प्रयुक्त होती रही।<sup>१</sup> अतः उसके गद्य-रूप का प्रचलन काफी होना स्वाभाविक है। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार “यह कहना कि खड़ी बोली में गद्य लिखने का आरम्भ लल्लूलाल जी ने अंग्रेजी की प्रेरणा से किया था, एकदम निराधार और गलत है। बहुत पहले से खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था। वह व्यवहार की भाषा थी और विशुद्ध संस्कृत-शैली में उसमें पत्र लिखे जाते थे।”<sup>२</sup> तथापि अंग्रेजों के आगमन तथा इंशा अल्लाह ख़ाँ, मुंशी सदासुखलाल, लल्लूलाल जी तथा पं० सदल मिश्र आदि के प्रयासों से आधुनिक खड़ी बोली गद्य के प्रचार एवं प्रसार में विशेष बल प्राप्त हुआ।

भारतेन्दु-युग से पूर्व खड़ी बोली के गद्य-प्रयोग सामान्यतः प्रचलित हो चुके थे किन्तु उनमें भाषा का कोई सर्वमान्य एवं सुनिश्चित रूप स्वीकार नहीं किया गया था। इंशा अल्लाह ख़ाँ और लल्लूलाल जी क्रमशः ‘मुअल्लापन’ और ‘कथावाचक पंडितों’ की गद्य-शैलियों को ही सामान्यतः प्रस्तुत कर रहे थे। अतः इन प्रयत्नों से भाषा के विभिन्न रूप सामने आने लगे थे। कहीं

१. ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली : डा० कपिलदेव सिंह, पृ० १६।

२. विशाल भारत—भाग २५, खण्ड १-१९४० ई०, पृ० ३६८ तथा वही दे० पृ० ३७०।



भाषा उर्दू-फारसी के बोझ से बोझिल थी तो कहीं ब्रजभाषा और संस्कृत की शब्दावली से यह जटिल एवं दुरुह हो जाती थी। राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' जहाँ फारसी शब्दावली को नागरी लिपि में प्रस्तुत कर रहे थे वहाँ प्रतिक्रियास्वरूप राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत की शब्दावली से भाषा को भारा-क्रांत कर रहे थे। इस अव्यवस्था की स्थिति में केवल मुंशी सदासुखलाल की हिन्दी में ही प्रायः आधुनिक खड़ी बोली गद्य का स्वरूप उभर उठा है। खड़ी बोली के उद्गम क्षेत्र दिल्ली के निवासी होने के कारण उनकी भाषा में प्रांजलता के दर्शन होते हैं। उनकी भाषा अधिक शिष्ट, व्यवहारोपयोगी तथा सरल थी। तथापि भाषा के अन्य रूपों के प्राधान्य के समक्ष उनकी भाषा का विशेष प्रभाव तत्कालीन खड़ी बोली के स्वरूप पर न पड़ा। अतः समग्र रूप से कहा जाये तो यह युग खड़ी बोली के प्रारम्भिक प्रयासों का ही युग था।

भारतेन्दु के साहित्य क्षेत्र में अवतरित होने के साथ ही खड़ी बोली गद्य का एक सुव्यवस्थित रूप सामने आता है। भारतेन्दु 'प्रथम व्यक्ति' हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व की सबलता और अध्यवसाय से 'आमफहम' और 'शुद्ध हिन्दी' के विवाद को समाप्त करके भाषा को एक व्यवस्थित, व्यावहारिक, सर्वमान्य स्थिर रूप प्रदान किया।<sup>१</sup> वास्तव में भारतेन्दु मध्यमार्गीय थे। उन्हें न शुद्धतावाद से अधिक सरोकार था और न ही खिचड़ी भाषा उन्हें प्रिय थी। उन्हें जनरुचि अनुमोदित सरल प्रवाहमय एवं साहित्यिक भाषा का स्वरूप ही प्रिय था।

### (१) गद्य-शैलियाँ एवं भाषा रूप

संक्षेप में इस युग के गद्य-साहित्य में प्रयुक्त विविध शैलियों एवं भाषारूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है—

#### प्रांजल संस्कृत गभित रूप

भाषा के इस रूप का सम्बन्ध सर्वसामान्य से न होकर अपेक्षाकृत पढ़े-लिखे वर्ग से था। यह तथ्य-निरूपण की गम्भीर शैली थी। साहित्यिक एवं समीक्षात्मक विषयों की यह भाषा थी। इसमें संयुक्त और मिश्रित वाक्य-योजना का प्रयोग होता था। संस्कृत शब्दावली का प्रयोग करने के उपरान्त भी इसमें क्लिष्टता का बहिष्कार किया गया। वस्तुतः स्वयं भारतेन्दु '..... जटिलता, अस्पष्टता और शिथिलता से कोसों दूर थे।'<sup>२</sup>

१. हिन्दी गद्य का विकास और प्रमुख शैलीकार : गुलाबराय-शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा-१९५९ ई०, पृ० ३६।

२. भारतेन्दु के निबन्ध : डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—सरस्वती मन्दिर, बनारस-पृ० ३५।



### सरल एवं मिश्रित रूप

इन गद्यकारों ने जनवादिता के प्रबल समर्थक होने के कारण सजीव चलती हुई सरल भाषा का ही प्रयोग अधिक किया। इन्होंने अधिकांश में स्वच्छन्द शैली को अपनाया है। मुहावरों के प्रयोग से इस भाषा में विशेष लोच एवं प्रभावोत्पादकता का समावेश हुआ। मिश्रित शब्दों के प्रयोग होते हुए भी इस शैली में अभिव्यक्त भावात्मकता का प्रवाह निर्बाध है। व्यावहारिकता इस शैली का प्रधान गुण था। जनसामान्य के लिए यह भाषा अंशतः उपयुक्त थी। 'भाषाविज्ञान की दृष्टि से भारतेन्दु ने जिस हिन्दी भाषा का प्रयोग एवं प्रचार किया, कहा जायेगा कि उसमें जनरुचि की समाहारणा पूरी-पूरी तरह बनी रही।'<sup>1</sup> भाषा के इस रूप से खड़ी बोली प्राणवान् हुई। खड़ी बोली की भावी सफलता में इस गद्य भाषा का प्रवाह और इसकी प्रेषणीयता विशेष सहायक सिद्ध हुई। भाषा के इसी रूप में इस युग के साहित्यकारों ने तत्कालीन सामाजिक, साहित्यिक एवं राष्ट्रीय विषयों पर लिखा। इसी में इनकी भावुकता और विनोदी स्वभाव को भी अभिव्यक्ति मिली। हास्य और व्यंग्य की अभूतपूर्व सृष्टि इस शैली में हुई। बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशम्भु के चिट्ठे', 'आत्माराम' के साहित्यिक व्यंग्य, प्रेमघन की शैली की तुकबन्दी एवं अलंकारिकता, प्रतापनारायण मिश्र का चुटोलापन तथा बालकृष्ण भट्ट के चुहल, व्यंग्य एवं परिहास इसी सर्वसामान्य भाषा रूप में प्रवाहित हुए।

रीतिकालीन प्रभाव से अलंकृत भाषा शैली के भी प्रयोग इन गद्यकारों ने किये। यद्यपि इसमें भी सरल एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग किया गया तथापि जाने-अनजाने रीतिकाल के प्रभाव से इसमें अलंकारिकता आ ही गयी। भारतेन्दु का 'सूर्योदय' तथा भट्ट जी का 'चन्द्रोदय' लेख इस शैली के विशिष्ट उदाहरण हो सकते हैं।<sup>2</sup>

### (२) गद्य भाषा का मूल्यांकन

सन् १८८५ में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की असमय मृत्यु से भारतेन्दु युग का शीराजा बिखर गया। भारतेन्दु मंडल तितर-बितर हो गया। भाषा के क्षेत्र में भारतेन्दुयुगीन खड़ी बोली में जितनी त्रुटियाँ थीं, उनकी समाहारणा नहीं हो पायी थी। नेतृत्व के अभाव में खड़ी बोली में अराजकता एवं निरंकुशता बढ़ती गयी। भारतेन्दु-युग की त्रुटियों के अतिरिक्त अब नवीन अपरिपक्व

१. हिन्दी गद्य के सोपान : जीवन प्रकाश जोशी—सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९६० ई०, पृ० ६०।

२. गद्य-पुष्प-माला : पं० शारदाप्रसाद वर्मा, पृ० १।



साहित्यकारों की रचनाओं में अधिक त्रुटियाँ परिलक्षित होने लगीं। तत्कालीन विभिन्न आन्दोलनों से उद्भूत नवीन अनेकानेक प्रेरणाओं को समेटने की उतावली में भाषा के रूप पर ध्यान नहीं दिया गया। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में भिन्न भाषा-भाषियों के प्रवेश से व्याकरणिक त्रुटियाँ जैसे लिंग-भेद आदि का भी समावेश हुआ। नवीन भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्यकारों को नवीन शब्दों की आवश्यकता पड़ती थी। शब्द-निर्माण की इस प्रक्रिया में कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा जाता था तो कहीं अन्य भाषाओं के अव्यावहारिक शब्दों का प्रयोग किया जाता था। यह शब्द-निर्माण कभी द्रष्टे तो कभी हास्यास्पद होता था।<sup>1</sup> अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग भाषा को अंग्रेजी शब्दों से भाराक्रान्त करके गर्व का अनुभव करते थे। दूसरी ओर उर्दू-हिन्दी संघर्ष भी दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। प्रतिक्रियास्वरूप कुछ लोग संस्कृत के तत्सम शब्दों को प्रयोग में ला रहे थे तो कुछ उर्दू के प्रभाव में आकर फारसी शब्दावली को नागरी लिपि में प्रयुक्त करते थे। उर्दू चूँकि उस समय राजभाषा के रूप में स्वीकृत थी, इसलिए उसके प्रभुत्व से भी खड़ी बोली हिन्दी आक्रान्त थी।

इसके अतिरिक्त खड़ी बोली की कुछ ऐसी आन्तरिक त्रुटियाँ थीं जिनका प्रचलन भारतेन्दु से ही निरन्तर चला आ रहा था। स्वयं भारतेन्दु गद्य-भाषा का नेतृत्व करते हुए भी इन त्रुटियों को अपनी भाषा में स्थान दिये हुए थे। ये अभाव तथा ये त्रुटियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—खड़ी बोली हिन्दी के पास प्रामाणिक शब्दकोष तथा व्याकरण का अभाव था।

२—विभिन्न बोलियों के प्रभाव में आकर खड़ी बोली में 'श' तथा 'व', 'ण' तथा 'न', तथा 'छ' तथा 'ज' की समस्या थी। पूर्वी प्रभाव से 'य' का 'व' हो जाना भी एक समस्या थी।

३—ब्रजभाषा के प्रभाव से कुछ लोग तो संयुक्ताक्षर का प्रयोग न करके पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करते थे और कुछ लोग संयुक्ताक्षरों का ही प्रयोग करते थे। जैसे—'पुञ्ज' का 'पुंज', 'पिङ्गल' का 'पिगल', 'पण्डित' का 'पंडित' इत्यादि। इसी प्रकार ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के आधार पर 'श', 'ण', 'ड' को मधुर बनाने के लिए क्रमशः 'स', 'न' तथा 'र' बनाया जाता था। ब्रजभाषा में सामान्यतः शब्दों के तत्सम रूपों के स्थान पर तद्भव रूपों को ग्रहण करने की ही परिपाटी रही है। अतः

१. भारतेन्दु ने 'नाक बहना' के लिए 'नासिका रन्ध्र स्फीत' तथा 'सिफारिश' के लिए 'क्षिप्राशिष' शब्द प्रयुक्त किये थे।



उसके प्रभाव से 'धर्म' का 'धरम', 'कर्म' का 'करम' तथा 'कायं' का 'कारज' कर दिया जाता था ।

४—असमय स्वर्गवास होने के कारण भारतेन्दु को अपनी श्रुतियों को परि-  
मार्जित करने का समय न मिला । सम्भवतः यदि वे जीवित रहते तो  
इस अराजकता का प्रसार न हो पाया होता । उनकी गद्य-भाषा में जो  
अस्थिरता थी उसका अनुसरण अन्य साहित्यकारों ने यथावत् किया—  
उदाहरण के लिए उनकी भाषा में कतिपय शब्द-रूपों की अस्थिरता  
दृष्टव्य है—

—एक ही शब्द के भिन्न रूप—'हुआ', 'हुया'; 'जायगा', 'जायेगा',  
'जावेगा'; 'स्थायी', 'स्थाई'; 'जिसपर', 'जिस्पर'; 'तो', 'तौ'; 'करिये',  
'करिए' इत्यादि ।

—उच्चारण के कारण भिन्न शब्द रूप—'श्मशान', 'श्मशान'; 'मतलब',  
'मतबल'; 'धोका', 'धोखा'; 'भूख', 'भूक'; 'लखनऊ', 'नखलऊ';  
'पहचान', 'पहिचान' इत्यादि ।

—असंस्कृत एवं व्याकरण विरुद्ध प्रयोग—'वादाविवाद', 'अनुवादित',  
'द्रुतलेखन', 'शैलिता', 'शान्तता', 'माधुर्यता', 'ऐक्यता', 'विद्वान-  
समाज', 'निर्दोषी' इत्यादि ।

—अनुस्वार तथा पंचम वर्ण का मिश्र प्रयोग—'परन्तु', 'परंतु'; 'सन्देह',  
'संदेह'; 'पण्डित', 'पंडित'; 'सम्प्रदाय', संप्रदाय; 'किञ्चित',  
'किंचित' इत्यादि ।

—व-ब, हैं-है, ट-ठ इ-ई का अनाभिज्ञान—'विचार'-विचार'; 'प्रवृत्ती'-  
'प्रवृत्ति'; 'आपत्ति'-आपत्ती' इत्यादि ।

—संस्कृत से अनूदित हास्यास्पद प्रयोग—'चक्ष्मा' (चश्मा), 'शिक्षा-यत्न'  
(शिकायत), 'नासिका रन्ध्र स्फीत (नाक बहना), 'क्षिप्राशिष' (सिफा-  
रिश) इत्यादि ।

—ग्रामीण तथा देशज शब्दों की भरमार—'मृतकी' (बहुत), 'खीसा'  
(जेब), 'व्यारी', (रात्रि भोजन), 'खौरिवयाना' (क्रुद्ध होना),  
'सेतमेंत' (बिना मूल्य), 'मुड़िया बै' (सुनी-अनसुनी करना), 'जटला'  
(कठिन) इत्यादि ।

—अरबी, फारसी आदि के लिंगभेद से उत्पन्न समस्या—'आत्मा', 'अग्नि',  
'देवता', 'मोती', 'मृत्यु' 'सन्तान', 'ऋतु', 'वायु', 'कुंज', 'संज्ञत',  
'विधि' इत्यादि ।

—वचन की अनेकरूपता—'स्त्रियाँ', 'स्त्रिऐं'; 'नारियाँ', नारिऐं'; 'राजे',  
'राजाओ' इत्यादि ।



—वाक्य रचना एवं विन्यास की त्रुटियाँ—

१—हमारे यहाँ पुस्तकों की संख्याएँ दो सहस्र हैं ।

२—उन दिनों गन्दे उपन्यासों के प्रचार हुए ।

३—प्रत्येक पुस्तकों को ध्यान से पढ़ा जाता है ।<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त भाषा के क्षेत्र में इस युग के एक और प्रसिद्ध साहित्य-कार पं० प्रतापनारायण मिश्र के सम्बन्ध में श्री शंकर दयाल का कथन है कि अराजकता-काल में अस्थिरता, अव्यवस्था, व्याकरण की उपेक्षा, विराम चिह्नों का अभाव, ग्रामीणता आदि जितने दोष खड़ी बोली में आ गये थे, वे सब एक ही स्थान में मिश्र जी में मिल सकते हैं ।<sup>२</sup>

खड़ी बोली के इस प्रयोगात्मक काल में उसके प्रचार और प्रसार में जितनी वृद्धि हुई उतनी ही अनेक समस्याओं का भी समावेश हुआ । भाषा-गत अराजकता के कारण उसका विरोध भी हुआ और उर्दू और अंग्रेजी के प्रभुत्व के सामने उसे झुकना भी पड़ा । तत्कालीन खड़ी बोली की इस स्थिति को बालमुकुन्द गुप्त इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं, उस समय 'हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जा रही थी ।'<sup>३</sup> कदाचित् इन्हीं सब कारणों से तत्कालीन अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वान् इस हिन्दी को मूर्ख हिन्दी—'स्टुपिड हिन्दी'<sup>४</sup> भी कहा करते थे ।

(ख) पद्य की भाषा

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् इस युग में खड़ी बोली पद्य-भाषा के स्वरूप को विवेचित करना भी अपेक्षित है । भावी खड़ी बोली काव्य की इस पूर्व-पीठिका के समक्ष ही द्विवेदी-युग के खड़ी बोली काव्य का सम्यक् स्वरूप उपस्थित हो सकेगा ।

सर्वप्रथम यह जानना अपेक्षित है कि ब्रजभाषा जैसी समर्थ काव्य-भाषा के रहते हुए भी खड़ी बोली काव्य-क्षेत्र में कैसे प्रविष्ट हुई । भारतेन्दु-युग स्पष्टतया ब्रजभाषा का युग था । पूर्व-मध्यकाल से रीतिकाल तक हिन्दी काव्य पर ब्रजभाषा का ही प्रभुत्व रहा । अतः प्राचीनता के पालन के कारण कवियों को खड़ी बोली में काव्योचित भाषागत शक्ति एवं माधुर्य का सर्वथा अभाव दिखा ।

१. द्विवेदी-युग की गद्य शैलियों का अध्ययन : शंकर दयाल चौधुरि—भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली-६, १९६५ ई०, पृ० १३४ ।

२. वही, पृ० १२२ ।

३. हिन्दी गद्य की मीमांसा : रमाकान्त त्रिपाठी—'हिन्दी-साहित्य-माला' कार्यालय, कानपुर, १९२६ ई०, पृ० ४० ।

४. हिन्दी का समसामयिक साहित्य : पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—सरस्वती मन्दिर, काशी, सं० २००८, पृ० २३ ।



अतः गद्य और पद्य की भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग उन्हें गर्व एवं सम्मान का विषय प्रतीत होता रहा ।

(१) पद्य में खड़ी बोली के प्रवेश के कारण

वस्तुतः खड़ी बोली के पद्य-प्रयोग खुसरो से भारतेन्दु तक किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होते हैं । रीतिकालीन कवि सौतल की खड़ी बोली कविता की सराहना तो महाकवि 'हरिऔध' ने विशेष रूप से की है ।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त उर्दू कविता में कवि वली (१७०० ई०) से आधुनिक काल तक इस भाषा के पद्य-रूप को एक सुनिश्चित परम्परा प्राप्त होती है ।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति, रेल, तार, डाक, समाचार पत्रों इत्यादि के प्रचलन के कारण देश की विस्तृत सीमाओं में रहने वाली जनता अब अधिक निकटता अनुभव करने लगी थी । देश के विविध अंचलों की जनता में पार-स्परिक सम्बन्धों से नवीन ऐक्य एवं संगठन की भावना का प्रसार हो रहा था । इस संगठन को जितनी विशेष सहायता इन आविष्कारों से प्राप्त हुई उतनी ही खड़ी बोली की व्यापकता एवं बोधगम्यता से भी हुई । समस्त उत्तर भारत की यह प्रमुख जनभाषा तो थी ही दक्षिण का भी उत्तर भारत से यदि कोई भाषागत सम्बन्ध था तो वह खड़ी बोली (रेखता) ही के माध्यम से था (भले ही इसे उर्दू की संज्ञा दी जाये) । मुद्रण कला के प्रसार से हिन्दी साहित्य एवं भाषा की व्यापकता बढ़ती गयी । किन्तु गद्य और पद्य की भिन्न-भिन्न भाषा होने के कारण इस व्यापकता में एक अवरोध उत्पन्न हुआ ।

ब्रजभाषा वर्षों से काव्य भाषा तो थी किन्तु उसकी प्रेषणीयता ब्रजप्रदेश के बाहर कम ही थी । ब्रजभाषा को कृष्ण-भक्तों ने सर्वत्र प्रयुक्त किया । इस पर भी वह जनभाषा का रूप न धारण कर सकी । ब्रजभाषा भक्ति-काव्य के अन्तर्गत व्यवतिनिष्ठ भक्तों की छत्रछाया में पली तथा रीतिकालीन दरबारों में वह ऐश्वर्य एवं विलास का एक उपकरण बनकर रह गयी । जनता से न तो इन भक्तों की भक्ति का (कबीर की भाँति) और न ही इन रीतियुगीन सामन्ती कवियों का सीधा सम्बन्ध था । फलतः वह जनता के लिए दुरूह एवं दुर्बोध होती गयी । 'आमफहम' खड़ी बोली गद्य उनके लिए जितना उपयोगी था उतना परिनिष्ठित ब्रजभाषा काव्य न था । अतः भारतेन्दु-युग में ही इस तथ्य का अनुभव किया जाने लगा । स्वयं भारतेन्दु के खड़ी बोली के काव्य-प्रयोग इस तथ्य के द्योतक हैं किन्तु उनकी मृत्यु के

१. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास : अयोध्या सिंह उपाध्याय—पुस्तक भण्डार, लोहरियासराय, सं० १९६७, पृ० ४३७ ।



पश्चात् भारतेन्दु मण्डल के कवियों ने इस प्रवृत्ति का तीव्र विरोध किया ।

तत्कालीन साहित्य में एक प्रवृत्ति और अत्यधिक तीव्रता से पनप रही थी कि हिन्दी के गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो। इसका एक और सबल कारण उर्दू का बढ़ता हुआ सम्मान भी था। उस समय हिन्दी को सरकारी कार्यकलाप के लिए अनुपयुक्त समझा जाता था। एक तो उसमें दो भाषाओं का प्रयोग होता था तथा दूसरा उसके अस्थिर भाषा रूप को 'मूर्खा' की संज्ञा प्राप्त हो चुकी थी। उर्दू के राजभाषा घोषित होने से हिन्दी भाषा-भाषियों को, जिनकी संख्या करोड़ों में थी, एक विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा। सरकारी नौकरी प्राप्त करने तथा सरकार से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उर्दू और अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्य हो गया। अतः उन्हें अपनी भाषा के साथ-साथ दो 'विदेशी' भाषाओं को भी सीखना पड़ता था। इसलिए यह आवश्यक हो गया था कि हिन्दी में गद्य और पद्य की भाषा एक हो। इस प्रकार खड़ी बोली के समर्थकों को हिन्दी के भाषा-रूप को स्थायित्व प्रदान करने के लिए ब्रजभाषा का त्याग आवश्यक लगा।

ब्रजभाषा युगानुयुग से प्रमुख रूप में भक्ति और शृंगार के आवृत्त में ही गतिशील रही है। उसमें नये युग की नवीन क्रान्तिकारी विचारधारा को सम्प्रेषणीय बनाने की उतनी क्षमता नहीं थी जितनी जनभाषा खड़ी बोली में थी। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने यद्यपि नवीन जागरण के आन्दोलनों को समेटने का प्रयत्न किया था तथापि उसकी उपयोगिता भाषागत सीमाओं के कारण सीमित ही थी। देश की विशाल जनता का सम्बन्ध आधुनिक भारत के नवीन ऐतिहासिक परिवर्तनों के साथ खड़ी बोली के माध्यम से ही जुड़ सकता था। अतः ब्रजभाषा क्षेत्र से इतर खड़ी बोली क्षेत्र, पद्य की भाषा खड़ी बोली को ही देखना चाहता था। उसकी यह माँग सर्वथा उपयुक्त एवं तर्कसम्मत थी। किन्तु ब्रजभाषा जैसी समर्थ भाषा, जिसका प्रयोग अबाध गति से चार सौ वर्ष तक काव्य में होता रहा, कुछ वर्षों के भीतर ही काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत हो, असम्भव-सा दीखता है। ब्रजभाषा की निजी आन्तरिक अक्षमता ही उसके ह्रास का कारण बनी। जिस प्रकार अपभ्रंश ने प्राकृत और प्राकृत ने संस्कृत का बहिष्कार किया था, उसी भाँति आज खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का किया। यह इतिहास-चक्र की एक घटना थी जिसे द्रुतगति से बदलते हुए नवीन भारत ने अत्यधिक बल प्रदान किया।

ब्रजभाषा के काव्य-क्षेत्र से निष्कासन का एक और कारण उसके साहित्य में गद्य का अभाव था। यह एक ऐसी कमी थी जिसके लिए ब्रजभाषा के समर्थक, निरुत्तर हो जाते थे। इसीलिए राधाचरण गोस्वामी गद्य और पद्य की भिन्न-भिन्न भाषा होना हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए विशेष गर्व का



विषय बताते थे। संसार की किसी भी भाषा को यह गौरव प्राप्त नहीं है, अतः हिन्दी के लिए यह गौरव प्राप्त करना और भी अच्छा होगा।<sup>१</sup> ब्रजभाषा-मोह के कारण ही इस प्रकार की अव्यावहारिक बातें ब्रजभाषा के समर्थकों ने कहीं। गद्य के अभाव में खड़ी बोली के समर्थ गद्य-साहित्य के सामने ब्रजभाषा के काव्य-प्रयोग कमजोर पड़ते गये। दो भाषाओं से हो रही हिन्दी भाषा की हानि ने ब्रजभाषा को काव्य-क्षेत्र से बहिष्कृत करने में यथेष्ट बल प्रदान किया।

## (२) खड़ी बोली आन्दोलन

खड़ी बोली और ब्रजभाषा के बीच तनातनी १८८५ ई० के बाद बढ़ती ही गयी। अयोध्याप्रसाद खत्री के खड़ी बोली आन्दोलन (१८८७ ई०) चलाने से इन दो भाषाओं के समर्थकों के बीच एक वृहद् आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। श्रीधर पाठक, अयोध्याप्रसाद खत्री इत्यादि एक ओर से खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थे। दूसरी ओर से प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी इत्यादि इसके विरुद्ध खड़ी बोली को इस कार्य के लिए अनुपयुक्त सिद्ध करने में अपनी समस्त शक्ति लगा रहे थे। खड़ी बोली और ब्रजभाषा का यह आन्दोलन कई वर्षों तक चलता रहा। 'हिन्दुस्थान', 'ब्राह्मण' आदि पत्रिकाएँ इस आन्दोलन की माध्यम थीं। छींटाकशी से लेकर हास्यापद एवं मनोरंजक तर्क-वितर्कों को प्रस्तुत करने के पश्चात् भी ब्रजभाषा को उपर्युक्त कारणों से झुकना ही पड़ा। वास्तव में जैसा कि पहले कहा गया है कि भारतेन्दु ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जो खड़ी बोली का प्रयोग काव्य में किया था, वह एक युगान्तरकारी प्रयोग था। कदाचित् भारतेन्दु को भविष्य में उत्पन्न होने वाली भाषागत समस्या का आभास हो गया था। हिन्दी के प्रबल समर्थक होने के नाते सम्भवतः वे गद्य और पद्य की भाषा के एक होने के महत्त्व को समझते थे। इसीलिए उन्होंने खड़ी बोली आन्दोलन के कई वर्ष पूर्व १४ सितम्बर, १८८१ ई० को 'भारत मित्र' के सम्पादक को लिखा था ".....प्रचलित साधुभाषा में कुछ कविता भेजी है, देखिएगा इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है।.....मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ और न जाने क्यों ब्रजभाषा से अधिक मुझे इसके

१. 'खड़ी बोली का पद्य' अयोध्याप्रसाद खत्री (१८८७ में प्रथम बार प्रकाशित) अयोध्याप्रसाद खत्री स्मृति-समिति विश्लेषण कार्यालय, साहुरोड, मुजफ्फरपुर, बिहार १९५६ (परिशिष्ट राधाचरण गोस्वामी का पत्र— ११ नवम्बर, १८८७ ई० के दैनिक 'हिन्दोस्थान' में।) पृ० २-३।



लिखने में हुना परिश्रम हुआ। ..... लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का प्रयत्न करूँगा।” उनके इस कथन में भविष्य-दृष्टा की पैनी दृष्टि और एक जागरूक साहित्यकार का समर्थन है, प्रतिक्रियावादी दुराग्रह और स्वार्थपरता नहीं। इस कथन के आधार पर खड़ी बोली के विषय में उनकी निम्न धारणाएँ बनती हैं—

१—वे खड़ी बोली को ‘गँवारू-बाजारू डाकिनी’<sup>१</sup> नहीं, साधु भाषा मानते थे।

२—खड़ी बोली काव्योचित तो है (प्रत्येक भाषा होती है) किन्तु उसमें विशेष परिमार्जन की आवश्यकता है। खड़ी बोली में जो ‘कसर’ है, उसके दूर होने पर भारतेन्दु स्वयं उसमें कविता रचने को प्रस्तुत थे।

३—खड़ी बोली में कविता करने में कठिनाई तो उन्हें अवश्य अनुभव हुई किन्तु इस जनभाषा के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए, जनता की अनुमति पर, कठिनाइयों के होते हुए भी वे इसमें काव्य रचना करने को प्रस्तुत थे।

ब्रजभाषा के इस समर्थ कवि-शिरोमणि की इन धारणाओं से खड़ी बोली की शक्तिमत्ता और आवश्यकता स्पष्ट होती है। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके कवि-मण्डल के सदस्यों ने खड़ी बोली का घोर विरोध तो किया किन्तु अन्त में उन्हें समय-चक्र के सामने झुकना पड़ा। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने एक हारे हुए योद्धा की भाँति कहा—“क्षमा करें खड़ी हिन्दी के विरोधी होते तो हानि पर हानि सह के ब्राह्मण का संपादन क्यों करते, इसकी कविता की माँग की... दागवेल आप डालिए, यथा सामर्थ्य हम भी कंकर-पत्थर डालते रहेंगे।”<sup>२</sup> दूसरी ओर अब राधाचरण गोस्वामी इस समस्या को हल करने के लिए विद्वानों की एक सभा बुलाने का सुझाव दे रहे थे। अन्ततः इन कवियों ने भी खड़ी बोली में यदा-कदा कविताएँ लिखनी प्रारम्भ कीं। उदाहरण के लिए शकुन्तला नाटक में प्रतापनारायण मिश्र के खड़ी बोली पद्य उल्लेखनीय हैं। इस भाँति धीरे-धीरे खड़ी बोली पद्य की भाषा के रूप में स्वीकृत हुई। पर यह भी सच है कि सदियों की परम्परा और अभ्यास यूँ ही समाप्त नहीं हो जाते। अतः ब्रजभाषा में काव्य-रचना प्रभूत मात्रा में होती रही।

१. ‘खड़ी बोली का पद्य’ अयोध्याप्रसाद खत्री (१८८७ ई० में प्रथम बार प्रकाशित) अयोध्याप्रसाद खत्री स्मृति-समिति-विश्लेषण कार्यालय, साहुरोड, मुजफ्फरपुर, बिहार १९५६ ई० ‘परिशिष्ट’, राधाचरण गोस्वामी का पत्र—११ नवम्बर १८८७ ई० के दैनिक ‘हिन्दोस्थान’ में। पृ० २-३।

२. खड़ी बोली का आन्दोलन—क्षिति कंठ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१३ वि०, पृ० १८५।



यद्यपि ब्रजभाषा के कई कवियों ने ब्रजभाषा को छोड़ खड़ी बोली को अब अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया तथापि अनेक ब्रजभाषा के कवि यथावत् ब्रजभाषा में ही कविता करते रहे। इन दो वर्गों के कवियों से ही द्विवेदी-युग का अधिकांश काव्य-भण्डार भरता रहा। आगे चलकर यद्यपि इस युग को शुद्ध खड़ी बोली के कवि भी मिले किन्तु वे भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली के इस मिश्रित वातावरण की खवहेलना न कर सके। जहाँ एक ओर खड़ी बोली की विषय-विविधता से ब्रजभाषा प्रभावित होती रही, वहाँ ब्रजभाषा के भाषा माधुर्य और भाषा-प्रयोगों से खड़ी बोली प्रभावित होती रही।

द्विवेदी-युग से पूर्व के खड़ी बोली आन्दोलन का उपर्युक्त विवेचन इस युग में हुए खड़ी बोली काव्य के प्रारम्भिक प्रयोगों के विवेचन के बिना अधूरा है। यह जानना आवश्यक है कि खड़ी बोली के किस रूप और किन शैलियों का व्यवहार सन् १९०० के पूर्व खड़ी बोली काव्य में प्रचलित रहा। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली काव्य के वर्ण्य-विषयों की विवेचना भी अपेक्षित है। क्योंकि ब्रजभाषा के वर्ण्य-विषयों के उपर्युक्त संदर्भ में खड़ी बोली के वर्ण्य-विषयों का ज्ञान आगे होने वाले विवेचन का आधार होगा। इस विवेचन के लिए १८८७ ई० में प्रकाशित, खड़ी बोली आन्दोलन के प्रणेता अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा संपादित 'खड़ी बोली का पद्य' प्रस्तुत सभी दृष्टियों से उपयुक्त होगा। एक तो खड़ी बोली के आन्दोलन की आधारभूत पुस्तक होने के नाते इसका विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। दूसरे इसमें तत्कालीन खड़ी बोली काव्य में प्रचलित विभिन्न भाषा-रूपों तथा वर्ण्य-विषयों को एक साथ प्राप्त किया जा सकता है। अतः 'खड़ी बोली का पद्य' का अनुशीलन द्विवेदी-युग से पूर्व खड़ी बोली पद्य का ही अनुशीलन होगा।

### (३) खड़ी बोली का पद्य

अयोध्याप्रसाद खत्री तथा उनके आन्दोलन के विषय में डॉ० भगीरथ मिश्र का कथन है कि "खत्री जी के तेजस्वी और उग्र व्यक्तित्व ने खड़ी बोली आन्दोलन को लगभग वही रूप दिया जो स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलन को लोकमान्य तिलक द्वारा प्राप्त हुआ था। वे खड़ी बोली आन्दोलन के अग्रदूत और स्पष्ट वक्ता, साहित्यसेवी एवं साहित्यकार थे। आज भी यदि हम उनकी निष्ठा, दृढ़ता और शिव संकल्प का आह्वान कर अपनी राष्ट्र-भाषा के प्रचार और विकास में लग सकें, तो सभी विरोध और समस्याएँ तुरन्त विलीन हो जायँ।"<sup>१</sup> इस कथन की सत्यता को खत्री जी के 'खड़ी बोली

१. खड़ी बोली का पद्य (पहला भाग) : अयोध्याप्रसाद खत्री (डा० भगीरथ मिश्र की सम्मति)



का पद्य' (पहला भाग) पुस्तक में लिखे उनके वक्तव्य से स्पष्ट किया जा सकता है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली के भाषा-भाषी क्षेत्रों के विस्तार का उल्लेख करते हुए उन्होंने उर्दू को फारसी मिश्रित हिन्दी कहा। इसी 'हिन्दी' के प्रचलन से उत्पन्न हुई आमफहम भाषा को उन्होंने हिन्दुस्तानी कहा। शब्द भण्डार और भाषा रूप के कारण इस भाषा को उन्होंने विदेशी भाषा ही माना। दूसरी ओर उन्होंने इस्लामी प्रभाव से मुक्त उर्दू के साथ-साथ पल्लवित होने वाली भाषा को ठेठ अथवा शुद्ध हिन्दी अथवा शुद्ध बोली (खड़ी बोली) कहा। इस प्रकार उन्होंने तत्कालीन पश्चिमोत्तर भारत में प्रचलित विभिन्न भाषाओं की निम्न सूची प्रस्तुत की :—

१. प्रचलित साहित्यिक (गद्य) एवं सरकारी हिन्दुस्तानी
२. पद्य में प्रयुक्त उर्दू
३. प्रचलित साहित्यिक (गद्य की) खड़ी बोली
४. हिन्दी की पद्य भाषा अथवा ब्रजभाषा
५. सामान्य बोलचाल की विभिन्न बोलियाँ

इनमें से प्रथम दो फारसी, तृतीय एवं चतुर्थ नागरी तथा पंचम भाषा-रूप सामान्यतः नागरी लिपि में लिपिवद्ध होते थे, बहुप्रचलित भाषा इन सब में से खड़ी बोली हिन्दी ही थी। इसका निकट का सम्बन्ध हिन्दुस्तानी और उर्दू से था तथा ब्रजभाषा के यह निजी परिवार की एक व्यापक भाषा थी। अतः अयोध्याप्रसाद खत्री ने एक महान सुझाव इन पश्चिमोत्तर भू-भाग के भाषा-भाषियों को दिया। इन चारों भाषा-रूपों की मूल प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए वे लिखते हैं—“उसका (संपादक का) उद्देश्य अपने देशवासियों को यह प्रेरणा देना है कि वे प्राचीन एवं प्रान्तीय भाषा, ब्रज का प्रयोग काव्य-रचना में छोड़ दें। अपनी काव्य रचनाओं में उर्दू वर्णमाला को प्रयुक्त करने वाले देशवासियों को भी नागरी वर्णमाला के प्रयोग की प्रेरणा देना उसका उद्देश्य है। वास्तव में वह एक समझौते को प्रस्तावित कर रहा है। एक वर्ग को वह अपनी भाषा का सर्वप्रिय प्रांतीय रूप छोड़ने के लिए कह रहा है और दूसरे वर्ग को लिखने का एक प्रचलित ढँग त्यागने को कह रहा है। इस संपादक के इस प्रस्ताव को स्वीकार करके सभी वर्ग खड़ी बोली या 'शुद्ध बोली' के सर्वसामान्य धरातल पर आकर एक हो जायेंगे।”<sup>१</sup> इस प्रस्ताव के लिए आगे उन्होंने कहा कि यह एक महान कल्पना है। इसके कार्यान्वित होने से समस्त उत्तर भारत के मानसिक विकास में एक बहुत बड़ा बल प्राप्त होगा। वास्तव में खत्री जी का यह सुझाव एक महान क्रान्तिकारी नेता की दूरदर्शिता का

१. 'खड़ी बोली का पद्य'—अयोध्याप्रसाद खत्री, 'प्रिंसेस बाय द एडिटर', पृ० ४



प्रभाव है। यह मुझाब आज भी उतना ही उपयोगी और हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद दिलाने के लिए सहायक सिद्ध होगा जितना उस समय हो सकता था। समूचे देश की एकता तथा देश के समस्त मनन् एवं चिन्तन को एक सूत्र में बाँधने के माध्यम नागरी अक्षर एवं खड़ी बोली हिन्दी ही हैं। ध्यान देने की बात इस कथन में यह भी है कि खत्री जी को उर्दू के प्रति कोई वैमनस्य की भावना नहीं थी वरन् वे उसके साहित्य की वृद्धि चाहते हुए उसे केवल नागरी के समुचित वेश में देखना चाहते थे। ब्रजभाषा और खड़ी बोली की समस्या के सम्बन्ध में इसी वक्तव्य में उन्होंने कहा कि गद्य और पद्य की भाषा भिन्न-भिन्न हो, मूर्खता और अज्ञान के सिवा कुछ भी नहीं। ब्रजभाषा के माधुर्य और उसकी संगीतात्मकता की इंग्लैण्ड में अंग्रेजी की डारसैट बोली के साथ उन्होंने तुलना की। परन्तु अंग्रेजी भाषा में 'डारसैट' की शक्ति सम्पन्न बोली का व्यवहार पद्य में नहीं होता अपितु शुद्ध लन्दनीय अंग्रेजी का प्रयोग गद्य और पद्य में समान रूप से होता है।<sup>१</sup> इस भाँति अयोध्याप्रसाद खत्री ने खड़ी बोली पद्य की समुचित भूमिका प्रस्तुत करके उससे होने वाले राष्ट्रीय एवं भाषागत लाभ का विवेचन किया। हिन्दी की अखण्डता और सर्वव्यापकता की उन्होंने यह मनोवैज्ञानिक एवं भाषावैज्ञानिक पृष्ठभूमि उपस्थित की।

(४) शैलियाँ एवं भाषारूप

सन् १९०० से पूर्व खड़ी बोली हिन्दी पद्य में जो प्रयोग हो रहे थे उनको नमूने के तौर पर खत्री जी ने 'खड़ी बोली का पद्य' पुस्तक में प्रस्तुत किया। पुस्तक में 'ठेठ हिन्दी', 'मुंशी-स्टाइल' तथा 'पंडित स्टाइल' नाम से तीन परिच्छेद हैं। ये तीन परिच्छेद तत्कालीन खड़ी बोली पद्य की तीन शैलियों के उदाहरण हैं।<sup>२</sup> 'ठेठ हिन्दी' शैली के अन्तर्गत खड़ी बोली का शुद्ध रूप प्राप्त होता है। इसमें न तो उर्दू-फारसी शब्दों की बहुलता है और न ही संस्कृत के तत्सम शब्दों से यह भाराक्रांत है। इसके उदाहरण के लिए मुंशी इंशा अल्ला ख़ाँ कृत धुन एवं दोहों को प्रस्तुत किया गया। इसमें भाषा का चमत्कारपूर्ण प्रयोग भी कहीं-कहीं हुआ है। पर सामान्य रूप से इसमें सरल प्रचलित व्यवहारोपयोगी खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। मुंशी जी उर्दू-फारसी, ब्रजभाषा, अवधी तथा संस्कृत शब्दों से बचने का प्रयत्न करते थे। उनकी खड़ी बोली में यह नियम सर्वत्र लागू होता है। परन्तु गद्य की ही भाँति उनकी

१. 'खड़ी बोली का पद्य'—अयोध्याप्रसाद खत्री 'फ्रिफेस बाय द एडिटर', पृ. ५

२. वैसे खत्री जी तत्कालीन खड़ी बोली पद्य की पाँच शैलियाँ मानते थे—मुंशी जी की हिन्दी, पंडित जी की हिन्दी, मौलाना साहब की हिन्दी, ठेठ हिन्दी और यूरोशियन हिन्दी।



पद्य-भाषा में भी मुबल्लापन तथा उर्दू-फारसी के वाक्य विन्यास का प्रभाव यत्र-तत्र मिलता ही है जिसका कारण फारसी छन्दों का प्रयोग भी है। उदाहरण के लिए निम्न उद्धरण यथेष्ट होंगे—

धुन — उनकी वह उतार अँगूठी लेनी,  
और अपनी अँगूठी उनको देनी,  
दोहे — छान मारे वन के थे अपने जिनके लिए  
वह हिरन जीवन के मद में है बने दुलहा खड़े।  
+ + + +  
चैन होता ही न था जिस एक आसन एक विन,  
रहने सहने से लगे आपस में अपने रात दिन।<sup>1</sup>  
+ + + +

इसी भाँति ब्रजभाषा की शब्दावली से बचते हुए भी कहीं-कहीं ब्रजभाषा की प्रवृत्ति का अभाव आ ही गया है—

छा गयी ठंढि साँस झाड़ों में।

पड़ गयी कूक सी पहाड़ों में।<sup>2</sup>

उच्चारणगत त्रुटियों के साथ-साथ दीर्घ 'ई' को लघु 'इ' कर दिया गया है। 'ओसे' शब्द बहुवचन में 'ओस' ही प्रयुक्त होता है पर मुंशी जी ने इसे 'ओमें' कर दिया है।<sup>3</sup> इसी प्रकार छन्द मात्रा की रक्षा हेतु 'दुलहा' को 'दुलह' किया गया है।<sup>4</sup> प्रवाह, सरलता और साधारण उपयोग की भाषा लिखने का मुंशीजी का यह संकल्प अपनी वाक्यावली के कारण अधिक सफल नहीं कहा जा सकता।

इस संकलन में दूसरी शैली 'मुंशी स्टाइल' है। शैली का अंग्रेजी रूप 'स्टाइल' ही है। अतः यह शैली तत्कालीन उर्दू-फारसी के मुंशियों की ही है। इसमें उर्दू-फारसी शब्दावली का अत्यधिक व्यवहार किया गया। इस संकलन में इस शैली के चार कवियों की चुनी हुई रचनाएँ संकलित हैं। राय सोहन लाल, बाबू हरिश्चन्द्र, बाबू महेश नारायण पटना निवासी तथा मौलवी इलताफ हुसेन दिल्ली निवासी। इनमें से बाबू हरिश्चन्द्र ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने उर्दू-फारसी शब्दावली का प्रयोग कम किया अन्यथा अन्य तीन कवियों ने उर्दू-फारसी शब्दावली का प्रयोग खुलकर किया। इस शब्दावली के अति-

१. खड़ी बोली का पद्य—अयोध्याप्रसाद खत्री, पृ० २, ३ तथा ४।

२. वही, पृ० ३।

३. वही०, पृ० ३।

४. वही०, पृ० ४।



रिक्त इस शैली की दूसरी विशेषता फारसी छन्दों के प्रयोग की है। इन सभी कवियों ने इस पद्य में फारसी छन्द अपनाये जिसके कारण वाक्य विन्यास में भी परिवर्तन हुए हैं। महेश नारायण पटना निवासी की 'स्वप्न' कथात्मक कविता का एक अंश प्रस्तुत है। भाषा में प्रवाह और प्रभावोत्पादकता उर्दू कविता के अनुरूप ही है—

पहाड़ी पै पत्थर के चट्टाँ बड़े,  
समय की सृष्टि से बाँ थे खड़े,  
अजब एक सनत से खड़े थे वह सारे,  
ज़री से ज़मीँ पर बहुत ही किनारे,  
अगर लोग देखें तो होंवे यकीँ  
कि गिर जाना उनका मुशकिल नहीं  
वो लेकिन अगर भीम भी आन कर  
हिलावें तो टसकें न एक बाल भर।<sup>१</sup>

छन्द की लय और गति न टूटे इसके लिए इन कवियों ने भी यथावसर शब्दों को तोड़-मरोड़कर उनके रूप को बदल दिया है। कहीं-कहीं इस व्याकरण-दोष के कारण भाषा दूषित हो गयी है। बाल विधवा की करुण दशा का चित्रण करते हुए मौलाना इस्ताफ हुसेन ने शब्दों के शुद्ध रूप की अवहेलना की है—

बालियाँ एक एक जाति की लाखों  
ब्याहियाँ एक एक रात की लाखों<sup>२</sup>

+ + + +

इस के परे जब होश हुआ तो दिमाग में थी गोरख धंधारी  
सोई थी जब तब थी मैं कुमारी और उठी तो हो गयी शादी हमारी<sup>३</sup>  
'प्रकृति' के स्थान पर अंग्रेजी 'नेचर'<sup>४</sup> शब्द का प्रयोग भी किया गया है।

इसके अतिरिक्त 'जो तों' (ज्यों-त्यों), 'आपुस' (आपस), 'रुपि' (रूपी), 'उस्को' (उसको), 'वहै' (वह), 'जस' (जैसे), 'नार' (नारी), 'मान्सिक' (मानसिक), 'धुआ' (धुला) इत्यादि शब्द-रूपों के प्रयोग भी इस शैली में प्राप्त होते हैं। 'उमर' एक वचन और बहुवचन दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होता है, पर मौलवी इस्ताफ हुसेन ने 'उमरें'<sup>५</sup> प्रयोग किया है।

२ खड़ी बोली का पद्य : अयोध्याप्रसाद खन्नी, पृ० १६।

१ वही०, पृ० ४२।

३ वही०, पृ० ३८।

४ वही०, पृ० २४।

५ वही०, पृ० ४२।



बाबू महेश प्रसाद ने 'द्वार' को पुल्लिङ्ग से स्त्रीलिङ्ग बना दिया है और मूसलाधार को 'मूसलधार' में परिवर्तित कर दिया है।<sup>१</sup> और कहीं पर शब्दों के पूर्णतः अशुद्ध प्रयोग भी किये हैं —

'कीच बराबर जीव बह हैं जो मन में विराजित यह धन ही नहीं।'<sup>२</sup> यहाँ पर कवि ने, भक्ति-रस को मन में धारण न करने वाले जीव कीच बराबर हैं, कहने का प्रयत्न किया है किन्तु इस वाक्य से यह अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। 'वे' के स्थान पर एक वचन 'वह', 'जिन' के स्थान पर 'जो' तथा 'धारण' करने के अर्थ में 'विराजित' शब्द का प्रयोग किया गया है।

इसी भाँति ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग तो किया ही गया है, ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुकरण पर निर्मित शब्दों के प्रयोग भी किये गये हैं। जैसे 'जोवन', 'वहार', 'गरव', 'वानी' इत्यादि।

इस शैली में भी शुद्ध खड़ी बोली के प्रयोग कम ही प्राप्त होते हैं। अधिकांश में उर्दू-फारसी शब्दावली से भाषा भाराक्रान्त हो गयी है। साथ ही फारसी के छन्दों के प्रयोग से इसमें खड़ी बोली की विशेषताओं का सर्वथा लोप-सा हो गया है।

उस समय की तृतीय शैली इस संकलन में 'पंडित स्टाइल' है। इसमें बाबू लक्ष्मीप्रसाद मौज मानपुरा जिला मुजफ्फरपुर, श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री तथा चन्द कवि के कतिपय पद्य संकलित हैं। इनमें से अधिकांश पद्य बाबू लक्ष्मीप्रसाद जी के हैं। इन्होंने फारसी शब्दावली का बहिष्कार करके संस्कृत भाषा से सहायता लेने का प्रयत्न किया। परन्तु फारसी छन्दों के कारण इन्हें उर्दू पद्य के कुछ विशिष्ट शब्द-रूपों को अपनाना ही पड़ा। इसके अतिरिक्त फारसी छन्दों के प्रभाव से इनकी वाक्यावली में मुंशी इंशा अल्ला खाँ का 'मुसल्लापन' भी आ गया है। शुद्ध खड़ी बोली लिखने के फेर में इन्होंने ब्रजभाषा से अत्यधिक सहायता ली। इसके प्रभाव से इनकी भाषा अत्यधिक दूषित हो गयी। ब्रजभाषा की प्रवृत्ति को इन्होंने समय-असमय प्रयुक्त करके कहीं-कहीं हास्यास्पद प्रयोग किये हैं। इनका शायद ही कोई ऐसा छन्द हो जिसमें किसी-न-किसी प्रकार की त्रुटि का अभाव हो। संक्षेप में ये त्रुटियाँ निम्नलिखित हैं—

— उर्दू के प्रभाव से वां (वहाँ), यां (यहाँ), पे (पर), ये (यह) इत्यादि शब्द-रूपों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। इसी प्रभाव के अन्तर्गत इन्होंने 'आकाश' के स्थान पर 'काश' का प्रयोग भी किया है।

१. खड़ी बोली का पद्य : अयोध्याप्रसाद खत्री, पृ० २०।

२. वही०, पृ० १६।



—ब्रजभाषा में सामान्यतः दीर्घ 'ई' का लघु 'इ' रूप प्रयुक्त होता है। अतः इन्होंने इस सिद्धान्त का प्रयोग निरंकुशता से किया है—'थोडि' (थोड़ी), 'बदि' (वदी), 'भि' (भी) 'पडि' (पड़ी); 'यहि' (यही), 'मेरि' (मेरी), 'तेरि' (तेरी), 'थि' (थी), 'सभि' (सभी) इत्यादि। ब्रजभाषा में संयुक्ताक्षरों के प्रयोग सामान्यतः कम ही होते हैं। अतः इस सिद्धान्त का भी इन्होंने प्रयोग किया है—'सरवस' (सर्वस्व), 'परमोदार' (परम् उद्धार), 'दुबधा' (द्विविधा), 'घजा' (ध्वजा) इत्यादि। 'स' का 'श' और 'श' का 'स' होना ब्रजभाषा की एक और प्रवृत्ति है। अतः इन्होंने 'सान्त' (शान्त), 'सोग' (शोक), 'भस्म' (भस्म) इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है।

—इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा तथा अन्य बोलियों के प्रभाव से कुछ और शब्द-रूप इस प्रकार हैं—'भांत' (भाँति), 'द्विया' (वैठे) (वैठे), 'पख' (पक्ष), 'छिन्न' (क्षीण), 'अधियाली' (अधियारी), 'धुनी' (धुनी), 'इक बार' (एक बार), 'जोन दिस' (जिस दिशा) आदि।

—लिंग एवं वचन भेद—लक्ष्मीप्रसाद मीसे की इन कविताओं में लिंग एवं वचन-भेद भी यत्र-तत्र मिलते हैं। ये भेद कहीं पर अज्ञानवश तो कहीं शब्दों को छन्द की लय के अनुरूप बनाने के कारण हो गये हैं। अज्ञानवश लिंग-भेद—'आर्यावत ! तु क्यों करतो है, दिन रात विलाप' छन्द लय वश लिंग-भेद—किसके मिलने का योग साधा है ?

आपके सुख का कौन बाधा है ?<sup>2</sup>

अज्ञानवश वचन-भेद—छन गयी प्रीत बाण से छाती,

गिरि पृथ्वी पे चक्करें खाती।<sup>3</sup>

छन्द के कारण वचन-भेद—दुर्दशा, तेरि है, जब ध्यान में आती इक बार,

आंसु आंखों में उमड़ आता है, तार।<sup>4</sup>

—छन्द लय के कारण लक्ष्मीप्रसाद जी ने कहीं-कहीं पर शब्दों को निरंकुशता के साथ प्रयुक्त किया है। ऊपर 'आंसू' का उन्होंने 'आंसु' कर दिया तो कहीं 'आंसू' ही रहने दिया पर 'लहू' की लय पर 'कभी' का 'कभू' कर दिया है।<sup>5</sup> इसके साथ ही 'सब' का 'सम'

१. खड़ी बोली का पद्य: अयोध्या प्रसाद खत्री, पृ० ४६।

२. बही०, पृ० ४६।

३. बही०, पृ० ५८।

४. बही०, पृ० ४६।

५. बही०, पृ० ४७।



लिखा गया है, जिसका कारण कवि का प्रमाद ही कहा जा सकता है।  
—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, फारसी छन्दों के प्रयोग के कारण प्रस्तुत कवि ने विचित्र वाक्य विन्यास का प्रयोग किया है। यह वाक्यावली उर्दू के कवियों के प्रभाव से ही इनके काव्य में समाविष्ट हुई—

हाय छन न बिसरता है, तेरा दुख मन से,  
ले गया कौन बदल सोने के घर को बन से ।<sup>1</sup>

+ + +

उठ गयी, सम्मति आपस में, न कुछ मेल रहा  
जी में, लोगों के, लिया, द्रोह ने घर अपना, बना ।<sup>2</sup>

इसके अतिरिक्त अंत्यानुप्रास के कारण कवि ने कई अन्य स्थलों पर भी व्याकरण की अवहेलना की है ।<sup>3</sup>

—ब्रजभाषा के प्रभाव को ग्रहण करके जान-बूझकर भी कवि ने त्रुटि-पूर्ण छन्द रचे हैं। 'ई' का 'इ' बनाने के फेर में छन्द गति की कवि ने निम्न उद्धरण में अवहेलना की है—

चुटकियाँ लेति, फवतियाँ कहती,  
मुख परस्पर के हास्य से लहती ।<sup>4</sup>

अन्त में यह कहा जा सकता है कि 'खड़ी बोली का पद्य' में प्रयुक्त प्रस्तुत भाषा-रूप भी फारसी और ब्रजभाषा के प्रभाव को निरंकुशता से ग्रहण करने के कारण सर्वथा अव्यवहारोपयोगी ही सिद्ध होता है। भाषा को प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए शब्दों की प्रकृति एवं भाषा की प्रवृत्ति की अवहेलना करने से भाषा को विशेष लाभ नहीं होता है।

इस शैली में श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री के तीन भजन सन्तोषप्रद हैं। ये भजन पदशैली में रचे गये हैं। इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली के अत्यधिक निकट है। इन्होंने अत्यधिक संस्कृत, ब्रज अथवा उर्दू-फारसी शब्दावली का प्रयोग न करके भाषा की शुद्धता तथा उसकी प्रकृति पर अधिक ध्यान दिया। उदाहरण के लिए एक उद्धरण प्रस्तुत है—

मुक्तिदाता हे, देव मुक्त जीवन ।

यही एक प्रार्थना, काटो भव-बन्धन,

पिजरे में पक्षी जैसे, करे पथ अनवेशण,

वैसे ही मम आत्म पक्षी, चाहे तुम्हें प्राण घन ।<sup>5</sup>

१. 'खड़ी बोली का पद्य' : अयोध्याप्रसाद खत्री, पृ० ४६ ।

२. वही०, पृ० ४७ ।

३. वही०, पृ० ४६ ।

४. वही०, पृ० ५६ ।

५. वही०, पृ० ४६ ।



भाषा के इस स्वच्छ रूप के अतिरिक्त ब्रजभाषा की प्रवृत्ति का भी अनुसरण एक स्थल पर इन्होंने किया है, परन्तु यह प्रयोग अपवाद स्वरूप ही आया है।<sup>१</sup> वह इनकी प्रमुख प्रवृत्ति नहीं।

अयोध्याप्रसाद खत्री ने १८८८ ई० में इस संकलन का दूसरा भाग भी प्रकाशित किया था। इसमें अन्य कवियों के अतिरिक्त उस समय के प्रसिद्ध एवं सशक्त खड़ी बोली कवि पं० श्रीधर पाठक की कविताएँ भी संकलित की गयी थीं। भाषा के दृष्टिकोण से पाठक जी की इन आरम्भिक कविताओं में भी उपर्युक्त त्रुटियों का समावेश हुआ है। पाठक जी का स्थान हिन्दी-काव्य में स्वच्छन्दतावाद के जनक के रूप में ही अधिक है। भाषा-परिमाजंन अथवा भाषा-लालित्य के प्रवर्तक के रूप में वे अधिक सफल न हो सके। यही कारण है कि आचार्य द्विवेदी के आगमन के पश्चात् स्वच्छन्दतावाद की यह धारा भाषा-परिमाजंन के कारण कुछ समय तक रुक-सी गयी। भाषा में इतनी अधिक त्रुटियाँ होने के कुछ कारण पहले स्पष्ट किये जा चुके हैं। वास्तव में नवीन जागरण और नवीन उन्मेष की तीव्रता को समेटने के प्रयत्न में इन लोगों ने भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान न दिया। खड़ी बोली के शब्द भण्डार और खड़ी बोली की विशिष्टताओं की नवीनता से न्युनाधिक अपरिचित होने के कारण इन लोगों ने निरंकुशता से काम चलाया। यही कारण है कि नवीन विषयों पर लिखी गयी कविताओं में भाषागत त्रुटियाँ अधिक हैं और परम्परागत विषयों (भक्ति आदि) में त्रुटियाँ कम हैं। विभिन्न प्रदेशों में लिखी जा रही यह भाषा विभिन्न भाषा भाषियों के प्रभाव से दिनों-दिन विघटन और निरंकुशता से आक्रान्त होती जा रही थी। इसके शुद्ध रूप की ओर तत्कालीन कवियों का ध्यान नहीं जा रहा था। वे खड़ी बोली आन्दोलन की नारेबाजी और टीका-टिप्पणी में इतना व्यस्त रहते थे कि उन्हें भाषा-सुधार का विचार आता ही न था।

वस्तुतः ब्रजभाषा कवियों के विरोध और अंग्रेजीविशेषों के मजाक का उत्तर नारेबाजी से न देकर रचनात्मक कार्यकुशलता से दिया जा सकता था। भाषा अब एक ऐसी दीन-हीन दशा को पहुँची थी कि इसे किसी कृतसंकल्प, कर्मठ, गम्भीर एवं निर्भीक व्यक्ति के स्थिरचित्त प्रयत्नों की आवश्यकता थी जो इसको फारसी, उर्दू, ब्रज आदि के प्रभावों से उत्पन्न दोषों से उभार कर शिष्ट, परिमाजित, सरल एवं प्रांजल रूप प्रदान कर सके। अतः १९०० ई० तक की खड़ी बोली में जो परिमाजंन और परिशोधन का वृहद् कार्य था, उसे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का कार्यभार सम्हालते ही अपने



भगीरथ प्रयत्नों से सम्पन्न किया। हिन्दी भाषा के लिए यह युग सचमुच महान संकट का युग था। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा के पद को ग्रहण करने की क्षमता रखती थी परन्तु भाषा होते हुए भी उसके पास इस अधिकार को व्यक्त करने के लिए शब्द न थे। हिन्दी भाषा की वाणी लुप्त होती जा रही थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने न केवल इसे शब्द दिये अपितु वाणी भी प्रदान की। इस युग में कठिनाई से घुटनों के बल, गिरती-पड़ती चलने वाली भाषा द्विवेदी जी के सम्पर्क एवं प्रयत्न से कुछ वर्षों में ही खड़ी होकर दौड़ने-भागने के योग्य हो गयी। उसने अपनी समकालीन सभी भाषाओं को इस दौड़ में पछाड़कर राष्ट्रीयता की ध्वजा हाथ में ली।

#### (५) वर्ण्य विषय

कहा जा चुका है, ब्रजभाषा काव्य की समर्थ परम्परा के होते हुए भी खड़ी बोली काव्य की लोकप्रियता का कारण, उसकी भाषागत व्यापकता है। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली पद्य की लोकप्रियता का दूसरा सशक्त कारण इसके वर्ण्य विषय हैं। खड़ी बोली काव्य ने प्रारम्भ से ही पुरानी लीक को छोड़ नये युग का अनुसरण किया। वास्तव में खड़ी बोली भारत के नवीन जागरण और उन्मेष की ही भाषा थी। दीर्घकाल तक जनभाषा होने के कारण उसे जनता की रुचि-अरुचि का आभास प्रारम्भ से ही था (यद्यपि अभिव्यक्ति का अवसर न पाने के कारण यह भाषा रूप में कुछ समय तक पिछड़ी ही रही)। ब्रजभाषा के वर्ण्य विषयों के उपर्युक्त सन्दर्भ में खड़ी बोली काव्य के वर्ण्य-विषय महत्त्वपूर्ण हैं।

अयोध्याप्रसाद खत्री की आलोच्य पुस्तक में प्रमुख विषय प्रेम है। प्रेम एवं शृंगार हिन्दी काव्य के लिए कोई नवीन विषय नहीं हैं। परन्तु इस संकलन में प्रेम का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह वास्तव में क्रान्तिकारी है। रीतिकाल की छाया में पल्लवित भारतेन्दु युग की शृंगारिकता और उसी शृंगारिक काव्य के समानान्तर खड़ी बोली में विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी प्रेम का पल्लवन अपने आप में एक युगान्तर है। 'मुन्शी स्टाइल' में लिखित बाबू महेश नारायणकृत लम्बी कथात्मक कविता 'स्वप्न' का प्रधान वर्ण्य-विषय यही स्वच्छन्दतावादी प्रेम है। चन्द्रलोक की रहने वाली अप्सरा से भी सुन्दर एक युवती की प्रेमकथा का चित्रण कवि ने मार्मिकता से किया है। चन्द्रलोक की यह युवती एक सुन्दर युवक से प्रेम करती थी। किन्तु रूढ़िवादी एवं लोभी विमाता तथा पिता ने धन के लालच में इसका विवाह मृतप्राय एक वृद्ध से किया। दुर्भाग्य से वह वृद्ध शीघ्र ही मर गया और यह बाला विधवा हो गयी।<sup>१</sup> वैधव्य के इस महान संकट से मुक्ति उसे अब कहाँ मिलती? सोलह



साल की आयु में भाग्य का यह विचित्र अटूटहास उसको कई दिन तक बेमुघ किये रहा। एक दिन वन में उसे अपना पुराना प्रीतम मिला जो उसके विरह से संतप्त था। दोनों का यह मिलन युवती के पिता को अनैतिक लगा, उसने इस पवित्र पुण्यात्मा पुत्री को चन्द्रलोक से निष्कासित करके पृथ्वी पर भेज दिया। इस कहानी में प्रधान तत्त्व स्वच्छन्द प्रेम होते हुए भी कवि ने समाज-सुधार आन्दोलनों के प्रभाव को सेटने का प्रयत्न किया है। उसने सामाजिक रूढ़ियों, अनमेल विवाह और विधवा समस्या को इस कथा के साथ अनुस्यूत किया है। वास्तव में कथा के ये दोनों पक्ष सापेक्ष हैं।

इस कविता के अतिरिक्त मुंशी इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' के कुछ पद्यांशों में भी इस प्रकार के प्रेम के दर्शन होते हैं। एक और लम्बी कथात्मक कविता 'पंडित स्टाइल' में बाबू लक्ष्मीप्रसाद मोजेकृत 'योगी' है। यह कविता प्रसिद्ध स्वच्छन्दतावादी कवि गोल्डस्मिथ की कविता 'हरमिट' के आधार पर लिखी गयी है। कथा, वर्णन तथा घटनाएँ इत्यादि मूल लेखक के अनुरूप रखते हुए भी नायक-नायिका का भारतीयकरण किया गया है। खड़ी बोली काव्य के स्वच्छन्दतावादी स्वरूप की यह दूसरी उपलब्धि है। यद्यपि भाषागत सीमाओं के कारण यह कविता सफल नहीं है तथापि वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह कविता श्रीधर पाठक के 'एकान्तवासी योगी' काव्य के निकट की रचना है। मानव प्रेम के सम्बन्ध में इस युग के इन कवियों का यह दृष्टिकोण सचमुच सराहनीय है।

इस कविता संकलन की दूसरी विषयगत उपलब्धि प्रकृति-चित्रण की सूक्ष्मता है। इसमें प्रकृति-चित्रण के प्रमुखतः दो रूप मिलते हैं। एक तो कथानक की भूमिका के रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है। 'स्वप्न' एवं 'योगी' में अधिकांश प्रकृति चित्रण इसी ढंग का है। इससे कथानक में विशेष प्रभावोत्पादकता का सृजन होता है। इस चित्रण में प्रकृति कवि-मानस का अनुसरण करती दीख पड़ती है।<sup>१</sup> इस प्रकार प्रकृति मानव सुख-दुःख से अभिभूत होकर उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चित्रित की गयी है। इन कवियों ने नायक-नायिका के रूपा-वर्णन या उनकी मनःस्थिति के वर्णन के लिए भी प्रकृति से सहायता ली है।<sup>२</sup>

प्रकृति का दूसरा रूप इन कविताओं में आलम्बनगत चित्रण है। इसमें राय सोहनलालकृत 'चाँदनी का समाँ और उसके नूर की झलक' तथा बाबू हरिश्चन्द्रकृत 'बसन्त' तथा 'बरसात' कविताएँ उल्लेखनीय हैं। राय सोहनलाल

१. 'खड़ी बोली का पद्य' : अयोध्याप्रसाद खत्री, पृ० १८, २०।

२. वही०, पृ० २२।



की कविता में प्रकृति के आलम्बनगत रूप का सुन्दर चित्रण है। यद्यपि कविता उर्दू-फारसी शब्दावली से अत्यधिक बोझिल हो गयी है तथापि कवि का प्रयास सराहनीय है। चाँदनी रात में प्रकृति की छटा का एक उद्धरण दृष्टव्य है—

उठा चाँद कुछ एक अनोखा-सा ढंग ।

वह दम दम में उसका बदलता था रंग ।

गुलाबी सा जाड़ा वह ठंडी हवा ।

वह नीलम सा आकास निखरा हुआ ।<sup>१</sup>

बाबू हरिश्चन्द्र की दोनों कविताओं में प्रकृति का कोई मनमोहक चित्र उपस्थित न हो सका। इनमें प्रकृति का यथातथ्य वर्णन ही अधिक किया गया है।<sup>२</sup> प्रकृति के किसी भव्य रूप की वह स्थापना नहीं कर पाये हैं।

इन दो प्रमुख विषयों के अतिरिक्त यह काव्य तत्कालीन राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलनों से भी प्रभावित रहा। यदि प्रथम दो प्रवृत्तियाँ तत्कालीन नवीन साहित्यिक जागरूकता की बौद्धिक प्रतिक्रिया है तो प्रस्तुत प्रवृत्तियाँ तत्कालीन नवीन राष्ट्रीय उन्मेष की आधुनिक यथार्थवादी प्रतिक्रिया है। इन कवियों ने सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त, स्वस्थ, स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द भारत के निर्माण की परिकल्पना की। एक ऐसा देश जिसमें विदेशियों का साम्राज्य न हो तथा जिसमें स्वाधीनता और आत्मनिर्भरता का चारों ओर प्रसार हो।<sup>३</sup> सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय स्वाधीनता में इन कवियों ने कोई अन्तर नहीं माना क्योंकि सामाजिक पतन के कारण ही भारतीयता की भव्य परम्परा लुप्त हो गयी और भारत परतंत्र हो गया। सामाजिक उत्थान के इस काल में विधवा-विवाह इत्यादि समस्याओं पर अधिक बल दिया जा रहा था। अतः इन कवियों का ध्यान इस ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। विधवाओं के जीवन का चित्रण मौलवी इल्ताफ हुसेन की कविता 'एक बेवा की मुनाजात' में सफलता से हुआ है।<sup>४</sup> इसी सन्दर्भ में इन कवियों ने स्थान-स्थान पर उपदेश भी दिये हैं। जन-जागरण के समय ये उपदेश अप्रासंगिक नहीं हैं। राय सोहनलाल की 'पतङ्ग' कविता उपदेश के लिए एक सुन्दर रूपक है। 'सोने और ढोल की दो-दो बातें' भी एक सुन्दर उपदेशात्मक कविता है।<sup>५</sup>

१. खड़ी बोली का पद: अयोध्याप्रसाद खत्री, पृ० १०।

२. वही०, पृ० १०।

३. वही०, पृ० १४।

४. 'वही०, पृ० ३६।

५. वही०, पृ० ७-९।



अन्त में कहा जा सकता है कि खड़ी बोली काव्य (१९०० ई० तक) के अधिकांश विषय भारतेन्दु-युग की नवीन चेतना का अनुसरण करते रहे। यद्यपि भारतेन्दु की सामाजिक कविता-धारा के आगे इसमें कुछ नहीं लिखा गया तथापि कुछ अन्य विषयों—प्रेम और प्रकृति को इस काव्य में निश्चय ही नवीन एवं आधुनिक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। अतः ये विषय भावी काव्य के लिए दिशा-संकेत कहे जा सकते हैं।

### निष्कर्ष

इस सम्पूर्ण विवेचन के अन्त में कहा जा सकता है कि १९०० ई० तक का खड़ी बोली काव्य भाषा के दृष्टिकोण से केवल प्रयोगात्मक ही रहा। यह भाषा ब्रजभाषा और उर्दू-फारसी से अत्यधिक प्रभावित रही। यहाँ तक कि इसने अपने भाषा रूप को इस प्रभाव के कारण असंगत बना दिया। परन्तु वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इस काव्य ने ब्रजभाषा काव्य की सुदृढ़ नींव को हिला दिया। खड़ी बोली काव्य अपने प्रारम्भिक वर्षों में भाषा के आधार पर ब्रजभाषा से आगे नहीं बढ़ सकता था। किन्तु ब्रजभाषा की क्षेत्रीय सीमाओं के समक्ष खड़ी बोली की व्यापकता अत्यधिक थी।

विषय विविधता, विषय मौलिकता और समयानुकूलता से वह ब्रजभाषा को काव्य-क्षेत्र से अपदस्थ कर सकती थी। यही कारण है कि भारतेन्दुयुगीन ब्रजभाषा काव्य नयी चेतना का अग्रदूत होकर भी आगे चलकर खड़ी बोली का अनुसरण करने लगता है। द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली काव्य की इस प्रकार यह एक स्पष्ट एवं सुदृढ़ भूमिका थी। इस युग ने जो सबसे बड़ा कार्य किया वह यह था कि साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली को सामान्य जनता का समर्थन प्राप्त करवाया। सामान्य जनता का समर्थन प्राप्त कराने के साथ ही इस युग ने इन दोनों काव्य-धाराओं को विषय एवं वस्तु की नवीन परिकल्पना से मंडित किया। जिन नवीन विषयों का प्रस्फुरण भारतेन्दु-युगीन काव्य तथा उसके उत्तरकाल में हुआ था उनको गम्भीर और समुचित तथा नवीन एवं मौलिक ढंग से द्विवेदी-युग ने विवेचित किया। जीवन के रागात्मक तत्वों की जो स्वाभाविकता और ऋजुता अत्यधिक शृंगार-मण्डन से कुंठित हो गयी थी उसे इस युग में किवित् स्वच्छन्द गति प्राप्त हुई। आगे चलकर इस प्रवृत्ति की मौलिक एवं उदात्त परिणति 'प्रियप्रवास' आदि काव्यों में सम्भव हो सकी। ब्रजभाषा में नवीन परिवर्तनों की जो प्रक्रिया भारतेन्दु-युग में प्रारम्भ हुई थी, उसका विकास आगे चलकर अनुकूल वातावरण में अधिक सशक्त एवं मौलिक ढंग से 'कबिरसन', वियोगी हरि, जयशंकर प्रसाद, दुलारेलाल भार्गव आदि में देखा जा सकता है। प्राचीन भारत के भव्य स्वरूप के प्रति जो आकर्षण छिटपुट रूप से इस युग में देखा



जाता है उसकी वैज्ञानिक एवं बौद्धिक खोज द्विवेदी युगीन काव्य में सफल रूप से हुई। अतः इसी सन्दर्भ में परम्परागत विषयों को द्विवेदीयुगीन कवियों ने नवीन बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक धरातल पर 'प्रियप्रवास', 'साकेत' एवं 'अमरगीत' में प्रस्तुत किया।

भारत की दुर्दशा पर जिस ब्रजभाषा काव्य ने इस युग में आठ-आठ आँसू बहाये, उसी ब्रजभाषा काव्य के चेहरे पर द्विवेदी-युग में नवीन तेज दमक उठा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युग तथा उसकी उत्तरकालीन काव्य-प्रवृत्तियों से द्विवेदी-युग की विचारधारा को चिन्तन की प्रारम्भिक सामग्री प्राप्त हुई। □



## अध्याय—दो

# द्विवेदी-युग में खड़ी बोली आन्दोलन

सन् १९०० तक आते-आते खड़ी बोली के साहित्यिक व्यवहार की एक सुनिश्चित एवं स्पष्ट भूमिका प्रस्तुत हो चुकी थी। खड़ी बोली आन्दोलन के फलस्वरूप किंचित् मात्रा में पद्य-भाषा के रूप में भी खड़ी बोली की मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। खड़ी बोली पद्य की विभिन्न शैलियों के जो उद्घरण अयोध्याप्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' में प्रस्तुत किये थे उनसे यह स्पष्ट है कि पद्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली की किसी एक सुदृढ़ एवं प्रशस्त परम्परा की स्थापना इस युग में नहीं हो पायी थी। "यह आन्दोलन सबलता से चला और उसको सफलता भी प्राप्त हुई। परन्तु नियमबद्धता और स्थिरता का उसमें अभाव था। कोई ऐसा संचालक उस समय तक उसको प्राप्त नहीं हुआ था जो उसका मार्ग प्रशस्त करे और तन-मन से इस कार्य में लगकर वह आदर्श उपस्थित करे जिस पर अन्य लोग चलकर उसको उन गुणों से अलङ्कृत कर सकें जो सत्कविता के लिए वांछनीय होते हैं।" <sup>1</sup> अब यह समस्या खड़ी बोली की व्यापकता एवं आवश्यकता प्रदर्शन की उतनी नहीं थी जितनी खड़ी बोली के क्षमता-प्रदर्शन की थी। इस आन्दोलन को अब ऊपरी या सतही आन्दोलन से आन्तरिक क्रान्ति में परिवर्तित करने की आवश्यकता थी। 'मूर्खा हिन्दी' को 'पंडिता हिन्दी' बनाने के प्रयत्न एवं प्रयास ही हिन्दी की सबसे बड़ी सेवा थी। ऐसे भाषा-संकट के समय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का 'सरस्वती' सम्पादक का पद ग्रहण करना मानो हिन्दी के उद्धारक का पद ग्रहण करना था। उन्होंने जिस सेवा-भाव, आत्मसमर्पण, आचार्यत्व एवं दृढ़ता के साथ हिन्दी भाषा और साहित्य का पथ प्रशस्त किया, उसके महत्व का प्रमाण १९०० ई० से आगे का समस्त हिन्दी साहित्य है। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन का भार सँभालते ही हिन्दी भाषा को सुव्यवस्थित, सुनिश्चित, सरल एवं प्रांजल रूप प्रदान करने का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने न केवल तत्कालीन समस्त साहित्यकारों की भाषा का परिमार्जन एवं संशोधन किया अपितु अपनी भाषा-व्रुटियों को भी सजग आचार्य की भाँति परिशोधित किया। द्विवेदी जी पुराने छेमे के साहित्यकार

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध': हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास १९६७ वि०, पृ० ५५३।



थे। अतः उनकी भाषा में भी वे सभी त्रुटियाँ अनायास ही आ गयीं थीं, जिनका प्रचलन तत्कालीन खड़ी बोली में था। परन्तु अन्य साहित्यकारों की भाँति इन त्रुटियों को खड़ी बोली का शुद्ध रूप न समझकर कालान्तर में स्वयं उन्होंने भाषागत अव्यवस्था जानकर त्याज्य समझा। आधुनिक हिन्दी साहित्य की भाषा खड़ी बोली को दूषित एवं जटिलतम वातावरण से मुक्त कर उन्होंने उसे राष्ट्रीय सम्मान के उपयुक्त बनाया। कालान्तर में खड़ी बोली प्रारम्भिक नीरसता और इतिवृत्तात्मकता से माधुर्य, लाक्षणिकता और व्यञ्जनात्मकता तक विकसित हो गयी।

### नवीन रचनात्मक आन्दोलन

सन् १९०० से पूर्व बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा प्रवर्तित खड़ी बोली आन्दोलन तथा आलोच्य युग के खड़ी बोली आन्दोलन में मौलिक अन्तर है। खत्री जी का आन्दोलन भाषा का मात्र बहिर्गत आन्दोलन था। द्विवेदी-युग का आन्दोलन भाषा का आन्तरिक आन्दोलन था। वह एक रचनात्मक आन्दोलन था। खत्रीजी ने जिस नारेबाजी और शोर-शराबे से काम लिया था, उसका इस युग में अवसान हो चुका था।<sup>१</sup> खड़ी बोली का प्रस्तुत आन्दोलन भावावेशपरक न होकर ठोस मनन, चिन्तन और आत्मविश्लेषण से परिपूर्ण था। खड़ी बोली का वह प्रथम आन्दोलन शुद्ध हिन्दी क्षेत्र से दूर बिहार से प्रारम्भ हुआ था। अतः स्वाभाविक है कि उस पर अपने प्रदेश की तत्कालीन भाषा-स्थिति का प्रभाव रहे। उस समय बिहार में उर्दू-फारसी का प्रबल प्रचार था। अतः खड़ी बोली हिन्दी के 'मुंशी स्टाइल' के प्रति खत्रीजी की अत्यधिक आस्था निर्मूल नहीं थी। खड़ी बोली के द्वितीय उत्थान काल में खड़ी बोली के समर्थक शुद्ध ब्रजभाषा एवं ब्रजप्रदेश के कवि-नाथूराम शंकर शर्मा (अलीगढ़), बद्रीनाथ भट्ट (आगरा) आदि भी थे। यद्यपि श्रीधर पाठक ने इनसे पूर्व खड़ी बोली का समर्थन किया था तथापि अब नये युग में आकर महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से भाषा विषयक दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ था। द्विवेदी जी का विरोध तत्कालीन खड़ी बोली की पंचमुखी शैलियों से भी था। मितम्बर १९०२ ई० की 'सरस्वती' में एक व्यंग्य चित्र छपा था। इस चित्र में एक पंचमुखी व्यक्ति का विचित्र-सा चित्र था जिसके साथ द्विवेदी जी द्वारा लिखित पद्य-टिप्पणी भी संलग्न थी—

दो पैरों पर एक घड़, फिर सिर पाँच अनूप।

मुझ पचरंगे पद्य का, देखो सुघर स्वरूप।

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : ११वाँ संस्करण, सं० २०१४—ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५५१।



इस व्यंग्य चित्र और टिप्पणी पर खत्री जी द्विवेदी जी से नाराज भी हो गये थे। इन पाँच शैलियों की निरर्थकता को द्विवेदी जी भली भाँति जानते थे। हिन्दी का स्वरूप एक ही हो सकता है, उसका राष्ट्रीय रूप पाँच भिन्न-भिन्न शैलियों में स्थापित नहीं हो सकता है। आचार्य द्विवेदी इन सूक्ष्म बातों से पूर्णतः परिचित थे। अतः उन्होंने इनका विरोध भी किया।

द्विवेदी जी का मनवैभिन्य खत्री जी से ब्रजभाषा पर भी था। खत्री जी ब्रजभाषा को हिन्दी मानने के लिए तैयार ही न थे।<sup>१</sup> वे केवल खड़ी बोली और वह भी मूँशी स्टाइल वाली हिन्दुस्तानी को हिन्दी स्वीकारते थे। इसके विपरीत द्विवेदी जी ने ब्रजभाषा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उनको हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान भी प्रदान किया। उनका विरोध ब्रजभाषा से भावगत सीमाओं और काव्य के रूढ़ वर्ण्य विषयों के कारण ही था। यही कारण है कि द्विवेदी-युग में ब्रजभाषा में पद्य रचना बराबर होती रही। आधुनिकता की क्रांतिकारी विचारधारा को अभिव्यक्त करने वाली ब्रजभाषा की कविताएँ 'सरस्वती' में निरन्तर प्रकाशित होती रहीं।

### (क) आन्दोलन की प्रक्रिया

इस आन्दोलन का प्रथम सोपान गद्य और पद्य की भाषा को एक करना था। आलोच्य युग से पूर्व यद्यपि इस दिशा में कार्य हो चुका था तथापि ब्रजभाषा के समर्थक अब भी खड़ी बोली की काव्योचित क्षमता पर संदेह करते हुए ब्रजभाषा को ही काव्य का उपयुक्त माध्यम सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु यह विरोध अब अवसान पर था। खड़ी बोली गद्य की व्यापकता ब्रजभाषा को काव्य भाषा रहने देने में एक बहुत बड़ी बाधा थी। ब्रजभाषा काव्य के वर्ण्य विषयों का अब तीव्र विरोध हो रहा था। 'सरस्वती' के प्रथम अंक की आलोचना करते हुए पं० बद्रीनाथ भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' में लिखा था कि यह 'अस्त नष्ट नायक-नायिका भेदवाला ब्रजभाषा काव्य छोड़ देना चाहिए'।<sup>२</sup> गद्य की शक्तिमत्ता को देखते हुए 'सरस्वती' के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास ने ये दो भाषा-प्रयोग निन्दनीय बताये थे। 'अभी तक हिन्दी पद्य की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम हुआ है। हिन्दी पद्य से हमारा आशय उस पद्य से है जो आजकल की हिन्दी में लिखा हो और न कि प्राचीन ब्रजभाषा में। ब्रजभाषा की कविता चाहे मधुर हो पर यह बात हिन्दी भाषा के लिए बड़ी निन्दा की है और उसके एक बड़े भारी अभाव को दिखाती है कि गद्य तो एक प्रकार की भाषा में, जो उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न हो

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५५१।

२. हिन्दी प्रदीप—१९०० ई० (खड़ी बोली आन्दोलन : शितिकंठ मिश्र, पृ० २०७)।



सम्पन्न हुई, लिखा जाये और पद्य पुरानी भाषा में।<sup>१</sup> श्यामसुन्दरदास जी के इस कथन को सिद्धान्त रूप में ग्रहण करके महावीरप्रसाद द्विवेदी १९०३ ई० से अपनी समस्त शक्ति और प्रतिभा के साथ इस दिशा में प्रवृत्त हुए। उन्होंने भी इस कथन की पुष्टि करते हुए लिखा — “गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् न होनी चाहिए।.....सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए.....”<sup>२</sup> इससे आगे बढ़कर उन्होंने इस सिद्धान्त की व्यापक सफलता की भविष्यवाणी भी की। खड़ी बोली के काव्य-भाषा के रूप में स्थापित होने में कोई सन्देह नहीं था। अतः तत्कालीन साहित्यकारों से उन्होंने कहा कि वे जिस भाषा में बोलते हैं तथा गद्य रचना करते हैं। उसी भाषा में वे पद्य-रचना भी करें क्योंकि ब्रजभाषा का आधिपत्य अधिक दिनों तक रहने को नहीं है।<sup>३</sup> अतः १९०० ई० से पूर्व ब्रजभाषा के कवि होते हुए भी खड़ी बोली की अनिवार्यता और आवश्यकता से भली-भाँति परिचित होने पर वे ब्रजभाषा त्यागकर खड़ी बोली पद्य को व्यवस्थित रूप देने में जुट गये।

तत्कालीन खड़ी बोली की अवस्था का कुछ परिचय पहले दिया जा चुका है। भाषा में अनेकानेक त्रुटियों का समावेश प्रसिद्ध साहित्यकारों की भाषा में भी हुआ था। स्वयं द्विवेदी जी की आरम्भिक भाषा के विषय में डॉ० उदयभानु सिंह लिखते हैं— “उनकी आरम्भिक रचनाओं में कटुता, अर्थहीनता, जटिलता और शिथिलता का मात्रा भी कम नहीं है।”<sup>४</sup> वास्तव में द्विवेदीजी की प्रारम्भिक रचनाओं में भाषा की इतनी सारी त्रुटियाँ हैं कि उनको देखकर यह विश्वास नहीं होता कि ये रचनाएँ प्रसिद्ध भाषा-सुधारक महावीरप्रसाद द्विवेदी की हैं। उनकी भाषा में उन सभी दोषों के दर्शन होते हैं जिनका संक्षिप्त उल्लेख पहले किया जा चुका है। लेखन की त्रुटियाँ, व्याकरण की अशुद्धियाँ, रचना विषयक दोष, शिथिलता, हास्यास्पद प्रयोग, अंग्रेजी और उर्दू-फारसी शब्दों का निरंकुशता से प्रयोग इत्यादि अनेक दोष उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रचुर रूप से देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए उनकी प्रारम्भिक

१. ‘सरस्वती’ जून १९०१ ई०, पृ० १८७।

२. रसज्ञ रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी—साहित्य रत्न भंडार, आगरा, १९३६ पृ० १६।

३. वही०, पृ० २०।

४. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : डा० उदयभानु सिंह — लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २००८ वि०, पृ० २००।



रचनाओं 'भामिनी विलास', 'बेकन विचार रत्नावली'<sup>१</sup> इत्यादि में लेखन एवं व्याकरण की अनेकानेक त्रुटियों को देखा जा सकता है। 'कुमार संभवसार' में उर्दू-फारसी के निरंकुश प्रयोगों से हुए कुछ हास्यास्पद प्रयोग भी उल्लेखनीय हैं।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त 'वेणी संहार', 'किराताजुनीय', 'अमृत लहरी' इत्यादि रचनाओं में भी भाषागत त्रुटियों के दर्शन होते हैं। परन्तु द्विवेदी जी एक कर्मठ एवं कृतसंकल्प साधक थे। उन्होंने न केवल इन त्रुटियों को परिमार्जित किया अपितु भाषा की सरलता और शुद्धता की एक ऐसी प्रशस्त परम्परा का प्रवर्तन किया कि तत्कालीन समस्त हिन्दी जगत् को उनके आदेशों को शिरोधार्य करना पड़ा। नागरी प्रचारिणी सभा के कला-भवन में सुरक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के पर्यवेक्षण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध साहित्यकारों की भाषा का जो परिमार्जन आचार्य द्विवेदी ने किया, वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। हिन्दी साहित्य उनकी इन सेवाओं से उज्ज्वल नहीं हो सकता। इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में खड़ी बोली गद्य एवं पद्यकार समान रूप से द्विवेदी जी की कर्मठता के पात्र बने हैं। रामचन्द्र शुक्ल, वृन्दावनलाल वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', मिश्रबन्धु, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, बद्रीनाथ भट्ट, गिरधर शर्मा, गोविन्दवल्लभ पंत, गणेश शंकर विद्यार्थी, कामताप्रसाद गुरु, काशीप्रसाद जायसवाल, लक्ष्मीधर वाजपेयी, सत्यदेव, पूर्णसिंह इत्यादि साहित्यकारों की व्याकरण, लेखन, वाक्य-रचना तथा शब्द-प्रयोग इत्यादि विषयक त्रुटियों की समाहारणा महावीरप्रसाद द्विवेदी की युग-प्रवर्तक लेखनी से हुई।

द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' को अपनी भाषा-विषयक नीति का आदर्श बनाया था जिसमें वे प्रत्येक रचना को गहराई से परख कर ही प्रकाशित करते थे। इस प्रकार के निर्मम व्यवहार पर यद्यपि उनकी आलोचना भी

१. (क) 'भामिनी विलास'—महावीरप्रसाद द्विवेदी

१-लेखन विषयक त्रुटियाँ, पृ० २८, २९, २६, १२३, २, १४०, १५० इत्यादि।

२-व्याकरण की त्रुटियाँ, पृ० ४, १६, २४, २९, १६६, १६८ इत्यादि।

(ख) 'बेकन विचार रत्नावली'—महावीरप्रसाद द्विवेदी

१-लेखन विषयक त्रुटियाँ, पृ० १, २१, २५, २६, २९, ३६ इत्यादि।

२-व्याकरण की त्रुटियाँ, पृ० १३, ४१, ३७, ११६ इत्यादि।

२. दे० पृ० १२२ पर उमा (पार्वती) को 'उस्ताद' कहा गया है।



होती थी तथापि वे निष्काम कर्मयोगी की भाँति अपनी मान्यताओं पर अङ्गि विश्वास लिये हुए सम्पादन करते रहे। हिन्दी के भविष्य के प्रति जिस रचनात्मक ढंग से वे जागरूक थे उसका कदाचित् दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। गुप्त जी की कविता 'क्रोधाष्टक' पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने गुप्त जी को जो पत्र लिखा था, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन पाते हैं। आप दो बातों में से एक भी नहीं करना चाहते हैं। कुछ भी लिखकर उसे छपवा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समय में लिखा होगा, परन्तु उसे ठीक करने में हमारे चार घण्टे लग गये। पहला ही पद्य लीजिए—

होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया  
जानें न वे तनिक भी अपना-पराया  
होवें विवेक वर बुद्धि विहीन पापी  
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि

क्या आप क्रोध को आशीर्वाद दे रहे हैं जो आपने ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया? इसे हम अवश्य 'सरस्वती' में छापेंगे, परन्तु आगे से आप 'सरस्वती' के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छापने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहें उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए। ताले में बन्द करके रखिए।'<sup>1</sup> इस पत्र से न केवल द्विवेदी जी की गुणग्राहकता, मर्मग्राहकता एवं कर्मठता का पता लगता है अपितु तत्कालीन हिन्दी पद्य की करुणाजनक स्थिति का भी परिचय प्राप्त होता है। 'कुछ लिखकर' छपवाने की उतावली से काव्य-स्तर किस प्रकार गिर गया था, यह भी स्पष्ट है। भावी राष्ट्रकवि के नाम यह पत्र, वास्तव में अपने-आप में एक ऐतिहासिक एवं सटीक पत्र है।

'सरस्वती' की इस भाषा-नीति को द्विवेदी जी हर व्यक्ति के साथ समान रूप से प्रयुक्त करते थे। प्रसिद्ध कहानीकार एवं उपन्यासकार विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' को 'सरस्वती' की भाषा-नीति को समझाते हुए द्विवेदी जी ने उनसे कहा था— 'सरस्वती' की अपनी निजी लेखन शैली है। वह मैं आपको बताता हूँ। देखिए—लेने के अर्थ में जब 'लिये' शब्द लिखा जाता है तब 'यकार' से लिखा जाता है और जब विभक्ति के रूप में जाता है तब 'एकार' से लिखा जाता है। जो शब्द एकवचन में यकारान्त हैं वे बहुवचन में भी यकारान्त ही रहेंगे। जैसे—'किया', 'किये'; 'गया', 'गये', परन्तु स्त्रीलिंग



में 'गयी' न लिखकर ईकार से 'गई' लिखा जाता है। 'कहिए', 'चाहिए', 'दीजिए' इत्यादि में 'एकार' लिखा जाता है। अकारान्त शब्दों का बहुवचन एकारान्त होता है। जैसे 'हुआ' का बहुवचन 'हुए'। जहाँ पूरा अनुस्वार बोलें वहाँ अनुस्वार लगाया जाता है। जैसे 'संस्कार' और जहाँ आधा अनुस्वार, जिसे उर्दू में 'नून गुन्नः' कहते हैं, बोलें वहाँ चन्द्र बिन्दु लगाया जाता है, जैसे 'कॉपना'। सम्भव है, मेरी इस शैली से आपका मत-भेद हो, परन्तु प्रार्थना यह है कि 'सरस्वती' के लिए जब लिखिए तब इन बातों का ध्यान रखिए।"<sup>1</sup>

एक व्यक्ति\*सामान्यतः एक समय में एक ही प्रकार की शैली का व्यवहार करता है। यह सर्वथा व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक भी है। अतः 'सरस्वती' में लिखना उस शैली को ग्रहण करना था। 'सरस्वती' की तत्कालीन साहित्यिक जगत् में अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। 'सरस्वती' में लिखना गौरव और प्रतिष्ठा का विषय होता था। इसीलिए आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रत्येक प्रतिष्ठित साहित्यकार की रचना 'सरस्वती' में कहीं-न-कहीं प्रकाशित हुई है। अतः आचार्य द्विवेदी जी के भाषादर्श का प्रभाव साहित्य की प्रत्येक विधा और उसकी शैलियों में समाविष्ट हुआ।

### (ख) द्विवेदी जी की भाषा-नीति

अपने लेखों, भाषणों, सम्भाषणों, भूमिकाओं और सम्पादकीय निवेदनों के माध्यम से द्विवेदी जी ने अपने भाषा-आदर्शों को विस्तार से निरूपित किया। इन भाषा सिद्धान्तों को उन्होंने सम्पादक पद से 'सरस्वती' के कवियों और लेखकों की रचनाओं का संशोधन करके कार्यान्वित किया। इसके अतिरिक्त भाषा-परिष्कार की प्रक्रिया में दूसरों के दोषों की तीव्र आलोचना और विभिन्न ग्रन्थकारों की भाषा विषयक त्रुटियों का निरूपण भी महत्वपूर्ण है। वस्तुतः उनके प्रखर प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व से भाषा-सुधारक और भाषा-उद्धारक की झलक प्रत्येक पग पर मिलती है। 'सरस्वती' की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के निरीक्षण से द्विवेदी जी के भाषा-सुधारक रूप की अनुभूति अत्यन्त विशद होती है। भाषा-परिष्कार के इस महान कृत्य को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है।

### (१) व्याकरण सम्मत भाषा

तत्कालीन भाषागत निरंकुशता और अव्यवस्था को रोकने के लिए द्विवेदी जी ने व्याकरण सम्मत भाषा प्रयोग पर बल दिया। भाषा का स्वरूप व्याकरण के नियमों की अवहेलना से नहीं, अपितु उसके अनुसरण से ही



निमित्त होता है। व्याकरण भाषा के सर्वसामान्य अपरिपक्व (Crude) रूप को सुसंस्कृत एवं सभ्य बनाता है।

खड़ी बोली के इस प्रारम्भिक काल में कई कारणों से व्याकरणगत त्रुटियों का व्यवहार आम हो गया था। अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से बोलियों और क्षेत्रीय भाषाओं के सम्पर्क से तथा कुछ निरंकुश अनुत्तरदायी व्यवहार से खड़ी बोली का कोई सुनिश्चित रूप स्थिर नहीं हो पा रहा था। कहीं लिंग की समस्या थी तो कहीं वचन की। कहीं स्वरगत तो कहीं वचन-गत त्रुटियाँ थीं तो कहीं क्रियागत तथा कारकगत दोषों का प्रचलन था। द्विवेदी जी ने इस निरंकुशता और व्याकरण की अवहेलना को स्पष्ट शब्दों में अज्ञान का फल बताया। कवियों को समझाते हुए उन्होंने कहा—“कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है, अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है।”<sup>1</sup> व्याकरण की अवहेलना से ही खड़ी बोली के विभिन्न रूपों अथवा शैलियों का जन्म हुआ। कोई अरबी-फारसी, तो कोई अंग्रेजी व्याकरण का अनुसरण कर रहा था।

खड़ी बोली का निकटतम सम्बन्ध चूँकि संस्कृत से है, अतः यह आवश्यक था कि तत्कालीन अव्यवस्था को रोकने के लिए उसे अपनी परम्परा से सम्पृक्त किया जाये। इस प्रकार द्विवेदी जी ने लिखा था—“हिन्दी के शब्द-विचार में हमारी समझ में, यथासंभव संस्कृत-व्याकरण से सहायता लेनी चाहिए। संस्कृत-व्याकरण के समान अच्छा और कोई व्याकरण दुनिया में नहीं। उसे छोड़कर जो लोग उर्दू और फारसी के व्याकरण का आश्रय लेते हैं, वे मानो घर की कामधेनु के दूध का अनादर करके आक का दूध निकालने दीड़ते हैं।”<sup>2</sup> संस्कृत व्याकरण से सम्बद्ध होने पर खड़ी बोली एक सुनिश्चित परम्परा से सम्बद्ध हो गयी। खड़ी बोली को खड़ा रहने के लिए एक सुदृढ़ आधार की प्राप्ति हुई।

द्विवेदी जी ने व्याकरण के नियमों के पालन करने का समर्थन तो किया परन्तु व्याकरण को सर्वोपरि उन्होंने नहीं माना। व्याकरण को जन-भाषा का अनुसरण करने वाला ही उन्होंने माना। पुराने तथा नये लेखकों की व्याकरणगत त्रुटियों का उद्घाटन करने के पश्चात् भी उन्होंने व्याकरण के कार्य को स्पष्ट करते हुए त्रयोदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष

१. रसज्ञ रंजन : महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८।

२. वाग्विलास : महावीर प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी पुस्तक भण्डार, पटना, सं० १९८७ वि०, पृ० १३१



पद से भाषण देते हुए कहा—“व्याकरण का काम सिर्फ इतना ही है कि लोग जैसी भाषा बोलें या लिखें उसकी वह संगति मात्र लगा दें, उसके नियम-मात्र पर बल दें। उसे यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि तुम इसी तरह बोलो, या इसी तरह लिखो, या इस शब्द का प्रयोग इसी लिए मैं करो।”<sup>1</sup> वस्तुतः द्विवेदी जी, प्रचलन और प्रयोग को अब प्रमुखता दे रहे थे। प्रारम्भिक नियमबद्धता से खड़ी बोली को जो व्यवस्था और शुद्धता प्राप्त हो सकी, उसके सन्दर्भ में यह नवीन दिशा परिवर्तन सराहनीय है। भाषा को व्याकरण के नियमों से अत्यधिक बाँधा नहीं जा सकता। इससे भाषा का विकास सम्भव नहीं हो पाता। द्विवेदी जी चूँकि हिन्दी की समृद्धि और प्रगति के महान् शुभाकांक्षी थे, अतः उन्होंने कहा—“वाग्धारा का प्रवाह रोका नहीं जा सकता एक शब्द या एक पद तो रूपों में भी प्रचलित हो सकता है और प्रचलित हो जाने से वैयाकरणों को अपने व्याकरणों में दोनों ही को स्थान देना पड़ता है।”<sup>2</sup> भावी भाषा प्रगति की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए उन्होंने कहा था—“कोई लेखक भ्रमवश किसी शब्द का विरूप प्रयोग करे तो वह अवश्य अशुद्ध है। पर शिष्ट लेखकों के द्वारा जान-बूझकर किये गये ऐसे प्रयोग अशुद्धि की कोटि से निकल कर शुद्धि की कोटि में चले जाते हैं।”<sup>3</sup> अतः महावीरप्रसाद द्विवेदी के माध्यम से द्विवेदी-युग में खड़ी बोली को जहाँ व्याकरणिक समर्थता एवं नियमबद्धता प्राप्त हुई वहाँ दूसरी ओर इसी युग में भाषागत स्वस्थ स्वच्छन्दता का भी प्रणयन हुआ। उसी सुदृढ़ आधार पर आधुनिक हिन्दी भाषा उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रही है।

आचार्य द्विवेदी ने भाषा और व्याकरण सम्बन्धित अपने क्रान्तिकारी विचार, नवम्बर १९०५ ई० की ‘सरस्वती’ में ‘भाषा और व्याकरण’ शीर्षक लेख लिखकर प्रस्तुत किये। वास्तव में इस लेख से तत्कालीन भाषागत अव्यवस्था और अस्थिरता के वातावरण में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। लेख में द्विवेदी जी का मुख्य प्रतिपाद्य भाषा को सुसंस्कृत बनाना था। उन्होंने कहा कि भाषा का सुसंस्कृत होना व्याकरण के अनुसरण से ही संभव है। हिन्दी भाषा में व्याकरण के अन्तर्गत लिंग, क्रिया, कर्म, विभक्ति, समास इत्यादि सभी नियमों की समस्याएँ थीं। अतः इस लेख में द्विवेदी जी ने बाबू हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, गदाधर सिंह, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री

१. त्रयोदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कानपुर १९२३ ई०, कार्य विवरण—  
प्रथम भाग, पृ० २५।
२. वही०, पृ० २७।
३. वही०, पृ० २७।



(सिरसा) आदि शीर्षस्थ साहित्यकारों की क्रिया, कर्म आदि विषयक त्रुटियों को उद्धृत करके साहित्यिक जगत् में भाषागत जागरूकता की नवीन लहर उत्पन्न कर दी। इस लेख की अत्यन्त व्यापक प्रतिक्रिया हुई। पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, बाबू काशीप्रसाद जायसवाल, पं० पद्मसिंह शर्मा आदि ने तत्काल इसकी प्रशंसा की। पं० श्रीधर पाठक ने भी द्विवेदी जी को प्रशंसात्मक पत्र लिखा। वे द्विवेदी जी के लेख के अधिकांश भाग से सहमत थे, किन्तु कई स्थानों पर उन्होंने असहमति भी प्रकट की।<sup>1</sup> द्विवेदी जी हिन्दी को व्यापक एवं व्यवस्थित बनाने का निश्चय कर चुके थे अतः उन्होंने किसी प्रकार के विरोध या अवरोध को अपने कार्य की बाधा न माना। वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे। उदाहरण के लिए—तत्कालीन भाषा में 'जो', 'तो', 'जब' 'तब' के प्रयोगों में अस्थिरता थी। इन शब्दों का प्रयोग अनेक शब्द-रूपों की भाँति निरंकुशता से होता था। द्विवेदी जी ने इसी लेख में इस अव्यवस्था को इंगित करते हुए लिखा—“हिन्दी में जब, तब और जो (यदि), तो के प्रयोगों में भी बड़ी गड़बड़ी है। ‘जब’ और ‘तब’ समय वाचक हैं और ‘जो’ और ‘तो’ का प्रयोग वहाँ अधिक अच्छा लगता है जहाँ किसी तरह की शर्त होती है क्योंकि उनसे शर्त ही का अर्थ निकलता है।”<sup>2</sup> इस प्रकार के सुधार से द्विवेदी हिन्दी वाक्य-रचना की भिन्नता को मिटाने का प्रयत्न कर रहे थे। हिन्दी भाषा के पास उस समय किसी सर्वसामान्य व्याकरण का अभाव था। “ऐसा एक भी व्याकरण नहीं, जिसमें सब बातों का विचार किया गया हो। इसी से हिन्दी की दशा अनस्थिर हो रही है। एक तो हिन्दी-भाषा में साहित्य का एक प्रकार से अभाव ही है, दूसरे उसकी अनस्थिरता उसे और बरबाद कर रही है। जिस अखबार को उठाइए, जिस पुस्तक को उठाइए, सब की वाक्य-रचना में आपको भेद मिलेगा।”<sup>3</sup> इस भेद के कारण ही भाषा का ह्रास और उसके व्यक्तित्व का लोप, धीरे-धीरे होता है। भाषा के व्यक्तित्व के रक्षण और पोषण का कार्य, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रमुख रूप से ‘सरस्वती’ के माध्यम से किया। ‘सरस्वती’ में प्रकाशनार्थ आयी हुई रचनाओं का संशोधन उन्होंने सिद्धहस्त आचार्य की भाँति किया। ‘सरस्वती’ तत्कालीन साहित्यिक जगत् की आदर्श पत्रिका थी। ‘सरस्वती’ में साहित्य, भूगोल, इतिहास, राजनीति, भाषाशास्त्र एवं विज्ञान इत्यादि सभी विषयों पर उच्च-कोटि की रचनाएँ निरन्तर प्रकाशित होती थीं। ‘सरस्वती’ में प्रकाशित रचना

१. वाग्विलास : महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० १०८-०९ तथा १३६-३७।

२. वही०, पृ० १०२-०४।

३. वही०, पृ० ८६।



प्रत्येक रचनाकार के लिए गौरव और सम्मान का विषय था। आकर्षक साज-सज्जा में सँवरी इस पत्रिका के पीछे जिस अद्वितीय कर्मठता और कृतसंकल्पता से द्विवेदी जी कार्यरत थे, वह अद्वितीय है। इन रचनाओं में कृत भाषा का कायाकल्प ऐतिहासिक है।

उदाहरण के लिए द्विवेदी जी के द्वारा किये गये कतिपय संशोधनों को उद्धृत किया जाता है। व्याकरण के सभी अंगों में यह संशोधन किये गये हैं। तत्कालीन तथा आधुनिक युग के प्रायः सभी शीर्षस्थ साहित्यकारों की भाषा में कहीं-न-कहीं संशोधन उन्होंने किये।

- मूल संशोधित मूल संशोधित मूल संशोधित
१. स्वरगत संशोधन— दशावों दशाओं, चंडाल चांडाल, आगामि आगामी  
हृदय हृदय, बलीदान बलिदान चाहिये चाहिए<sup>१</sup>
  २. व्यंजनगत संशोधन—बसना बरसना, झूठा झूठा, उमर उम्र  
स्मशान-शमशान, पाओं पावों, दुःखड़े दुखड़े<sup>२</sup>

३. संज्ञा सम्बन्धी संशोधन—

|                         |                     |
|-------------------------|---------------------|
| मूल                     | संशोधित             |
| प्रकृति परिचय ! हीनता — | प्रकृति-परिचय-हीनता |
| फासला पर—फासले पर       |                     |

४. सर्वनाम सम्बन्धी संशोधन—

|                         |                        |
|-------------------------|------------------------|
| यह रेल की सड़क पर है    | —वह रेल की सड़क पर है  |
| पाठक, ... तुझे          | —पाठक, ... आपको        |
| खेरा मित्र....टहलने लगे | —खेरे मित्र....        |
| कुछ एक ने....           | —कई एक ने <sup>३</sup> |

५. क्रिया सम्बन्धी संशोधन—

|                  |                     |
|------------------|---------------------|
| समझी जानी लगी है | — समझी जाने लगी है। |
| होता आता है      | —होता आया है।       |

(रामचन्द्र शुक्ल—‘कविता क्या है’ १९०६ ई०)

जाना पड़ता है...इस प्रयोग की सृष्टि हुई हो

—जान पड़ता है।

(कामताप्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण १९०६ ई०)<sup>४</sup>

१. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—उदयभानु सिंह, पृ० २१३-२१६।

२. वही०, पृ० २१७-२१९।

३. वही०, पृ० २२१।

४. वही०, पृ० २२१-२२२।

५. वही०, पृ० २२३-२२४।



६. लिंग सम्बन्धी संशोधन—उनके स्वेन्द्रिय—उनकी स्पर्शेन्द्रिय, के शुद्धि—  
की शुद्धि, की सामर्थ्य—का सामर्थ्य, की  
लालच— का लालच, हमारे संतान— हमारी  
संतान, शव थी—शव था<sup>१</sup>
७. वचन सम्बन्धी संशोधन—बीमाओं—बीमों, यह दोनों—ये दोनों, अनेक  
बाधा—अनेक बाधाएँ, लालच या धमकी  
ऐसी है जिनसे योद्धों - लालच या धमकी ऐसी  
है जिससे योद्धाओं<sup>२</sup>
८. कारक सम्बन्धी संशोधन—शरीर में....रगड़ने लगा—शरीर से...  
रगड़ने लगा, भुक्षे हँसकर कहा—भुक्ष से  
हँसकर कहा, संक्षेप से—संक्षेप में, स्नायु में  
आघात होने पर—स्नायु पर आघात होने से,  
उसकी वृत्ति बनाई—उस पर वृत्ति बनायी<sup>३</sup>
९. उपसर्ग एवं प्रत्यय संशोधन—एकत्रित—एकत्र, उद्देश्य—उद्देश,  
अजीत हो गया—अजेय, उत्पत्ति—उत्पत्ति,  
संमति—सम्मति, महान्ता—महत्ता,  
परज्वलत—पञ्ज्वलित, सौन्दर्यता—सौंदर्य,  
चेतन्यता—चेतनता<sup>४</sup>

इसके अतिरिक्त शब्द-निर्माण की प्रक्रिया में साहित्यकारों ने पांडित्य प्रदर्शन की होड़ में कहीं संस्कृत और अंग्रेजी तो कहीं अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग किये। सामान्यतः भाषा इसी नीति से अव्यावहारिक हो जाती है। इससे भाषा में निरंकुशता एवं क्लिष्टता बढ़ती है। इसको रोकने के लिए द्विवेदी जी ने इन शब्दों के स्थान पर सरल व्यावहारिक शब्दों को प्रस्थित दिया। उदाहरण के लिए—

- (क) संस्कृत शब्दों के स्थानापन्न शब्द—कृतविद्य-विद्वान्, आधुनिक—  
आजकल की, त्यागता-छोड़ता, अर्वाचीन—नवीन, चारु कार्य और  
शिल्प—कारीगरी, एकान्ततः—सिर्फ, द्रव्यगत सौंदर्य—पार्थिव  
सौंदर्य, दक्षिण पार्श्व—दाहिनी तरफ इत्यादि।<sup>५</sup>

१. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—उदयभानुसिंह, पृ० २२५-२२६।  
२. वही०, पृ० २२७-२२८।  
३. वही०, पृ० २२९-२३१।  
४. वही०, पृ० २३३-२३४।  
५. वही०, पृ० २४२-२४३।



(ख) अरबी-फारसी शब्दों के स्थानापन्न शब्द—अंग्रेजीदाँ—अंग्रेजी जानने वाले, ज्यादा—बहुत, गुज़र गया—बीत गया, ख्याल-खयाल, आईन—कानून इत्यादि ।<sup>१</sup>

(ग) अंग्रेजी शब्दों के स्थानापन्न शब्द—डेस्क—मेज, मिस—कुमारी, मैगजिनों—मासिक पुस्तकों, टेक्स—कर, आरटिस्टिक—कोशलमयी, युनीवर्सिटी—विश्वविद्यालय इत्यादि ।<sup>२</sup>

भाषा में प्रयुक्त अन्य ग्रामीण बोलियों, भाषाओं अथवा उपभाषाओं के शब्दों का भी बहिष्कार द्विवेदी जी ने साथ-साथ ही किया । प्रायः ये शब्द हिन्दी भाषा (खड़ी बोली) के तत्कालीन स्वरूप के अंग ही बन चुके थे किन्तु भाषा के स्वरूप के अनुकूल न होने के कारण खड़ी बोली के स्वरूप को विकृत करने के अतिरिक्त और कोई शोभा नहीं बढ़ा रहे थे, उदाहरणार्थ—

अब लों—अब तक, वा—या, सो—इससे, जब लों-तब लों—जब तक तब तक, आँखें उघाड़ो—आँखें खोलो, जब .....तो एक जना—जब... तब एक आदमी इत्यादि ।<sup>३</sup>

उपर्युक्त विवेचन खड़ी बोली के रचनात्मक आन्दोलन की ओर इंगित करते हुए दो तथ्यों को सामने लाता है । वह युग-भाषा को एक सर्वसामान्य एवं प्रचलित रूप देने के लिए उसे शुद्ध एवं संस्कृत बनाने का संकल्प कर चुका था । किन्तु यह संकल्प हठवाद और शुद्धतावाद नहीं था । इसमें विकास और प्रगति की स्वच्छन्दता भी संलग्न थी । वैयाकरणों को भाषा का उद्धारक और शोधक तो स्वीकार किया गया किन्तु पांडित्य और रूढ़िवाद को भाषा पर लादने की आज्ञा न दी गयी । भाषा की स्वस्थ स्वच्छन्दता ही इस युग की नीति रही ।

## (२) हिन्दी का शब्द-भण्डार

आन्दोलन की प्रक्रिया में वैयाकरणिक अस्थिरता के बाद भाषा की शब्द-ग्राह्यता एवं भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध करने के लिए शब्द-निर्माण की भी अस्थिरता तत्कालीन साहित्यिक जगत् में थी । विभिन्न मतों और मान्यताओं के प्रभाव से हिन्दी के शब्द-भण्डार को भरने के लिए उपयुक्त शब्दों को चुनने में काफी मतभेद था । संस्कृत के विद्वान् संस्कृत, अरबी-फारसी, अंग्रेजी के विद्वान् अंग्रेजी तथा उपभाषाओं और बोलियों के विद्वान् प्रान्तीय शब्दों का व्यवहार खड़ी बोली के गद्य-पद्य में करते थे । इन विद्वानों में भी आपसी

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानुसिंह, पृ० २४३ ।

२. वही०, पृ० २४४ ।

३. वही०, पृ० २४४ ।



मतभेद था। कोई प्रचलित सर्वमान्य सिद्धान्त हिन्दी की शब्द ग्राह्यता के लिए अभी बन नहीं पाया था।

भाषा के शब्द-भण्डार के लिए किसी मान्य सिद्धान्त का निर्माण करना न तो आवश्यक है और न ही उपादेय। भाषा में प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्द भाषा के अंग बन जाते हैं। शुद्धतावाद के अन्तर्गत न तो उन्हें निष्कासित करने की आवश्यकता है और न ही नवीनता और पांडित्य प्रदर्शन के फेर में अप्रचलित नवीन शब्दों को भरने की। द्विवेदी जी ने इस भाषा वैज्ञानिक तथ्य का समर्थन इन शब्दों में किया—“मेरी राय में शब्द चाहे जिस भाषा के हों, यदि वे प्रचलित शब्द हैं और सब कहीं बोलचाल में आते हैं तो उन्हें हिन्दी के शब्द-समूह के बाहर समझना भूल है। उनके प्रयोग से हिन्दी की हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है। अरबी-फारसी के सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनको अपढ़ आदमी तक बोलते हैं, उनका बहिष्कार किसी प्रकार सम्भव नहीं।”<sup>१</sup> हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में द्विवेदी जी ने इस बात का पुनः समर्थन अधिक व्यापक ढंग से किया—“.....जिस तरह शरीर के पोषण और उपचय के लिए बाहर के खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है वैसे ही सजीव भाषाओं की बाढ़ के लिए विदेशी शब्दों और भावों के संग्रह की आवश्यकता होती है। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना बन्द हो जाता है वह उपवास सी करती हुई किसी दिन मुर्दा नहीं तो निर्जीव-सी जरूर हो जाती है।”<sup>२</sup> अतः द्विवेदी जी हिन्दी के शब्द-भण्डार को संकुचित एवं सीमित नहीं बनाना चाहते थे। भाषाविज्ञान के नियमों को वे भली भाँति समझते थे। इसीलिए उन्होंने न केवल अन्य भाषाओं के उपयुक्त एवं प्रचलित शब्दों को ग्रहण करने का विचार प्रस्तुत किया अपितु अन्य भाषाओं के माध्यम से प्रसृत ज्ञान एवं भाव-राशि को भी समेटने का आग्रह किया। एक समृद्ध भाषा और एक समुन्नत देश की राष्ट्रभाषा के लिए दोनों बातें आवश्यक एवं अनिवार्य हैं। भविष्य दृष्टा की भाँति इसीलिए १९०५ ई० में ही उन्होंने इस तथ्य का उद्घाटन किया था। “हिन्दी को कालसह, अर्थात् कुछ काल के लिए स्थायी, करने के लिए यह बहुत जरूरी बात है कि उसकी रचना व्याकरण-विरुद्ध न हो, उसमें सिर्फ ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जो विशेष व्यापक हों अर्थात् जिन्हें अधिक प्रान्तों के आदमी समझ सकें।”<sup>३</sup>

१. सरस्वती: अक्टूबर, १९११ ई०, पृ० ४७३।

२. त्रयोदश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कानपुर, १९२३ ई०-कार्यविवरण, प्रथम भाग (स्वागताध्यक्ष का भाषण), पृ० २२।

३. वाग्विलास : महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० १०६।



संक्षेप में कहा जाये तो प्रस्तुत युग भाषा के शब्द-निर्माण और उसकी शब्द-ग्राह्यता को व्यापक दृष्टि प्रदान करने को आकुल हो रहा था। हिन्दी को अधिकाधिक प्रचलित और अधिकाधिक सुसंस्कृत बनाना महावीरप्रसाद द्विवेदी का ध्येय था।

### (३) विषयानुकूल भाषा एवं अर्थ-सौरस्य

भाषा के स्वरूप को व्यवस्थित करने भर से ही काम न चलता। तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्दों के अस्थिर प्रयोग और शब्दों के अभाव के अतिरिक्त खड़ी बोली में वर्तमान शब्दों का प्रयोग यथास्थान एवं उपयुक्त नहीं हो रहा था। भाषा को जानने के पश्चात् भाषा को समझने और उसके समुचित प्रयोग की आवश्यकता थी। स्वर्गीय गुप्त जी के नाम द्विवेदी जी का पत्र इस तथ्य की ओर इंगित करता है। कवि तथा साहित्यकार भाषा और भाव के सामन्वय से उत्पन्न अर्थ-सौरस्य की ओर ध्यान नहीं दिया करते थे। इसीलिए द्विवेदी जी साहित्यकारों को सावधान करते हुए कहते हैं—“विषय के अनुकूल शब्द-स्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिए बड़ी सावधानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है।”<sup>12</sup> शब्दों को यथास्थान न रखने से कविता की दुर्दशा होती है। उसके अर्थ की प्रभावोत्पादकता नष्ट हो जाती है। अर्थ ही कविता का मर्म है। उस अर्थ को सुरस बनाना ही कवि का कर्तव्य है। अर्थहीन और अनुपयोगी शब्द लिखे जाने से तथा शब्दों के प्रकृत रूप को बिगाड़ने से काव्य के गुण का ह्रास होता है। अर्थ-चमत्कार और सौरस्य पर बल देते हुए द्विवेदी जी ने इसी विचार को प्रस्तुत किया—“अर्थ-सौरस्य ही कविता का प्राण है। जिस पथ में अर्थ का चमत्कार नहीं, वह कविता ही नहीं।”<sup>13</sup> किन्तु शर्त यही है कि भाषा के शुद्ध स्वरूप को हानि पहुँचाये बिना ही विषयानुकूल भाषा का प्रयोग हो।

### (४) काव्य-विषय

द्विवेदी-युग में खड़ी बोली का आन्दोलन आन्तरिक आन्दोलन था। खड़ी बोली को राष्ट्रीय सम्मान से मण्डित करने के लिए यह आवश्यक था कि उसका स्वरूप सुधड़ और सुसंस्कृत हो। भाषा सर्वसामान्य के व्यवहारोपयोगी होकर देश की जनता की आवाज बन सके। अतः भाषा के इस स्वरूप-निर्माण

१. वाग्विलास : महावीरप्रसाद द्विवेदी पृ० ७६।

२. रसज रंजन : महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८।

३. वही०, पृ० २०।



के पश्चात् आन्दोलन का एक आवश्यक अंग, इस भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त विषय थे।

ब्रजभाषा काव्य की भव्य परम्परा के सामने खड़ी बोली किन विषयों को लेकर अकेले ही राष्ट्रभाषा बन सकती है, यह एक आवश्यक प्रश्न था। स्पष्ट था कि ब्रजभाषा ने जिस प्राचीन परम्परा को अभी तक निभाया था, उसके विरुद्ध नवीनता और आधुनिकता को ही खड़ी बोली प्रश्रय दे। ब्रजभाषा ने अधिकांशतः जिस सामन्ती जीवन-दर्शन को प्रस्तुत किया था उसके विपरीत खड़ी बोली को सहज सामान्य जीवन-मूल्यों और आदर्शों को प्रस्तुत करना था जिनसे जनता और देश में नवीन जागृति की लहर उत्पन्न हो। खड़ी बोली का कार्य आदर्श भारतीयता के प्रतीकों को समेटना था। अतः इस युग के भाषा-आन्दोलन में विषयों की महत्ता बढ़ी। अब न केवल भाषा के शुद्ध और व्याकरणसम्मत होने की अनिवार्यता अनुभव की गयी अपितु नवीन बौद्धिक क्रान्ति से उत्पन्न नवीन जागरण और राष्ट्रीयता, स्वच्छन्दता और निर्भीकता, धर्म और साहस इत्यादि काव्य-विषयों के उपादान बने।

तत्कालीन भाषा-संक्रान्ति की सूक्ष्मताओं को समझाते हुए महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उपयुक्त ही कहा—“आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी-कवि का कर्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नयी कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाये।”<sup>1</sup> जनता की रुचि का ध्यान रखना राष्ट्रभाषा का प्रथम कर्तव्य है तभी उसकी व्यापकता और जनप्रियता सम्भव है। अतः इस जन-रुचि के अनुकूल विषय चुनना कवि का धर्म है। साथ ही अपने भावों को जन-रुचि के अनुसार ही सरल एवं सहज भाषा और सीधे, सरल एवं परिचित छन्दों में अभिव्यक्त करना आवश्यक है। स्वयं द्विवेदी जी ने शास्त्रोक्त गुणों को त्यागकर तत्कालीन कविता के लिए निम्न तत्त्व आवश्यक समझे—

१—कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोविकारों का वर्णन हो।

२—उसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणों के उदाहरण रहें।

३—कल्पना-सूक्ष्म और उपमादिक अलंकार गूढ़ न हों।

४—भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो।

५—छन्द सीधा, परिचित, सुहावना और मनोहर हो।<sup>2</sup>

१. रसज्ञ रंजन : महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० २६।

२. वही०, पृ० ३१।



ब्रजभाषा की परम्परा के सम्मुख ये तत्त्व सामान्य अवश्य लगते हैं। किन्तु तत्कालीन काव्य-स्थिति को दृष्टि में रखते हुए ये तत्त्व परमावश्यक एवं बड़ी सुझ-बूझ के द्योतक हैं। खड़ी बोली के निर्माण-काल में इन तत्त्वों का अनुसरण भावी प्रगति के लिए अनिवार्य-सा दिखता है। खड़ी बोली के क्रमिक विकास को देखते हुए ये तत्त्व सुदृढ़ आधार थे। खड़ी बोली के इस प्रारम्भिक काल में ब्रजभाषा की समृद्ध परम्परा का उत्तर, भाषागत माधुर्य से अधिक, जनरुचि-अनुमोदित विषयगत उपलब्धियों को प्रस्तुत करने से दिया जा सकता है।

### ब्रजभाषा कवियों का विरोध

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि खड़ी बोली के समर्थक अब एक झण्डे के नीचे रचनात्मक ढँग से अपनी मान्यताओं को ठोस रूप देने का निरन्तर प्रयास कर रहे थे। इस सम्मिलित प्रयास का समुचित फल यह रहा कि खड़ी बोली का विरोध ब्रजभाषा के कवियों द्वारा उतना तीव्र न हुआ जितना पूर्व के युग में हुआ था। यह विरोध अब अवसान पर था। जैसा कि कहा गया है, इस युग में आकर स्वयं ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों ने खड़ी बोली का समर्थन किया था। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना छोड़, खड़ी बोली में काव्य रचना प्रारम्भ की। सन् १९०० में 'वैकुण्ठेश्वर समाचार' में छपी उनकी कविता 'हे कविता' में उन्होंने परम्परागत रूढ़ियों का विरोध किया था। 'सरस्वती' के माध्यम से ब्रजभाषा की रूढ़िग्रस्तता पर घीरे-घीरे प्रहार होने लगे। खड़ी बोली के काव्य-रूप का क्षेत्र दिनोदिन बढ़ता चला गया। 'कविता कलाप' (१९०६ ई०) तक आते-आते द्विवेदी जी ने कहा—“इस नये ढँग की कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होते देख बहुत लोग अब इनकी नकल अधिकता से करने लगे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि इस तरह की और इस तरह के छन्दों में लिखी गयी कविता दिन-पर-दिन लोगों को अधिकाधिक पसन्द आने लगी है। अतएव, बहुत सम्भव है कि किसी समय हिन्दी के गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो जाये।” इस सम्भावना का ठोस रूप केवल छः साल बाद ही सामने आया। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, मृकुटधर पांडेय, बदरीनाथ भट्ट, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि ने हिन्दी काव्य-भण्डार को खड़ी बोली-काव्य की अमर रचनाओं से भर दिया था। १९१४ ई० तक आते-आते स्वयं द्विवेदी जी ने आश्वस्त होकर 'सरस्वती' में 'बोलचाल की हिन्दी' लेख में कहा था कि कहीं भी कोई पत्रिका उठाइए बोलचाल की भाषा में कविता आपको मिलेगी। स्थिति बदल चुकी थी। ब्रजभाषा आक्रामक न रहकर अब अपनी रक्षा के

१. कविता कलाप : सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी—इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९२१ ई० (भूमिका), पृ० ३।



साधन ढूँढ़ रही थी। परिवर्तन के अजस्र एवं अथाह धारा-प्रवाह में ब्रजभाषा के कवि भी खड़ी बोली-काव्य की सेवा में लगकर नवीन इतिहास की नींव डाल रहे थे। इस नींव पर का भवन १९२५ ई० तक सुदृढ़ एवं भव्य बन चुका था। द्विवेदी जी का सपना साकार रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

प्रस्तुत युग के इस बदले हुए वातावरण में ब्रजभाषा के कवियों और समर्थकों द्वारा छुटपुट रूप से विरोध चलता रहा। यह विरोध ब्रजभाषा के दीर्घकालीन सम्पर्क से उत्पन्न मोह की भावना से हो रहा था। ब्रजभाषा की क्षमताओं में अधिक विश्वास के कारण यह विरोध, पूर्व के युग में तीव्र और कटु था। अब खड़ी बोली की बढ़ती हुई क्षमताओं के समक्ष यह विरोध क्षीण हो चुका था। खड़ी बोली कविता के विविध अंगों को लेकर यह विरोध सामान्यतः हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विभिन्न अधिवेशनों, कवि सम्मेलनों तथा पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से होता रहा। संक्षेप में विरोध के मुख्य तर्क-वितर्क इस प्रकार से थे।

### (१) खड़ी बोली की अक्षमता और अयोग्यता

ब्रजभाषा-कवियों और समर्थकों ने इस युग के प्रारम्भिक वर्षों में यह बात फिर दोहरायी कि खड़ी बोली वास्तव में काव्य-रचना के उपयुक्त नहीं है। यह बाजारू भाषा है, किसी स्वस्थ पद्य-परम्परा का निर्माण इसमें नहीं हो सकता। 'प्रेमघन' जी ने तृतीया हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय पद से इसको 'चरन वालों की बाणी', 'बिरहे' तथा 'पचड़ों' की भाषा कहा। इस भाषा में रचे जाने वाले काव्य को उन्होंने 'निम्न कोटि के पद्य' भी घोषित किया था।<sup>१</sup> खड़ी बोली की अयोग्यता को स्पष्ट करते हुए राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने कहा— "खड़ी बोली के नाम से ही विदित है कि उसका काम है खड़ी रहना, इसलिए उसे दरबार, अदालत, बाजार इत्यादि में जगह मिल गयी उसको उन ऊँचे और सुरम्य स्थानों में खड़ी होने का उत्पाह न करना चाहिए जहाँ केवल श्रीमती ब्रजभाषा इत्यादि का सुख से आराम करने का अधिकार है।"<sup>२</sup> 'पूर्ण' जी के ये तर्क और आक्षेप अत्यन्त रूढ़ थे। इनमें किसी प्रकार की नवीनता नहीं थी। खड़ी बोली का मजाक उड़ाने भर से काम चलना होता तो भारत-ेन्द्र-युग में इसका काफी मजाक उड़ चुका था। उसके सामने अब इस प्रकार के तर्क निरर्थक प्रतीत होते हैं। पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी इस युग में ब्रज-भाषा के प्रबल समर्थकों में से एक हैं। द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में उन्होंने खड़ी बोली का मजाक बनाकर ब्रजभाषा का समर्थन किया था। इसका विरोध

१. तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण, प्रथम भाग, पृ० ४१।

२. चन्द्रकुमार भानुकला नाटक—राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' (भूमिका), पृ० ८।



करते हुए पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने लिखा था कि यदि खड़ी बोली इतनी अशक्त और अयोग्य है तो हिन्दी भाषा और साहित्य के अखिल भारतीय सम्मेलन में इस विषय का प्रस्ताव ही क्यों न रखा गया कि खड़ी बोली में काव्य सर्जना बन्द कर दी जाये—“तब तो आवश्यकता इस बात की थी कि कानपुर के गत हिन्दी साहित्य सम्मेलन में इसी आशय का एक प्रस्ताव रखा जाता कि चूँकि खड़ी बोली में सुन्दर और मधुर कविता हो ही नहीं सकती अतएव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-सेवियों का कर्त्तव्य है कि वे खड़ी बोली में कविता करना बन्द कर दें और ब्रजभाषा में ही कविता करें।”<sup>1</sup>

खड़ी बोली को अशक्त और अक्षम कहने वाले वास्तव में तत्कालीन वैचारिक प्रगति और जन-जागरण का विरोध कर रहे थे। खड़ी बोली देश की नयी आवाज की अभिव्यक्ति थी। समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने वाली भाषा का विरोध देश-द्रोही ही करते हैं। गुप्त जी ने पाँचवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन में ‘हिन्दी कविता किस ढंग की हो’ शीर्षक लेख में इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए ब्रजभाषा के काव्य-विषयों को समाज विरोधी और जनसाधारण के लिए हानिकारक घोषित किया। खड़ी बोली के विरोधियों को लक्ष्य करते हुए उन्होंने कहा—“जो लोग खड़ी बोली को कविता के योग्य नहीं समझते और पुरानी भाषा में ही, जिसे खड़ी बोली वाले चाहें तो पड़ी बोली कह सकते हैं—कविता किये जाने का आग्रह करते हैं वे सच पूछिए तो हमारी राष्ट्रभाषा के जानी दुश्मन हैं।”<sup>2</sup> गुप्त जी की इस चेतावनी पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। कविवर ‘रत्नाकर’ ने अखिल भारतीय हिन्दी कवि सम्मेलन, कानपुर में खड़ी बोली को एक कृत्रिम शैली की संज्ञा प्रदान की थी।<sup>3</sup> और इसी प्रकार खड़ी बोली की आलोचना तिरस्कार रूप में करते हुए पं० चन्द्रमोहन मिश्र ने भी लिखा—“देश का नाम लेकर एक-आध इधर-उधर के लटके सुनाओ और सुकवि बन जाओ। वंदनीय महाशयों से अति विनयपूर्वक प्रार्थना है कि इस साहित्य परिवर्तन के युग में नव मुरीद हिन्दी प्रिय पाठकों को ऐसी शिक्षा न दें जिससे सत्कवियों का तिरस्कार ही नहीं वरन् काव्य का आदर्श भी भ्रष्ट हो जाये।”<sup>4</sup>

इस कटु आलोचना और विरोध के विपरीत खड़ी बोली के कवि माधुर्य और लालित्य को काव्य-भाषा में लाने का सतत् प्रयत्न कर रहे थे। इन

१. ‘माधुरी’, वर्ष १, खंड २, पृ० ३७७।

२. पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन : कार्यविवरण, भाग २, पृ० ५८।

३. खड़ी बोली का आन्दोलन : शिति कंठ मिश्र, पृ० २३५।

४. इन्द्र : २ अगस्त १९१२ ई०, पृ० १४६।



विविध आरोपों का उत्तर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने १९१४ ई० में इस प्रकार दिया था—‘बोल-चाल की भाषा को खड़ी बोली कहकर उसके पुरस्कर्त्ताओं की निन्दा और उपहास करने से ब्रजभाषा का गौरव नहीं बढ़ सकता ।…… बोलचाल की हिन्दी में कविता करने वालों को इस तरह ने निन्दावाद की कुछ भी परवाह न करके गुणवती कविता लिखने में चुपचाप लगे रहना चाहिए ।’<sup>१</sup> युग-प्रवर्त्तक ने इसे ‘चुपचाप लगे रहने’ के यंत्र से खड़ी बोली काव्य को समृद्ध कराया । ब्रजभाषा के समर्थक पुरानी लीक पीट रहे थे । नये वातावरण में नयी दिशाओं की और खड़ी बोली कविता की प्रगति को मूल्यांकित करने से वे हिचक रहे थे । यह ठीक है कि प्रारम्भ में खड़ी बोली-काव्य अपरिपक्व और अशक्त था । उसमें अपेक्षित काव्योचित लाक्षणिकता और रसात्मकता का समुचित प्रसार न हो पाया था । किन्तु उसमें ये सभी गुण आ जाने की पूरी आशा थी । युग के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में इसी कविता की माँग हो रही थी । इसीलिए सन् १९०४ (चन्द्रकुमार भानुकला नाटक) में राय देवीप्रसाद (पूर्ण) ने खड़ी बोली कविता का तीव्र विरोध करते हुए भी केवल दो साल बाद इसी भाषा में ‘प्रदर्शिनी स्वागत’ लिखा । राधाचरण गोस्वामी जैसे पुरानी पीढ़ी के खड़ी बोली विरोधी भी अब खड़ी बोली में लिखने लगे थे । लेकिन फिर भी खड़ी बोली का विरोध कुछ लोगों ने अपना कर्त्तव्य समझ लिया था । यहाँ तक कि यह विरोध कभी-कभी कटुता और आपसी छींटाकशी तक चला जाता । ‘कविता-कलाप’ काव्य-संग्रह की कटु आलोचना करते हुए ‘घृष्ट समालोचक’ ने गुप्त जी को लक्ष्य करते हुए लिखा था—“बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुबहान अल्लाह ।” बाबू मैथिली-शरण गुप्त की तुर्क संस्कृत की भाँति ह्रस्व और गुरु को नहीं गिनती ।…… आपकी जितनी भाषा निराली है, उतनी ही ध्याकरण भी—

वह अद्भुत छवि से अवनि का

इन्द्र भवन कहलाता था ।

‘अवनी’ । पृथ्वी नहीं……बाबू मैथिलीशरण गुप्त (ने) ‘…… सरस्वती’ की एप्रेटिसी खूब की है ।<sup>२</sup> इसी प्रकार ‘बड़े मियाँ’ को लक्ष्य करते हुए उन्होने लिखा—“उनकी कविता में सार कुछ नहीं है । न शब्द-योजना ही अच्छी है, न भाव-कल्पना है, न वाणी ही के गुण हैं, न विचार ही के । ‘कविता’ निरी ‘नग्न’ तो अलग है ही, पर उसमें लड़कपन भी बहुत है, जिसकी आप ऐसे वयोवृद्ध महात्मा से आशा नहीं थी ।”<sup>३</sup> इस प्रकार की नकारात्मक प्रवृत्ति से स्वयं ब्रजभाषा को हानि पहुँच रही थी । बद्रीनाथ भट्ट ने कदाचित्

१. सरस्वती : अप्रेल, १९१४ ई०, पृ० २२८-२९ ।

२. मर्यादा, भाग ६, संख्या १, पृ० ४३-४४ ।

३. वही, पृ० ४९ ।



ऐसे ही आलोचकों को समझाते हुए अपेक्षाकृत तीव्र स्वर में कहा था—“असल बात यह है कि ब्रजभाषा के अन्ध पक्षपात का परदा अभी लोगों के हृदय पर से अच्छी तरह नहीं हटा। इसी से कोई-कोई सज्जन, आजकल, हिन्दी-कवियों के नाम गिनाते समय खड़ी बोली के अच्छे से अच्छे कवि का भी नाम नहीं लेते, ..... जो सज्जन ..... विकास-सिद्धान्त की दिन दहाड़े इज्जत उतारते हैं, जो कोरा वैमनस्य फैलाते हैं, जो आगे बढ़ने का दम भर कर मोहवश पीछे हटते हैं ..... जो बूढ़ी गाय की मानिन्द बेचारी ब्रजभाषा को आजकल के नवीन भावों की ईंटों से कुटी हुई सड़क पर जबरदस्ती सरपट दौड़ता चाहते हैं उनसे हमारी यही प्रार्थना है कि ऐसा करके न तो वे ब्रजभाषा का कुछ उपकार ही कर सकते हैं और न खड़ी बोली का कुछ उपकार ही। हाँ, आपस के सद्भाव का संहार करके भेद का विस्तार वे अवश्य कर सकते हैं।”<sup>१</sup> खड़ी बोली की आन्तरिक शक्ति में खड़ी बोली के कवियों और समर्थकों को दृढ़ विश्वास था। वे कर्मठता से भाषा के साहित्य-भण्डार की श्री-वृद्धि कर रहे थे। इन आक्षेपों से वे सर्वथा अप्रभावित से दीखते हैं।

## (२) खड़ी बोली की नीरसता और विलुप्तता

ब्रजभाषा में माधुर्य की एक सशक्त परम्परा है। दीर्घकालीन प्रयोग से इसमें सुघड़ता उत्पन्न हुई है। शृंगार रस, रसों में सर्वाधिक मधुर रस है। आत्मनिष्ठ व्यक्ति इसी रस के विविध रूपों से आप्लावित रहता है। ब्रजभाषा काव्य चूँकि व्यक्तिनिष्ठ काव्य रह चुका है अतः सामान्यतः उसके अधिकांश में इसी रस का सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं ऊहापोहात्मक वर्णन किया गया। फलतः इस कारण भी इसमें माधुर्य का प्रवेश हुआ। भक्ति-रस के अन्तर्गत इस काव्य को गेय पदों ने संगीतात्मकता प्रदान की। सब मिलाकर, ब्रजभाषा के सुमधुर रूप की एक निश्चित परिधि में स्थापना हो गयी। प्रस्तुत युग, न तो भक्ति के संगीत का युग था और न शृंगार के रूढ़ वर्णनों का काल था। युग की परिवर्तित परिस्थितियों की उपेक्षा करके, ब्रजभाषा के समर्थक उसके माधुर्य की दुहाई देते हुए, खड़ी बोली को नीरस और कर्ण-कटु कहने लगे। संस्कृत भाषा के सम्पर्क को उन्होंने विलुप्तता की प्रवृत्ति बताया। ‘प्रेमघन’ जी ने तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में ब्रजभाषा के काव्य-भाषा होने का कारण इसका माधुर्य बताया। उनके मतानुसार माधुर्य से विच्छिन्न भाषा काव्य में प्रयुक्त नहीं होनी चाहिए। खड़ी बोली में मधुरता कहीं लेश मात्र भी नहीं है। इसकी कविता नीरस है, कर्णकटु है। मिश्रबन्धु ने इस नीरसता पर टिप्पणी



करते हुए लिखा—“.....आजकल खड़ी बोली में प्रायः शुष्क काव्य पाया जाता है और नीरसता का ऐसा समावेश है कि दस पृष्ठों की भी कविता साद्यान्त पढ़ जाना बड़े धैर्यवान व्यक्ति का काम है।”<sup>१</sup> मिश्र जी का यह कथन अत्युक्ति ही कहा जायेगा। सन् १९१५ तक खड़ी बोली की शुष्कता समाप्त-प्राय थी। जैसा कि आगे देखेंगे ‘प्रियप्रवास’ इत्यादि अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। भाषा की असमर्थता, कर्णकटुता समाप्तप्राय थी। ओज, प्रवाह, व्यञ्जकता इत्यादि गुण भाषा में आ गये थे। किन्तु इस विकास की अवहेलना करते हुए विरोधी विरोध कर ही रहे थे।

ब्रजभाषा के माधुर्य का इतना मोह ब्रजभाषा-समर्थकों को था कि वे हास्यास्पद तर्क भी प्रस्तुत किया करते थे। वियोगी हरि ब्रजभाषा के माधुर्य का प्रसार इतना मानते हैं कि उन्हें ब्रजप्रदेश की स्त्रियों की गालियाँ भी मधुर लगती हैं। गुप्त जी के उपरोक्त लेख के विरोध में उन्होंने इस तर्क को प्रस्तुत करते हुए खड़ी बोली की तीव्र आलोचना की थी। यद्यपि खड़ी बोली में माधुर्य के अभाव का आक्षेप प्रारम्भिक वर्षों में ठीक था तथापि इस आक्षेप को बार-बार आरोपित करना ब्रजभाषा के समर्थकों की निजी अक्षमता का द्योतक है। भाषा में माधुर्य का प्रसार दीर्घकालीन प्रयोग से ही सम्भव हो पाता है। अतः इस प्रकार के आरोप किसी तर्कसम्मत विरोध को प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं। यह विरोध विरोध के लिए सिद्धान्त का परिपालन मात्र है। पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का खड़ी बोली विरोध, दूसरे हिन्दी साहित्य सम्मेलन (खड़ी बोली काव्य के प्रारम्भिक वर्षों) से बारहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन (खड़ी बोली काव्य के प्रगति-काल) तक सामान्यतः एक-सा रहा। खड़ी बोली के विकास एवं उसके काव्य की क्षमताओं और उपलब्धियों की उपेक्षा करते हुए उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बारहवें अधिवेशन के सभा-पति के पद से भाषण देते हुए कहा था कि खड़ी बोली की कविता में भाव का अभाव है ओज की खोज व्यर्थ है। लालित्य के सदा लाले पड़ रहे हैं। प्रसाद का कहीं पता नहीं, रस क्या रसाभास भी नहीं। अर्थ से अर्थ न मतलब से मतलब। खड़ी बोली के कवि एवं समर्थक इस थोथे विरोध की यथार्थता से परिचित थे। उन्हें विश्वास था कि ये तर्क और ये आक्षेप समय के साथ विलीन होते जायेंगे। माधुर्य की दुहाई देने वालों की भाषा को लक्ष्मीधर वाजपेयी ने १९०७ (हिन्दी ग्रन्थावली) में ही ‘महिलाओं की भाषा’ कहा था। पं० बद्रीनाथ भट्ट ने सटीक टिप्पणी करते हुए लिखा—“प्राचीन शब्दों को तोड़-मरोड़ कर, उनका अंग-भंग करके, जो भाषा मधुर कहलाने का



दावा रखती है यह उस मनुष्य के समान है जो ओरों पर पत्थर मारकर हँसता है और चाहता है कि लोग मेरी प्रशंसा करें।”<sup>१</sup> कविता का माधुर्य, भाषा से उतना सम्भव नहीं है, जितना भाव वैभव से है। प्रत्येक संगीतात्मक रचना उच्च काव्य की कोटि में समाविष्ट नहीं हो सकती। काव्य के भाव पक्ष को समृद्ध कराने की प्रेरणा महावीरप्रसाद द्विवेदी आरम्भ से ही दे रहे थे। वे जानते थे कि काव्य का प्रमुख तत्त्व भाव है। एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन में बाबू श्यामसुन्दरदास खत्री ने इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा था—“कवि काव्योत्कर्ष का सृष्टिकर्त्ता है। भावों के अनूठेपन से वह भाषा में भी लालित्य और माधुर्य उत्पन्न कर देता है।”<sup>२</sup> खड़ी बोली काव्य में माधुर्य और लालित्य वास्तव में भाव-क्षेत्र के विस्तार से ही सम्भव हो सका। अतः ब्रजभाषा के समर्थकों का आरोप कि खड़ी बोली में काव्योचित माधुर्य नहीं है, व्यर्थ का परम्परा-मोह था।

माधुर्य-अभाव के दोष दर्शन के साथ ही खड़ी बोली पर इस युग में ब्रज-भाषा के समर्थकों ने क्लिष्टता का दोषारोपण भी किया। जैसा कि पहले कहा गया है आलोच्य-युग में खड़ी बोली हिन्दी को एक सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए संस्कृत भाषा का विशेष साहाय्य प्राप्त किया गया। उस समय महावीरप्रसाद द्विवेदी की यह भाषा-नीति हिन्दी को स्थायित्व प्रदान करने और भावी राष्ट्रभाषा के पद को ग्रहण करने के लिए आवश्यक थी। इस नीति के कारण संस्कृत छन्दों के प्रयोग से भाषा में संस्कृत की समस्त पद शैली का भी प्रवेश हुआ। वर्ण वृत्तों में रचित ‘प्रियप्रवास’ की आलोचना जगन्नाथ-प्रसाद ने की। बालकृष्ण भट्ट ने यह शंका प्रकट की कि इस प्रकार के प्रयोगों से खड़ी बोली का कौन सा व्याकरण बन पाएगा।<sup>३</sup> पं० शुक्देवबिहारी मिश्र ने ऐसे प्रयोगों की तीव्र आलोचना करते हुए ‘पुष्पांजलि’ में लिखा कि ये प्रयोग कर्णकटु हैं और इनसे श्रुति माधुर्य का गर्वलाभ हो जाता है।<sup>४</sup>

इस विरोध के रहते हुए भी संस्कृत के तत्सम प्रयोग होते रहे। संस्कृत के तत्सम प्रयोग नये-नये कवियों के हाथ में आकर कभी-कभी क्लिष्ट हो जाया करते थे। संस्कृत भाषा अपने में मधुर भाषा है, फिर खड़ी बोली में उसके प्रयोग से कर्ण-कटुता और श्रुति-अमधुरता का प्रश्न कहाँ से उठता है? पं० बदरीनाथ भट्ट ने ‘सरस्वती’ में इसी आशय को इस प्रकार व्यक्त किया—

१. सरस्वती, फरवरी १९१३ ई०, पृ० १०६।

२. एकादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता, कार्य विवरण, भाग २, पृष्ठ ७८।

३. माधुरी, फरवरी १९२२।

४. पुष्पांजलि (१९१५ ई०)—शुक्देवबिहारी मिश्र, पृ० २६२-६३।



“बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस देववाणी के श्रुति-माधुर्य की इतनी डफली पीटी जाती है उसी के शब्द खड़ी बोली में आते ही नीरस हो जाते हैं।”<sup>1</sup> वस्तुतः संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग में दक्षता की आवश्यकता थी। स्वयं द्विवेदी जी निरंकुश पाण्डित्यपूर्ण तत्सम शैली के विरोधी थे। अतः खड़ी बोली संस्कृत हुई जा रही है, यह आरोप उचित नहीं था। किन्हीं दो-एक उदाहरणों को लेकर समूचे काव्य को क्लिष्ट कह देना अन्याय था। ‘प्रियप्रवास’ की जिस शैली का विरोध पं० जगन्नाथ चतुर्वेदी ने किया था, उसी महाकाव्य की प्रशंसा में युग के प्रसिद्ध ब्रजभाषा के कवि ‘कविरत्न’ ने एक कविता रच डाली। आलोच्य-युग में केवल संस्कृत गर्भित शैली का ही अनुसरण हुआ हो, ऐसा भी नहीं है। भाषा के सरल, प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण रूप की स्थापना मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, मुकुटधर पांडेय, सियारामशरण गुप्त, शंकर’ इत्यादि कवियों ने की।

### विरोध का अवसान

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है, द्विवेदी-युग में खड़ी बोली काव्य की बढ़ती हुई प्रगति के फलस्वरूप ब्रजभाषा के कवियों एवं समर्थकों का विरोध एक ऊंगरी विरोध था। अब स्थिति बदल चुकी थी। ब्रजभाषा के कवि स्वयं समझते के तौर पर कहने लगे कि यदि ब्रजभाषा के दिन लद गये हैं तो वह स्वयं समाप्त हो जायेगी। उसका विरोध न किया जाये। “खड़ी बोली में खूब कविता हो। पर दूसरी भाषाओं में कविता होना मत रोको।.....यदि अब ब्रजभाषा को कोई नहीं समझता है, यदि उसके दिन आ गये हैं, तो स्वयं ही उसमें कोई कविता न करेगा। समय के प्रभाव से कौन बच सकता है, परन्तु तुम अपने ऊपर क्यों इस कलक को लेते हो।”<sup>2</sup> वास्तव में ब्रजभाषा के नायक-नायिका भेद और रूढ़ परम्पराओं का विरोध हुआ था। ब्रजभाषा में कविता रोकना, युग के किसी खड़ी बोली समर्थक का ध्येय न था। स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ऐसा ही कहा था और ‘सरस्वती’ के सम्पादन में इस नीति का परिपालन भी किया था। सन् १९१४ में उन्होंने कहा था— “जो अब भी ब्रजभाषा में पद्य-रचना करते हैं उन्हें वैसा करने को कोई रोक भी नहीं सकता।”<sup>3</sup> ब्रजभाषा में कविता करने से किसी को रोका नहीं जा रहा था। स्वयं ब्रजभाषा के कवि या तो ब्रजभाषा छोड़ खड़ी बोली में कविता करने लगे थे या दोनों भाषाओं में नवीन जीवन-दर्शन लेकर उपस्थित हो रहे थे। सन् १९१४-१५ तक आते-आते ब्रजभाषा के कवियों की संख्या कम

१. सरस्वती, मई १९१४ ई०, पृ० २६६।

२. इन्दु : कृष्णविहारी मिश्र, जनवरी १९१५ ई०, पृ० ११।

३. सरस्वती, अप्रैल १९१४ ई०, पृ० २८८।



होती गयी। 'कवि और कर्तव्य' लेख में विद्यानाथ ने १९११ ई० में लिखा—  
 " 'पूर्ण' कवि ने हमें यह उपदेश दिया है कि जो लोग खड़ी बोली से किसी प्रकार अप्रसन्न हैं वे भी अपनी पुरानी ब्रज (कविता) की बोली को बिना तोड़े-मरोड़े काम में ला सकते हैं और यदि वे चाहें तो खड़ी बोली में भी कविता कर सकते हैं।"<sup>१</sup> किन्तु वे स्वयं खड़ी बोली की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होते जा रहे थे। भारतेन्दु-युग के प्रसिद्ध ब्रजभाषा-कवि 'प्रेमघन' 'मयंक महिमा' खड़ी बोली में प्रकाशित कर चुके थे। काव्य की इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए पं० बदरीनाथ भट्ट ने १९१३ ई० में लिखा था कि लोग ब्रजभाषा को यथोचित सम्मान देते हुए भी बोलचाल की भाषा का आदर करने लगे हैं। ब्रज के पुराने प्रेमी, मिश्र प्रेमी सब की संख्या घट रही है। बोलचाल की भाषा में उच्चकोटि की कविता होने लगी है और उसकी लोक-प्रियता बढ़ रही है। कविता सरल और उपयोगी विषयों पर लिखी जाती है। नायिका भेद तथा अलंकारों की खींचातानी उसमें नहीं है।<sup>२</sup> भट्ट जी की इस टिप्पणी में तत्कालीन काव्य-स्थिति का सम्पूर्ण चित्र है। अब ब्रजभाषा अपनी रक्षा के लिए प्रयत्नशील हो रही थी। उसकी आक्रामक स्थिति इतिहास का विषय बनती जा रही थी। इस स्थिति को और स्पष्ट करते हुए अयोध्या सिंह उपाध्याय ने १९२५ ई० में (अखिल भारतीय हिन्दी कवि सम्मेलन के खड़ी बोली विभाग के अध्यक्षीय पद से बोलते हुए) कहा था—“खड़ी बोली का आन्दोलन समाप्त हो गया है। तथापि इसकी कुत्सा करने वाले कुछ सज्जन अभी मौजूद हैं।”<sup>३</sup> ब्रजभाषा का जो विरोध इस युग के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ था, वह भी अब समाप्त ही हो चुका था। ब्रजभाषा की स्थिति दयनीय होती जा रही थी। इसकी भव्य परम्परा को ध्यान में रखते हुए तत्कालीन हिन्दी-प्रेमी इसके संरक्षण के विभिन्न प्रयास कर रहे थे। ब्रजभाषा की इस शोचनीय स्थिति पर पं० कृष्णविहारी मिश्र ने 'मर्यादा' पत्रिका में भाव-विह्वल होकर दुःख प्रकट किया था।<sup>४</sup> महाकवि 'हरिऔध' ने युग के अन्त में ब्रजभाषा की ऐसी दशा देखकर साहित्यिक जगत् को ब्रजभाषा काव्य की उदात्त परम्पराओं से परिचित कराने के लिए 'विभूतिमत्ती ब्रजभाषा' लेख लिखा।<sup>५</sup> अतः द्विवेदी-युग में खड़ी बोली का विरोध करते हुए ब्रजभाषा काव्य स्वयं अवसान

१. सरस्वती : जनवरी, १९११ ई०, पृ० ३८।

२. सरस्वती : जनवरी, १९१३ ई०, पृ० ११।

३. मर्यादा : मार्च, १९१६ ई०, पृ० १४१।

४. पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लखनऊ में ब्रजभाषा काव्य की दयनीयता पर 'कविरत्न' जी ने एक मार्मिक कविता का पाठ किया था।



की ओर प्रवृत्त हुआ। नवीनता को ग्रहण करने तथा नये वातावरण के साथ बदलने की जिन ब्रजभाषा कवियों में क्षमता थी, उन्होंने इस अवसान-युग में भी उच्चकोटि की कविता की। जैसे सत्यनारायण 'कविरत्न', दुलारेलाल भार्गव, वियोगी हरि, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' इत्यादि कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं।

### निष्कर्ष

इस सम्पूर्ण विवेचना के अन्त में निष्कर्षतः कुछ तथ्य खड़ी बोली काव्य-भाषा के विषय में सामने आते हैं। खड़ी बोली पर किये गये विविध आक्षेपों में जहाँ एक ओर ब्रजभाषा कवियों की न्यूनाधिक पूर्वाग्रही प्रवृत्ति कार्यरत थी, वहाँ दूसरी ओर इस विरोध में सत्य की मात्रा भी अवस्थित थी। युग के प्रारम्भिक वर्षों में 'गद्य और पद्य की भाषा एक हो' की नीति से काव्य में निस्संदेह गद्यात्मकता का प्रवेश हुआ। संस्कृत-काव्य के सम्पर्क से समस्त पद शैली से अवश्य भाषा में कर्कशता और क्लिष्टता का भी समावेश हुआ। साथ ही कवियों ने जो यथातथ्य चित्रण की प्रणाली का अनुसरण किया उससे भी काव्य में इतिवृत्तात्मकता का प्रसारण हुआ। इन सब कारणों से काव्य-भाषा में प्रांजलता और कोमलता का अभाव रहा। आलोचकों ने तो इस प्रारम्भिक काव्य की प्रयोगात्मक स्थिति की शुष्कता को सारे युग पर लाद दिया है। वस्तुस्थिति यह है कि स्वयं 'द्विवेदी जी' और 'सरस्वती' के माध्यम से भाषा का परिष्कार होता गया। धीरे-धीरे भाषा में सुस्थिरता आती गयी। कवियों के सामने जब भाषा का एक निश्चित रूप उपस्थित हुआ तो वे उसको माँजने, अनुकूल बनाने एवं उसमें प्रवाह आदि लाने में लग गये। भाषा के व्यवस्थित रूप को स्वयं द्विवेदी जी ने 'बलीवर्ध' से 'कुमारसंभव सार' तक प्रस्तुत करने की चेष्टा की। 'सरस्वती' के माध्यम से उन्होंने जिस भाषा-नीति को अपनाया उसकी प्रगति धीरे-धीरे होती रही। भाषा में माधुर्य और कोमलता का प्रसार दीर्घकालीन प्रयोग से ही सम्भव होता है। इस बात को मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं के क्रमिक विकास को देखकर और स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। 'सरस्वती' में उनकी पहली कविता 'हेमन्त' (सन् १९०५) से 'रंग में भंग' (सन् १९०९) तक भाषा, गद्यात्मकता से प्रवाह और प्रांजलता को प्राप्त कर चुकी थी। भाषा के इस क्रमिक विकास को 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) से आगे भी देखा जा सकता है। सन् १९१० के बाद खड़ी बोली काव्य-भाषा प्रांजल और प्रवाह युक्त रूप धारण करती गयी। उसमें उत्तरोत्तर माधुर्य और प्रसाद गुणों का समावेश होता गया। द्विवेदी-युग के परवर्ती काल के कवियों ने इसको छायावादी लाक्षणिकता, चित्रमयता और नाद-सौन्दर्य के निकट लाकर रख दिया। यही कारण है कि



खड़ी बोली काव्य-भाषा में मधुरता और प्रांजलता आने के पश्चात् ब्रजभाषा कवियों का विरोध स्वयमेव समाप्त हो गया। खड़ी बोली की सरस अभिव्यंजना शक्ति ने ब्रजभाषा कवियों के पूर्वाग्रह को निरुत्तर कर दिया।

अतः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युग में खड़ी बोली का आन्दोलन भाषागत सौष्ठव एवं सौन्दर्य में परिणत हुआ। भाषा प्रांजलता, लालित्य, ओज और प्रवाह से नवीन लाक्षणिकता एवं व्यंजकता में शनैः शनैः परिवर्तित हुई। सन् १९२५ तक आते-आते खड़ी बोली काव्य भाषा के रूप में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुकी थी। वस्तुतः इस महान् ऐतिहासिक घटना को उस समय इतना मूल्यांकित नहीं किया जा सकता था, जितना बाद में हिन्दी काव्य भाषा एवं साहित्य की अभूतपूर्व प्रगति को दृष्टि में रखकर किया जा सकता था। यही कारण है कि द्विवेदी-युग में गुप्त जी एवं खड़ी बोली की काव्य-भाषा का तीव्र विरोध करने वाले वियोगी हरि अव उस युग की कर्मनिष्ठा एवं महत्ता को स्वीकार करते हैं।<sup>१</sup> इसी भाँति काव्य-भाषा की इस प्रगति को कवि पंत ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया—“वह अज्ञात-यौवन कलिका अब विकसित हो गयी है, प्रभात के सूर्य ने उसका उज्ज्वल मुख-चूम, उसे अजस्र आशीर्वाद दे दिया, चारों ओर से भौरे आकर उसे नव-संदेश सुनाने लगे, उसके सौरभ का वायु-मण्डल इधर-उधर वहन करने लग गया .....।”<sup>२</sup> छायावाद के दूसरे उज्ज्वल स्तम्भ, कविवर निराला भी इस तथ्य को ‘परिमल’ में स्वीकार करते हैं।<sup>३</sup> इस प्रकार १९२५ ई० तक आते-आते खड़ी बोली के चेहरे पर आत्म-विश्वास और सफलता का तेज चमक उठा था। द्विवेदी जी की भाषा-नीति की इतनी महती सफलता, साहित्यिक इतिहास की एक महान घटना है। पन्द्रह-बीस वर्षों के अन्तर्गत ही ‘डाकिनी’ और ‘बाजाब’ कहलाने वाली भाषा, भारतीय जनमानस की प्रिय एवं संसार की समृद्ध भाषाओं की पंक्ति में आकर खड़ी हो गयी। यह अपने-आप में एक आश्चर्यजनक घटना है। द्विवेदी-युग की कुतसंकल्पता और कर्मठता की यह उदात्त एवं उज्ज्वल परिणति है।



१. पल्लव : सुमित्रानन्दन पन्त—इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९३५ ई० (प्रवेश), पृ० २।

२. परिमल : सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’—गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, १९८६ वि०, पृ० ३।



## अध्याय—तीन

### ‘सरस्वती’ का वैभव-काल

द्विवेदी-युग की समस्त काव्य-चेतना का मूल स्रोत ‘सरस्वती’ तथा उसके सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक प्रतिभा में ही सन्निहित है। आधुनिक काव्य-भाषा, काव्य-शिल्प, काव्य-विषय सभी के प्रणयन का श्रेय इस एकमात्र पत्रिका और इसके प्रबुद्ध, कर्मठ एवं भविष्यद्रष्टा सम्पादक को दिया जाना चाहिए। आलोच्य-युग की खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य-धारा का विश्लेषण करने से पूर्व इस प्रश्न को सुलझाना आवश्यक है कि इस युग के प्रणेता महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी काव्य को किस दिशा एवं गन्तव्य की ओर अग्रसर कर रहे थे। उनके सम्पादन में प्रकाशित ‘सरस्वती’ पत्रिका के काव्य सम्बन्धी मूलभूत सिद्धान्त एवं उद्देश्य क्या थे और उसने किस प्रकार के काव्य को मान्यता प्रदान की।

#### ‘सरस्वती’ की पूर्व पीठिका

सन् १९०० तक कतिपय कारणों से हिन्दी जिनकी मातृ-भाषा थी उनके मन में भी हिन्दी के प्रति कोई विशेष आकर्षण नहीं था। हिन्दी के पठन-पाठन की किसी सुनिश्चित उत्साहवर्द्धक परम्परा का अभाव था। सामाजिक प्रतिष्ठा और सरकारी नौकरियों की प्राप्ति के लिए अंग्रेजी और उर्दू का व्यापक ज्ञान अनिवार्य था। अंग्रेजी और उर्दू के प्रभुत्व के इस आतंक और साहित्यिक क्षेत्र में शृंगारिकता जैसी रूढ़ परम्पराओं से तत्कालीन जनता में स्वस्थ साहित्यिक अभिरुचि का अभाव होना स्वाभाविक ही था। हिन्दी अथवा नागरी के प्रति जनता की इस उदासीनता और सरकार की उपेक्षा की भावना का निवारण करने के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयत्न सराहनीय थे। भारतेन्दु के अतिरिक्त उनके सहयोगी भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस दिशा में निरन्तर प्रगतिशील रहे। उल्लेखनीय पत्रिकाओं में पं० अम्बिकादत्त व्यास की ‘पीयूष-प्रवाह’ और पं० प्रतापनारायण मिश्र की ‘ब्राह्मण’ पत्रिका का नाम लिया जा सकता है। किन्तु इन पत्रिकाओं में भारतेन्दु-शैली की ही प्रधानता रही। भाषा और विषय दोनों में एक स्वच्छन्दता रही, किसी समुचित अथवा निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार इन पत्रिकाओं का प्रकाशन नहीं हो रहा था। फलतः इन पत्रिकाओं में साहित्यिक रुचि का परिष्कार प्राप्त नहीं होता। इनमें साज-सज्जा, वेश-विन्यास अथवा विषय-विभाजन इत्यादि में किसी गम्भीर नीति से काम नहीं लिया गया। भाषा



के सम्बन्ध में इस काल की नीति विशेष द्रष्टव्य है। गद्य और पद्य की भाषा पृथक्-पृथक् क्रमशः खड़ी बोली और ब्रजभाषा स्वीकार की गयी।

पं० श्रीधर पाठक का नाम इस युग में विशेष उल्लेखनीय रहा। इन्होंने प्रथम बार (१८८६ ई०) खड़ी बोली में गोल्डस्मिथ के 'द हरमिट' का अनुवाद लोक-छन्द लावनी में प्रस्तुत किया था। भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से भारतेन्दु की परम्परा से यह रचना सर्वथा अलग जा पड़ती है। इनकी दूसरी रचना 'ऊन्नड़ ग्राम', गोल्डस्मिथ के 'डेजर्टिड विलेज' का ब्रजभाषा अनुवाद भी नवीन काव्य-चेतना का परिचायक है। इसके अतिरिक्त महावीरप्रसाद द्विवेदी की ब्रजभाषा में रचित किन्तु नवीन भाव एवं विषयों से सम्पन्न कतिपय कविताओं से हमें भावी परिवर्तनों का आभास अवश्य होता है। परन्तु १८८५ से १९०० ई० तक के पन्द्रह वर्षों के काव्य में भाषा की समस्या बराबर बनी रही।

### 'सरस्वती' के प्रारम्भिक तीन वर्ष

सन् १९०० में 'नागरी प्रचारिणी सभा' के तत्वावधान में प्रयाग के इंडियन प्रेस से 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उपर्युक्त साहित्यिक पीठिका में यह प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। ऐसे समय में बाबू चिन्तामणि घोष जैसे अहिन्दी भाषी का एक हिन्दी मासिक पत्रिका प्रकाशित करना वास्तव में जितना साहसपूर्ण था उतना ही आश्चर्यजनक भी। इस अहिन्दी भाषी की यह साहित्यिक अभिरुचि हिन्दी के मंगल प्रभात की एक श्रुति ही समझी जानी चाहिए। प्रकाशकोय में अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकाशक ने कहा था कि 'सरस्वती' के 'नवजीवन धारण करने का केवल यही मुख्य उद्देश्य है कि हिन्दी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती-भण्डार की अंग पुष्टि, वृद्धि और यथार्थ पूर्ति हो, तथा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रन्थ राशि को प्रसव करे।'<sup>१</sup>

बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तथा पं० किशोरीलाल गोस्वामी के सम्मिलित सम्पादन में 'सरस्वती' एक वर्ष तक प्रकाशित हुई। दूसरे वर्ष से केवल बाबू श्यामसुन्दरदास जी इसके सम्पादक रहे। जीवनी, यात्रा, इतिहास, कहानी, लेख तथा कविताओं के माध्यम से इन दो वर्षों की 'सरस्वती' में रुचि-वैचित्र्य स्पष्ट दीखता है। कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य दोनों को समान रूप से प्रश्रय मिला।

१. 'सरस्वती'—हीरक जयन्ती अंक, १९६१ ई०, पृ० ६।



‘सरस्वती’ में छपने वाली प्रथम कविता राधाचरण गोस्वामी की ‘छप्पन की विदाई नये वर्ष की बधाई’ १९०० ई० में छपी थी। ब्रजभाषा की अन्य उल्लेखनीय कविताएँ महाराणा प्रताप के यशस्वी जीवन की अन्तिम बेला पर ‘प्रताप विसर्जन’ एवं पारौणिक ‘गंगावतरण’—किशोरीलाल गोस्वामी, भारती-स्थान के लिए ‘विनय’ एवं परम्परागत नीतिकाव्य की छाया में ‘रहिमन-विलास’—राधाकृष्णदास तथा काव्य की महत्ता पर ‘काव्य सरोवर’ जानकी प्रसाद तिवारी की हैं।

खड़ी बोली की प्रथम कविता ‘सरस्वती’ में किशोरीलाल गोस्वामी की ‘मलयानिल’ कविता थी। इस कविता के प्रारम्भ में ‘मलयानिल’ के प्रति जिस जिज्ञासा भाव को अभिव्यक्त किया गया है वह महत्त्वपूर्ण है। इसी वर्ष की इनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना ‘प्रेमोपहार’ है, जिसमें भीरे और कली के स्वच्छन्द प्रेम का वर्णन नाटकीय शैली में किया गया है। इन रचनाओं में कवि का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर अधिक न रहकर प्रवाह और गति की ओर अधिक रहा। खड़ी बोली की अन्य कविताओं में उल्लेखनीय कविता महावीर-प्रसादद्विवेदी की ‘हे कविते’ कही जा सकती है। भावी आचार्यत्व का पूर्वाभास इस कविता की भाषा और भाव दोनों में स्पष्ट रूप से मिलता है।

‘सरस्वती’ की इन प्रारम्भिक कविताओं से स्पष्टतया भावी काव्य की विषयगत क्रान्ति का एक स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। परम्परागत रीतिकालीन विलासिता और रूढ़िबद्धता के वातावरण में पल्लवित ब्रजभाषा काव्य अब देश और समाज के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले महाराणा प्रताप के जीवन की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत करती है तो आधुनिकता की सन्देश-वाहिका खड़ी बोली समस्त काव्य-चेतना में क्रान्ति का स्वर उद्घोषित करते हुए ‘हे कविते’ कविता लेकर उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त गद्य में नवीन वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक विषयों पर भी रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। यद्यपि साहित्य की एक प्रशस्त परम्परा को स्वीकार करते हुए ‘सरस्वती’ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तथापि समय-समय पर प्रकाशन सम्बन्धी या सामग्री सम्बन्धी कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती रहीं जिससे ‘सरस्वती’ में वैसी प्रगति और वैसा क्रम न हो सका जैसा आचार्य द्विवेदी के सम्पादन में दृष्टिगत होता है।

### द्विवेदी जी का आगमन

इंडियन प्रेस से प्रकाशित पाठ्यक्रम की एक पुस्तक ‘तृतीय रीडर’ की भाषा पर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कड़ी आलोचना लिखी थी। इंडियन प्रेस के मालिक बाबू चिन्तामणि घोष से द्विवेदी जी का यह प्रथम परिचय था। कौन जानता था कि इतना कटु परिचय आगे चलकर इतना प्रगाढ़ हो जाएगा।



सन् १९०२ के दिसम्बर में बाबू श्यामसुन्दरदास ने 'सरस्वती' के सम्पादक पद से त्यागपत्र दिया। हम पर घोष बाबू ने 'सरस्वती' के उद्देश्यों की पूर्ति एवं हिन्दी भाषा और साहित्य की 'अंगपूर्ति' के लिए महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे निर्भीक आलोचक एवं मर्मग्राही व्यक्ति को वैतनिक सम्पादक के रूप में नियुक्त किया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के साथ एक निश्चित नीति और विचारधारा को लेकर सम्बद्ध हुए। हिन्दी साहित्य के विविध अंगों की अवस्था से वे पूर्णतया परिचित थे। 'सरस्वती' के फरवरी-मार्च १९०३ ई० के अंक में उन्होंने 'साहित्य सभा' के नाम से एक चित्र छापा था। इस चित्र में नौ कुर्सियाँ, एक 'भव्य भवन' में गोलाकार रखी हुई थीं। कुर्सियों का क्रम इस प्रकार था—१. इतिहास (खाली), २. जीवनचरित (खाली), ३. 'पथ्य'टन' (कुर्सी पर साधारण सा एक भावशून्य व्यक्ति), ४. 'समालोचना' (एक बन्दर कुर्सी पर), ५. 'उपन्यास' (बकरी कुर्सी के पास खड़ी), ६. 'व्या (धि) करण' (के स्थान पर एक मिखमंगा), ७. 'काव्य' (कुर्सी पर एक दरबारी ढँग का कोई भिरासी लगने वाला व्यक्ति), ८. 'नाटक' कुर्सी पर एक नर-कंकाल), ९. 'कोष' (खाली), सभा में सरस्वती प्रवेश कर चुकी है, किन्तु विलख-विलख कर रो रही है। सभा में एक भीमकाय व्यक्ति ढुंगढुंगी पर बन्दरनुमा किसी जानवर को नचाने का प्रयास कर रहा है। इस सटीक चित्र से द्विवेदी जी ने न केवल तत्कालीन साहित्य की अवस्था का सही चित्रण किया अपितु अपने भारी उत्तरदायित्व की ओर भी उन्होंने संकेत किया।

समस्यापूर्तियों, नायिका भेद और कवित्त-सर्वियों की सीमाओं में किसी भी प्रबुद्ध देश की ज्ञान-गरिमा एवं उसके भाव सौष्ठव का प्रस्तुतीकरण नहीं हो सकता। अतः ब्रजभाषा काव्य के इन मानदंडों को युग के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में त्यागकर जन-भाषा खड़ी बोली में नवीन चेतना को अभिव्यक्ति देना ही द्विवेदी जी का युगधर्म बन गया। किन्तु खड़ी बोली को काव्य के रूप में प्रतिष्ठापित करने के पश्चात् भी ब्रजभाषा की परम्परा और उसके काव्य की अवहेलना करना न तो सम्भव था और न ही उनका यह मन्तव्य था। वे ब्रजभाषा की उपयोगिता की सीमाओं को खड़ी बोली की जनप्रियता तथा खड़ी बोली की नवीन जागरूकता एवं काव्य चेतना के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए उसमें भी आधुनिकता की प्राण-प्रतिष्ठा करवाना चाहते थे। अतः द्विवेदी-युग के आविर्भाव तथा उसके पश्चात् कई वर्षों तक ब्रजभाषा में नियमित रूप से कविता होती रही। किन्तु द्विवेदी जी के अंकुश से ब्रजभाषा में सामान्यतः आधुनिकता की अभिव्यक्ति को ही स्थान मिला ('रत्नाकर' जी इसके अपवाद कहे जा सकते हैं)।



अपने सम्पादक-जीवन के आरम्भिक वर्षों में हिन्दी साहित्य और विशेष-कर काव्य की अधोगति एवं ह्रासोन्मुख स्थिति को रोकने तथा उसमें नवीन प्राणस्फुरन करने के लिए द्विवेदी जी किंचित कठोरता एवं गम्भीरता से लेखकों से व्यवहार करते थे। उनकी अशुद्धियों एवं त्रुटियों को दिखलाते हुए प्रायः उन्हें डाँट भी दिया करते थे। हिन्दी साहित्य की बहुमुखी प्रगति एवं उसके निर्माण-काल की अवधि में इस डाँट और दोष-दर्शन की प्रवृत्ति का ऐतिहासिक महत्त्व है। यदि यह नीति द्विवेदी जी न अपनाते तो हिन्दी साहित्य का आधुनिक भाग बीस-पच्चीस वर्षों के अल्पकाल में ही इतना समृद्ध न हो पाता। यद्यपि इस नीति के कारण उन्हें सम्पादन के प्रारम्भिक वर्षों में कुछ समय के लिए सरस्वती के पुराने तथा कई अन्य लेखकों का सहयोग खोना पड़ा किन्तु उन्होंने जिस दृढ़ता से और कृतसंकल्पता से अपना दायित्व निभाया, वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। सम्पादन के प्रथम दो वर्षों में 'विविध-विषय' और पुस्तक समीक्षा को छोड़कर अधिकांश लेख उन्हें स्वयं लिखने पड़े। सन् १९०३ में केवल १९ लेख अन्य लेखकों ने लिखे जबकि द्विवेदी जी ने ५५ लेख लिखे। इतने लेख लिखने का कारण पुराने लेखकों का असहयोग तो था ही साथ ही इन लेखों से तत्कालीन उदीयमान साहित्य-कारों को नवीन शैलियों और विषयों का समुचित ज्ञान प्रदान करना भी था। इस युग में खड़ी बोली की कविताओं की संख्या अधिक होना स्वाभाविक ही था किन्तु विषय और शैली की दृष्टि से ब्रजभाषा काव्य भी इसके समानान्तर जागरूक रहा। खड़ी बोली के कवियों ने जहाँ आरम्भ में ब्रजभाषा का सहारा लेकर कविता की वहाँ ब्रजभाषा के कवियों ने स्थान-स्थान पर खड़ी बोली के प्रयोगों को अपनाया। खड़ी बोली में अंग्रेजी और बँगला के अनुवाद हुए तो ब्रजभाषा में संस्कृत के। यदि खड़ी बोली काव्य में नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रविष्ट हुआ तो ब्रजभाषा ने शृंगार और उद्दीपन की परम्परा को छोड़ देशसेवा, राष्ट्रीयता, प्रकृति का आलम्बनगत वर्णन तथा शोषित एवं दलित वर्ग, नारी उत्थान आदि नवीन विषयों को अपनाया। खड़ी बोली का यह कर्त्तव्य था कि वह नवीनता की ओर ही अग्रसर रहे और उसका प्रतिनिधित्व करे। किन्तु 'सरस्वती' में तथा अन्यत्र प्रकाशित ब्रजभाषा कविताएँ भी अपनी समस्त परम्पराओं को लगभग सम्पूर्णतया छोड़कर नवीनता को पोषित करती रहीं। यह तथ्य ब्रजभाषा काव्य को किन्हीं अर्थों में खड़ी बोली से ऊँचा उठा देता है।

### 'सरस्वती' में कविता के विषय

काव्य-भाषा में परिवर्तन के समान ही काव्य विषय में भी द्विवेदी जी ने ही सर्वप्रथम क्रान्ति का स्वर उद्घोषित किया। ब्रजभाषा की शताब्दियों



की रूढ़ परम्परा को बदलना सहज कार्य न था। इसके लिए अत्यक् परिश्रम, अटल विश्वास एवं सम्यक् दिशा-निर्देशन की आवश्यकता थी। इस दिशा में जितना कुछ आचार्य प्रवर ने किया वह वास्तव में स्मरणीय है। इसके लिए 'न भूतो न भविष्यति' कहना ही उचित होगा। शृंगारिकता, समस्यापूर्ति आदि के दलदल में घँसी हुई हिन्दी कविता को मात्र नवीन भाषा का परिधान देना मर्दे को साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने के समान ही होता। अतः वर्ण्य-विषय में भी नवीनता एवं विविधता का आग्रह अपेक्षित ही था। द्विवेदी जी ने वर्ण्य-विषय सम्बन्धी अपने विचार विभिन्न लेखों, 'टिप्पणियों', 'रसज्जरंजन' 'संचयन', 'विचार-विमर्श', समालोचना समुच्चय' तथा अनेक पत्रों में प्रस्तुत किये। उनके ये विचार हिन्दी साहित्य जगत् के लिए सर्वथा नवीन एवं क्रान्तिकारी थे।

'कविता का विषय मनोरंजक और उपदेशात्मक होना चाहिए', काव्य-उद्देश्य के सम्बन्ध में उनका यह मत संस्कृत काव्य-शास्त्र के आचार्यों से भिन्न नहीं है किन्तु काव्यानन्द को वे स्थूल मनोरंजन का पर्याय नहीं मानते अपितु उसे वे सूक्ष्म आनन्द, 'विश्वांति' तथा ज्ञानोपलब्धि मानते हैं। 'लेखक का उद्देश्य सदा से यही रहा है कि उनके लेखों से पाठकों का मनोरंजन भी हो और साथ ही उनके ज्ञान की सीमा भी बढ़ती रहे'।<sup>१</sup> यह ज्ञानोपलब्धि एवं मनोरंजन रसमय होना चाहिए। जिस कविता में रस-विच्छिन्न कोरा उपदेश और शुष्क मनोरंजन है वह कविता के गौरवान्वित पद को प्राप्त नहीं कर सकती। किन्तु इस रस की सृष्टि केवल रीतियुगीन काव्य विषयों से ही सम्भव है, ऐसा वे नहीं मानते थे। रीतियुगीन काव्य के वातावरण की भत्सना करते हुए उन्होंने लिखा था—“यमुना के किनारे केलि-कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता नहीं है और न स्वीकायाओं के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजापर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से समुद्रपर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत-सभी पर कविता हो सकती है सभी से उपदेश मिल सकता है ...।”<sup>२</sup> समस्यापूर्तियों का भी उन्होंने विरोध किया। इस प्रकार के शब्द-जाल को वे 'वाणी की विगहणा' मानते थे। किन्तु वे किसी प्रकार की नियमबद्धता से कवि को बाँधना भी नहीं चाहते थे। प्रत्येक कवि अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार विषय का चुनाव कर सकता है। आवश्यकता केवल उस विषय के प्रत्यक्ष

१. लेखांजलि : महावीरप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, १९८५ वि० (निवेदन)।

२. रसज्जरंजन : महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० २३।



अथवा अप्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति की है वरन् कोई भी कवि किसी भी विषय पर सरस कविता लिख सकता है। तत्कालीन सामाजिक जीवन में इतनी विविधता आयी थी कि कवि किसी भी विषय पर कविता लिख सकते थे। इसी आशय को उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १३वें अधिवेशन में अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया था।<sup>१</sup>

नवीन विषयों के आग्रही द्विवेदी जी तत्सम्बन्धी कठिनाइयों से अनभिज्ञ न थे। वे जानते थे कि प्रयोग के इन प्रारम्भिक वर्षों में समृद्ध काव्य की अपेक्षा करना हिन्दी के इन नये कवियों के प्रति अन्याय होगा। कदाचित् इसीलिए उन्होंने कहा था—“यदि ‘मेघनाथ-वध’ अथवा ‘यशवन्तराव महाकाव्य’ वे नहीं लिख सकते तो उनको ईश्वर की निःसीम सृष्टि में से छोटे-छोटे सजीव और निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी-छोटी कविता करनी चाहिए।”<sup>२</sup> अतः महाकाव्य और बृहद् कविताएँ लिखने की आवश्यकता पर बल न देकर द्विवेदी जी ने मौलिकता, नवीनता और कवि इच्छानुकूलता पर आधारित लघु कविताओं को अधिक महत्त्व दिया क्योंकि इन मुक्तकों या लघु कविताओं को ठोस आधार पर ही भावी काव्य-पथ प्रशस्त हो सकता था। इस प्रकार एक सिद्धहस्त आचार्य की भाँति उन्होंने ‘सरस्वती’ के माध्यम से तत्कालीन नये-पुराने कवियों को विविध विषयों की ओर प्रवृत्त किया।

#### (अ) पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषय

‘सरस्वती’ में प्रकाशित कविताओं के विभिन्न विषयों की शृंखला में पौराणिक ऐतिहासिक विषयों पर रची गयी कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। भारतीय नवजागरण से प्रेरित नवीन धार्मिक बोध, समाज सापेक्ष आदर्श, यथार्थ का आग्रह, मानवीयता का नवीन आकर्षण तथा अपने सांस्कृतिक गौरव को फिर से मूल्यांकित करने की भावना द्विवेदीयुगीन बुद्धिजीवी वर्ग को निरन्तर प्रभावित एवं उत्साहित कर रही थी। अतः इन पौराणिक आख्यानों का विवेचन-अनुशीलन नवीन राष्ट्रीय, मानवीय, बौद्धिक एवं आदर्शवादी स्तर पर किया जाने लगा। हमारे देवी-देवता और अवतार अलौकिकता के माया-जाल से मुक्त होकर ठोस धरती पर पूर्ण मानव का रूप धारण कर हमारे सामने आने लगे।

सांस्कृतिक परम्पराओं की इस प्रकार की नवीन व्याख्याएँ क्रान्तिकारी सिद्ध हुईं। खड़ी बोली ने पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों को चुनकर न केवल समूचे भारत की रूचि और परम्परा का प्रतिनिधित्व किया, प्रत्युत

१. सम्मेलन पत्रिका, चैत्र-वैशाख, संवत् १९८०, पृ० ३१६।

२. रसज्ञ रंजन : महावीर प्रसाद द्विवेदी; पृ० २३।



अपने लिए सुदृढ़ सांस्कृतिक आधार भी चुन लिया। यह समय खड़ी बोली के कवियों के लिए परीक्षा का समय था। खड़ी बोली का विरोध डट कर हो रहा था। उसकी काव्य क्षमताओं पर संगत-असंगत अनेक प्रश्न किये जा रहे थे। वास्तव में इस नयी भाषा में कवियों को अभिव्यक्ति की कठिनाई अवश्य होती थी। इसलिए सुने-सुनाये अथवा पढ़े पौराणिक, ऐतिहासिक आख्यानों को यथावत् अपनी रचि और बौद्धिकता के अनुरूप परिवर्तित कर चित्रित करना सरल पड़ता था। इससे न केवल कविता होती थी अपितु कविता करने का अभ्यास भी होता था। 'सरस्वती' में प्रकाशित इन विषयों की कविताओं के आधिक्य का यही कारण था। खड़ी बोली की सफलता को देखकर एवं नवीन चेतना से प्रभावित हो परम्परागत ब्रजभाषा काव्य भी इन विषयों की ओर प्रवृत्त हुआ। इस दिशा में ब्रजभाषा खड़ी बोली का अनुसरण करती दीख पड़ती है।

'सरस्वती' में पौराणिक आख्यानों पर रची गयी कविताओं का इतिहास १९०१ ई० में प्रकाशित राजा रवि वर्मा द्वारा चित्रित 'शकुन्तला पत्र लेखन' चित्र से प्रारम्भ होता है। राजा रवि वर्मा उस समय पौराणिक आख्यानों पर चित्र बनाने में देश भर में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। 'सरस्वती' में श्यामसुन्दर दास जी के सम्पादकत्व में रवि वर्मा के कई मनोहर चित्र प्रकाशित हुए थे। इन आकर्षक चित्रों की ओर तत्कालीन कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ और प्रकारांतर से वे ऐतिहासिक पौराणिक आख्यानों की ओर भी आकृष्ट हुए। किन्तु तब तक इन विषयों पर अधिक कविताएँ न होने पायीं थीं। 'शकुन्तला पत्र लेखन' पर राजा कमलानन्द सिंह और 'गंगावतरण' पर किशोरीलाल गोस्वामी की कविताएँ छपी थीं। अन्य चित्रों के शीर्षक इस प्रकार थे—'रंभा', 'दमयन्ती और हंस', 'शकुन्तला जन्म', 'कृष्ण विरहिनी राधा', 'पंचवटी में सीता और स्वर्ण मृग', 'राजा रुक्मांगद और मोहिनी', 'प्राण घातक माला' इत्यादि।

द्विवेदी जी के सम्पादन-भार सँभालने के साथ ही इस दिशा में एक नवीन परिवर्तन हुआ। उन्होंने नियमित रूप से चित्र छापने प्रारम्भ किये। प्रत्येक चित्र के भाव को स्वयं अथवा किसी अन्य सिद्ध कवि द्वारा प्रस्तुत करवाना दूसरा नियम उन्होंने अपना लिया। अपने सम्पादन-काल में प्रकाशित चित्रों में उन्होंने स्वयं 'रम्भा', 'कुमुद सुन्दरी', 'महाश्वेतो', 'ऊषा स्वप्न', 'भीरी गंगा', 'भीष्म', 'प्रियंवदा' और 'इन्दिरा' पर कविताएँ लिखीं। प्रमुख रूप से इन चित्रों पर नाथूराम 'शंकर' शर्मा, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त तथा कामताप्रसाद गुरु कविताएँ लिखते थे। उस समय ये पाँचों कवि अन्य कवियों के लिए प्रेरणा और आदर्श बने हुए थे। राय देवी-



प्रसाद 'पूर्ण' ब्रजभाषा में लिखा करते थे। उनकी 'वामन', 'कादम्बरी', 'शकुन्तला जन्म', 'रामचन्द्र का धनुर्विद्या शिक्षण' प्रभृति कविताएँ उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं में भक्तिभाव की प्रमुखता थी।

शृंगार सम्बन्धित कविताएँ नाथूराम 'शंकर' शर्मा से लिखवायी जाती थीं। उनकी कविताओं में रसिकता का तत्त्व प्रधान रहता था। उनमें व्यवहृत भाषा उर्दू, हिन्दी और ब्रज के प्रयोगों का सम्मिश्रण थी। उनकी 'केरल की तारा', 'वसन्त सेना विलास' इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

इन पौराणिक चित्रों पर सर्वाधिक कविताएँ गुप्त जी ने लिखीं। गुप्त जी का मन भी इन कविताओं में काफी रमता था। भारतीय संस्कृति के प्रति उनका अत्यधिक झुकाव कदाचित् इन्हीं चित्रों से प्रेरित था। उनके कतिपय प्रबन्धात्मक काव्यों की प्रेरणाएँ चित्र ही कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदाई' के मार्मिक प्रसंग से वे इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने उस पूरी घटना को 'जयद्रथ वध' खण्ड-काव्य में परिणत किया। यही बात 'शकुन्तला' काव्य के लिए भी कही जा सकती है। पौराणिक चित्रों पर गुप्त जी द्वारा रचित कविताएँ इस प्रकार हैं—'अर्जुन और उर्वशी', 'शकुन्तला पत्र लेखन', 'द्रोपदी हरण', 'व्यास-स्तवन', 'कुन्ती और कर्ण', 'केशों की कथा', 'रण-निमन्त्रण', 'कुरुक्षेत्र के संग्राम का परिणाम', 'धृतराष्ट्र का द्रोपदी को वरदान', 'धृतराष्ट्र और संजय', 'शकुन्तला को दुर्वास का अभिशाप', 'प्रह्लाद', 'सुलोचना का चितारोहण', 'शकुन्तला को कण्व का आशीर्वाद', 'गोवर्द्धन-धारण', 'विरहिणी सीता', 'उत्तरा का उत्ताप', 'लीला संवरण', 'मृति का मोह इत्यादि। तत्कालीन 'सरस्वती' की फाइलों से यह ज्ञात होता है कि गुप्त जी की ये कविताएँ अत्यन्त लोकप्रिय थीं जिसका कारण इन कविताओं में सरस एवं प्रांजल खड़ी बोली का प्रयोग कहा जा सकता है।

इन चित्र-कविताओं की लोकप्रियता के कारण ही सन् १९०६ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कविता कलाप' नामक संकलन प्रकाशित करवाया था। इसमें चित्रों के आधार पर लिखी गयी कविताएँ चित्रों सहित संकलित की गयी थीं। कविताओं के रचनाकार उपर्युक्त चार कवि थे। प्रायः सभी कविताएँ सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी थीं। चित्रों के आधार पर कविताएँ लिखने की इस परम्परा की लोकप्रियता का दूसरा उदाहरण तत्कालीन अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित चित्र-कविताएँ हैं। 'इन्दु' में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की 'भरत' तथा 'मर्यादा' में लाला भगवान दीन की 'राम वन गमन' कविताएँ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

देश-सेवा और राष्ट्रीयता के तत्कालीन वातावरण से प्रेरित कवियों ने भारतीय इतिहास के पन्ने पलटने प्रारम्भ किये और अनुकूल प्रसंगों को लेकर



सरस कविताओं की रचना की। पुराण-प्रसिद्ध व्यक्तियों की अपेक्षा इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति नवोद्भूत राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ करने में अधिक सहायक सिद्ध हो सकते थे। अतः राणा प्रताप, चन्द्रगुप्त, छत्रसाल, शिवाजी, दुर्गावती, रानी लक्ष्मी बाई प्रभृति ऐतिहासिक पात्र काव्यों के आलम्बन बने। गुप्त जी की 'पत्रावली' में, जिसके अधिकांश पत्र 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए थे, महाराजा राजसिंह के नाम 'राजकुमारी रूपवती का पत्र', 'महारानी अहिल्याबाई का राघोबा के नाम पत्र' इत्यादि उल्लेखनीय कविताएँ ऐतिहासिक आख्यानो पर रची गयीं। स्वर्गीय सियारामशरण गुप्त का ऐतिहासिक खण्ड-काव्य 'मौर्य विजय' 'सरस्वती' में १९१४ ई० में छपना प्रारम्भ हुआ। इस परम्परा से प्रेरणा पा अनेक ऐतिहासिक आख्यानक काव्यों का प्रणयन कालान्तर में हुआ जिनमें प्रसाद की 'महाराणा का महत्त्व', कामता प्रसाद गुरु की 'शिवाजी', द्वारिका प्रसाद 'रसिकेन्द्र' की 'वीरांगना', 'चाँद बीबी', 'दुर्गावती' एवं औरंगजेब और रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती की इतिहास प्रसिद्ध घटना पर रचित 'आत्मार्पण', गोकुलचन्द्र शर्मा की 'प्रणवीर प्रताप' तथा 'रामकुमार वर्मा की 'हम्मीर हठ' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय कही जा सकती हैं।

'सरस्वती' में पौराणिक-ऐतिहासिक विषयों पर लिखी गयी कविताएँ इस प्रकार इस युग के काव्य-प्रवर्तन का पूर्वाधार कही जा सकती हैं। अपनी सफलता और लोकप्रियता में ये कविताएँ अद्वितीय रहीं। इनसे न केवल खड़ी बोली प्राणवान हुई अपितु ब्रजभाषा को भी नयी आत्मा और नयी वाणी प्राप्त हुई।

(आ) वीरपूजा की भावना एवं चरित काव्य

ऐतिहासिक-पौराणिक विषयों पर रची गयी विभिन्न कविताओं ने तत्कालीन काव्य-क्षेत्र के लिए सुदृढ़ नींव का कार्य किया। एक ओर कवियों को नवीन सांस्कृतिक चेतना के फलस्वरूप यह लग रहा था कि अतीत की परम्पराओं का त्याग करने के कारण ही वर्तमान की अधोगति हुई तो दूसरी ओर आधुनिक बौद्धिकता मानवतावाद तथा वैज्ञानिक तर्कशक्ति उन्हें ठोस यथार्थ की ओर प्रवृत्त किये जा रही थी। वे न केवल अतीत की गौरवमय परम्पराओं का आदर करने लगे अपितु उनको आधुनिकता की कसौटी पर कसने लगे। फलतः परम्परागत पौराणिक आख्यानों को पुनर्मूल्यांकित करने तथा युगानुरूप बनाने की चेष्टा की गयी। आचार्य द्विवेदी ने अक्टूबर १९११ की 'सरस्वती' में 'हिन्दी की वर्तमान अवस्था' लेख में कवियों को उद्बोधित करते हुए कहा— "भारत में अनन्त आदर्श नरेश, देशभक्त वीर शिरोमणि और महात्मा हो गये हैं। हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य करें तो बहुत लाभ हो। 'पलाशीर युद्ध', 'मेघनाद वध' और 'यशवंतराव महाकाव्य' की बराबरी का एक भी



काव्य हिन्दी काव्य में नहीं। वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्रीवृद्धि करनी चाहिए।” छोटी-छोटी कविताओं को रचने की प्रेरणा देने वाले आचार्य अब महाकाव्य और प्रबन्ध-काव्य लिखने के लिए कवियों को प्रोत्साहित कर रहे थे। वे यह अनुभव कर रहे थे कि पौराणिक-ऐतिहासिक लघु कविताओं की ठोस एवं लाभदायक नींव पर अब चरित काव्य का भव्य भवन खड़ा हो सकता है। समय आ गया था कि नवीन चेतना, नवीन मानदण्ड एवं नवीन जीवन-मूल्यों को स्थायित्व प्रदान किया जाये। अस्तु चरित काव्यों की सृष्टि में इस युग के कवि प्रवृत्त हुए। पौराणिक क्षेत्र में रामकृष्णख्यानों को प्रमुख रूप से रूपयित किया गया और ऐतिहासिक क्षेत्र में चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रम, पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, शिवाजी, दयानन्द, तिलक, महात्मा गान्धी आदि के चरित काव्य-विषय बने। पृथक्-पृथक् शीर्षकों में क्रमशः पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित काव्य की परम्परा को प्रस्तुत किया जा रहा है।

### (१) पौराणिक चरित

पौराणिक चरितों में राम और कृष्ण के चरित तथा उनसे सम्बन्धित अनेक मार्मिक प्रसंगों को आलोच्य-युग के कवियों ने नवीन वाणी दी। राम और कृष्ण वे दो तन्त्रियाँ हैं जिन्हें झंकृत किये बिना भारतीय मानस भारतीय मानस नहीं है। भारतीय जन-जीवन, भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा, भारतीय मनन् और चिन्तन राम और कृष्णमय है। लोक-जीवन से अलौकिक जीवन तक इनकी सत्ता अविच्छिन्न है।

राम और कृष्ण को सर्वप्रथम जन-जीवन के समक्ष रखने वाले वाल्मीकि और व्यास ने उन्हें मानव-महामानव के उदात्त रूप में प्रस्तुत किया था। वे समस्त मानवीय क्षमताओं एवं दुर्बलताओं से युक्त होते हुए भी अपनी चारित्रिक विशेषता के कारण कालान्तर में पौराणिक युग में ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न हुए। भक्ति काव्य में इन ईश्वरीय गुणों के आधार पर वे ईश्वर के अवतार ही बन गये। मानव महामानव से प्रारम्भ होकर ये दो चरित भगवान का स्वरूप धारण कर समस्त भारत के जन-मानस में वास करने लगे। रामानन्द और तुलसीदास ने राम को और बल्लभाचार्य, सूरदास तथा अष्ट-छाप के अन्य कवियों ने कृष्ण के ईश्वर रूप को काव्य में प्रतिष्ठापित किया। परवर्ती काल में कृष्णभक्तों की मधुराभक्ति नायक-नायिका-भेद में परिवर्तित होकर समस्त रीतिकालीन काव्य का प्रधान विषय बन गयी। यहाँ तक कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सीता को भी केलि-कुंजों में विलास करते चित्रित किया गया। किन्तु बीसवीं शताब्दी में परिवर्तित वातावरण तथा वैज्ञानिकता एवं बौद्धिकता की प्रधानता के कारण इन अवतारों को मानवीयता के बृहद्



परिप्रेक्ष्य में रखकर मूल्यांकित किया जाना स्वाभाविक ही था। इस युग में स्वकीयाओं और परकीयाओं से घिरे कृष्ण की समाज विरोधी निरंकुश स्वच्छन्दता के आगे प्रश्नचिह्न लगाये गये। राम की न्यायप्रियता के आगे बालि-वध, सीता-त्याग और विभीषण के प्रसंगों को प्रश्नचिह्न के रूप में रखा गया। हिन्दी कवियों के सामने 'पैराडाइज लॉस्ट' और 'मेघनाद-वध' जैसे नयी पीढ़ी के महाकाव्य थे। इसीलिए तो 'कृष्णशतक' और 'प्रेमाभ्युचारिध' जैसी परम्परा अनुस्यूत रचनाओं के पश्चात् 'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' लिखा और वैष्णव भक्त होते हुए भी कविवर मैथिलीशरण गुप्त राम से प्रश्न करते हैं—

‘राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

तथा रामचरित उपाध्याय 'राम' को राजनीतिक राष्ट्रवादी नेता के रूप में देखते हैं। संक्षेप में रामकृष्ण चरितों पर आधारित चरित काव्य एवं फुटकर रचनाओं का उल्लेख यहाँ पर करना उचित होगा।

‘प्रियप्रवास’

यह खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य एवं द्विवेदी-युग की सर्वोत्तम उपलब्धि है। अपने वस्तु-विन्यास और शिल्प की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने युग का क्रान्तिकारी काव्य था। हम यहाँ पर इस काव्य के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का अनुशीलन करेंगे। कृष्णचरित अलौकिक चरित है। 'प्रियप्रवास' से पूर्व इस चरित की अलौकिकता का इतना विस्तार हो चुका था कि उसे समेटना और आधुनिक युग के परिवर्तित दृष्टिकोण के अनुकूल प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन कार्य था। किन्तु 'हरिऔध' जी ने इस कार्य को अत्यन्त सफलता से सम्पन्न किया। समाज की विषम परिस्थितियाँ एवं कठिन समस्याओं से 'हरिऔध' जी परिचित थे। वे समाज की समस्त बुराइयों के मूल में स्वार्थ-परता को देखते हैं। सामाजिक कल्याण और राष्ट्रोत्थान मानव का प्रमुख धर्म है। इस व्यापक गंतव्य तक समर्पित लोक-सेवा और आत्मत्याग की सीढ़ियों से ही पहुँचा जा सकता है। इसलिए वे ईश्वर को भी इन्हीं सीढ़ियों से ईश्वरत्व तक पहुँचाते हैं। 'प्रियप्रवास' में यही उनकी मुख्य दृष्टि है। कृष्ण श्रेष्ठ मानवीय गुणों के कारण ही ईश्वरत्व को प्राप्त कर सके हैं। 'हरिऔध' जी मानव को ईश्वर के हाथ की कठपुतली नहीं बनाते अपितु ईश्वर एवं ईश्वरत्व को मानव के हाथ में रख देते हैं। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की परम्परा में उन्हें ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास है किन्तु "मानव प्राणी-समूह का शिरोमणि है, उसमें ईश्वरीय सत्ता समस्त प्राणियों से समधिक है। इसलिए वह प्राणी श्रेष्ठ है, 'अशरफुल मखलूकात है' अतएव मानवता का चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है"—यही अवतारवाद है। भगवद्गीता का कथन है—

यद् यद् विभूति मत् सत्त्वं श्री मद्भुजित मेव वा ।  
तत्त देवावगच्छत मम तेजोश सम्भवः ॥



यह बड़ा व्यापक और उदात्त सिद्धान्त है। संसार का प्रत्येक महापुरुष इस सूत्र से मान्य, वन्द्य और आदरणीय है। मानवता त्यागकर ईश्वर की चरितार्थता नहीं होती, अतएव मानवता का निदर्शन ही आत्मोन्नति का प्रबल साधन है। अवतारों का सम्बल मानवता का आदर्श ही था क्योंकि बिना इस मंत्र का साधन किये कोई 'सर्वभूतहिते रतः' नहीं हो सकता। अतएव उसको उसी रूप में देखने की आवश्यकता है जो उसका मुख्य रूप है और यही कारण है कि आजकल का मेरा परिवर्तित मत यही है।<sup>१</sup> 'प्रियप्रवास' में इस 'परिवर्तित मत' को साकार देखा जा सकता है। 'माखन चोर' केलि-कुंजों में व्यस्त श्ववा पंगु को गिरि पर चढ़ाने वाला कृष्ण उसमें लोक-रक्षक एवं समाज-सेवक है। उनका समस्त जीवन मानवता को निष्कण्टक करने में बीतता है। वे अपने सुख और भोग, यशोदा जैसी माँ और राधा जैसी प्रेयसी को जन-कल्याण हेतु त्याग देते हैं। कंस-जरासन्ध और शिशुपाल जैसे आततयियों के होते हुए सुख-भोग का समय कहाँ? राधा को वह इस उदात्त भाव को इस प्रकार समझाते हैं—

जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से  
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी  
जी से प्यारा जगत-हित औ लोक-सेवा जिसे है।

प्यारी सच्चा भवनि-तल में आत्मत्यागी वही है।<sup>२</sup>

कृष्ण अल्पावस्था से ही लोक-सेवा और जाति के उत्थान में प्रवृत्त थे। ग्यारहवें सर्ग में वन में आग लग जाने के कारण गोप और गायों के जल जाने का संकट उत्पन्न होता है। वे स्वयं आग में घुस उन सब को बचा लेते हैं। उस समय वे अपने साथियों को 'सर्वभूत रक्षा' एवं 'स्वजाति हित' का उपदेश देते हैं।<sup>३</sup> कृष्ण की भाँति ही राधा भी विरह से दग्ध होते हुए बिहारी की शून्य में विलीन होने वाली नायिका न होकर समाज और देश-सेविका का रूप धारण करती है। कृष्ण यदि मानव हैं तो उनकी विशाल मानवीयता, लोक-सेवा एवं आत्म-त्याग का अनुसरण करना उनसे मिलने के समान है, और यदि वे ईश्वर हैं तो भी उनके ईश्वरत्व की प्राप्ति इसी मार्ग से हो सकती है। कृष्ण के परम्परागत चरित्र में कई अलौकिक प्रसंग भी सम्बद्ध

१. महाकवि हरिऔधः गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'—अरुणोदय पब्लिशिंग हाउस, प्रयाग, १९६१ वि०, पृ० १७३-७४ (हरिऔध जी का पत्र 'गिरीश' जी के नाम)।

२. प्रियप्रवास : उयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध',—हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, १९६८ वि०, पृ० २६३।

३. वही०, पृ० १८१।



हैं। मानवता के गुणों से परिपूर्ण इस महामानव नेता के साथ इन प्रसंगों को इस बौद्धिक युग में सम्बद्ध करना अनुचित एवं अप्राप्त्य था। अतः 'हरिऔध' जी ने इन प्रसिद्ध प्रसंगों की किसी अंश तक सफल बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की।

इस प्रकार हरिऔध जी ने परम्परागत पौराणिक आख्यान की सूक्ष्मता का संरक्षण करते हुए उसमें नवीन प्राण-संचार किया। वैज्ञानिक युग से उत्पन्न नास्तिकता को उन्होंने आस्तिकता का संदेश दिया। उनके कृष्ण और उनकी राधा भारत के हर युवक और युवती के लिए आदर्श बन गये। इसलिए डॉ० शुक्ल का कथन है कि 'प्राचीन परम्परा और विशेषताओं की बौद्धिक व्याख्या में ही इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक महत्त्व है और इसकी नूतनता नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा में है।'<sup>1</sup>

‘जयद्रथ-वध’

कृष्ण चरित से सम्बन्धित यह दूसरा कथा-प्रसंग है जिसने इस युग के काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की। इस खण्ड-काव्य की पूर्व सूचना कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने जनवरी सन् १९०८ की 'सरस्वती' में 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा' कविता से दी थी। वीर और कर्षण रस प्रधान इस काव्य में सत् और असत् का संघर्ष वर्णित है। अन्याय, स्वार्थपरता और क्रूरता से अभिभूत कौरवों के विरुद्ध सद्गर्भी एवं आत्मोत्सर्गी वीर योद्धा अभिमन्यु का यह युद्ध प्रतीकात्मक है। विदेशियों के अन्याय और उनकी नित नयी कूटनीतियों के विरुद्ध देश के अभिमन्युओं को यह आह्वान था, अर्जुन और कृष्ण जैसे अनुभवी नेताओं के मार्ग-निर्देशन को यह चुनौती थी। गुप्त जी की आरम्भिक रचनाओं में यह काव्य सर्वाधिक सफल रहा।

इस काव्य के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय बात गुप्तजी की विचारधारा से सम्बन्धित है। प्रारम्भ से ही गुप्तजी की आस्था कृष्ण और राम को ब्रह्म के रूप में देखने की रही है। इस काव्य में भी उन्होंने कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म के रूप में ही स्वीकार किया है। किन्तु उन जैसा जागरूक एवं प्रबुद्ध कवि युग की बौद्धिकता की उपेक्षा नहीं कर सकता था, तदर्थ इन कथा-प्रसंगों से संपृक्त अतिमानवीय कृत्यों से बचने का उन्होंने यथासम्भव प्रयत्न किया है। महा-भारत के अनुसार कृष्ण अपनी माया से सूर्य को छिपा देते हैं। अर्जुन अपनी प्रतिज्ञानुसार अग्नि-प्रवेश के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। अपने शत्रु की हार और असमर्थता पर प्रसन्न जयद्रथ अर्जुन के अग्नि-प्रवेश को देखने और उसका उपहास उड़ाने के लिए गुप्त स्थान से बाहर आ वहाँ उपस्थित होता

१. आधुनिक काव्य धारा के सांस्कृतिक स्रोत : डॉ० केसरीनारायण शुक्ल—  
सरस्वती-मन्दिर, काशी, २००४ वि०, पृ० १४४।



है। उसी समय कृष्ण अपनी माया का तिरोभाव कर अर्जुन को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की आज्ञा देते हैं। इस अविश्वसनीय घटना से बचने के लिए गुप्त जी सूर्य को घनघोर बादलों में छिपा देते हैं और बाद में बादलों के हट जाने पर अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी करवाते हैं। इस प्रकार पौराणिक कथा की रक्षा करते हुए वे आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग को भी सन्तुष्ट कर देते हैं। किन्तु वे जयद्रथ के कटे मुंड का युवा-मार्ग से जयद्रथ के पिता क्षत्र की गोद में गिरने की चमत्कारिक घटना के लोभ का संवरण नहीं कर पाये हैं। आरम्भिक रचना होने के कारण यह परम्परा पालन अधिक महत्व नहीं रखता क्योंकि बाद के काव्यों में कवि ने ऐसे प्रसंगों से बचने का पूर्ण प्रयास किया है। वे राम और कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म मानते हुए भी उनके ब्रह्मत्व को किसी पाठक पर लादते नहीं।

### ‘साकेत’

कृष्ण चरित की भाँति ही रामचरित तथा तत्सम्बन्धी कथा-प्रसंग आलोच्य युग के काव्यों के लिए आकर्षण के स्रोत रहे। इस दिशा में मैथिलीशरण गुप्त का ‘साकेत’ महाकाव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। यद्यपि इसका प्रकाशन १९३१ ई० में हुआ फिर भी इसका प्रकाशन द्विवेदी-युग (‘सरस्वती’ जून १९१६ ई०) से ही प्रारम्भ हुआ था। ‘सरस्वती’ में इसके प्रारम्भिक दो सर्ग भी छप चुके थे। दूसरी बात यह कि इस काव्य की रचना के पीछे स्वयं द्विवेदी जी की प्रेरणा थी। ‘साकेत’ की मूल प्रेरणा उर्मिला है। बीसवीं शती के प्रारम्भ में ही आधुनिक सांस्कृतिक चेतना से उद्भूत मानवतावादी दृष्टि को ‘उर्मिला की उपेक्षा’ खटकती रही। इस दिशा में सर्वप्रथम संकेत कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया था। शुद्ध मानवीय भावनाओं को वन्द्य मानने वाले इस युग को यह बात दुःखप्रद एवं कष्टाजनक लगी कि सीता अधिकार-पूर्वक राम के साथ वन को जाये और ‘बेचारी’ उर्मिला अपने पति के स्वनिर्मित एवं स्वस्वीकृत कर्त्तव्य के सम्मुख चौदह वर्षों तक विरह और विछोह से आप्लावित रहे। वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक सभी कवियों ने इस कष्टाजनक स्थिति की उपेक्षा की है। तुलसीदास के ‘लपन’ राम के ईश्वरत्व से अभिभूत हो वन जाते समय उर्मिला से पूछने की बात तो दूर, बात तक नहीं करते। भुजंग भूषण भट्टाचार्य के छद्म नाम से द्विवेदी जी ने १९०८ ई० में ही ‘कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता’ लेख में इस उपेक्षा की ओर हिन्दी जगत् का ध्यान आकर्षित किया था। प्रतिक्रियास्वरूप उर्मिला को काव्य-जगत् में लाने के कई प्रयास किये गये। हरिऔध जी ने ‘उर्मिला’ लघु काव्य की रचना की तो बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ ने ‘विस्मृता उर्मिला’ काव्य को प्रारम्भ किया।



‘साकेत’ आधुनिक रामचरित मानस है। रामभक्त गुप्त जी ने राम को ईश्वर और पूर्ण ब्रह्मा मानकर ही उन्हें चित्रित किया है। आधुनिक बुद्धिवाद के अन्तर्गत जो राम को आदर्श महामानव मानने की प्रवृत्ति है, उससे वे सहमत नहीं। उनका विश्वास सुदृढ़ है। वे ‘निरीश्वर’ हो सकते हैं किन्तु राम को मात्र मानव नहीं मान सकते।

राम, तुम मानव हो ? ईश्वर नहीं हो क्या ?

विश्व में रमे हुए सभी कहीं नहीं हो क्या ?

तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,

तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।

किन्तु इस परम्परा-पालन का यह अर्थ नहीं कि उन्होंने तुलसी का अनुसरण करके राम की समस्त अलौकिकता को पाठकों पर लाद दिया है। नहीं ! वे आधुनिक युग की सचेत सांस्कृतिक जागरूकता के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति के आख्याता हैं। उन्होंने राम की अलौकिकता को छुआ तक नहीं है। आवश्यकतानुसार अलौकिकता को उन्होंने सहज, बोधगम्य एवं ग्राह्य मनो-वैज्ञानिक घरातल प्रदान किया है। यहाँ पर उदाहरण के रूप में कैकेयी-प्रसंग को उठाया जा सकता है। कैकेयी ‘साकेत’ में किसी अलौकिक प्रेरणास्वरूप राम के वन-गमन का षडयन्त्र नहीं रचती है। वह इस षडयन्त्र को स्त्री-सुलभ ईर्ष्या, प्रतिष्ठा, लोभ तथा सौतिया-डाह से अभिभूत होकर, जान-बूझकर रचती है। यद्यपि प्रारम्भ में वह मंथरा को डाँटती है—

वचन क्यों कहूँती है तू वाम ?

नहीं क्या मेरा बेटा राम ?<sup>१</sup>

किन्तु मंथरा के शब्द ‘भरत से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न, उन्हें जो गेहूँ उसके कानों में गूँजते रहते हैं। उसकी दुर्बलता और लालसा की अनुकूल भूमि पर ये मनोवैज्ञानिक शब्द सहज ही गतिशील होकर उसे कठोर बना देते हैं। वह समस्त मर्यादाओं और सीमाओं को तोड़कर राम के वन-गमन का आदेश देती है। इस प्रकार पुत्र-प्रेम की अतिशयता में वह विधवा बनती है और संसार का समस्त लान्छन अपने सिर लेती है। इस प्रसंग को गुप्त जी ने अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक ढँग से प्रस्तुत कर हिन्दी काव्य को एक महान् देन दी है।

इस सम्बन्ध में इस काव्य में परम्परागत भरत-मिलाप का स्थान भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तुलसी ने जिस प्रसंग को जीवंत बनाया था, उसे गुप्त

१. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त—साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), १९८८  
वि०, पृ० २८।



जी ने अक्षुण्ण बना दिया है। राम के मन में यद्यपि भरत के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है किन्तु भरत का दुःख अपार है। राम के प्रश्न करने पर—

हे भरत भद्र, अब कहीं अभीप्सित अपना<sup>१</sup>

भरतविवल हो उठते हैं। 'अभीप्सित' शब्द उनकी समस्त चेतना को झकझोर देता है। उनकी आत्म-ग्लानि फूट पड़ती है। व्यंग्य-बाणों से वे अपने को छलनी करते हुए राम से कहते हैं—

अब कौन अभीप्सित और आर्य वह किसका ?

संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।

मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,

हे आर्य, बतादो तुम्हीं अभीप्सित मेरा।<sup>२</sup>

यह निर्विवाद तथ्य है कि भरत निर्दोष हैं। किन्तु अपनी माँ द्वारा दिये गये 'न्याय-धर्म-स्नेह' द्रोह से उत्पन्न कलुषता को वे अपने समस्त जीवन पर पुता हुआ पाते हैं। क्योंकि उनकी माँ ने यह सब उन्हीं के लिए तो किया। गुप्त जी ने भरत की आत्म-ग्लानि का चित्रण अत्यन्त मनोयोग से किया है। भरत की वेदना को उन्होंने अमर कर दिया है। इस दृष्टि से गुप्तजी की मौलिकता और काव्य-प्रतिभा की यह एक उपलब्धि है।

कैकेयी-प्रसंग का तृतीय पक्ष, कैकेयी का पश्चात्ताप सबसे महत्त्वपूर्ण है। गुप्तजी ने इस प्रसंग को अत्यन्त नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। भरत की आत्म-ग्लानि मिटाने के लिए जब राम उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए कहते हैं—

उसके आशय की याह मिलेगी किसको।

जन कर जननी ही जान न पायी जिसको ?<sup>३</sup>

तो कैकेयी तुरन्त अपने अपराधों की क्षमा माँगती है। राम का कथन जहाँ एक ओर भरत की महानता का चित्रण है, वहाँ वह कैकेयी के मुखर पुत्र-प्रेम को भी क्षम्य बनाता है। कैकेयी का अनुताप एवं उसका पश्चात्ताप कवि ने विभिन्न कश्याकलित पंक्तियों में चित्रित किया है किन्तु निम्न पंक्तियाँ ही कैकेयी के पश्चात्ताप की सीमाओं को स्पष्ट करती हैं—

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी-

'रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी'

निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा-

'धिक्कार उसे था महास्वार्थ ने घेरा'।<sup>४</sup>

१. साकेत : मैथिलीशरण गुप्त, पृ० २२७।

२. वही, पृ० २२८।

३. वही, पृ० २२८।

४. वही, पृ० २३१।



इससे अधिक आत्मनिन्दा नहीं हो सकती। इससे अधिक पशवात्ताप की खाग से भस्मीभूत भी नहीं हुआ जा सकता है। शील और सौजन्य की प्रतिमूर्ति राम इस भीषण स्थिति से कैकेयी का उद्धार अत्यन्त सहज ढंग से करते हैं। वे कैकेयी के संताप को मिटाते भी हैं और उसकी सम्मान भी प्रदान करते हैं। वे यह जानते हैं कि उसके अन्तरमन में अपने पुत्र के लिए गर्व और अत्यधिक प्रेम की भावना प्रवाहशील है। वे उसी मातृत्व को और गौरवान्वित बना देते हैं। इस समस्या की यह मनोवैज्ञानिक पकड़ है। राम के मुँह से निःसृत निम्न पंक्तियाँ कैकेयी के समस्त कलुष को धो देती हैं—

‘सौ बार धन्य वह एक लाल की माई  
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।’<sup>१</sup>

कैकेयी के क्रत्य को भुलाया नहीं जा सकता। उससे हुए अनर्थ को विस्मृत नहीं किया जा सकता। परन्तु राम उसे उदारता से स्वीकार करते हैं। वे अपने उज्ज्वल एवं उदात्त चारित्रिक विशेषताओं से कैकेयी के मन को, भरत को तथा समस्त जनसमुदाय को मनोवैज्ञानिक तर्कपूर्ण धरातल पर लाकर कुंठारहित कर देते हैं। गुप्त जी की यह महान् उपलब्धि है जिससे वे तुलसी से दो पग आगे बढ़ जाते हैं। ऐसा निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है।

‘साकेत’ की खन्य उपलब्धियाँ उर्मिला का चित्रण, रामकथा का नवीन परिधान तथा आधुनिक भावबोध के सन्दर्भ में उनकी विशेषताएँ इत्यादि, यथास्थान आगे के अध्यायों में विवेचित होंगी।

‘रामचरित चिन्तामणि’

पं० रामचरित उपाध्याय द्वारा रचित यह काव्य रामकथा पर आधारित एवं नवीन जन-जागृति और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रेरित है। उपाध्याय जी ने अपने काव्य का आधार वाल्मीकि को ही बनाया है। उन्होंने राम को उसके मानव रूप में ही प्रधानता दी। राम एक राष्ट्रायक, महामानव, देशभक्त एवं कुशल नेता के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। राष्ट्रीय जागरूकता एवं आधुनिक राजनीतिक आदर्श का प्रतिफलन राम के चरित्र में देखा जा सकता है। प्रारम्भ से ही उपाध्याय जी ने राक्षसों को अंग्रेजों की भाँति दूसरे द्वीप का वासी, अन्यायी, आततायी एवं विघ्नकारी चित्रित किया है। राक्षस अंग्रेजों के प्रतीक हैं, कहना उचित ही होगा। रावण ने सीता-हरण किया तो अंग्रेजों ने हमारी स्वतन्त्रता का हरण किया। रावण रामराज की शान्ति को भंग करने के लिए समय-समय पर सुबाहु और खरदूषण जैसे अनेक राक्षसों को आर्य देश



में भेजता है तो अंग्रेजों ने अन्याय और अनीति, दमन और शोषण हेतु अंग्रेज एवं अपने चले-चट्टे भारत में रख छोड़े हैं। इस प्रकार यह समस्त काव्य तत्कालीन राजनीतिक और राष्ट्रीय संकट के सन्दर्भ में प्रणीत है।

रामकृष्णाख्यानों पर आधारित उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का 'राम-रावण विरोध' चम्पू काव्य उल्लेखनीय है। इसका आधार परम्परागत रामकथा ही है। संवत् १९६३ के 'भारत मित्र' के 'पूजांक' के लिए इसकी रचना हुई थी। 'पूर्ण' जी सिद्धहस्त ब्रजभाषा कवि थे। अतः इस चम्पू काव्य में लालित्य और माधुर्य की विलक्षण छटा प्राप्त होती है। कथा में यद्यपि कोई नवीनता नहीं है तथापि यह काव्य उस समय काव्यमर्मज्ञों को मनोरंजक लगा। कुछ लोगों के आग्रह पर 'पूर्ण' जी ने इसको १९०८ ई० में पुस्तकाकार रूप में छपवाया था। इस मुद्रित संस्करण में उन्होंने कई अन्य कवियों की रचनाओं को भी संकलित किया। उनका विषय भी राम-कथा ही था किन्तु 'पूर्ण' जी के भाव-भाषा लालित्य को वे न छू सके। 'पूर्ण' जी की एक और रचना इसी सन्दर्भ में 'राम-रावण-संग्राम' है। वह एक स्वतंत्र कथात्मक कविता है। इसमें संस्कृतगर्भित किन्तु प्रवाहमयी ब्रजभाषा में विलक्षण ओज का समावेश हुआ है।

इसके अतिरिक्त कई अन्य कवियों ने पौराणिक आख्यानों पर काव्य लिखे। जिनमें अम्बिकादत्त व्यास का 'कंस वध' (काव्य), वियोगी हरि का 'शुकदेव' (काव्य), तथा प्रसाद जी का हरिश्चन्द्र आख्यान पर आधारित 'कहनालय' (गीति-नाट्य) विशेष उल्लेखनीय हैं। छोटे लघु पौराणिक प्रसंगों पर भी अनेक रचनाएँ हुईं जिनका उल्लेख पहले किया गया है।

## (२) ऐतिहासिक आख्यान

आधुनिक शताब्दी का भारत प्राचीनता से आधुनिकता की ओर अग्रसर हो रहा था। मध्ययुगीन सामन्ती वातावरण से मुक्त समाज अब सामान्य जनता की ओर प्रवृत्त हो चुका था। परम्पराओं का विरोध और नवीन मानदंडों की प्रतिष्ठा हो रही थी। तर्कपूर्ण बौद्धिकता में देवी-देवताओं और पौराणिक पुरुषों की गौरवमय गाथा का विलयन हो रहा था। अलौकिक और अति मानवीय गाथाओं की लम्बी परम्परा और उन पर के विश्वास ने मानवीय क्षमताओं को गौण बना दिया था किन्तु वैज्ञानिक आविष्कार और नवीन बौद्धिक चेतना मानव को प्रतिष्ठा का पद दिलाने में सतत् प्रयत्नशील थे। मानव की अकर्मण्यता और अक्षमता पर लगी 'धर्म' और रूढ़िवादिता की मोहर को मानव इतिहास की नयी खोजें झुठला रही थीं। भारतीय संस्कृति और इतिहास का नवमूल्यांकन भारतीय मानव को अक्षम से सक्षम, अकर्मण्य से कर्मठ, स्वार्थी से त्यागी, परतंत्र से स्वतंत्र, शोषित से समृद्ध सिद्ध कर रहा



था। देवी-देवताओं का इतिहास गौरवमय होना कोई बड़ी बात नहीं है। मानव 'अकिंचन' मानव, का इतिहास यदि गौरवमय है तो वह आश्चर्यजनक एवं विलक्षण अवश्य है क्योंकि इसे न केवल मानवीय दुर्बलताओं से जूझना पड़ता है अपितु देवी-देवताओं के कोप का भाजन भी तो बनना पड़ता है। यही दृष्टिकोण आलोच्य युग के ऐतिहासिक आख्यानों पर निमित्त चरित काव्यों के पीछे है।

आधुनिक कवि एक तो बुद्धिजीवी हैं दूसरे वे समस्त देश की परिवर्तित भावधारा का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। इसके अतिरिक्त जीवन और समाज में जो परिवर्तन प्राचीन सामन्ती व्यवस्था के खण्डन के फलस्वरूप हुए, उनसे काव्य-क्षेत्र में भी प्राचीन अथवा पूर्ववर्ती काव्य-विषयों के विरुद्ध प्रतिक्रिया होता स्वाभाविक है। अतः जब सामान्य मानव की प्रतिष्ठा स्थापित हुई तो काव्य-क्षेत्र में रूढ़िवादिता का त्यागकर जनता जनार्दन को काव्याभिव्यक्ति का विषय बनाया जाने लगा। इस प्रकार विशिष्ट वर्ग से सामान्य जनता तथा देवी-देवताओं से इतिहास के विभिन्न महापुरुषों की ओर आधुनिक काव्य प्रवृत्त हुआ। तीसरा कारण तत्कालीन राजनीतिक चेतना है। स्वातन्त्र्य पिपासा और राष्ट्रीयता के हेतु जिन-जिन महापुरुषों ने अपना जीवन अर्पित किया, उनकी कथाएँ अथवा उनके कथा-प्रसंग राजनीतिक अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में उत्साहवर्द्धक एवं प्रेरणादायक सिद्ध होते रहे हैं। अतः वीरता, त्याग, कर्मठता और स्वतन्त्रता के भाव की पुष्टि, जहाँ कहीं पर किसी भी ऐतिहासिक प्रसंग अथवा चरित से हुई, उसको काव्य में स्थान मिलना प्रारम्भ हुआ। इस तरह आलोच्य-काल के काव्य में ऐतिहासिक आख्यानों के समावेश की युक्तियुक्त एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत हुई।

आलोच्य-युग में इस कारण महाराज चन्द्रगुप्त, शिवाजी, महाराणा प्रताप, चाँद बीबी, दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई तथा राजस्थान के अनेक अन्य वीरों की प्रेरणादायक एवं रोमांचकारी कथाओं को काव्य में अभिव्यक्ति दी गयी। इस कविता-धारा की यह विशिष्टता रही है कि इसमें वीरता और न्यायप्रियता, देशप्रेम और स्वातन्त्र्य प्रेम आदर्श बने।

‘रंग में रंग’

बूंदी और चित्तौड़ के राजाओं की एक महत्वपूर्ण घटना पर आधारित यह खण्ड-काव्य अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। गुप्त जी ने इसकी रचना खड़ी बोली के प्रयोगात्मक काल (१६०६ ई०) में की थी। प्रारम्भिक रचना होते हुए भी इस काव्य में प्रवाह और प्रांजलता के दर्शन होते हैं। राजपूतों की अतिरंजित वीरता, अहंकार एवं मानापमान की भावना से प्रेरित सर्वस्व तक स्वाहा कर देने की उनकी प्रवृत्ति का इसमें सुन्दर चित्रण हुआ है। इस



काव्य का महत्त्व दो दृष्टियों से है। एक तो यह कि खड़ी बोली विरोधियों के लिए एक रचनात्मक उत्तर था। दूसरा, काव्य क्षेत्र में ऐतिहासिक कथा-प्रसंग की ओर इसमें अन्य कवियों का ध्यान आकर्षित किया।

‘मौर्य विजय’

वीरकाव्य की इस परम्परा में सियारामशरण गुप्त का यह काव्य (१९१४ ई०) प्रथम सफल एवं उत्कृष्ट काव्य था। चन्द्रगुप्त मौर्य की वीरता और देशभक्ति की गाथा इसमें वर्णित है। तत्कालीन परिस्थितियों, देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय उन्नयन के सन्दर्भ में यह काव्य रूपक-सा प्रतीत होता है। अलक्षेन्द्र जैसे अंग्रेज से लड़ने के लिए उसके चंगुल से भारतमाता को मुक्त कराने के लिए चन्द्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के वीर सैनिकों की भाँति राष्ट्र के प्रत्येक पुरुष और नारी को यह गीत गाना होगा—

आओ वीरो ! आज देश की कीर्ति बढ़ा दें,  
सब के सम्मुख मातृ-भूमि को शीश चढ़ा दें।  
शत्रुजनों को मार यहाँ से अभी हटा दें,  
उनका घोर घमंड सदा के लिए घटा दें।  
संसार देख ले फिर हमें तुच्छ नहीं है हम कभी,  
निज भारतीय बल-वीर्य का आओ परिचय दें अभी।<sup>१</sup>

इनके अतिरिक्त महाराणा प्रताप के चरित्र पर आधारित प्रसाद का ‘महाराणा का महत्त्व’ एवं गोकुलचन्द शर्मा कृत ‘प्रणवीर प्रताप’ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। नारियों का सम्मान करना भारतीय संस्कृति का एक अंग है और प्रताप संस्कृति के पोषक हैं, यही उनका महत्त्व है। अतः सैनिकों द्वारा नवाब रहीम की पत्नी को पकड़ लाने पर वे ससम्मान उसे वापस भेज देते हैं। अपने सैनिकों से वे कहते हैं—

‘शत्रु हमारे यवन-उन्हीं से युद्ध है  
यवनीगण से नहीं हमारा द्वेष है।’<sup>२</sup>

‘प्रणवीर प्रताप’ में प्रताप के स्वातन्त्र्य प्रेम एवं स्वाभिमान का मर्मस्पर्शी चित्रण है। स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह जंगल में घास की रोटियों से अपनी तथा अपने बच्चों की प्राणरक्षा करता है। उसका जीवनोद्देश्य उसे उस

१. मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त—साहित्य सदन, झाँसी—१९६४ वि०, पृ० १७ तथा पृ० १०, १२ एवं २०।
२. महाराणा का महत्त्व : जयशंकर प्रसाद—भारती भंडार, बनारस—१९८५ वि०, पृ० १२।



विपन्नावस्था में भी सम्राट अकबर की समृद्धि और ऐश्वर्य से अधिक शान्ति और सन्तोष प्रदान करता है। उसके जीवन का मूल मंत्र है—

वह व्यर्थ ही जन्मा जगाया देश को जिमने नहीं।

जातीय जीवन की झलक आयी कभी जिसमें नहीं।<sup>१</sup>

‘प्रणवीर प्रताप’ की ये पंक्तियाँ और ‘महाराणा का महत्त्व’ की उपर्युक्त पंक्तियाँ प्रताप के जीवन की महत्ता और तत्कालीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लिखे इन दो काव्यों के उद्देश्य को स्पष्ट करती हैं।

वीर चरित काव्यों की परम्परा में लाला भगवानदीन के वीर गीतों का संकलन ‘वीर पंचरत्न’ भी उल्लेखनीय है। हिन्दी वीर कथात्मक काव्य में ‘दीन’ जी की इन कविताओं का स्थान महत्त्वपूर्ण है। खड़ी बोली काव्य और द्विवेदी-युग की यह अमर उपलब्धि है।

द्वारिकाप्रसाद गुप्त ‘रसिकेन्द्र’ के लघु काव्य ‘आत्मार्पण’ की कथा अत्यन्त हृदय-द्रावक है। औरंगजेब द्वारा रूपनगर की राजकुमारी प्रभावती को दरबार में बुलाने की प्रसिद्ध घटना तथा चूड़ावत सरदार एवं उसकी पत्नी का आत्मसमर्पण राजपूतों के इतिहास का रक्त-सिंचित पत्र है।

राजपूतों के इतिहास पर आधारित मैथिलीशरण गुप्त की ‘विकट भट’ एवं ‘पत्रावली’ रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। ‘विकट भट’ का देवीसिंह स्वाभि-मानी होने के साथ ही अप्रतिम योद्धा भी है। जिस समय वह अकेले विजय-सिंह की सेना से लड़ता है, अद्भुत और वीर-रस का विलक्षण सम्मिश्रण उपस्थित होता है। ‘पत्रावली’ ऐतिहासिक आधार पर लिखित पद्यात्मक पत्रों का संग्रह है। इसमें राजपूत इतिहास की सुन्दर झलक प्राप्त होती है।

इन ऐतिहासिक काव्यों की प्रथम विशेषता इनमें भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों की अभिव्यक्ति है। दूसरे इस युग में वीरता के परम्परागत स्वरूप में कुछ विकास हुआ। युद्ध-वीर, दानवीर कर्मवीर एवं धर्मवीर से इतर अहिंसा वीरों की भी प्रशंसा गायी जाने लगी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है गान्धी जी का भारतीय राजनीति में पदार्पण एक नवीन क्रान्ति का पदार्पण था। देश की समस्त बिखरी शक्तियों को समेट कर ऐक्य के सूत्र में बाँधने वाली उनकी अहिंसा-नीति इस युग के कवियों की कल्पना को छू गयी। गोकुलचन्द्र शर्मा ने जहाँ एक ओर ‘प्रणवीर प्रताप’ के शौर्य, रण-कौशल एवं साहस का ओजस्वी चित्रण प्रस्तुत किया, वहाँ ‘गान्धी-गौरव’ में उन्होंने गांधी जी के सौम्य, शांत किन्तु अहिंसा के शौर्य से परिपूर्ण जीवन को पद्यबद्ध किया। अहिंसकों की वीरता कुछ ऐसी विलक्षण वीरता थी कि उसके सामने



प्रताप का रण-कोशल भी नतमस्तक होता है। उनका निष्क्रिय-प्रतिरोध हल्दीघाटी में कटते-मरते वीर राजपूतों के बलिदान से कम नहीं है क्योंकि उनका उद्देश्य प्रताप के उद्देश्य से भी अधिक व्यापक है—

यदि धर्म-रक्षा इष्ट है तो मान कर मरते रहो

सड़ते रहो संकट सहो पर देश-दुख हरते रहो।<sup>१</sup>

ब्रजभाषा में इस प्रकार के किसी काव्य की परम्परा नहीं थी। शूषण एक अकेले कवि हैं जिन्होंने शिवाजी के प्रसिद्ध रोमांचकारी चरित पर प्रशस्तियाँ लिखी थीं। किन्तु इस युग में खड़ी बोली की इस काव्य-धारा से प्रभावित कुछ फुटकर रचनाएँ ब्रजभाषा में हुईं। राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में लिखी गयीं इन रचनाओं का विवेचन आगे किया जा रहा है। यहाँ पर ऐतिहासिक आख्यानों की परम्परा में वियोगी हरि की 'वीर सतसई' की चर्चा ही अपेक्षित है। 'सतसई' की विशेषता वीर-रस के सफल एवं उत्तेजक परिपाक में है। कवि ने विभिन्न प्रसिद्ध वीरों के वीरतापूर्ण चरित्रों का वर्णन ओजमयी ब्रजभाषा में किया है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त परम्परा में इन्होंने गांधीजी को सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का कलियुग-अवतार माना है। लाला भगवान दीन की परम्परा में इस रचना में भारतीय वीर बालाओं पर भी सुन्दर अभिव्यक्ति का समावेश हुआ है।

### (इ) दलित एवं शोषित वर्ग

अभिजात्य वर्ग काव्य में शताब्दियों से प्रतिष्ठा प्राप्त किये हुए था। आधुनिक काल के परिवर्तित जनवादी आन्दोलनों से, अभिजात्य से सामान्य जन की ओर, समाज का बुद्धिजीवी वर्ग आकृष्ट हुआ। यह युग सामन्तवादी युग न होकर कृषकों और मजदूरों का युग था। संसार के अन्य देशों में भी इस वर्ग को धीरे-धीरे प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही थी, यहाँ तक कि रूस में कृषकों और मजदूरों ने क्रांति ही कर दी। रूस में कृषकों का राज हो गया। मानव-इतिहास की यह विलक्षण एवं उत्साहवर्द्धक घटना इसी युग में घटी थी जिसका प्रभाव इस युग के कवियों पर भी पड़ा।

दलित एवं शोषित वर्ग के प्रति द्विवेदी-युग प्रारम्भ से ही आकृष्ट हुआ था।<sup>२</sup> जनवादी कवियों की दृष्टि तत्कालीन वरिष्ठ राजनीतिक नेताओं से पूर्व ही इस वर्ग-विशेष की महत्ता को समझ रही थी। इस दिशा में ब्रजभाषा काव्य की चेतना निश्चय ही प्रशंसनीय है। ११ मार्च १८९७ ई० के 'हिन्दो-

१. गाँधी गौरव : गोकुलचन्द्र शर्मा—साहित्य सदन, अलीगढ़—१९७६ वि०, पृ० ७४।

२. विशेष विस्तार के लिए दे० अध्याय छः, 'सामाजिक परिप्रेक्ष्य'।



स्थान' में प्रकाशित महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'भारत दुर्भिक्ष' कविता इसका स्पष्ट संकेत है।

लोचन चले गये भीतर कहुँ कंटक सम कच छाये,  
कर में खप्पर लिये अनेकन जीरण पट लपटाये।  
माँस विहीन हाड़ की ढेरी भीषण भेष बनाये,  
मनहुँ प्रवल दुर्भिक्ष रूप बहु विचरत सुख पाये।<sup>१</sup>

इन पंक्तियों में 'इतिवृत्तात्मकता' अथवा 'अकाव्यात्मकता' भले ही हो किन्तु यथार्थ जीवन का जो मर्मस्पर्शी अनभूत सत्य इनमें है, वह उपेक्षणीय नहीं है। इस प्रकार के चित्रणों को आधुनिक काल में कवि 'निराला' तक की कविताओं में ढूँड़ा जा सकता है। ब्रजभाषा में इस परम्परा को बौद्धिक स्तर पर आगे ले जाने वाले कवियों में से 'कविरत्न' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

खड़ी बोली काव्य में भी इस वर्ग के प्रति जागरूकता की एक लम्बी परम्परा का सूत्रपात हुआ। कामताप्रसाद गुरु की 'ग्रामीण विलाप' कविता से लेकर गुप्त जी के 'किसान' एवं सियारामशरण गुप्त के 'अनाथ' तक अन्यान्य कविताओं की रचना इस वर्ग को लक्ष्य करके हुई। इनके अतिरिक्त फुटकर रूप से केशवप्रसाद मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', हरिशंकर शर्मा, मुकुटधर पांडेय, नाथूराम शंकर शर्मा आदि कवियों ने भी दलित एवं शोषित वर्ग के प्रति अपनी संवेदना को अभिव्यक्ति प्रदान की। इनमें यथार्थ के सूक्ष्म कठुणाजनक चित्रणों से लेकर तत्सम्बन्धी वैचारिक वाद-विवादों का भी समावेश हुआ।

(ई) स्फुट भक्ति एवं नीति

'सरस्वती' पत्रिका आधुनिक भावबोध की पत्रिका होने के कारण 'भक्ति' जैसे प्राचीन विषय को प्राधान्य न दे पायी। राष्ट्रीयता, बौद्धिकता और वैज्ञानिकता के नवीन के सन्दर्भ में परम्परागत भक्ति को प्रश्न्य न मिलना सर्वथा स्वाभाविक है। ईश्वर में परम् अनुरक्ति को भक्ति कहा गया है (सा परानुरक्तिः ईश्वरे-भक्तिसूत्र)। भज् धातु से भक्ति की उत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है, भजना। भक्ति अमृत-स्वरूपा एवं परम् प्रेमस्वरूपा है, जिसकी प्राप्ति कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।<sup>१</sup> इस प्रकार ईश्वरोन्मुख प्रवृत्ति ही भक्ति है। यह प्रवृत्ति परोक्ष मत्ता के प्रति मनुष्य का नैय निवेदन ही है। हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल इस परम प्रेमस्वरूपा एवं अमृत-स्वरूपा अनन्य

१. द्विवेदी-काव्य-माला।

२. हिन्दी साहित्य कोश : संपादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—ज्ञान मंडल, काशी (भाग १), पृ० ५२४ एवं ५२६।



भक्ति से ओतप्रोत है। सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति उसी परम् सत्ता तक पहुँचने के भिन्न मार्ग हैं। कबीर, सूर, तुलसी या जायसी जैसे भक्त-कवियों की भावाभिभूत वाणी भारतीय जन-मानस में रम गयी है। जहाँ एक ओर निर्गुण सत्ता ने ईश्वर या परम् सत्ता को सर्वव्यापक, सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान और मात्रनियन्ता माना तथा उसे कोई व्यक्त आकार नहीं दिया, वहाँ दूसरी ओर सगुण भक्तों ने अपनी श्रद्धा और विश्वास का लौकिक आधार ढूँढ़ा और उसे रूप, गुण एवं आकार से अभिविक्त करके राम और कृष्ण की भव्य मूर्तियों में प्रतिष्ठापित किया। इस प्रकार एक ओर उस परम् सत्ता को सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों से अनुभूत बताया गया तो दूसरी ओर उसे पौराणिक अवतारवाद की रूपाकृति में व्यक्त करके स्थूल एवं सहज ग्राह्य बनाया गया। इस अवतारवाद के मूल में अंशतः गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति'<sup>१</sup> श्लोकों में निहित सन्देश ही है। गीता में ही कृष्ण का कथन है कि "राग, भय और क्रोध से रहित, अनन्य भाव से मेरे में स्थित, मेरे शरण हुए बहुत से पुरुष ज्ञान रूप तप से मेरे स्वरूप को प्राप्त होते रहे हैं।"<sup>२</sup> अतः समस्त भक्तिकालीन भक्त इस राग, भय, क्रोध से मुक्त अनन्य भक्ति में लीन भगवद्स्वरूप को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे।

कालान्तर में यह भक्ति भाव, यह लीन होने की अदम्य कामना, विकृत होकर काम-केलि में परिवर्तित होकर 'राधाकृष्ण जुगल सरकार' तक ही सीमित रह गयी। रीतिकालीन दरबारी ऐश्वर्य में यह भक्ति परम्परा अपने आध्यात्मिक धरातल से च्युत होकर तत्कालीन लौकिक भोग और विलास के धरातल पर आ गयी। यह भक्ति एक आड़ थी जिसके पीछे रीतिकालीन राजदरबारों के काम क्रीड़ाओं की अवाध धारा प्रवाहित हो रही थी। उन्नीसवीं शदी में भारतोत्थान की नयी विचारधारा के प्रभाव से इस विगलित धारा को रोकने का प्रयास भारतेन्दु ने किया। उन्होंने श्रृङ्गार और भक्ति को अलग-अलग स्थान प्रदान करके भक्तिकाल और रीतिकाल की दो परम्पराओं को फिर से काव्य में जीवन्त बना दिया। उन्होंने सूर और मीरा की अनन्य भक्ति की परम्परा में अनेक पदों की रचना की तो बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर आदि की रसिक परम्परा को भी निभाया।

भक्ति की यह परम्परा आलोच्य-युग के वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में अपनी भव्यता खो बैठी। वैज्ञानिक प्रगति से मानव-शक्ति और सामर्थ्य की सीमाओं को विस्तार प्राप्त हुआ। मनोवैज्ञानिक विचारधारा

१. श्रीमद्भगवद्गीता : अध्याय ४—श्लोक ७-८।

२. वही०, श्लोक १०।



में भक्ति सांसारिक निराशा की प्रतिक्रिया मात्र कही गयी। इसलिए भारतेन्दु की भक्ति आधुनिक काल में 'मानसिक ईश्वर-रति' ही रह गयी।<sup>१</sup> परम्परागत भक्ति और आधुनिक बौद्धिकता एवं तर्कप्रधान युग की भक्ति में इस प्रकार एक बहुत बड़ा अन्तर आ गया। प्रचीन भक्ति तथा अवतारवाद की परम्परा ने मानव को किसी सीमा तक अकर्मण्य और रूढ़िवादी बना दिया था। आधुनिक वैचारिक क्रान्ति ने मानव को सम्मानित तथा शक्तिसम्पन्न सिद्ध किया। यही कारण है कि आलोच्य-युग के भक्ति काव्य में वह सूक्ष्म जीवन-स्पर्शी आध्यात्मिकता का परिचय नहीं मिलता जो भक्तिकालीन भक्तों अथवा सन्तों में हमें प्राप्त होता है। भक्तिकालीन आध्यात्मिकता जहाँ तक बुद्धि ग्राह्य है वहीं तक इस युग के बुद्धिजीवी वर्ग को वह स्वीकार है। इस भक्ति काव्य के पीछे ब्रह्म समाज और आर्य समाज की नवीन चेतना कार्यरत रही। ब्रह्म समाज ने ईश्वर के अवतारवाद का निषेध किया तो आर्य समाज ने उसे सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, निराकार, न्यायकारी, निर्विकार, अजर-अमर, अनुपम, अनादि इत्यादि माना। प्रस्तुत युग में इस प्रकार ईश्वर के निराकार, निर्विकार तथा साकार अवतार दोनों रूपों को मान्यता प्राप्त हुई।

### (१) खड़ी बोली भक्ति-काव्य

आलोच्य काल की खड़ी बोली भक्तिमूलक कविता में इस प्रकार दो तत्त्व स्पष्ट दीखते हैं। एक तो वह वर्ग था जो ईश्वर को उसके परम्परागत अवतार रूप में स्वीकार करता रहा किन्तु आधुनिकता से भी प्रभावित रहा। दूसरा वर्ग वह था जो ब्रह्म समाज, आर्य समाज के प्रभाव में ईश्वर के अवतारवाद का निषेध करते हुए तत्सम्बन्धित बाह्याङ्ग इत्यादि का भी विरोध करता रहा। प्रथम श्रेणी में मैथिलीशरण गुप्त और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की भक्तिमूलक कविताओं को प्रतिनिधिरूप में रखा जा सकता है। ये दोनों कवि ईश्वर के अवतार स्वरूप को ग्रहण करते हैं किन्तु उसे आधुनिक बुद्धिवाद से सिक्त करके मानव के कुछ निकट ले आते हैं। दूसरी श्रेणी के प्रमुख कवि 'हरिऔध' कहे जा सकते हैं। साथ ही नाथूराम 'शंकर' शर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। कटुटर आर्यसमाजी की भाँति कवि शंकर सनातनधर्म के अवलम्बियों को व्यंग्य वाणों से छिद्रित करते रहे। इनकी अधिकांश कविताओं का प्रधान स्वर यही है। ब्रह्म समाज और आर्य समाज की विचारधारा से इस युग के अधिकांश कवि प्रभावित रहे। श्रीधर पाठक ने १८८३ ई० की 'मनोविनोद' में ही इस प्रभाव को ग्रहण किया था। इस विचारधारा का

१. हिन्दी कविता में युगान्तर : डॉ० सुधीन्द्र—आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५० ई०, पृ० ३२३।



विकास 'सरस्वती' में प्रकाशित फुटकर भक्ति कविताओं के अनुशीलन से स्पष्ट किया जा सकता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता, ज्योतिर्मयता, सर्वशक्ति-मत्ता एवं विश्वम्भरता को 'हरिओघ', मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीधर वाजपेयी, वागीश्वर मिश्र इत्यादि की कविताओं में देखा जा सकता है। इन कविताओं में बौद्धिकता का आग्रह स्पष्ट ही दीख पड़ता है। भगवान की निर्विकारता का दर्शन लक्ष्मीधर वाजपेयी देखिये इस प्रकार करते हैं—

स्वच्छ निरजन निरामय है जो सभी प्रकार

कहो उसे क्यों चाहिए, अर्घ्य पाद्य की धार ?<sup>१</sup>

बदरीनाथ भट्ट ईश्वर के अवतार को दार्शनिक आधार पर प्रस्तुत करते हैं। सचराचर सृष्टि का यह चित्रकार अपने आपको ही इस विस्तृत सृष्टि में चित्रित कर रहा है। यह समस्त भ्रमण्डल उसी का रूप है। अद्वैतवाद के जीव-ब्रह्म की एकाकारिता का स्वरूप वे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

अब रहा नहीं घट-मठ का प्रश्न वहाँ है,

बन गया व्योम ही घट-मठ रूप जहाँ है,

सच्चिदानन्द ही भावानन्द बन आया,

खुद चित्रकार मानो स्वचित्र बन आया।<sup>२</sup>

ऐसे विश्वरूप ईश्वर को पाने के भक्तिमार्ग तथा द्वार इतने हैं कि गुप्त जी भ्रमित होकर पूछते हैं—

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं ?

सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊँ मैं ?<sup>३</sup>

भगवान को पाने के लिए इन द्वारों तथा इन पर लगी भीड़ से हटकर भी पथ है। यह पथ मानवतावाद का पथ है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस पथ का अनुसरण सर्वप्रथम अपनी 'गीतांजलि' में किया। 'सरस्वती' में उनके अनेक गीतों का अनुवाद छपा। इसके अतिरिक्त उसकी भाव-धारा का अनुसरण खड़ी बोली भक्तिमूलक कविता में प्रचुर मात्रा में हुआ। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रायकृष्णदास, मुकुटधर पांडे, गिरिधर शर्मा, बदरीनाथ भट्ट, पद्मलाल पुन्नालाल बरूही, जयशंकर प्रसाद एवं सुमित्रानन्दन पन्त इत्यादि रवीन्द्र की 'गीतांजलि' से प्रभावित हुए। हिन्दी गीतांजलि १९१५ ई० में प्रताप प्रेस कानपुर से छपी थी। 'गीतांजलि' की भक्तिपूर्ण कविताओं के दो

१. सरस्वती, फरवरी १९१३ ई०, पृ० ६८।

२. सरस्वती, अप्रैल, १९१७ ई०, पृ० १८८।

३. सरस्वती, नवम्बर १९१८ ई०, पृ० २२७।



प्रधान स्वर हैं—कर्मयोग और मानवतावाद। यहीं पर यह प्राचीन भक्ति परम्परा से भिन्न हो जाती है। रवीन्द्र ने वेदान्त तथा वैष्णव भक्तों के प्रभाव को ग्रहण तो किया किन्तु उन्होंने जिस नवीन दृष्टि से उसको प्रस्तुत किया वह सर्वथा युग-प्रवर्तक एवं क्रान्तिकारी था। रुढ़िवादिता और गतानुगतिता का विरोध इस भक्ति की एक और प्रधान प्रवृत्ति है। रवीन्द्र ने मुक्ति और मोक्ष, भक्ति और आराधना सभी की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। कर्म-पथ पर अग्रसर मानव-सेवा से अभिभूत होकर ही वे भक्ति का परिधान ग्रहण करते हैं। रवीन्द्र की भाँति ही कवि प्रसाद पुजारी और पूजा की चिरपरिचित परम्परा पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं—

प्रार्थना और तपस्या क्यों ? पुजारी किसकी है यह भक्ति ।

डरा है तू निज पापों से इसी से करता निज अपमान ।

दुखी पर कष्टना क्षण भर हो प्रार्थना पहरों के बदले ।

मुझे विश्वास है कि वह सत्य करेगा आकर तब सम्मान ।<sup>1</sup>

इस प्रकार दीन दुखियों, पतितों और निराश्रितों की सेवा में ही ईश्वर की प्रार्थना है और उसी में मुक्ति और मोक्ष है।

संक्षेप में खड़ी बोली की भक्ति कविता-धारा में नवीन युग की रहस्य भावना के साथ ही परम्परागत प्रेममूलक भक्ति-धारा का भी पुट देखने को मिलता है। सूर और मीरा ने जिस माधुर्य-भाव को भक्ति में समाहित किया था, वह इस युग के भक्तों में भी दर्शनीय है। मैथिलीशरण गुप्त की 'अनुरोध', 'यात्री', 'दूती', 'स्वयंआगत' मुकुटवर पाण्डे की 'रूप का जादू' तथा बद्रीनाथ भट्ट और सियाराम शरण गुप्त की कई कविताओं में रहस्य और प्रेम की गहरी छाप देखने को मिलती है। एक उद्धरण प्रस्तुत है—

ध्यान न था कि राह में क्या है काँटा-कंकड़, ढोंका, ढेला

तू भागा में चला पकड़ने तू मुझसे मैं तुझसे खेला

सुरभित शीतल वायु बही थी, चार चन्द्रिका छिटक रही थी—

रजतमयी-सी मुदित मही थी रत्नाकर लेता था हेला

तू मुझसे मैं तुझसे खेला ।<sup>2</sup>

ईश्वर से प्रेम करते हुए भक्त उससे अलगाव होने पर विह्वल हो उठता है। निभूत प्रेम से आवेष्टित 'नवीन' जी की भाव धारा रहस्य भावना से युक्त होकर एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। नटनागर की प्रतीक्षा में बैठे

१. क्षरणा : जयशंकर प्रसाद—भारती भण्डार, बनारस—१९६६ वि०, पृ० ६४।

२. 'खेल'—मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, अक्टूबर १९१८, पृ० १७६।



‘नवीन’ जी केवल निश्वास छोड़कर रह जाते हैं, किन्तु वह निष्ठुर नहीं आता है—

मचल-मचल कर उत्कण्ठा ने छोड़ा नीरवता का साथ,  
विकट प्रतीक्षा ने धीरे से कहा—‘निष्ठुर हो तुम तो नाथ ।’  
नाद-ब्रह्म की रुचिर उपासिका मेरी इच्छा हुई हताश  
बह कर उस निस्तव्य वायु में चला गया मेरा निश्वास ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार रवीन्द्र की प्रेम-मूलक रहस्य भावना को ‘प्रेम विह्वल’ में सियारामशरण गुप्त उनकी ही एक कविता के भाव को प्रस्तुत करते हैं—

प्राण-सखे ! इस दृष्टि निशा में आज तुम्हारा है अभिसार,  
.....

आज तुम्हारा मागं कहाँ है, आता है बस यही विचार ।

दूर कहाँ किस नदी-किनारे दूर कहाँ किस घन वन में,  
प्रियतम ! किस गम्भीर तिमिर में आज हो रहे हो तुम पार ?<sup>२</sup>

इस रहस्य भावना, माधुर्य एवं भावसिक्त परम् सत्ता की भक्ति के अति-रिक्त आलोच्य युग की इस कविता-धारा में ईश्वर के जगत्-उद्धारक रूप का भी चित्रण किया गया है । यह भक्ति परनिष्ठ भक्ति है । ईश्वर को भारत की पतित दशा का ज्ञान कराना तथा उसके उद्धार हेतु उससे प्रार्थना करना ही इस भक्ति का उद्देश्य था । आधुनिक परिप्रक्ष्य में यह दैन्य-निरूपण परम्परागत व्यक्तिनिष्ठ दैन्य-निरूपण न होकर परनिष्ठ-जातिनिष्ठ तथा राष्ट्रनिष्ठ था । इस प्रकार की अधिकांश कविताएँ मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, राय देवीप्रसाद ‘पूर्ण’ इत्यादि की हैं ।<sup>३</sup>

## (२) ब्रजभाषा भक्ति-काव्य

आलोच्य-युग की ब्रजभाषा में रचित भक्ति कविता-धारा को हम दो भागों में बाँट सकते हैं । प्रथम श्रेणी में परम्परागत भक्ति-निरूपण रखा जा सकता है । इस श्रेणी के प्रमुख कवि पं० जगन्नाथ दास ‘रत्नाकर’ हैं । ‘रत्नाकर’ जी प्रत्येक दृष्टिकोण से प्राचीनता के पोषक थे । उन्होंने भक्ति की भी प्राचीन परम्परा को ही निभाया । दार्शनिक दृष्टि से वे गौड़ीय-मध्य सम्प्रदाय के अनुयायी थे । ज्ञान और योग का खण्डन वे प्रेम और भक्ति से करते हैं । भक्त

१ ‘त्रिरहाकुल’—बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’, सरस्वती, दिसम्बर १९१८, पृ० ३०२ ।

२. ‘प्रेम-विह्वल’—सियारामशरण गुप्त, सरस्वती, फरवरी १९२० ई०, पृ० ८६ ।

३. विशेष विस्तार के लिए देखिए अध्याय छः—धार्मिक परम्परा ।



के रूप में वे राधाकृष्ण की भव्य-मूर्ति को अपने हृदय में अंकित किये हुए हैं। उनके रूप और गूण का चित्रण करना, उनके ईश्वरत्व और व्यापकत्व को स्थापित करना उनका धर्म है। किन्तु इस भक्ति में सूर और तुलसी का हार्द्र आवेश अथवा निर्मल अलौकिक प्रेम की भक्ति-भावना सर्वत्र विद्यमान नहीं है। उन पर रीतिकालीन श्रृंगार-भावना का जो अक्षुण्ण प्रभाव था, उसे वे अपनी भक्ति-भावना से विलग्न न कर सके। अतः उनकी भक्ति घनानन्द, पद्ममाकर तथा भारतेन्दु की परम्परा में ही रखी जा सकती है। शुद्ध भक्ति-भाव की उनकी रचनाएँ संख्या में कम ही हैं तथापि उनमें वे किंचित मात्रा में शुद्ध भावुक भक्त के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

‘रत्नाकर’ जी के बाद इस श्रेणी में कवि ‘पूर्ण’, श्रीधर पाठक, ‘हरिऔध’, ‘वचनेश मिश्र’, लाला भगवानदीन ‘दीन’ इत्यादि आते हैं। उनकी भक्ति का प्रमुख स्वर परम्परागत अवतारवाद तथा दैन्य-निरूपण की भावना ही है (‘हरिऔध’ जी की खड़ी बोली काव्य में अभिव्यक्त भक्ति-भावना, कालान्तर में नवीन परिधान प्राप्त करती है। इसका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है)। इस भक्ति काव्य-धारा में किसी प्रकार की नवीन उद्भावना का परिचय नहीं प्राप्त होता।

दूसरी श्रेणी में सर्वप्रथम सत्यनारायण ‘कविरत्न’ आते हैं। आधुनिक ‘ब्रज कोकिल’ ‘कविरत्न’ जी अंशतः वैष्णव भक्त थे। ईश्वर की सत्ता में उनको असीम विश्वास था। उनकी भक्ति में सूर के प्रेम-माधुर्य की भावना का हमें परिचय मिलता है। ‘कविरत्न’ जी वस्तुतः अत्यन्त भावुक भक्त थे। किन्तु परम्परागत दृष्टिकोण के होते हुए भी वे अन्य ब्रजभाषा कवियों से भिन्न हैं। उनकी भक्ति परम्परागत व्यक्तिनिष्ठ भक्ति नहीं है। यद्यपि आधुनिक बौद्धिकता उनको ‘हरिऔध’ की भाँति कृष्ण को महामानव मानने के लिए बाध्य नहीं करती तथापि वे तत्कालीन राष्ट्रीय उन्मेष में भगवान के सर्वनियन्ता, न्यायकारी एवं सर्वव्यापक रूप को उलाहना देते हैं। उनके ये उपालम्भ के पद ब्रजभाषा काव्य की उपलब्धि हैं। इनमें अभिव्यक्त वेदना की मार्मिकता सहज ही द्रवीभूत कर देती है। ‘कविरत्न’ जी ने प्रेममूलक माधुर्य-भावना से युक्त भक्ति को भी अभिव्यक्ति दी है। उनकी यह प्रेमाभिव्यक्ति भक्तिकालीन परम्परा से ही जुड़ती है।<sup>1</sup>

इसके अतिरिक्त ‘कविरत्न’ जी ने संस्कृत स्तोत्रों की परम्परा में ‘शिव-महिमा स्तोत्र’ इत्यादि की भी रचना की। कवि नाथूराम शंकर शर्मा को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। यद्यपि ‘कविरत्न’ की भाँति वे सनातन-

१. हृदयतरंग : सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी—नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा—१९७६ वि०, पृ० ३४-३५।



धर्मावलम्बी नहीं थे तथापि दोनों के दृष्टिकोण में कुछ साम्य अवश्य मिलता है। दोनों ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं। दोनों उसके ईश्वरत्व की सफलता और सत्यता जगत्-कल्याण और विशेषकर भारतोत्थान में मानते हैं। केवल 'शंकर' जी की आर्यसमाजी कट्टरवादिता इनसे भिन्न पड़ती है।

कविवर प्रसाद की ब्रजभाषा में रचित भक्ति-भाव की कविताएँ अधिक नहीं हैं। किन्तु उनकी ब्रजभाषा कविताओं में जो प्रेम-पीड़ा, प्रेम-विह्वलता और प्रेम की अनन्यता प्राप्त होती है, वह भक्तिमूलक काव्य के माधुर्य एवं रहस्यवादी पक्ष से अधिक भिन्न नहीं है। 'नीरव प्रेम' में वह इसी भावना की अभिव्यक्त करते हैं। इनकी आरम्भिक प्रेममूलक कविताओं का आधार यद्यपि लौकिक है तथापि यह लौकिक आकर्षण ही आगे चलकर आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचकर रहस्योन्मुखी हो जाता है। 'चित्राधार' में संकलित उनकी ये कविताएँ स्पष्टतया उन्हें परम्परागत ब्रजभाषा काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न रख देती हैं।

भक्ति में सामान्यतः नीति का समावेश भी होता है। 'नीति' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'णीय' से मानी जाती है जिसका अर्थ 'ले जाना' 'आगे ले जाना' है। यह 'आगे ले जाने' का अर्थ जीवन की विभिन्न दिशाओं से संपृक्त है। ये दिशाएँ आध्यात्मिक, धार्मिक, भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक इत्यादि हो सकती हैं। सम्पुन्नत, प्रगतिशील, धर्मसम्मत न्यायप्रिय जीवन और समाज की स्थापना में जितने भी आदर्श उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, वे सब 'नीति' के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं। 'नीति' के सामान्य रूप से दो भेद किये जा सकते हैं—शाश्वत नीति और सामयिक नीति। मानव स्वभाव और कल्याण को दृष्टि में रखकर जो सिद्धांत चिरकाल से चले आ रहे हैं वे सार्वकालिक नीति के अन्तर्गत आते हैं। 'विभिन्न युगों में विभिन्न परिस्थितियों के आवश्यक-कतानुसार मानव-समाज की भिन्न-भिन्न नीतियाँ होती हैं उन्हें सामयिक नीति कहते हैं। यह नीति परिवर्तनशील होती है।

आधुनिक काल में द्विवेदी जी ने काव्य का एक उद्देश्य उपदेश और ज्ञानार्जन भी माना था। अतः 'सरस्वती' में समय-समय पर इस प्रकार की कविताएँ भी प्रकाशित होती रहती थीं। इस स्फुट नीति-काव्य के दो वर्ग किये जा सकते हैं। एक तो वह वर्ग जो परम्परागत नैतिक सिद्धान्तों को फिर से काव्यबद्ध कर रहा था। यह शाश्वत नीति धर्म और तत्सम्बन्धी विषयों से अधिक सम्बद्ध थी। दूसरा वर्ग आधुनिक आवश्यकताओं और न्यूनताओं को दृष्टि में रखकर नवीन आदर्श अथवा नीति का प्रतिपादन कर रहा था। प्रथम वर्ग के लिए राधाकृष्णदास की 'सुनीति' तथा 'रहिमन विलास' इत्यादि नीति विषयक कविताओं को रखा जा सकता है।



द्वितीय वर्ग के कवियों के नीति-काव्य के पीछे तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलन हैं। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, विवेकानन्द तथा अन्य नवीन विचारधाराओं का प्रभाव इस नीति-काव्य पर स्पष्ट रूप से पड़ा। सुधारवाद और राष्ट्रीयता के नये सन्दर्भ इस नीति-काव्य को प्राप्त हुए। इस काव्य में धर्म, राष्ट्रीयता, नवीन समाज, व्यवसाय, अंग्रेजी राज तथा उनके कर्मचारी, जाति-पाँति, अस्पृश्यता, सर्व धर्म-समभाव, अहिंसा, स्वतन्त्रता, एकता, स्वदेशी व्रत, नारी सम्मान इत्यादि अनेक विषयों पर स्फुट रचनाओं की सृष्टि हुई। ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों काव्य-धाराओं में समान रूप से कवियों ने इस भावना को अभिव्यक्त किया। कहा जा सकता है कि इस नीति-काव्य में आधुनिक बौद्धिकता, सामाजिकता और राष्ट्रीयता का दृष्टिकोण ही प्रबल है। प्रायः सभी कवियों में यिलीशरण गुप्त, 'हरिऔध' 'पूर्ण', 'रत्नाकर', 'शंकर', 'सनेही', 'दीन', बद्रीनाथ भट्ट आदि ने इस प्रकार परम्परागत एवं आधुनिक भावबोध युक्त नीति-काव्य की रचना की। रामचरित उपाध्याय की 'सूक्ति मुक्तावली' इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं।

परम्परा से इस जगत् को मायाजाल एवं भ्रम माना जाता रहा है, किन्तु आधुनिक कर्मठता और भौतिकवादिता के युग में मनुष्य इसे असत्य मानने को तैयार नहीं है। वियोगी हरि इसीलिए जगत् की सत्यता को झुलाने वाले व्यक्तियों को इस प्रकार फटकार सुनाते हैं—

जा जग की रोटीन तें सुझतु अलख अनंत।

मिथ्या ताको कहत ए निलज निठले संत।<sup>१</sup>

धर्म की छद्मप्रस्तुता पर आधारित अमानवीय वर्ग-विभाजन से उद्भूत अस्पृश्यता को दुलारेलाल भार्गव मानव जाति का कलंक मानते हैं। भगवान के मन्दिर में अछूतों के प्रवेश पर लगे सामाजिक प्रतिबन्धों पर वे दुखी होकर कहते हैं—

कलिजुग ही में मैं लखी अति अचरजमय बात,

होत पतित-पावन पतित, छुअत पतित जब गात।<sup>२</sup>

भगवान के इस स्वरूप को मान्यता प्रदान करने वालों पर यह निश्चय ही एक तीखा व्यंग्य है। इसी परम्परा में भगवानदीन के 'नीति के दोहे', श्रीधर पाठक का 'जयत् सचाई सार' तथा कवि 'पूर्ण' के 'पूर्ण संग्रह' में ऐसी

१. वीर सतसई : वियोगी हरि—साहित्य भवन, प्रयाग, १९६५ वि०, पृ० ६६।

२. दुलारे दोहावली : गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, १९६१ वि०, पृ० ३०।



अनेक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। कवि 'हरिऔध' के 'चुभते चौपदे' और 'चौखे चौपदे' में भी इसी परम्परा का निर्वाह किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' रचना में नारी विषयक एक सूक्ति देखिए—

भागें न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ,  
पाती स्त्रियाँ आदर जहाँ रहती वहीं सब ऋद्धियाँ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' देश-प्रेम को, प्रत्येक भारतवासी का भारतमाता के प्रति ऋण के रूप में स्वीकार करते हैं—

करके देश प्रेम मातृ-भू ऋण न पटाया।

बनकर जीवन समर सूर निज सर न कटाया।<sup>२</sup>

संक्षेप में कहा जाये तो इस युग में परम्परागत नीति के विषयों को व्यापक विस्तार एवं दृष्टिकोण तो प्राप्त हुआ ही साथ ही नये युग के परिप्रेक्ष्य में नये नीति-काव्य का प्रणयन भी हुआ। इस दृष्टिकोण से इस नीति-काव्य को नवीन गरिमा प्राप्त हुई।

### (उ) प्रकृति की शोभा

आलोच्य-युग से पूर्व हिन्दी काव्य में प्रकृति की अवधारणा प्रकृति के उद्दीपन रूप तक ही सीमित रही। प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता, प्रकृति के अनुरंजक तत्त्व, प्रकृति-सौन्दर्य इत्यादि से हिन्दी काव्य की प्राचीन धारा अनभिज्ञ ही रही। भारतेन्दु ने यद्यपि इस दिशा में कुछ आरम्भिक प्रयास किये थे, परन्तु उनका मन इधर अधिक रमा नहीं। इस प्रकार प्रकृति की अवधारणा का समस्त भार द्विवेदी-युग पर ही पड़ा। द्विवेदी जी स्वयं संस्कृत काव्य धारा से परिचित होने के कारण प्रकृति विषयक विविध रूपों से परिचित थे। वे इस दिशा में अत्यन्त उदार भी थे। एक तो इसलिए कि संस्कृत साहित्य के अनुसरण से खड़ी बोली के काव्य में अभिव्यक्ति की शक्ति आ सकती थी, दूसरा यह कि रीतिकालीन विगलित परम्पराओं का वे सर्वथा त्याग चाहते थे। इसलिए प्रकृति के भिन्न रूपों का चित्रण इस प्रतिक्रिया के लिए वरदान सिद्ध हुआ। फलतः संस्कृत प्रकृति-काव्य के अनुवादों से इस युग के प्रकृति-काव्य की प्रेरणा का सूत्रपात हुआ। प्रकृति शोभा का दिग्दर्शन उन्होंने स्वयं कालिदास से 'ऋतु-संहार' की छाया में 'ऋतुतरंगिणी' को प्रस्तुत करके किया। कवि 'पूर्ण' ने १९०२ ई० में मेघदूत का अनुवाद 'धारा-धर धावन' नाम से किया। इसके अतिरिक्त कविवर श्रीधर पाठक ने भी

१. भारत-भारती : मैथिलीशरण गुप्त—साहित्य सदन, चिरगांव, (झांसी) १९६४ वि०, पृ० १३६।
२. काव्य-वाटिका, पृ० १८।



प्रकृति-चित्रण की स्वच्छन्द धारा का सूत्रपात किया था। उनकी यह धारा प्रमुखतया ब्रजभाषा में ही प्रवाहित होती रही। ब्रजभाषा के साथ भाषागत अनगढ़ता की कोई समस्या नहीं थी। इसलिए उसमें प्रकृति की असीम सौन्दर्य-मयी छटा मनमोहक रूप धारण करके अवतरित हुई।

वास्तव में प्रकृति की शोभा का भव्य रूप आलोच्य-युग के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रजभाषा काव्य में ही सामान्यतः दीख पड़ता है। 'सरस्वती' की फाइलों के अनुशीलन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। सन् १९१०-१२ तक 'सरस्वती' में नियमित रूप से छपने वाली ब्रजभाषा कविताओं में अधिकांश कविताएँ, प्रकृति-चित्रण की कविताएँ हैं और खड़ी बोली कविताओं में अधिकांश कविताएँ पौराणिक-ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित हैं। खड़ी बोली इन वर्षों में भाषागत अनगढ़ता और अस्थिरता को ठोक-पीट कर सुघड़ एवं प्रांजल बनाने में व्यस्त थी। यह उसके निर्माण का काल था। इस काल में विषय-व्यापकता और भाषा-सँवरण उसके प्रधान लक्ष्य रहे। बाद में शनैः शनैः वह भी ब्रजभाषा के समान सुन्दर और मनमोहक प्रकृति-चित्रों को अंकित करने में सफल हुई। इस प्रकार यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक काल में प्रकृति के प्रति जो नवीन आकर्षण हमें मिलता है उसकी व्यवस्थित दाग-बेल 'सरस्वती' के प्रांगण में धीरे-धीरे पड़ रही थी। प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों—जैसा कि हम आगे देखेंगे, के चित्रण का अध्ययन कविगण 'सरस्वती' की काव्य-प्रयोगशाला में आचार्य द्विवेदी जैसे प्रयोगकर्त्ता के निरीक्षण में कर रहे थे। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रकृति-चित्रण के मात्र नियंता द्विवेदी जी थे, अपितु भिन्न-भिन्न दिशाओं का संकेत उनके सम्पादन-काल में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से 'सरस्वती' तथा उसमें लिखने वाले विभिन्न कवियों के माध्यम से हो रहा था। यह द्विवेदीयुगीन काव्य के अन्तर्गत 'सरस्वती' और द्विवेदी जी की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसीलिए इस अध्याय के अन्तर्गत इसका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

आलोच्य-युग के प्रकृति-चित्रण को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) काव्य में प्रकृति की शोभा एवं (२) खड़ी बोली काव्य में प्रकृति शोभा।

(१) ब्रजभाषा काव्य में प्रकृति की शोभा

प्रस्तुत युग के ब्रजभाषा कवियों में प्रमुख रूप से हम श्रीधर पाठक, राय देवी प्रसाद 'पूण', सत्यनारायण 'कविरत्न', पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा जयशंकर प्रसाद को ले सकते हैं। इनके अतिरिक्त 'रत्नाकर' जी का नाम भी उल्लेखनीय है किन्तु प्राचीनता के पोषक होने के कारण उन्होंने अधिकांश प्रकृति-चित्रण परम्परागत ही किये। अन्य कवियों की फुटकर प्रकृति-चित्रण की



कविताओं को भी हम नहीं भूल सकते परन्तु ये फुटकर रचनाएँ उपर्युक्त प्रमुख प्रतिनिधि कवियों की प्रकृति से इतर नहीं हैं।

### आलम्बन रूप

ब्रजभाषा काव्य में पहली बार प्रकृति के प्रति आलम्बन रूप में आकर्षण इस युग में प्रकट है। इसका पूर्वाभास श्रीधर पाठक के अंग्रेजी तथा संस्कृत काव्य के अनुशीलन से ही प्रारम्भ होता है। 'एकान्तवासी योगी' (द हरमिट) 'ऊजड़ ग्राम' (डेजर्टिड विलेज) 'श्रान्त पथिक' (दि ट्रावलर) तथा कालिदास के 'ऋतु संहार' के अनुवाद इस नवीन धारा के पीछे कार्यरत थे। इनमें से 'ऊजड़ ग्राम' तथा 'ऋतु संहार' का अनुवाद ब्रजभाषा में हुआ। 'ऊजड़ ग्राम' में वर्णित ग्रामजीवन की सुन्दरता का वर्णन तथा ऋतु-संहार में प्रकृति के संश्लिष्ट सूक्ष्म एवं भव्य चित्रण पाठक जी के मौलिक प्रकृति-काव्य पर अद्भुत प्रभाव छोड़ गये। इनके प्रकृति-चित्रण व्यापक और सूक्ष्म हैं। प्रकृति के सुन्दर आह्लादकारी रूप का चित्रण कवि ने मनोयोग से किया है। हिमालय की ओट में प्रकृति वासंतिक छटा से युक्त अपने प्राकृतिक व्यापार में चुपचाप व्यस्त है—

चार हिमाचल आँचल में, एक साल विसालन को बन है

मृदु मर्मर शील झरें जल स्रोत हैं, पर्वत ओट है, निर्जन है

लिपटे हैं लता द्रुम गान में लीन प्रवीन विहंगम को गन है

भटक्यो तहाँ रावरी भूल्यो फिर, मद बावरी सौ अलि को मन है।<sup>१</sup>

इसी भाँति प्रकृति के सरल एवं स्वाभाविक रूप का चित्रण राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' वसंत के ही एक और दृश्य में प्रस्तुत करते हैं—

हरे हरे लह लहे विपुल द्रुम बूँद-बूँद बन सोहे,

लोनी-लतिका कलित ललित फल बलित मन मोहे,

लाल पीरे सेत बेंजने सुमन सुहावन फूले,

गुंज गान करि चंचरीक मकरन्द पान में भूले।<sup>२</sup>

हिमखण्ड में धंसती, उभरती, श्वेत फेनिलों से अलंकृत धवला गंगा का अत्यन्त भव्य-चित्रण 'रत्नाकर' जी ने 'गंगावतरण' में किया है। गंगा के पौराणिक, धार्मिक और अलंकारिक वर्णन की यद्यपि इस काव्य में बहुलता है किन्तु कहीं-कहीं कवि ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है।<sup>३</sup>

१. वनाष्टक : श्रीधर पाठक—माडर्न प्रेस, प्रयाग, १९१२ ई०, पृ० १।

२. पूर्ण संग्रह—गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, १९८२ वि०, पृ० १२२।

३. रत्नाकर ग्रन्थावली—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९६० वि०, पृ० २६२।



प्रकृति की विभिन्न रूपात्मकता को उसके सही परिप्रेक्ष्य में उपस्थित करना प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण की विशेषता है। ब्रजभाषा प्रकृति काव्य-धारा में आलोच्य-युग में पं० रामचन्द्र शुक्ल के संश्लिष्ट चित्रण संस्कृत अथवा अंग्रेजी काव्य के किसी उत्कृष्ट संश्लिष्ट चित्रण के सम्मुख सम्मानित रूप से उपस्थित हो सकते हैं। शुक्ल जी का प्रकृति-निरीक्षण स्वयं अनुभूत एवं भाव-प्रवण है। उसमें पर्यवेक्षक की सूक्ष्म दृष्टि का आभास प्राप्त होता है। 'बुद्धचरित' यद्यपि एडविन एरनॉल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' का अनुवाद है तथापि उसमें शुक्ल जी ने जिस कोटि का प्रकृति-चित्रण उपस्थित किया है वह किसी भी मौलिक भाव-काव्य की कोटि में अग्रणी रह सकता है। उदाहरण के लिए एक ही उद्धरण यथेष्ट होगा—

अब होत ताके तीर चकरे पात के महुअन तरे,  
द्विगोट औ अंकोट की झाड़ीन को मारग धरे,  
पटपरन में कढ़ि जाइए जहँ फल्गु झोरि नगावली,  
चपती चटानन बीच पहुँचति है गया की शुभयली।  
बलुए पहारन और टीलन सों जड़ो सुषमा भरो,  
उरवित्व को ऊसर कटीलो दूर लों फैलो परो।  
लहुरात ताके छोर पै बन परत एक लखाय है,  
अति लहलहे तूण सों रही तलभूमि जाकी छाया है।  
जुरि कतहुँ सोतन को बिमल जल लसत धीर गम्भीर है,  
जहँ अरुण, नील, सरोज ढिग वक सारसन की भीर है।  
कुछ दूर पै दरसात ताड़न बीच छप्पर फूस के,  
जह कृषक 'सेनग्राम' के सुखनींद सोवत हैं थके।<sup>१</sup>

प्रतिभा के आधार पर खींचा गया शब्द-चित्र मनमोहक एवं प्रभावोत्पादक है। शुक्ल जी के इस काव्य में ऐसे चित्र अनेक स्थानों पर मिलेंगे।<sup>२</sup> ये सभी चित्र भवभूति एवं कालिदास की परम्परा में रखे जा सकते हैं।

शुक्ल जी के कथनानुसार "प्रकृति-प्रेम एवं उसका चित्रण उसके भव्य अथवा आह्लादकारी रूप तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। ऐसा प्रकृति-चित्रण या प्रकृति-प्रेम एकांगी एवं अपूर्ण है। 'अनन्त' रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है... कहीं भव्य विशाल या विचित्र रूप में, कहीं उग्र कराल या भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है,

१. बुद्धचरित्र : रामचन्द्र शुक्ल—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९६० वि०, पृ० १२७।

२. वही०, पृ० १०१, १०३, ११०, १५६, १६०, १६४ आदि।



क्योंकि उसके अनुराग का कारण अपना खास सुखभोग नहीं, बल्कि चिर-साहचर्य द्वारा प्रतिष्ठित वासना है.....”<sup>1</sup>

इस प्रकार प्रकृति के भयावह और भव्य रूपों के आकर्षण की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि देकर शुक्ल जी ने स्वयं ब्रजभाषा के कोमल और कठोर रूपों के सम्मिलित चित्र प्रस्तुत किये हैं—

पुनि सघन छाया को 'तपोवन' जहँ सरोवर हैं भरे,  
प्रतिबिम्ब श्याम शिलान के दरसत हैं जिनमें परे  
ऊपर चटानन सों शिलाजुत रसत जहाँ पसीजि कै,  
नीचे सलिल को परसि रहि रहि डार झूमति भोजि कै ।

× × × × ×

पथ विकट पथरीली परै जो फेर को आओ घरे  
पग धरत बाढ़न में कुसुम के, आम जामुन के तरे,  
पै बचत झाड़िन सों कटीली बेर की औ बाँस की  
औ बढ़त टीलन पै, बढ़त पुनि भूमि पै सम पास की ।<sup>2</sup>

कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' ने भी प्रकृति के भयावह रूप के संश्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत किये हैं। प्रचलित वर्णन से अलग अन्य उपेक्षित प्रकृति-तत्त्वों की ओर भी उनका ध्यान गया है। इस प्रकार के चित्रण कवि की स्वच्छन्द मौलिक भावना का परिचय तो देते ही हैं, साथ ही ब्रजभाषा-काव्य में प्रकृति-चित्रण की नवीन दिशाओं और उपलब्धियों का उदाहरण भी बनते हैं। प्रस्तुत है ग्रीष्म-वर्णन से एक परम्परा विमुक्त उद्धरण—

लार टपकति जाकी अकुलात, स्वान अति हूँपत जीभ निकारि ।

बिलाई कढ़ि समीप सों जात, तऊ नहि बोलत ताहि निहारि ॥

तरणि को तापत तरुण प्रताप, विवस तरुणीगन तजि संकोच ।

निबारति बसन आप सों आप, नहीं कुछ अनघेरिन की सोच ॥

× × × × ×

चूम मुख दिना गये हैं चार, प्यार करि पावति परम प्रमोद

मात सोई तब बस सकल बिसार, उतारति निज बालक को गोद ॥<sup>3</sup>

'कविरत्न' स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रवृत्त हुए हैं। संस्कृत प्रकृति काव्य की परम्परा में होते हुए भी कवि की मौलिकता सराहनीय है।

१. चिन्तामणि- भाग १ : रामचन्द्र शुक्ल—इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९५८ ई०, पृ० १४६ ।
२. बुद्धचरित, पृ० १०१ ।
३. हृदय तरंग, पृ० ७६ ।



रंगरूप, ध्वनि आदि से युक्त प्रकृति के विमुग्धकारी सौन्दर्य में कवि कभी-कभी किसी रूप की कल्पना कर बैठता है। 'काश्मीर-सुषमा' में श्रीधर पाठक, क्षीलों और सरोवरों से युक्त, ऊँचे वृक्षों से भरी चोटियों तथा प्रकृति-अंचल में स्थान-स्थान पर विकसित फूलों से लदी वादी को अपने आप में लीन परम् सुन्दर, निरन्तर शृंगाररत देवी के रूप में देखते हैं—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठी निज रूप सँवारति  
पल-पल पलटति मेस छनिक छवि छिन-छिन धारति  
विमल-अम्बु-सर मुकुरन मँह मुखबिम्ब निहारति  
अपनी छवि पै मोहि आपही तन-मन वारति  
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी  
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी  
विहरति विविध-विलास-भरी जीवन के मद सनि  
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, धिरकति, बनि-ठनि  
मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति बन कुंजन  
चितवति, रिझवति, इसति मुसिझयाति हरति मन ।<sup>१</sup>

प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य को कवि सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाता। यह सम्भव भी नहीं है। अतः वह इस विविधता को अलंकारों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। साम्य और विरोध के संयोग उपस्थित कर कवि प्रकृति के रूप, रंग, ध्वनि, गन्ध आदि तत्त्वों को अधिक स्पष्ट कर पाता है। इन ब्रजभाषा कवियों में राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' 'रत्नाकर' तथा सत्यनारायण 'कविरत्न' ने प्रकृति के इस अलंकृत रूप की सृष्टि अधिक की है, किन्तु यह अलंकृत वर्णन रीतिकालीन वर्णनों से भिन्न, सहज और स्वाभाविक है। यह सौन्दर्यवर्द्धक है, सौन्दर्य निरोधक नहीं। कवि 'पूर्ण', ने पूर्णोपमालंकार के माध्यम से ऋतुराज के संकेत पर नाच रही समस्त प्रकृति के आह्लाद को व्यक्त किया है। वसंत के प्रातःकालीन सौन्दर्य का यह अपूर्व चित्रण है—

कूजनि बिहंगनि की घंटिका बजै सौ मंजु,  
ओस-कन सोई मद झरत निहारो है,  
'पूरन' प्रसूनन की सुरँग अँवारी सजी,  
मृगन की भीर सो सरीर बरियारो है।  
बैठो ऋतुराज तापै जन की करत सैर  
सौरभ अतंक जग माहि विस्तारो है,  
धावत महावत अनंग के इसारे बीर  
सुरभि समीर ये मतंग मतवारो है।<sup>२</sup>

१. काश्मीर सुषमा : श्रीधर पाठक—रामदयाल अग्रवाल पब्लिशर, प्रयाग,  
१९१५ ई०, पृ० ५, ६।

२. 'पूर्ण संग्रह', पृ० ६५, तथा पृ० १०३, १०४, १०५ आदि।



‘रत्नाकर’ जी ने प्रकृति-रूप को अलंकारों से कहीं लाद दिया है तो कहीं सहज रूप में ही उन्हें अनुस्यूत किया है। गंगा और यमुना के संगम का वर्णन कवि उत्प्रेक्षालंकार में करता है—

एक पार्श्व सों बढ़ति गंग उत्तंग तरंगति  
इक तें जमुना आनि मिलति सुख-संग उमंगति ॥  
मनहुँ सितासित चमर डरत दुहुदिसि तें आवत ।  
तीर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावात ॥  
उभय कछारिन बीच विसद अच्छयबट राजे ।  
मरकत मनि को अटल छत्र मानो छवि छाजे ॥<sup>1</sup>

कवि दुलारेलाल भार्गव प्रातःकालीन सूर्योदय का वर्णन निम्नरूप से करते हैं—  
नखत-मुकत आँगन-गगन भरति प्रकृति-मा रात,  
बाल हंस चुपचाप चट चमक-चोंच चुगि जात ॥<sup>2</sup>

### मानवीकरण

प्रकृति के नित परिवर्तित परिवेश तथा उसकी सौन्दर्यात्मक सत्ता को कवि अपने मानस से व्याप्त कर उसको मानव सदृश विभिन्न कार्यकलापों से युक्त कर देता है। प्रकृति का यह चित्रण मनोहारी होता है। कविवर ‘निराला’ की प्रसिद्ध कविता ‘जूही की कली’ की भाँति सत्यनारायण ‘कविरत्न’ भी प्रातः कालीन समीर में प्रथम समागम के पश्चात् खिली नयी कली के यौवन-उमंग का चित्रण करते हैं—

वह देखो नव कली भली निज मुखहि निकारति ।  
लगि लगि वात-प्रभात गात अलसात सम्हारति ॥  
प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति ।  
लहकि लहकि जनु स्वाद लैन को भाव बतावति ॥  
मुखहि मोरि जमुहाति भरी तन अतन उमंगन ।  
जोम जुवानी जगे चहत रस-रंग तरंगन ॥<sup>3</sup>

इसी भाँति इन कलियों पर भँवरे के मधु गुंजार को कवि कृष्ण और गोपियों की प्रेमश्रीड़ा के रूप में देखता है ॥<sup>4</sup>

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण), पृ० २८२ तथा पृ० १७२, २५३ इत्यादि ।

२. दुलारे दोहावली, पृ० १६ ।

३. हृदय तरंग, पृ० ७४ ।

४. वही० पृ० ७५ ।



कवि राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' घनघोर घटाओं से आच्छादित पावस रात्रि में मेघ गर्जन और बिजलियों की चमक, मोरों की पुकार और झिल्लियों की झंकार में 'प्रकृति-पुरुष' से मिलने जा रही प्रकृति-नायिका की कल्पना करते हैं। इसी भाँति इन्होंने शरद ऋतु के श्वेत बादल, स्वच्छ निर्मल चन्द्रमा आदि में शिव और पार्वती के रूप की कल्पना की है।<sup>१</sup>

कविवर प्रसाद की 'किरण' प्रार्थना सदृश पृथ्वी पर झुकती है तो दुलारे लाल भागव की 'किरण' प्रभा बनकर प्रकृति परी के गले का हार बन जाती है।<sup>२</sup> संध्या, रात्रि रूपिणी भटियारिन का रूप धारण कर समस्त श्रांत जग को अपनी बाहों में समेटकर विश्रांति देती है—

लखि जग-पन्थी अति थकित संज्ञा बाँह पसारि ॥

तम-सराय में दे रही छाँह छपा-भटियारि ॥<sup>३</sup>

उपयुक्त प्रकृति-रूपों के अतिरिक्त तत्कालीन राष्ट्रीय-उन्मेष और जन-जागरण के आन्दोलनों से प्रेरित देश के अंगरूप में तथा जनता जनार्दन के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति-चित्रण किये गये। पिष्टपेषण से बचने के लिए इस प्रकृति-चित्रण को अध्याय छः में विवेचित किया गया है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा काव्य में प्रकृति के आलम्बनगत रूप-वर्णन के अभाव की पूर्ति इसी युग में हुई। इस प्रकार का प्रकृति का स्वच्छन्द, उन्मुक्त और भव्य अनुशीलन द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य की उपलब्धि है।

**उद्दीपन रूप में प्रकृति**

प्रकृति के उद्दीपन रूप की परम्परा, ब्रजभाषा काव्य में अक्षुण्ण रूप से चली आ रही थी। ब्रजभाषा काव्य में यह परम्परा जहाँ सूर आदि कृष्ण भक्त कवियों में स्वाभाविक सौन्दर्य की सृष्टि करती रही, वहाँ रीतिकालीन परिस्थितियों में अतिशयोक्ति और अतिरंजना से रूढ़ हो गयी। उद्दीपन रूप में प्रकृति सामान्यतः शृंगार रस के अन्तर्गत ही समाहित होती है। प्रस्तुत युग रीतिकालीन शृंगारिकता का विरोधी युग था। फिर भी यह विरोध काव्य से शृंगार और शृंगार से प्रकृति के उद्दीपन रूप का उच्छेद न कर सका, किन्तु शृंगार की रीतिकालीन भावना में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। प्रकृति के उद्दीपकत्व के चिर परिचित रूप इस युग के ब्रजभाषा काव्य में दृष्टिगोचर तो होते हैं, पर उनके चित्रणों की संख्या कम ही है। इस प्राचीन

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १०७ तथा पृ० १०८ एवं ११४।

२. दुलारे दोहावली, पृ० ६।

३. वही०, पृ० ४३।



धारा को प्रवाहित करने वालों में प्रमुख राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' तथा कविवर रत्नाकर हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रारम्भिक ब्रजभाषा काव्य में भी हमें स्फुट रूप से इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

'उद्धवशतक', 'हिंडोला' में तथा फुटकर रूप से इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण कविवर रत्नाकर ने प्रभूत मात्रा में किये हैं। वास्तव में रत्नाकर जी इस प्रवृत्ति से विलग हो ही नहीं सकते थे। कृष्ण के विरह में, ब्रजधाम में, प्रत्येक ऋतु कृष्ण की स्मृति लाकर विरह की ज्वाला को और तीव्र कर देता है। गोपियों को जलाने का संकल्प यदि विधाता ने किया है तो गोपियाँ भी 'तातें ताहि जारन की ठसक ठनी रहै' का निश्चय कर चुकी हैं। शरद के श्वेत बादल और धवलचन्द्र किरणें कामदेव के बाणों के समान ब्रज की गोपियों को पीड़ित करती रहती है। सांग रूपक के माध्यम से 'रत्नाकर' जी प्रकृति के उद्दीपकत्व का सरस चित्र प्रस्तुत करते हैं—

जात घनस्याम के ललात दृग कंज-पांति  
घेरी दिख-साध भौर-भौर की अनी रहै ।  
कहै रत्नाकर विरह-बिधु वाम भयो  
चन्द्रहास ताने घात घालत घनी रहै ॥  
सीत धाम-बरषा-बिचार बिनु आने ब्रज  
पचवान-बाननि की उमड़ ठनी रहै ॥  
काम बिधना सों लहि फरद दवामी सदा  
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै ॥<sup>१</sup>

शरद ऋतु के 'चन्द्रहास' से 'घलते घातों' के वर्णन के साथ ही रत्नाकर जी का एक और चित्रण 'मारुत की लहरें' प्रस्तुत है। कवि ने वासंती-छटा से सतायी हुई विरह-विदग्ध नायिका को चित्रित किया है—

बारिधि बसन्त बढ़यो चाव-चढ़यो आवत है,  
बिबस बियोगिनि करेजो थामि थहरें,  
कहै 'रत्नाकर' त्यों किसुक-प्रसून-जाल  
ज्वाल बड़वानल की हेरि हिए हहरें ।  
अबधों उबारें कौन अबला बिचारिन को,  
धीरज-धरा पे कही कैसे पग ठहरें ।  
भौर चहुँ ओर भ्रमै, एकी पल नाहि थमै,  
सीतल, सुगंध, मन्द मारुत की लहरें ।<sup>२</sup>

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (उद्धवशतक), पृ० १८१ ।

२. माधुरी—जून १९२४ ई०, पृ० ५७७ तथा माधुरी, मई १९२४ ई०, पृ० ४३३ ।







स्रोत गौतम की तपस्या—रात्रि के समाप्त होने पर प्रकृति का कण-कण हृषोल्लास तथा श्रद्धा से नत हो उठता है—

इत बुद्ध ने संबोधि पाई प्रगट उत ऊषा भई ।  
 प्राची दिशा में ज्योति अभिनव दिवस की जो जगि गई,  
 सो जात सरकत यामिनीपट बीच कारे ढरि रही,  
 भगवान को या विजय की मृदु घोषणा सी करि रही ।  
 + + + +  
 हेमाभ वृन्त हिलाय हरषत ताल करत प्रणाम हैं ।  
 गिरिगहवरन के बीच धँसि जगमगाति किरन ललाम है ।  
 जलधर मानिक के तरंगित जाल सी दरसाय है ।  
 जगि ज्योति सारे जीव जन्तुन जाय रही जगाय है ।<sup>१</sup>

कवियों की यह भी परम्परा रही है कि मानव के अंग-प्रत्यंग को प्रकृति के विविध रंग-रूप से अलंकृत करते आये हैं। वे मानव-सौन्दर्य को प्रस्तुत और प्रकृति को अप्रस्तुत रूप से चित्रित करते आये हैं। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने इस प्रकार के अत्यन्त सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किये हैं। 'पूर्ण-संग्रह' में 'सुन्दरी सौन्दर्य' शीर्षक के अन्तर्गत इस प्रकार के कई मनोहर चित्र उपस्थित हुए हैं।<sup>२</sup>

राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में भी कवियों ने प्रकृति के उद्दीपक रूप के चित्रण प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति के विभिन्न रूप भारतवासियों को उनके कर्तव्य के लिए प्रेरित करते हैं। परम्परागत गोपी-विरह को भ्रमर आदि के माध्यम से कृष्ण तक पहुँचाने के स्थान पर इस युग में 'कविरत्न' जी भ्रमर को राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और समाज-सुधार का सन्देशवाहक बना देते हैं। यह निश्चय ही परम्परा से विमुक्त नवीन उद्भावना है।

#### परम तत्त्व का आभास

प्रकृति के भव्य रूप तथा उसमें हो रहे रहस्यात्मक परिवर्तनों में कवि-जन किसी अदृश्य शक्ति का आभास पाते हैं। प्रकृति के सभी कार्य-व्यापार उसी अदृश्य शक्ति, उसी परम तत्त्व से परिचालित हैं। प्रकृति और परम सत्ता अखण्ड एवं अभिन्न हैं। कवि राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के शब्दों में वह परम तत्त्व—

पावक जरावै नहि पवन सुखावै नहि,  
 सीतहू गलावै नहि ऐसी अविकारी है ।  
 फंदा ताहि फाँसे नहीं गाँसी ताहि गाँसे नहीं,  
 नासै नहीं काल ऐसी अचल बिहारी है ।<sup>३</sup>

१. बुद्ध चरित, पृ० १५६-६० ।

२. पूर्ण संग्रह, पृ० १६६ ।

३. पूर्ण संग्रह, पृ० १६१ ।



परम सत्ता के ऐसे व्यापक रूप के सामने समस्त सृष्टि नतमस्तक है। वह ब्रह्म के ब्रह्मत्व का प्रशस्ति गान लिख रही है। ब्रह्म की कल्पना कवियों ने जितनी विशद एवं भव्य की है उनकी प्रशंसा भी उसी अनुपात से होनी चाहिए। कवि 'पूर्ण' इसी भाव से अभिभूत होकर सूर्य, चन्द्रमा और तारों को इस प्रशस्ति के अंक और अक्षर के रूप में देखते हैं तथा समस्त आकाश में वे प्रशस्ति-पत्र के विस्तार की कल्पना करते हैं—

पुरन मयंक रवि तारे अंक आखर हैं,  
रावरी विरद पत्र वापुरी अकास है ।<sup>१</sup>

प्रकृति के कण-कण में इस प्रकार 'पूर्ण पुरुष' की समग्र चेतना का प्रस्फुरण देखने वाले कवि प्रकृति-व्यापार में भी रहस्यमयता का सूत्र अनुस्यूत पाते हैं। कविवर प्रसाद के काव्य-जीवन का प्रारम्भ ब्रजभाषा काव्य से ही हुआ था। उनके ब्रजभाषा-काव्य में हमें दर्शन और रहस्य के छुटपुट तत्त्व प्रारम्भ से ही मिलते हैं। उनके मन की जिज्ञासा उन्हें छायावाद से रहस्यवाद तक ले जाती है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं के संकलन 'चित्राधार' के अन्तर्गत 'पराग खण्ड' में हमें प्रकृति के इस रूप के दर्शन होते हैं। पतझड़ से दुःखित प्रकृति को परमसत्ता के दूत बसन्त ने न जाने क्या मन्त्र पढ़ दिया कि वह फिर से प्रफुल्लित हो उठी। उसके कण-कण में चेतना का प्रस्फुरण हुआ—

पात बिन कीन्ह्यों जिन्हें पतझर रोष करि  
तिन सब द्रुमन सुमन दूर कीने तू।  
शारद कुमोदिनी के विरह विहाल अलि,  
सहकार मन्जरी सो मोद भरि दीने तू।  
नगर बनाली कोकिला की काकली सौ भर्यो,  
सुखद प्रसाद रसरंग केलि भीने तू।  
छोह छरि लीने मन औरे करि दीने,  
रे बसन्त रसभीने कौन मन्त्र पढ़ि दीने तू।<sup>२</sup>

इन पंक्तियों से ज्ञात हो रहा है कि प्रसाद जी के मन में कोई अज्ञात अव्यक्त व्यक्त होना चाह रहा है क्योंकि प्रकृति-सौन्दर्य की उपयुक्त छटा से वे उस परम सत्ता 'नीरव' की ओर उन्मुक्त हो जाते हैं। उनके मन में 'नीरव' के प्रति यह वेदना ही छायावादी रहस्यानुभूति की पृष्ठभूमि है—

कमल-कोश भरे मकरन्द सों,  
जिमि विराजत चारु अमन्द सों।

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १६०।

२. चित्राधार : जयशंकर प्रसाद—भारती भण्डार, प्रयाग, २०१४ वि०, पृ० १७१।



निज सुगन्ध लिये वह आप ही,  
रहत मोद भरे चुपचाप ही ।  
धरत रूप मनोहर मोद सों,  
हृदय हूँ तिमि कंज विनोद सों ।  
वह सुधारत मंजुल नेम को,  
लहत है जब नीरव प्रेम को ।<sup>१</sup>

प्रकृति-चित्रण के आह्लादकारी रूप में परम तत्त्व के आभास से प्रारम्भ होकर नीरव प्रेम में परिवर्तन सामान्य रूप से प्रसाद के प्रकृति-चित्रण की विशिष्टता है । किन्तु इस नीरव प्रेम की भाव विह्वलता में प्रकृति का घरातल धीरे-धीरे कवि मानस से छूटता है । वह भावानुभूति से रहस्यानुभूति के स्तर पर अभिव्यक्ति करता है क्योंकि इस प्रेम और इसकी व्यापकता को अनुभव किया जा सकता है इसको रूपायित करना प्रायः दुष्कर होता है । इसीलिए तो प्रसाद जी के लिए प्रकृति-उपकरण अनुपयुक्त हो गये और व्यक्त करना चाहते हुए भी उन्हें अभिव्यक्ति असम्भव-सी दीख पड़ती है ।<sup>२</sup>

इसी भाँति कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' समस्त प्रकृति को कृष्णमय पाते हैं । कृष्ण पूर्ण ब्रह्म और परम सत्ता के मूर्तिमान रूप हैं । कृष्ण-रूप ब्रह्म के स्पर्श और सान्निध्य की स्मृति मात्र से प्रकृति एक रहस्यमय उल्लास से भर उठती है ।<sup>३</sup>

#### उपदेशकत्व

प्रकृति के कार्य-व्यापार, नियम आदि से उपदेश ग्रहण करने की परम्परा ब्रजभाषा काव्य में भक्ति-काल से ही प्रारम्भ होती है । आधुनिक युग में देश-सुधार, मानव-कल्याण और सामाजिक उत्थान की धाराओं ने कवियों को इस ओर फिर प्रवृत्त किया । ये जीवन के क्लेश और दुःख तो प्रकृति के पल-पल परिवर्तित वेश-विन्यास की भाँति हैं । अतः मानव को आपत्ति में भी अपना धर्म, अपनी मर्यादा तथा अपना सद्चरित्र छोड़ना नहीं चाहिए । कवि 'पूर्ण' हंस के विवेक और उसकी स्वधर्म परायणता के माध्यम से भ्रमित मानव को उपदेश देते हुए कहते हैं—

करत न बक-बक धरत न बक-ध्यान,  
चाल सो चलत जैसी चलत सदा से हैं

१. चित्रधारा : जयशंकर प्रसाद—भारती भण्डार, प्रयाग, २०१४ बि०, पृ० १६७ ।

२. वही०, पृ० १६८ ।

३. हृदय तरंग, पृ० ७७ ।



भूलत न बान नीर-छीर बिलगावन की,  
निज कुल-कीरति के रहत उपासे हैं ।  
मानसर तलवारे मोती के चुगनहारे,  
'पूरन' जहान जस जिनके प्रकासे हैं,  
झीलन में झाँकि झख मारत न जाय भूलि,  
यदपि मरत हंस भूखे औ पियासे हैं ।<sup>१</sup>

जीवन और जगत् के अतिरिक्त प्रकृति इस युग के कवियों को (राष्ट्रीयता और समाज-सुधार के प्रभाव से) भारतोत्थान का उपदेश भी देती है—

द्रुम डारनि के बीच चपल चहचही चुहूकनि ।  
कोयल-कीर-कपोत-कलित कलकंठ कुहूकनि ॥  
मानहुँ करि श्रुति-पाठ धरम की ध्वजा उड़ावत ।  
'हे भारत अब उठो तजौ आलस' समुझावत ॥<sup>२</sup>

इसी भाँति लक्ष्मीधर वाजपेयी शरद की प्रकृति-छटा में कहीं माया का जाल देखते हैं तो कहीं उसे भारतोत्थान के लिए उपयुक्त समय बताते हैं ।<sup>३</sup>

संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा-काव्य में प्रकृति-चित्रण अपनी सूक्ष्मता एवं भावव्यंजकता की दृष्टि से प्रशंसनीय है ।

(२) खड़ी बोली काव्य में प्रकृति की शोभा

खड़ी बोली के प्रारम्भिक वर्ष चूँकि भाषागत व्यवस्था और विषयगत प्रयोगों में बीते अतः प्रयोगावस्था के इन वर्षों में प्रकृति-चित्रण का विशेष भव्य स्वरूप प्राप्त नहीं होता है । उसमें आलोच्य-युग के ब्रजभाषा-काव्य की सी गम्भीरता और व्यापकता के दर्शन नहीं होते । नयी भाषा के इस प्रारम्भिक प्रकृति काव्य की यह न्यूनता सर्वथा क्षम्य है । परवर्ती प्रकृति-काव्य की भव्य परम्परा से यह बात स्पष्ट हो जाती है । सामान्यतः 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों में खड़ी बोली प्रकृति-काव्य-रचनाओं की संख्या अधिक नहीं है । सन् १९०५ से इन कविताओं की संख्या में वृद्धि हुई किन्तु इनमें सामान्य प्रयोगात्मक चित्रण ही प्राप्त होते हैं । प्रकृति के साथ कवियों का तादात्म्य मात्र नाम भर का है । इन रचनाओं में प्रकृति-वर्णन इतिवृत्तात्मक ही है । वर्णन शिथिल और भावशून्य है । कहीं प्रकृति देश की कष्ट अवस्था के विपरीत होने के कारण कवि के कोप का भाजन है तो कहीं कवि को उसमें नीति तत्त्व के

१. पूर्ण संग्रह, पृ० २६८-६९ ।

२. हृदय तरंग, पृ० ७६ ।

३. सरस्वती, नवम्बर १९०६ ।



दर्शन होते हैं।<sup>१</sup> किन्तु धीरे-धीरे खड़ी बोली के कवियों में प्रकृति के विभिन्न रूपों को व्यक्त करने की शक्ति बढ़ती गयी। इतिवृत्तात्मकता और वस्तु-परिगणन से आगे बढ़कर कवियों ने प्रकृति को निकट से देखकर चित्रित किया। यद्यपि तादात्म्य की विशिष्टता इन वर्णनों में भी कम है तथापि ये चित्र खड़ी बोली के भावी प्रकृति-काव्य के सूचक अवश्य हैं। उदाहरण के लिए ग्रीष्म ऋतु के दो चित्र प्रस्तुत हैं। प्रथम चित्र में जहाँ परम्परा का प्रभाव ग्रहण किया गया है, वहाँ दूसरे चित्र में मौलिकता की हल्की-सी अनुभूति सामने आती है—

१. प्रखर आतप से दुख पाकर सुखद चन्दन पंक लगाकर।

मृदुल मंजुल और सुवासित पहनती अब वस्त्र वधू नित।

(मैथिलीशरण गुप्त—सरस्वती, जुलाई १९०७, पृ० २७५)

२. दिनकर-किरणों की खा मार हिमगिरि को दुख मिला अपार।

जमा बर्फ भी गल जाता है, चोटी पर से ढल जाता है।

(लोचनप्रसाद पांडेय : सरस्वती, जून १९०७ ई०, पृ० २३३)

सामान्य रूप से 'सरस्वती' में प्रारम्भिक आठ-दस वर्षों तक इसी प्रकार के प्रकृति-काव्य के दर्शन होते हैं। सन् १९१० में राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' की 'वसंत-वियोग' कविता प्रकाशित हुई। इसमें प्रकृति का विशद वर्णन किया गया। वर्णनों में कवि की ब्रजभाषा प्रकृति-चित्रण की-सी और कवित्व शक्ति का आभास मिलता है। यद्यपि इस 'उद्यान' विशेष का प्रारम्भिक वर्णन वस्तु परिगणन मात्र ही है।<sup>२</sup> तथापि प्रकृति के भव्य रूप की भावाक्षिप्त अभिव्यंजना भी कवि ने की है। वस्तुतः यह उद्यान भारतीय सांस्कृतिक गरिमा, प्राचीन की भव्यता, दार्शनिक परम्परा एवं आदर्श-जीवन का प्रतीक है जो समय के चक्र में फँसकर अब उजड़ गया है और 'वसन्त-वियोग' के असह्य दुःख से अभिभूत है। इस प्रसंग में कवि जहाँ एक ओर प्रकृति की भव्यता का निरूपण करता है, वहाँ दूसरी ओर उसमें भारतीय गरिमा और महानता को भी उसके

१. ग्रीष्म : सनातनशर्मा सकलानी—सरस्वती जून १९०५ ई० पृ० २१०।

पावस राज : ,, ,, —सरस्वती, अगस्त १९०५ ई०, पृ० २९७।

प्रभात-प्रभा : सत्यशरण रतूड़ी—सरस्वती, सितम्बर, १९०५ ई०, पृ० ३३५।

शरत् स्वागत : ,, सरस्वती नवम्बर १९०५, पृ० ४१७।

शरद् : गिरिधर शर्मा—सरस्वती, नवम्बर १९०६ ई०, पृ० ४३०।

२. पूर्ण संग्रह, पृ० १२६।



साथ संपृक्त कर देता है। गंगा की पावनता का वर्णन प्रतीकात्मक ढंग से कवि इस प्रकार करता है—

चन्द्र भानु की श्वेत सुनहली प्रभा अपार,

या वह रजतमय स्थलावली हिम की धार।

अद्भुत गुण गर्भित पानी का करती है जो प्रकट प्रवाह,

अन्तर्बाह्य शुद्धि का उससे होता है अपना निर्वाह।<sup>१</sup>

वास्तव में सन् १९१० तक आते-आते द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली प्रकृति-काव्य में चित्रांकनता और भावाह्लादिता का प्रवेश हो रहा था। प्रकृति-चित्रण स्वच्छन्दतावाद का द्योतक माना जाता है। प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में कवि-मन का विचरण उसके स्वच्छन्द मन के ही कारण सम्भव होता है। युग की प्रारम्भिक भाषागत अव्यवस्था को समुचित एवं व्यवस्थित रूप देने के लिए द्विवेदी जी ने भाषागत अंकुश लगाये थे। यही कारण है कि खड़ी बोली में 'एकान्तवासी योगी' की रचना करने के बाद भी श्रीधर पाठक का अधिकांश भावाक्षिप्त प्रकृति-काव्य ब्रजभाषा में ही है क्योंकि 'एकान्तवासी योगी' की भाषा निरंकुशता का यह युग नहीं था। अतः भाषा के सुव्यवस्थित एवं व्याकरण सम्मत रूप की ज्यों-ज्यों स्थापना होती गयी त्यों-त्यों द्विवेदी काव्य में काव्योचित साहित्यिकता का भी प्रवेश होने लगा। सन् १९१० के बाद के हिन्दी प्रकृति-काव्य में यह विकास-क्रम स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रसाद के 'करुणालय' में गीति-नाट्य (सन् १९१२) में प्रकृति के संश्लिष्ट रूपचित्रों में अद्भुत नवीनता और मौलिकता झलकती है।<sup>२</sup> इस प्रकार आलोच्य-युग के खड़ी बोली काव्य के प्रकृति-चित्रण में भी प्रकृति के प्रसरित सौन्दर्य की स्थापना होने लगी। खड़ी बोली प्रकृति चित्रण के अनेक आयाम स्पष्ट होते हैं। प्रकृति-चित्रण के इस काव्य की विवेचना निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है।

#### आलम्बनगत प्रकृति

आलोच्य-युग के खड़ी बोली प्रकृति-काव्य में आलम्बनगत रूप का चित्रण प्रभूत मात्रा में हुआ है। 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रूपनारायण पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय, जयशंकर प्रसाद, पन्त और 'निराला' आदि ने प्रकृति के आलम्बन-रूप की अपूर्व सृष्टि की है। प्रकृति के सहज, सुरम्य एवं सुन्दर रूप की सृष्टि करते हुए कवि 'पूर्ण' प्रातःकालीन सुखद

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १३१-३२ तथा पृष्ठ १३३, १३६, १४१ एवं १५०।

२. करुणालय : जयशंकरप्रसाद—भारती भण्डार, बनारस, १९६६ वि०, पृ० १ व २।



वायु के झोंकों से आह्लादित होकर अपनी हर्षानुभूति को अभिव्यक्त करते हैं। उन्हें इस समीर में वैसे ही आनन्दानुभूति होती है जैसी एक बालक को इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाने पर होती है।<sup>१</sup> प्रकृति के इस रूप में जहाँ एक ओर कवियों ने यथातथ्य वर्णन किये हैं<sup>२</sup> वहाँ सूक्ष्म संश्लिष्ट चित्रांकन भी यथेष्ट मात्रा में हुए हैं।

नाना-निशंर हो प्रसूत गिरि के संसक्ति उत्संग से।

हो हो शब्दित थे सवेग गिरते अत्यन्त सौन्दर्य से।<sup>३</sup>

‘हरिऔध’ जी के इन संश्लिष्ट चित्रों में संस्कृत प्रकृति-काव्य की छाप देखी जा सकती है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण उन्होंने प्रभूत मात्रा में किया है तथापि कहीं-कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के कारण चित्रण बोझिल और भावदाविमुक्त हो गये हैं।<sup>४</sup> वैसे सामान्यरूप से अन्य कवियों के चित्र सहज और स्वाभाविक भाव की अभिव्यक्ति करते हैं। रूपनारायण पाण्डेय की ‘चाँदनी रात’ या मुकुटधर पाण्डेय की ‘वर्षा-बहार’ कविताएँ इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। उनके लम्बे प्रकृति-चित्रण वर्णनात्मक हो जाते हैं किन्तु छोटे-छोटे चित्रण सुन्दर एवं संश्लिष्ट हैं—

निर्मल जल अन्तःस्तल भर के,

उछल-उछल कर, छल-छल करके।

थल थल करके, कल कल करके

बिखराता है पारा।<sup>५</sup>

कवि ने नदी जल-प्रवाह का चित्रण ध्वन्यात्मक शब्दों से करके उसे मूर्त रूप प्रदान किया है। ‘साकेत’, ‘पंचवटी’ इत्यादि में इस प्रकार के लघु चित्र प्रायः मिल जाते हैं किन्तु मानवीय भावनाओं के प्रति अधिक जागरूक होने के कारण इनका कवि-मन तुरन्त प्रकृति से मानव की ओर झुक जाता है। प्रकृति के सूक्ष्म आलम्बनगत चित्रांकन में कवि रामनरेश त्रिपाठी को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। वस्तुतः उनके तीनों काव्य प्रकृति-काव्य ही हैं। उनके नायक प्रकृति-सौन्दर्य और उसकी विविध रूपात्मकता से मोहित हैं। अतः उन्हें प्रकृति-चित्रण का यथेष्ट समय एवं स्थान भी प्राप्त हुआ। त्रिपाठी जी प्रकृति के सच्चे अनुरागी थे। उनके प्रकृति-चित्रण में स्वयं अनुभूत प्रकृति का यथार्थ

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १४५।

२. प्रियप्रवास, पंचम सर्ग (तारे डूबे तम टल गया छा गयी व्योम-लाली....)

३. वही०, पृ० ११६।

४. वही०, पृ० ११६।

५. साकेत, पृ० २८०।



चित्रण प्राप्त होता है। यदि वर्षा की घनघोर घटा छा जाने के उपरान्त वर्षा की फुहारें कवि-मन को आनन्द-वास्था तक पहुँचाती हैं तो वर्षा का विषम रूप भी उसे आकर्षित करता है—

क्षण में घन धिर आये करते कड़-कड़ गर्जन घोर  
बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन वृक्षों को झकझोर  
होने लगी वृष्टि रिमझिम कर अविरल मूसलधार  
आन्दोलित लहरें तरणी पर करने लगीं प्रहार ।<sup>१</sup>

त्रिपाठी जी के संश्लिष्ट चित्रणों में कवि-मानस प्रकृति के कण-कण से अनुरंजित हो उठा है। सौम्य और रौद्र तथा सुन्दर-असुन्दर दोनों प्रकृति-रूपों से कवि-मन आनन्दित हो उठता है। उनके चित्रणों में चित्रात्मकता अधिक और वस्तु-परिगणन कम है। गम्भीर तम की चादर को धीरे-धीरे हटाकर मृदु गति से आता हुआ चन्द्रमा स्वयं प्रकृति का हार बन जाता है। समूची प्रकृति में हर्षोल्लास का भाव फैल जाता है।<sup>२</sup> कवि का यही प्रकृति-प्रेम आगे चलकर 'स्वप्न' में छायावादी प्रकृति-चित्रण की भावाभिभूत चित्रों में परिणत हो जाता है।<sup>३</sup>

आलोच्य-युग में प्रकृतिवादी कवियों में पं० रामचन्द्र शुक्ल का भी नाम उल्लेखनीय है। उनके प्रकृति-प्रेम की विह्वलता का परिचय दिया जा चुका है। यद्यपि उन्होंने अधिकांश चित्रण ब्रजभाषा में ही किये हैं तथापि खड़ी बोली में भी उनके चित्रण सुन्दर एवं सूक्ष्म हैं। प्रकृति के प्रचलित एवं अप्रचलित दोनों रूपों से वे सम्मोहित हैं। प्रकृति-रस के वे सच्चे भावक हैं। इसीलिए 'सूखती तलैया', 'काई' और 'गोपद के चिह्न' भी उन्हें आकर्षित करते हैं—

सूखती तलैया के चारों ओर चिपकी हुई  
लाल-लाल काइयों की भूमि पार करते।  
गहरे पड़े गोपद के चिह्नों से अंकित जो  
श्वेत बक जहाँ हरी दूब में विचरते।<sup>४</sup>

प्रकृति-चित्रण की नवीन अभिव्यंजना और सूक्ष्मता का परिचय प्रसाद के प्रकृति-काव्य से इस युग में प्रारम्भ होता है। छायावादी प्रकृति-काव्य की

१. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी : साहित्य भवन, प्रयाग, १९७४ वि०, पृ० ६।

२. पथिक : रामनरेश त्रिपाठी—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, १९८८ वि०, द्वितीय सर्ग।

३. स्वप्न : रामनरेश त्रिपाठी—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, १९९० वि०, पृ० १०-११।

४. काव्यांग कौमुदी—भाग २, पृ० ४०५।



भूमिका के रूप में इनके चित्रण त्रिपाठी जी के चित्रणों के समान गहरी स्वानुभूति से संसिक्त हैं। आलोच्य-युग की परिधि में इनके प्रकृति-चित्रणों की विविधता, भावविह्वलता एवं उनमें प्रवाहित लौकिक, अलौकिक प्रेम की सूक्ष्म धारा की प्रतिष्ठापना पूर्णरूप से हो चुकी थी। वास्तव में प्रकृति के प्रति सूक्ष्म दृष्टिकोण इनके ब्रजभाषा प्रकृति-काव्य से ही प्रारम्भ होता है। खड़ी बोली में आकर इन्होंने अपने तरल एवं भावुक हृदय की धारा को अधिक वेग से प्रवाहित किया। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं के संकलन 'कानन कुसुम' में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ब्रजभाषा भाषा-लालित्य की परम्परा में कवि सावन के घनघोर बादलों को इस प्रकार मनमोहक रूप से चित्रित करता है—

नवनील पयोधर नभ में काले छाये, भर भर कर शीतल जल मतवाले धाये।  
लहराती ललिता लता लजीली, लहि संग तरुन के सुन्दर बनी सजीली।<sup>१</sup>

खड़ी बोली की भाषागत सुकोमलता के विकसित होते ही आलोच्य-युग में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रणों में नवीन कोमलता और कल्पना की सूक्ष्मता का प्रवेश होने लगता है। इस नवीन कल्पना-लोक में कवि पन्त का प्रवेश सर्वाधिक है। वे मूलतः प्रकृति के ही कवि हैं। बाल्यावस्था से ही प्रकृति की क्रीड़ा में विकसित इनका कवि-मानस हिन्दी प्रकृति-काव्य की एक विशिष्ट देन है। इनके चित्रणों में चित्रों की विविधता और सूक्ष्मता दोनों समान रूप से प्राप्त होते हैं। प्रकृति को माँ, देवी और सखी के रूप में देखने वाले इस कवि का प्रकृति-चित्रण विशद एवं व्यापक है। इन्होंने अधिकांशतः प्रकृति के सुन्दर पक्ष को ही अपनाया है। कवि को प्रकृति की विविध रूपात्मकता अनुरंजित करती है, उसमें विविध कल्पनाओं का संचार करती है तथा उसे आनन्द और उल्लास से भर देती है—

बादलों के छायामय-मेल घूमते हैं आँखों में फैल ।

अवनि और अम्बर के वे खेल शैल में जलद, जलद में शैल।<sup>२</sup>

पर्वतों पर विचरते बादलों की क्रीड़ामय स्थिति का यह एक अत्यन्त सुन्दर एवं यथार्थ चित्रण है। पन्त जी को प्रकृति का नारी-रूप यदि अधिक प्रफुल्लित करता है, तो 'निराला' की 'पुरुष' रूप प्रकृति में दार्शनिकता की अभिव्यक्ति तो है ही साथ ही अनेक संश्लिष्ट चित्र भी अद्वितीय हैं। उनकी 'बादल राग'

१. कानन कुसुम : जयशंकर प्रसाद—भारतीय सुमन माला, संख्या ३, पृ० ३७-३८ ।

२. पल्लव, पृ० २१ ।



कविता में इस प्रकार के अनेक चित्र हैं। वे भी बादलों की गरज एवं उनकी मतवाली चाल से आह्लादित हो उठते हैं—

झूम-झूम मूढु गरज-गरज घन घोर  
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर<sup>१</sup>

चेतन प्रकृति

प्रकृति के इस शुद्ध एवं स्वच्छ रूप के चित्रांकन से ही कवि का मन तृप्त नहीं होता। प्रकृति का रूप और उसकी व्यापकता एवं गम्भीरता के प्रसार का अन्त नहीं। उसमें सौन्दर्य की अकल्पनीय एवं अवर्णनीय छटा है। कवि के शब्द और छन्द उसकी रूपात्मकता को समेटने में असमर्थ रहते हैं। उसकी विविधता से चमत्कृत होकर कवि-मन जिज्ञासा के भाव से भर उठता है। प्रकृति में ही रहे नित नये परिवर्तन उसके लिए प्रश्न बन जाते हैं। प्रातः-कालीन उषा, उसकी रक्तिम आभा और उससे हो रहे प्रकृति-आगन में परिवर्तन से कवि-मन विस्मित हो उठता है। घनघोर अधियारी रात्रि का पर्यवसान इस महान सौन्दर्य छटा में होते देख कवि उषा से ही पूछता है कि तुम्हीं बताओ कि तुम्हारा निर्माण किसने किया और तुम कहाँ से और कब आयीं—

ऊषे बता किस व्यक्ति ने निर्माण हीं, तेरा किया ?  
बालार्क-सिन्दुर-बिन्दु तेरे माल में किसने दिया ?  
सर्वप्रथम तेरा हुआ था जन्म कब संसार में ?  
किसने लिया निज गोद में सर्वाग्र तुझको प्यार में ?<sup>२</sup>

प्रकृति के इस जिज्ञासा-भाव को आधुनिक प्रकृतिवादी कवि पन्त ने और गम्भीर रूप से प्रकट किया है। उनके इस भाव में कला और भाव की सूक्ष्मता दर्शनीय है। वे भी उषाकालीन प्रकृति के ही दृश्य से चमत्कृत होकर बालक सदृश्य मचल-मचल कर 'तरुवासिनी' से पूछते हैं—

स्नेह-हीन तारों के दीपक, श्वास-शून्य थे तरु के पात,  
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में, तम ने था मण्डप ताना,  
कूक उठी सहसा तरुवासिनी ! गा तू स्वागत का गाना,  
किसने तुझको अन्तर्यामिनी बतलाया उसका आना ?<sup>३</sup>

प्रकृति का मूक सौन्दर्य इस प्रकार के भावाक्षेप से और भव्य एवं सुन्दर हो उठता है। कवि के लिए प्रकृति का यथातथ्य संश्लिष्ट चित्रण करते रहना

१. परिमल, पृ० १४६।

२. 'ऊषे' : मुकुटधर पाण्डेय—सरस्वती, अक्टूबर, १९२१ ई०, पृ० २३५।

३. वीणा : सुमित्रानन्दन पंत—इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९२७ ई०, पृ० ७८।



दुष्कर हो जाता है, वह उसके अभूतपूर्व सौन्दर्य को अधिकाधिक ग्रहण करना चाहता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि वह उसको चेतन रूप में देखे। प्रकृति पर्यवेक्षण से उद्भूत आनन्दातिरेक की अवस्था में वह उसको चेतन तत्त्व से संपृक्त पाता है। इस प्रकार का प्रकृति-चित्रण भी आलोच्य-काल में यथेष्ट मात्रा में मिलता है। यद्यपि प्रारम्भिक प्रकृति-काव्य में कल्पना की सूक्ष्मता के न होने के कारण प्रकृति-सौन्दर्य की इस रूप में अवतारणा कम ही है तथापि परवर्ती प्रकृति-काव्य में इस रूप का आधिक्य है। रामनरेश त्रिपाठी इस नवीन भावाक्षिप्त प्रकृति-रूप की सृष्टि करते हुए प्रश्न करते हैं कि समस्त भूतल की इस सौन्दर्यमयी प्रकृति में क्या किसी की प्रेम-कथा चित्रित है अथवा इस निरभ्र नीलम से अम्बर में किसी महाकवि के गम्भीर भाव एकत्रित हैं? <sup>१</sup> कवि प्रसाद आने वाले पतझड़ को दृष्टि में रखते हुए बसन्त के आगमन पर प्रफुल्लित प्रकृति को देख उससे ही प्रश्न करते हैं कि वह क्यों आता है? जीवन के यौवन सा उसका आगमन कवि को जिज्ञासु बना देता है। <sup>२</sup> इसी प्रकार शारदीय 'नीला आकाश', चन्द्रमा और स्वच्छ, सुगन्धित वायु से प्रफुल्लित प्रसाद का मन समस्त धरा को पुलकित देखता है। <sup>३</sup> केशवप्रसाद मिश्र वर्षा-काल के दिनों में घहराते घनों और मन्द-मन्द प्रवाहित वायु के वातावरण में प्रकृति देवी के विविध उपकरणों को प्रेम की अजस्र धारा में लिप्त देखते हैं। ब्रजभाषा के शब्द-माधुर्य का अनुसरण करते हुए वे लताओं और तरुओं तथा मोर-मोरनी का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करते हैं—

लोनी लोनी लोल लताएँ लगीं झूलने,  
उझक उझक कर प्रिय तरुओं के बदन चूमने।  
नील जलद को देख मोर भी पर फँलाता,  
अपना सुन्दर नाच मोरनी को दिखलाता।<sup>४</sup>

पंत जी के मेघ मेमनों के समान गिरि पर कुदकते हैं<sup>५</sup> तथा उनकी 'वीचियाँ' समुद्र का उज्ज्वल ह्रास अथवा उसका पुलकित श्वास हैं।<sup>६</sup> पंत जी

१. स्वप्न, पृ० २०।

२. 'बसन्त': जयशंकर प्रसाद, माधुरी, अप्रैल १९२४ ई०, पृ० २८६।

३. माधुरी, अगस्त, १९२४ ई०, पृ० ८३।

४. 'वर्षा और निर्घन': केशवप्रसाद मिश्र—सरस्वती, अगस्त, १९१६ ई०, पृ० ८१।

५. पल्लव, पृ० २१

६. वही०, पृ० ३४



ने अप्रस्तुत-विधान के माध्यम से वास्तव में सर्वाधिक सुन्दर प्रकृति-चित्रण किया है। उनकी कल्पना सूक्ष्मता से प्रकृति का मूक रूप सप्राण एवं सचेतन हो उठता है। वह अधिक ग्राह्य बन जाती है।<sup>१</sup> इस प्रकार की भावाक्षिप्त प्रकृति का स्वरूप प्रसाद जी की 'जलद आह्वान' कविता में देखा जा सकता है।<sup>२</sup> कवि 'निराला' भी 'तरंगों के प्रति' कविता में तरंगों को भाव बदलते, हँसते एवं दुःखी आदि रूपों में देखते हैं—

गंध-मंद-गति कभी पवन का मौन भंग उच्छवास,  
छाया-शीतल तट-तल में आ तकती कभी उदास,  
क्यों तुम भाव बदलती हो, हँसती हो, कर मलती हो ?<sup>३</sup>

### मानवीकरण

प्रकृति का यह रूप मानवी क्रिया-कलाप के अत्यधिक निकट है। चेतन प्राणियों में सर्वोच्च, मानव है। कवि तादात्म्य की चरमावस्था में प्रकृति के चेतन रूप को मानवी कार्य-व्यापार से संसक्त पाता है। उसके हास-विलास में उसे मानव की प्रफुल्लित अवस्था और उसके उदास एवं निस्तब्ध रूप में उसे मानव की उदामीनता एवं परवशता का-सा बोध होता है। प्रकृति का यह रूप अत्यन्त उच्चकोटि का प्रकृति-चित्रण माना जाता है। विविध अलंकारों, साम्य एवं वैषम्य की स्थितियों को प्रस्तुत करके कवि प्रकृति-सौन्दर्य को अक्षुण्ण बना देता है। वस्तुतः प्रकृति के चेतन एवं मानवीकृत रूप एक-दूसरे के पूरक हैं। चेतन प्रकृति ही मानवी रूप की विविधता को प्राप्त हो सकती है। भावना का यह अतिरेक आधुनिक खड़ी बोली प्रकृति-काव्य की एक विशिष्टता है। प्रकृति के इस रूप से न केवल कवि का प्रकृति-प्रेम ही प्रदर्शित होता है प्रत्युत कवि की भावना की तीव्रता एवं कल्पना की सूक्ष्म शक्ति का भी परिचय प्राप्त होता है। ठाकुर गोपालशरण सिंह बसंत ऋतु में खिले फूलों पर आये हुए भँवरों को जहाँ अतिथि मानते हैं, वहीं कवि निराला की भाँति वासंतीय सुगन्धित वायु और लोनी नवल लतिका के मध्य प्रणय-व्यापार की सुन्दर कल्पना करते हैं—

पुष्पों की ले सुरभि बहता वायु है मन्द-मन्द,  
लोनी लोनी नवल लतिका कम्प पाती अमन्द।  
मानो आता निकट लख के वायु को वे लजातीं,  
जल्द से वे बस इसलिए शीश नीचे नवातीं।<sup>४</sup>

१. पल्लव, पृ० ३६।

२. कानन कुसुम, पृ० २४।

३. परिमल, पृ० ५५।

४. 'बसंत वर्णन': गोपालशरणसिंह, सरस्वती, अप्रैल, १९१४ ई०, पृ० २०४।



नयी-नयी कोंपलें हल्के वायु के झोंके से झुक जाती हैं। कवि ने इस दृश्य में तरुण नायिका की सुन्दर कल्पना करके दृश्य को अधिक सुखर बनाया है। कवि रामनरेश त्रिपाठी पर्वत-शिखरों के हिम से निकलने वाले छोटे-छोटे फेनिल झरनों के सौंदर्य तथा उनकी गति एवं ध्वनि का इस प्रकार चित्रण करते हैं—

मानो जलद के शिशु गण, दल बाँध खेलते हुए परस्पर  
अति उतावलेपन से चलकर गोल पत्थरों पर गिर-गिर कर  
उठते करते नृत्य विहँसते तथा मनाते हुए महोत्सव

सागर से मिलने जाते हैं पथ में करते हुए महारव।<sup>१</sup>  
रंग-बिरंगे फूलों तथा हरियाली से भरी हुई वादी में उन्हें प्रकृति पुरुष-प्रिया की असंख्यक साड़ियाँ सूखती दिखती हैं।<sup>२</sup> समुद्र की रात्रिकालीन गरज और ज्वार-भाटे का सुन्दर दृश्य उनकी कल्पना से देखिए कितना सुन्दर बन गया है—

...निर्भय कर्त्तव्य-परायण वीर प्रभावित स्वर से।

सिन्धु-सन्तरी गरज रहा था अगणित उर्मि-अधर से।

चंचल वीचि मरीचि-वसन से सजकर नीले तन को।

होड़ लगी-सी उछल रहीं थीं चारु चन्द्र-चुम्बन को।<sup>३</sup>

गुप्त जी ने भी 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी' और 'साकेत' में प्रकृति के मानवी-कृत रूपों की सुन्दर सर्जना की है। सीता को वन में वृक्षों के ठूँठ संसार को असत्य समझ कर सर्वस्व त्याग करने वाले तपस्वी लगते हैं।<sup>४</sup> राम वृक्ष-पुंज की छाया को किसी निद्रामग्न स्त्री के समान पाते हैं जिसे सूर्य-किरण सखीवत् जगाने का प्रयत्न कर रही है—

कहीं सहज तर तले कुसुम-शैथ्या बनी ऊँघ रही है पड़ी जहाँ छाया घनी।

घुस धीरे से किरण लोल दलपुंज में, जगा रही है उसे हिलाकर कर कुंज में।<sup>५</sup>

'साकेत' के ही नवम सर्ग में इस प्रकार के अनेक वर्णन प्राप्त हैं। प्रातःकालीन सूर्योदय तथा आकाश में छितरे हुए तारों के विलीन होने के दृश्य को कवि ने रूपक और श्लेष के माध्यम से चित्रित किया है।<sup>६</sup> 'हरिऔध' जी ने भी

१. स्वप्न, पृ० ११।

२. वही०, पृ० २४।

३. पथिक पृ० १७।

४. साकेत, पृ० १३५।

५. वही०, पृ० १३६।

६. साकेत, पृ० २६६



प्रकृति को मानवीय रूप प्रदान किया है। उनकी 'सरिता' नामक कविता एक विरहिणी का रूप है।<sup>१</sup> प्रकृति तत्त्वों को मानवीय रूप प्रदान करने में इस युग में सर्वाधिक सफलता कवि निराला की 'जुही की कली'<sup>२</sup> सन् १९१६ में मिली। प्रकृति के मानवीकृत रूप में इस कविता का ऐतिहासिक महत्त्व है। कवि की इसी परम्परा की दूसरी कविता 'शेफालिका'<sup>३</sup> है। 'संध्या सुन्दरी'<sup>४</sup> कविता भी मानवीकरण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रकृति के प्रांगण में सचेतन तत्त्व की खोज में ये कविताएँ प्रकाश-स्तम्भ हैं। इसी परम्परा में कवि प्रसाद की 'किरण' तथा 'पावस प्रभात' कविताएँ उल्लेखनीय हैं। 'शशि मुख पर घूँघट डाले' तथा 'बीती विभावरी जागरी' वाली पंक्तियाँ तो प्रसाद जी के प्रकृति-प्रेम और मानवीकरण की अमर पंक्तियाँ हैं। युग के प्रकृतिवादी कवि पंत ने भी इस दिशा में यथेष्ट सफलता प्राप्त की। उनकी 'छाया' अथवा 'तारा' कविताएँ भी प्रसिद्ध ही हैं। पंत जी के मानवीकरण की विशेषता यह है कि वे एक ही वस्तु को अपनी कल्पना-शक्ति की उर्वरता से अनेक रूप प्रदान करते हैं। 'छाया' को वे कहीं दमयन्ती<sup>५</sup> तो कहीं द्रोपदी<sup>६</sup> के रूप में चित्रित करते हैं।

#### परम् तत्त्व का आभास

प्रकृति के मानवीय चेतन रूप की ही परम्परा में प्रकृति में विश्व-नियन्ता परम् तत्त्व ब्रह्म की अभिव्यक्ति कवि मानस में रूपायित होती है। आत्म तल्लीनता और आनन्दानुभूति की स्थिति में आकर कवि प्रकृति के विस्तृत पटल में परम् तत्त्व की रहस्यमयता को प्रस्फुरित देखता है। प्रकृतिवादी रहस्यवादी कवि इस अवस्था में पहुँचकर लौकिक से अलौकिक प्रेम और जीवन की ओर अग्रसर होते हैं। प्रकृति के विस्तार में उन्हें परम् सत्ता की सर्वव्यापकता का आभास होता है। वे उस विविध सूक्ष्म रूपात्मक सौन्दर्य में अपनी अलौकिक पिपासा को व्यञ्जनात्मक आधार पर अभिव्यक्त पाते हैं। कभी वे प्रकृति के तत्त्वों को अपनी रहस्यवादी भावनाओं के प्रतीक रूप में चित्रित करते हैं तो कभी

१. पारिजात : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, २०१२ वि०, पृ० ८१-८२।

२. परिमल, पृ० १६५।

३. वही०, पृ० १७०।

४. वही०, पृ० १०६।

५. पल्लव, पृ० ६८।

६. वही०, पृ० ६८।



उनमें ही अपनी भावना को चित्रित देख उनका संश्लिष्ट चित्रण करते हैं जिसमें उनकी भाव-विह्वलता सूत्र रूप में अनुस्यूत रहती है। कवि 'हरिऔध' प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में उस अव्यक्त चेतना का प्रसार 'प्रियप्रवास' में देखते हैं।<sup>१</sup> उनके लिए ब्रह्म विश्व-प्रेम के प्रतीक हैं। उनके कृष्ण ऐसे ही ब्रह्म हैं। अतः उनके समस्त रूपों की छटा प्रकृति में चित्रित की गयी है। कण-कण में उनकी परम् सत्ता का सौन्दर्य विकीर्ण हो रहा है। 'हरिऔध' जी की समस्त रहस्यमयता की इन चित्रणों में सुन्दर अभिव्यक्ति हो पायी है।<sup>२</sup> गुप्तजी भी इस परम् सत्ता के प्रसरण को 'जयद्रथ वध' में प्रकृति में रूपायित पाते हैं।<sup>३</sup> आलोच्य-युग में प्रसाद जी को इस प्रकार की रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति में सर्वाधिक सफलता मिली है। उनका 'नीरव प्रेम' रहस्यवाद के छोर को छू लेता है। 'चित्राधार', 'कानन कुसुम' और 'झरना' रचनाओं में उनके इन भावाभिभूत चित्रणों को देखा जा सकता है। 'महाक्रीड़ा' कविता में कवि समस्त प्रकृति की विविधता को ब्रह्म की महाक्रीड़ा मानकर चित्रित करता है।<sup>४</sup> उनका मन इस महाक्रीड़ा के रहस्यमय सौंदर्य की अद्भुत छटा का 'निशीथ-नदी' में तारा बनकर निनिमेष दृष्टि से पान करता है।<sup>५</sup> उनके प्रभु का रूप देखना हो तो उन्हीं के शब्दों में उसे देखिए—

तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना वो देख सकता है चन्द्रिका को<sup>६</sup>  
मुकुटधर पाण्डेय की प्राची के अरुणोदय में दिव्य आभा का प्रसरण देखकर उसे पाने के लिए अधीर हो उठते हैं।<sup>७</sup> ऐसी दशा को पहुँचकर कवि-मन उस अपार एवं अप्रतिम रूप-राशि को पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। अतः कवि प्रकृति के उपकरणों के माध्यम से ही अपने अलौकिक प्रेम की विह्वलता को अभिव्यक्त करता है। प्रसाद जी को प्रसिद्ध कविता 'खोलो द्वार'<sup>८</sup> इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। कवि पंत, जो प्रकृति को सजनी, माँ इत्यादि मानते हैं, अपने को उस परम् तत्त्व की छाया मानते हैं। उनके प्रकृति-चित्रणों

१. प्रियप्रवास, पृ० ३०७।

२. वही, पृ० ३०७-८।

३. जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त—साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), १९७६ वि०, पृ० ४५।

४. कानन कुसुम, पृ० ७-६।

५. वही०, पृ० ५४।

६. वही०, पृ० ३।

७. अधीर : मुकुटधर पाण्डेय, काव्य कौमुदी—भाग-२, पृ० ५५८-५६।

८. झरना : जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, बनारस, १९६६ वि०, पृ० ७।



में यथेष्ट मात्रा में रहस्यात्मकता का पुट प्राप्त होता है। 'छाया' कविता में वे छाया से पूछते हैं—

किस रहस्यमय अभिनय की तुम सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,  
इस अभेद्य-पट के भीतर है किस बिचित्रता का संसार।<sup>१</sup>

इसी प्रकार कवि रामनरेश त्रिपाठी भी 'स्वप्न' में पूछते हैं कि इस प्रकृति को वैभव और सौन्दर्य का इतना मनमोहक रूप किस अव्यक्त सत्ता की आज्ञा से प्राप्त हुआ है।<sup>२</sup> कवि का मन जब उस अव्यक्त की ओर उन्मुक्त हो उठता है तो उसे लगता है कि प्रकृति के तत्त्व उसके रहस्यमय ढंग परम सत्ता में विलीन होने के लिए प्रेरणा दे रहे हैं। वह इस प्रकार के रहस्यमय संकेतों से चमत्कृत हो उठता है—

किससे प्रेरित होकर मैं आगे ही बढ़ती हूँ ?

क्षण भर भी रुककर थोड़ा भी चैन मैं नहीं पाती हूँ।<sup>३</sup>  
सरिता को जीव और समुद्र को ब्रह्म का प्रतीक मानकर एक दार्शनिक की भाँति कवि इस रहस्यमय क्रीड़ा को चित्रित करता है। प्रकृति के विविध रूप जैसे उसे किसी अज्ञात आतिथेय की ओर से मौन निमन्त्रण दे रहे हों। कवि पंत को—

सधन मेघों का आकाश गरजता है जब तमसाकार  
दीर्घ भरता समीर निःश्वास प्रखर झरती जब पावस-धार  
न जाने तपक तड़ित में कौन, मुझे इंगित करता तब मौन।<sup>४</sup>

कवि प्रसाद भी इसी प्रकार परम सत्ता की सांकेतिक आज्ञा निम्न शब्दों में पाते हैं—

राग रंजित सन्ध्या हो चली  
कुमुदिनी मुकुलित हो कुछ खिली।  
तारागण नभ प्रांत,  
क्षितिज छोर में चन्द्र था,  
फैला कुछ ध्वांत,  
दीपक जलकर बुझ गये  
हमें जाने की आज्ञा मिली।<sup>५</sup>

१. पल्लव, पृ० ७० तथा वीणा-पृ० ५०।

२. स्वप्न, पृ० २२।

३. 'अन्त' : पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, सरस्वती, मई, १९२० ई०, पृ० २६४।

४. पल्लव, पृ० ४७।

५. झरना, पृ० ७१।



इस प्रकार प्रकृति का विस्तृत सौंदर्य तथा उसमें होने वाले परिवर्तन कवि-मानस में परम् तत्त्व की झलक देते हैं। प्रकृति इस अलौकिक सत्ता की प्रतीक रूप बनकर कवि का आह्लादन करती है।

### पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति

प्रकृति-चित्रण की यह परम्परा संस्कृत-साहित्य से ही चली आ रही है। मानवीय कार्यकलाप की भूमिका के रूप में प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने के लिए प्रकृति की सहायता इस रूप में ली जाती है। इस प्रकार के चित्रण सामान्यतः प्रबन्ध काव्यो अथवा गीतिनाट्यों में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। कहीं कथा के भावी रूप की पूर्व सूचना तो कहीं पात्रों के चरित्र की भूमिका के रूप में प्रकृति का चित्रण किया जाता है। आधुनिक खड़ी बोली काव्य में प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में यथेष्ट रूप से चित्रित किया गया। 'प्रियप्रवास', 'जयद्रथ-वध', 'साकेत', 'मिलन', 'पथिक', 'पंचवटी', 'ग्रन्थि', 'करुणालय', 'प्रेम पथिक', इत्यादि में इस प्रकार के चित्रण प्रभूत मात्रा में देखे जा सकते हैं।

'प्रियप्रवास' के प्रायः सभी सर्ग प्रकृति-चित्रण से ही प्रारम्भ होते हैं। प्रारम्भ में ही देखिए—

दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला।

तरु-शिखा पर थी अब राजती, कमलिनी-कुल-वत्सल्य की प्रभा।

'पथिक' के प्रथम सर्ग में ही कथा के भावी रूप की भूमिका के रूप में प्रकृति का चित्रण किया गया है। 'करुणालय' में प्रकृति हरिश्चन्द्र के महान् आदर्शपूर्ण जीवन की गरिमा को व्यक्त करती हुई प्रारम्भ में ही उपस्थित होती है। 'ग्रन्थि' के नायक-नायिका की प्रणय लीला और संयोग क्षणों के आनन्दातिरेक की भूमिका में कवि पन्त देखिए किस प्रकार हर्षान्मत्त प्रकृति का चित्र उपस्थित करते हैं। नायक-नायिका के मिलन की उत्सुकता प्रकृति के कण-कण से प्रतिबिम्बित हो रही है—

इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में, अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में,

एक उत्सुकता विचरती थी, सरल, सुमन की स्मित में, लता के अधर में।<sup>1</sup>

'साकेत' के द्वितीय सर्ग में कैकेयी यह निश्चित कर चुकी है कि राम के स्थान पर भरत को राज मिलना चाहिए। राज्याभिषेक का पूरा प्रबन्ध करने के पश्चात् दशरथ रानी कैकेयी से मिलने जाते हैं। उनका मन आज अत्यधिक प्रफुल्लित है। वे रानी के महल के निकट पहुँचते हैं। सन्ध्या की इस बेला का चित्रण गुप्तजी दशरथ के मन की राम के राज्याभिषेक की तीव्र आकांक्षा और प्रसन्नता के विपरीत भावी घटनाओं की भूमिका के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

१. ग्रन्थि : सुमित्रानन्दन पन्त—इंडियन प्रेस, प्रयाग, १९३६ ई०, पृ० ६।



अरुण सन्ध्या को आगे ठेल, देखने को कुछ नूतन खेल,  
सजे विधु के वेदी के भाल यामिनी आ पहुँची तत्काल ।<sup>१</sup>  
अष्टम सर्ग में कवि ने सीता की उत्तम चारित्रिक विशेषताओं को उभारने के लिए प्रकृति की भूमिका बाँधी है ।<sup>२</sup> लक्ष्मण की दृढ़ता और धीरता को स्पष्ट करने के लिए कवि प्रकृति को पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करता है ।<sup>३</sup> इसी प्रकार 'पंचवटी' में भी प्रकृति की अक्षुण्ण शोभा का चित्रण पृष्ठाधार के रूप में किया गया है ।<sup>४</sup> चारित्रिक विशेषताओं के अनुकूल प्राकृतिक भूमिका 'हरिऔध' जी ने भी 'प्रियप्रवास' में कई स्थानों पर प्रस्तुत की है ।<sup>५</sup> घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में 'प्रियप्रवास' में अक्रूर आगमन से पूर्व की प्रकृति का चित्रण भी उल्लेखनीय है । फुटकर कविताओं में भी इस प्रकार की चित्रण-प्रणाली के दर्शन होते हैं । देश की दरिद्रता का चित्रण प्रकृति की भूमिका में भी किया गया है । वर्षा की प्रथम फुहार से मुरझाये पेड़-पौधे तो 'जग' गये—

कड़े ताप से पड़े पेड़ पौधे मुरझाये,

मुँह पर छीटे देकर मानो गये जगाये ।<sup>६</sup>

किन्तु वह गरीब जनता क्या करेगी जिनके पास सिर छिपाने तक को जगह नहीं । घर है तो उनके छप्पर चूते हैं, बाहर हैं तो पानी की बौछारें हैं ।<sup>७</sup> इसी प्रकार 'निदाघ निदर्शन' में कवि नाथूराम शंकर शर्मा ने भी देश की दयनीय स्थिति एवं दरिद्र जनता की भूमिका में लपलपाती लू का चित्रण प्रस्तुत किया है । जब कि गोरे लोग पहाड़ों पर जा-जाकर आराम से रहते हैं, भारतीय दरिद्र जनता इस 'तवे-सी तपी भूमि' पर तपती रहती है ।<sup>८</sup>

उपदेशक प्रकृति

प्रकृति के साथ दीर्घकालीन साहचर्य तथा उसके सूक्ष्म निरीक्षण से मानव यह अनुभव करता आया है कि उसके कुछ ऐसे नियामक नियम हैं जिनसे अनुस्यूत होकर वह विविध रूपात्मकता को ग्रहण करती है । समानान्तर स्तर

१. साकेत, पृ० ४३ ।

२. वही०, पृ० २०६-७ ।

३. वही०, पृ० १२३ ।

४. पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी), २००६ वि०, पृ० ५ ।

५. प्रियप्रवास (कृष्णचरित्र), सर्ग १२, छन्द ३३ तथा ६१ ।

६. 'गरीबी' : केशवप्रसाद मिश्र—सरस्वती, अगस्त १९१६ ई०, पृ० ८१ ।

७. वही०, पृ० ८२ ।

८. 'निदाघ निदर्शन', सरस्वती, जून १९०८ ई०, पृ० २५५ ।



पर मानव-कल्याण और समृद्धि के लिए भी कुछ सामाजिक नियम हैं जिनके उल्लंघन से मानव-समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। आलोच्य-युग में काव्य का प्रधान उद्देश्य मानव एवं समाज कल्याण रहा अतः उपदेश तथा नीति के लिए प्रकृति का माध्यम ग्रहण करना स्वाभाविक ही था। गोपालशरण सिंह शिशिर के आगमन पर मधुपों द्वारा सूखे 'शतपत्रों' की अवहेलना देख क्षुब्ध होकर ऐसी मित्रता को धिक्कारते हैं जो सुख में साथ तो देती है पर दुःख में असहाय छोड़ देती है।<sup>१</sup> इस प्रकार चिलचिलाती धूप और लू से दूसरों को विकल करने वाले सूर्य का अवसान वर्षा के काले बादलों में हो गया। दूसरों को दुःख देने वाले तथा संताप पहुँचाने वालों को अपने दुष्कृत्य पर अन्त में पश्चात्ताप के बादलों में छिपना ही पड़ता है।<sup>२</sup> इस प्रकार के भाव को 'सनेही' जी भी 'पावस-परभा' में व्यक्त करते हैं।<sup>३</sup> कवि नाथूराम 'शंकर' शर्मा की कविता 'वसन्त-विकास' में 'वसंती सरसों... खेत' 'बीरे सघन रसाल' या 'कलियानी कचनार' सुअवसर पाकर प्रकृति देवी के सुन्दर अंग बन गये किन्तु मन्दभागी आलसी पुरुष सुअवसर आने पर भी उन्नति नहीं करते।<sup>४</sup> प्रातःकालीन प्राकृतिक सौंदर्य के माध्यम से कवि बद्रीनाथ भट्ट ऐसे ही देशवासियों को जगाने का प्रयत्न करते हैं। प्रकृति को प्रेरणा और उत्साह का स्रोत बनाते हुए वे 'अनुरोध' करते हैं—

अब तो आँखें खोलो प्यारे।

पूर्व दिशा अब अरुण हुई है, प्रकृति देवि पट बदल रही है

यमस ने तम की बाँह गही है,.....

ऐक्य-भाव-विस्तार हुआ है,.....

तुम क्यों सोये शीश झुका कर,.....<sup>५</sup>

व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बन के महत्त्व की ओर इस युग के कवियों का ध्यान प्रारम्भ से ही आकृष्ट हुआ। कवि 'नवीन' आकाश में तारे को देख यह सोचते हैं कि व्यक्तिगत पौरुष और बल से ही यह इतना ऊँचा उठा है और वहाँ पर भी किसी के आश्रित न होकर स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी है। 'इस विस्तीर्ण गगन मण्डल का एक परम लघु तारा' मानव जाति के लिए

१. 'शिशिर-सप्तक'—सरस्वती, फरवरी, १९१४ ई०, पृ० ८८।

२. 'वर्षा'—सरस्वती, सितम्बर, १९१४ ई०, पृ० ५०१।

३. सरस्वती—अगस्त, १९१६ ई०, पृ० ९४।

४. शंकर-सर्वस्व—संपादक—हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा, २००८ वि०, पृ० २२७।

५. सरस्वती; अगस्त १९१४ ई०, पृ० ४२१।



प्रेरणा का स्रोत है।<sup>१</sup> गुप्त जी भी स्वच्छन्दता एवं स्वतन्त्रता का उपदेश प्रकृति के माध्यम से देते हैं। 'साकेत' के अष्टम सर्ग में राम सीता से वनस्थली में लगाये गये 'उपवन' के पेड़-पौधों और डालियों को सींचने, तोड़ने और गोड़ने के लिए कहते हैं तो सीता तुरन्त उत्तर देती हैं—

प्राणेश्वर, उपवन नहीं, यह वन है,

बढ़ते हैं विटपी जिवर चाहता मन है।

बन्धन ही का तो नाम नहीं जनपद है ?<sup>२</sup>

नागरिकता के बन्धनों के समान ही गुप्त जी रंगभेद की नीति से वस्तु देशवासियों को काले कजरारे बादलों की महानता की प्रस्तुत करके नवीन स्फूर्ति और आत्मविश्वास की भावना से आन्दोलित करने का प्रयास करते हैं।<sup>३</sup>

जीवन की अनित्यता की ओर प्रकृति के विविध परिवर्तनों के माध्यम से संकेत करना तो काव्य में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। मानव-जीवन की अन्य क्षमताओं और दुर्बलताओं की ओर इंगित करते हुए कवि सदा से प्रकृति को समानान्तर स्तर पर लाकर उपदेश का माध्यम बनाते आये हैं। आलोच्य-युग में इन विविध पक्षों की ओर सामान्यतः सभी नये-पुराने कवियों का ध्यान गया और मानव की दुर्बलताओं की ओर इंगित कर प्रकृति से दीक्षित होने का परामर्श दिया। फलतः जीवन की अनित्यता<sup>४</sup>, जीवन में संतोष एवं तृप्ति का महत्त्व एवं स्वार्थी जीवन की हेयता<sup>५</sup>, करुणा और मानव-प्रेम<sup>६</sup>, राष्ट्र धर्म और प्रेम<sup>७</sup>, कर्म और फल<sup>८</sup>, लोकहित की भावना<sup>९</sup>, कर्मठता<sup>१०</sup>,

१. सरस्वती, अप्रैल १९१८, पृ० १६६।

२. साकेत, पृ० २१२।

३. 'काले बादल' : सरस्वती, जून, १९१८ ई०, पृ० २८५-८६।

४. 'शारद नदी' : रामनरेश त्रिपाठी, सरस्वती, नवम्बर, १९१६, पृ० ३३६;  
'फूल की कहानी' : ब्रदीनाथ भट्ट, माधुरी, अक्टूबर, १९२२ ई०,  
पृ० ३१७ तथा पथिक, पृ० ३६।

५. 'असन्तोष' : जयशंकर प्रसाद, माधुरी, मार्च, १९२४ ई०, पृ० १६३।

६. 'हृदय का सौंदर्य' : जयशंकर प्रसाद, माधुरी, जुलाई, १९२४ ई०,  
पृ० ७४४।

७. 'विश्व-वाटिका-भ्रमण' : मन्नन द्विवेदी गजपुरी, सरस्वती, अक्टूबर,  
१९१४ ई०, पृ० ५७६-८०।

८. 'कृतज्ञ हृदय' : मुकुटधर पांडेय, सरस्वती, मार्च १९१८, पृ० १४३।

९. प्रियप्रवास, पृ० २५५।

१०. पथिक, पृ० २१।



त्याग की भावना<sup>१</sup>, काल की विकरालता<sup>२</sup> इत्यादि अनेक उपदेशों के लिए प्रकृति का साहाय्य प्राप्त किया गया।

### उद्दीपनगत प्रकृति

काव्य में प्रकृति जब व्यक्तिगत भावानुभाव से अलग किसी अन्य के भावानुभाव का अनुसरण करती है तो वह साध्य से साधन रूप में उपस्थित होती है। प्रकृति का यही उद्दीपनगत चित्रण है। आधुनिक-युग से पूर्व काव्य में सामान्यतः प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण ही उपस्थित हुआ। उद्दीपनगत प्रकृति का प्रयोग रसराज शृंगार में सर्वाधिक होता है। जीवन में शृंगार रस की अत्यधिक महत्ता के कारण यह स्वाभाविक भी है। वास्तव में जगत् में मानव की श्रेष्ठता निर्विवाद है। उसका प्रभुत्व प्रकृति और जगत् के प्रत्येक रूप में देखा जा सकता है। सृष्टि का केन्द्रबिन्दु मानव है, अतः प्रकृति उसके ह्राव-भाव, हास-विलास, दुःख और वेदना से प्रभावित है। आलोच्य-युग में यद्यपि प्रकृतिवाद का समर्थन अत्यधिक रहा तथापि उपर्युक्त तथ्य के कारण प्रकृति को मानवानुसरण करना ही पड़ा। रीतिकालीन शृंगारिकता का तीव्र विरोध तो हुआ किन्तु स्वस्थ एवं परिष्कृत शृंगार की भावना का पल्लवन तो होता ही रहा। अतः प्रकृति के उद्दीपनगत रूप का भी प्रयोग किया गया। यह प्रयोग निश्चय ही परम्परा विमुक्त था। इसमें रीतिकालीन ऊहात्मकता न होकर मनोवैज्ञानिक चित्रणों पर विशेष बल दिया गया। यही कारण है कि परम्परागत ऋतु-वर्णन अब भिन्न धरातल पर रूप-साम्य से भाव-साम्य को दृष्टि में रखकर किये गये। आलोच्य-युग की नायिकाएँ अधिक संयत, प्रबुद्ध एवं कर्तव्य-परायण हैं। उनमें आधुनिक बौद्धिकतावाद से विरह के दिनों में भी प्रकृति की उद्दीपन शक्ति के प्रति आक्रोश न होकर सहनशक्ति और सहानुभूति की मात्रा अधिक है। अतः उद्दीपनगत प्रकृति-चित्रणों में सामान्यतः स्वाभाविकता अधिक मिलती है। प्रकृति के साम्य और विरोध प्रस्तुत करके कवियों ने अक्षुण्ण सौन्दर्य का सज्जन किया है। उर्मिला की विरह-विदग्ध अवस्था को 'साकेत' में कवि एक ही पंक्ति से स्पष्ट कर देता है—'उषा-सी छायी जग में, सन्ध्या-सी क्या जाऊँ' अथवा प्रतीकात्मक ढँग से शिशिर-काल में उनकी मनो-व्यथा का उद्घाटन 'सिकुड़ा सिकुड़ा दिन था, सभीत सा शीत के कसाले से' पंक्ति से कवि करता है। इसी प्रकार संयोगावस्था में उर्मिला और लक्ष्मण के प्रणय का चित्रण कवि प्रकृति की पृष्ठभूमि उपस्थित करके करता है। संयोग के हर्षोल्लास में प्रकृति का साम्य दृष्टव्य है—

१. वीणा, पृ० ४५।

२. 'नक्षत्र-निपात' : मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, जून, १९१४ ई०, पृ० ३०४।



मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,  
रिम क्षिम बूँदें पड़ती थीं, घटा झायी थी

करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से  
चंचला थी चमकी, घनाली घहरायी थी  
चोंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,  
माई ! मुख-लज्जा उसी छाती में छिपाई थी<sup>१</sup>

इसी प्रकार 'हरिऔध' भी 'प्रियप्रवास' में राधा के विरह-चित्रण में नवीन मौलिकता प्रदर्शित करते हैं। राधा को प्रकृति के विभिन्न उपकरण उद्दीप्त तो करते हैं किन्तु वह संयम न खोकर प्रकृति के साथ तादात्म्य कर लेती है। स्मृति के माध्यम से प्रकृति संयोग के क्षणों को भी तो उपस्थित करती है। राधा फूलों में कृष्ण के मुख की, कमल में उनके चरणों की और हाथों की, केलों में जंघा और पक्षियों के कूजन में उनकी वाणी की कल्पना कर लेती है। उर्मिला भी 'निरख सखि ये खंजन आये' वाले गीत में प्रिय की आँखों के दर्शन कर लेती है।

उद्दीपनगत प्रकृति में साम्य का एक और रूप दुःखी मानव के साथ सहानुभूतिवश दुःख प्रकट करना है। कृष्ण के मथुरागमन पर राधा उद्विग्न है तो समानान्तर स्तर पर समस्त प्रकृति का रूप भी उद्विग्नता के कारण 'थिर' हो गया है। राधा चाहती है कि यह रात न बीते तो अच्छा क्योंकि कल प्रातः कृष्ण को जाना है। अतः प्रकृति उसकी मनःस्थिति के साथ सहानुभूति प्रकट करती हुई चित्रित की गयी है—

उड्डगण थिर से क्यों हो गये दीखते हैं।

यह विनय हमारी कान में क्या पड़ी है ?

रह रह इनमें क्यों रंग आ जा रहा है,

कुछ सखि ! इनको भी हो रही बेकली है।<sup>२</sup>

'प्रियप्रवास' में इस प्रकार के चित्रण स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं। 'हरिऔध' जी ने प्रकृति का संयोग के अन्तर्गत उद्दीपनगत चित्रण अधिक नहीं किया है। वियोगावस्था के विभिन्न रूपों में ही उन्होंने प्रकृति का विशद चित्रण किया है। कृष्ण के मथुरा प्रयाण के पश्चात् जाते हुए रथ से उड़ती धूल के साथ यशोदा तादात्म्य कर लेती है। उनकी वापसी की प्रतीक्षा में वह

१. साकेत, पृ० २७४।

२. प्रियप्रवास, पृ० ५४।



दिन भर भोजन नहीं करती। इतने में एक कौआ आता है, उससे यशोदा कहती है—

जो आते हों कुँवर उड़ के काक तो बैठ जा तू।

मैं खाने को प्रतिदिन तुझे दूध औ भात दूंगी।<sup>१</sup>

माँ के कोमल हृदय की यह वाणी उसकी मनःस्थिति का सफल मनोवैज्ञानिक चित्रण उपस्थित करती है।

गुप्त जी भी इसी प्रकार उर्मिला की विरह संतप्त अवस्था का चित्रण प्रकृति के माध्यम से करते हैं। प्रकृति को साम्य रूप में उपस्थित करके वे लिखते हैं—

तम फूट पड़ा, नहीं भटा, यह ब्रह्माण्ड फटा, फटा फटा !

किस कानन-कोण में, हला, निज बालोक-समाधि निश्चला ?

सखि, देख, दिगन्त है खुला तम है, किन्तु प्रकाश से घुला।<sup>२</sup>

विरह का तम, अवधि समाप्ति के निकट आने की आशा में प्रकाश से थोड़ा-थोड़ा घुला है अथवा उर्मिला के मन के संयम और आदर्श से वह प्रकाशित है। इसी प्रकार अपनी मनोदशा और प्रेम के आदर्श को समझाती हुई, वह सखी से कहती है—

सरयू कब क्लान्ति पा रही, अब भी सागर ओर जा रही।

सखि री, अभिसार है यही, जन का जीवन-सार है यही।<sup>३</sup>

गुप्त जी के इस उद्दीपनगत प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत ऋतु-वर्णन जैसी परम्परागत रीति का अनुसरण तो हुआ है, किन्तु उसमें मौलिकता और सामन्जस्य की प्रबल धारा प्रवाहित हो रही है। शिशिर ऋतु का वर्णन करते हुए उर्मिला से वे कहलवाते हैं—

शिशिर, न फिर गिरि-वन में,

जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में,

कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।<sup>४</sup>

इसमें एक ओर कवि ने उर्मिला के आदर्श को अभिव्यक्त किया है तो दूसरी ओर उसकी दयनीय स्थिति और करुणाजनक मनोदशा का भी चित्रण नवीन रीति से किया है।

आलोच्य-युग के परवर्ती काव्य में उद्दीपनगत प्रकृति का चित्रण यथेष्ट मात्रा में किया गया। प्रकृति के माध्यम से उत्तेजक वासना का चित्रण करने

१. प्रियप्रवास, सर्ग—६, छन्द ८।

२. साकेत, पृ० ३२२।

३. वही, पृ० ३२४-२५।

४. वही०, पृ० २८७।



की एक नवीन प्रणाली का प्रसरण इस युग में होता रहा। पन्त जी की 'ग्रन्थि', निराला जी की 'जूही की कली' तथा प्रसाद जी की 'आँसू' रचनाओं में इस प्रकार के चित्रण देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए एक ही उद्धरण यथेष्ट होगा। संयोगावस्था के विलास और प्रेम की अभिव्यक्ति कवि प्रसाद प्रकृति के माध्यम से इस प्रकार करते हैं—

थक जाती थी सुख रजनी मुख-चन्द्र अंक में होता  
श्रम सीकर सदृश नखत-से अम्बर-पट भीगा होता।<sup>१</sup>

इस परवर्ती काव्य में विरह की कष्टावस्था का भी चित्रण प्रकृति के माध्यम से हुआ है। यह चित्रण निश्चय ही परम्परा विमुक्त एवं सूक्ष्म है। 'ग्रन्थि' में कवि पन्त का भावुक हृदय विरहावस्था में द्रवित होकर प्रकृति के साम्य और विरोध उपस्थित करके उद्दीपनगत चित्रण में नवीन प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करते हैं।

ओस-जल-से सजल मेरे अश्रु हैं पलक-दल में द्रव के बिखरे पड़े।

पवन पीले-पात में मेरा विरह है खिलता दलित मुरझे फूल-सा।<sup>२</sup>

प्रकृति का उद्दीपनगत वर्णन कवि 'पूर्ण' तथा रामनरेश त्रिपाठी ने भी सुन्दर ढंग से किया है। रामनरेश त्रिपाठी के तीनों खण्डकाव्यों<sup>३</sup> में अनेक मौलिक चित्रण प्राप्त होते हैं। कवि 'पूर्ण' ने परम्परागत ऋतु-वर्णन में नायक-नायिकाओं के सन्दर्भ में उद्दीपनगत प्रकृति को न अपनाकर उसे देश की दयनीय स्थिति के सन्दर्भ में अपनाया। 'कविरत्न' के 'भ्रमरदूत' का यह स्पष्ट प्रभाव खड़ी बोली प्रकृति-काव्य पर है।

इस प्रकार आलोच्य-युग में उद्दीपनगत प्रकृति को नवीन दिशा प्राप्त हुई। परम्परागत ऊहात्मकता से भिन्न मौलिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रणों की ओर कवियों की प्रवृत्ति अधिक अग्रसर रही।

अलंकार रूप में प्रकृति

साधन रूप के अन्तर्गत प्रकृति के उपकरणों का प्रयोग अलंकारों में भी होता है। मानव-सौन्दर्य के रूप, गुण और प्रभाव में तीव्रता लाने के लिए कवि प्रकृति का प्रयोग उपमान रूप में करता है। हिन्दी काव्य में इस प्रकार के प्रयोग आलोच्य-युग से पूर्व अत्यधिक रूप से हुए। इन प्रयोगों में प्रकृति,

१. आँसू : जयशंकर प्रसाद —भारती भण्डार, प्रयाग, १९६७ वि०, पृ०, २७ तथा ग्रन्थि, पृ० ९ एवं परिमल, पृ० १६५।

२. ग्रन्थि, पृ० ४३ तथा पृ० २८।

३. मिलन, पृ० १० (संयोग चित्रण), पथिक, पृ० ५३, ५४, ५६ (विरह वर्णन) तथा स्वप्न, पृ० ६२-६३ (विरह वर्णन)।



रीतिकाल में आकर सामान्यतः रुढ़ हो गयी। उपमान योजना सर्वथा परम्परागत हो गयी। चमत्कार प्रदर्शन के लोभ में अलंकार सौन्दर्यवर्द्धक नहीं रहे। स्वच्छन्दतावाद के आग्रही इस युग ने इस प्रकार के रुढ़ प्रयोगों का किंचित मात्रा में त्याग किया। चमत्कार प्रदर्शन की परम्परा को वाणी की विगर्हणा समझा गया। युग के प्रारम्भिक काल में कवियों ने परम्परागत उपमानों का प्रायः प्रयोग किया है किन्तु बाद में नवीन उपमानों की योजना की गयी। इस युग में कवि रूप और गुण से आगे बढ़कर भाव के अनुरूप उपमानों के प्रयोगों की ओर प्रवृत्त हुए। मानव-व्यापार और मानव-भावों का प्राकृतिक व्यापार से पूर्ण साम्य ढूँढ़ने के प्रयत्न होने लगे। गृप्त जी 'पंचवटी' में सूपणखा के मायावी रूप-सौन्दर्य को इस प्रकार चित्रित करते हैं—

कटि के नीचे चिकुर-जाल में उलझ रहा था बायाँ हाथ,  
खेल रहा हो ज्यों लहरों से लोल कमल भौरों के साथ।  
दायाँ हाथ लिये था सुरभित चित्र-विचित्र-सुमन-माला,  
टांगा धनुष विकल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला।<sup>१</sup>

कंकेयी के क्रोधित रूप को कवि, उपमेय लुप्ता लुप्तोपमा के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं—

पड़ी थी बिजली सी विकराल लपेटे थे घन जैसे बाल,  
कोन छेड़े ये काले साँप अवनीपति उठे अचानक काँप।<sup>२</sup>

कवि 'हरिऔध' प्रकृति के उपकरणों को उपमान के रूप में प्रयुक्त करते हुए कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं—

अधर सांध्य सु-व्योम समान थे।  
दसन थे युगतारक से लसे।<sup>३</sup>

इसी प्रकार कवि प्रसाद भी प्राकृतिक उपकरणों से रूप-छटा की अद्भुत सर्जना करते हैं—

ये बंकिम भू-युगल कुटिल कुन्तल घने, नील नलिन से नेत्र-चपल मद से भरे,  
अरुण राग रंजित कोमल हिमखण्ड से, सुन्दर गोल कपोल, सुढर नासा बनी।<sup>४</sup>

इस युग के अलंकारों की यह विशिष्टता रही कि इनमें भावना की तीव्रता का भी अपूर्व सम्मिश्रण रहा। कवियों ने अलंकारों का प्रयोग भावना की

१. पंचवटी, पृ० २१।

२. साकेत, पृ० ४४।

३. प्रियप्रवास, पृ० १०७।

४. क्षरणा, पृ० ८।



गरिमा को अधिक प्रेषणीय एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए किया। गुप्त, 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद, पंत, निराला इत्यादि ने इस प्रकार के प्रयोग करके काव्य में एक नवीन एवं मौलिक विशिष्टता उत्पन्न कर दी। कवि प्रसाद अपनी करुणा और व्यथा को प्रकृति के उपमानों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं—

क्यों व्यथित व्योम-गंगा सी छिटका कर दोनों छोरे,  
चेतना-तरंगिनी मेरी लेती है मृदुल हिलोरे ?<sup>१</sup>

पंतजी ने भी इस प्रकार के प्रयोग किये हैं जिनमें उन्होंने कल्पना की सूक्ष्मता का परिचय देते हुए नवीन उद्भावना प्रस्तुत की है—

मेरा पावस ऋतु सा जीवन, मानस-सा उमड़ा अपार-मन,

गहरे, धुँधले, धुले सँवले मेघों से मेरे भरे-नयन।<sup>२</sup>

इसी प्रकार 'हरिऔध' जी ने भी 'प्रियप्रवास' में कई नये मौलिक उपमानों का प्रयोग किया है। कृष्ण के मथुरा-गमन पर एक वृद्ध आभीर उसे रोकने के लिए जो अनुरोध करता है उसमें उसके सामान्य जीवन के लोटा-थाली आदि उपमानों का प्रयोग किया गया है।<sup>३</sup> उद्धव से यशोदा अपने दुर्भाग्य का वर्णन करते हुए कहती है—

ऊधौ सीपी-सदृश न कभी भाग्य फूटे किसी का।

मोती ऐसा रतन अपना आह ! कोई न खोवे।<sup>४</sup>

गुप्त जी भी उर्मिला की विरह-अवधि का रूपक बाँधते हुए लिखते हैं—

अवधि शिला का उर पर था गूँघ भार,

तिल तिल काट रही थी दुःगजल-धार।<sup>५</sup>

प्रकृति के उपमानों से मानव-सौंदर्य को श्रेष्ठ बनाने के लिए प्रतीप आदि अलंकारों का भी प्रयोग होता है। अलंकरण की यह प्राचीन परिपाटी है। 'हरिऔध', नाथूराम 'शंकर' शर्मा आदि ने इस प्रकार के खलंकारों का भी प्रयोग किया है। कवि 'शंकर' का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

आनन-कलानिधि में दुनी कला देख,

चाहक-चकोरों के उदास उर ऊलेंगे।

दाड़िम के दानी फल दाने उगलेंगे नहीं,

कुन्द कलियों के झुंड झाड़ में न झूलेंगे।<sup>६</sup>

१. आँसू, पृ० २।

२. पल्लव, पृ० १८ (आँसू)।

३. प्रियप्रवास, पृ० ५६।

४. वही०, पृ० १५७।

५. साकेत, पृ० ३१६।

६. कविता कलाप, पृ० १४-१५।



अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के उपकरणों का अलंकारों में प्रयोग आलोच्य-युग के कवियों ने सामान्यतः मौलिक एवं स्वाभाविक ढंग से ही किया। चमत्कार प्रदर्शन और पाण्डित्य प्रदर्शन की रूढ़ परम्परा का इस युग में त्याग किया गया।<sup>१</sup>

आलोच्य-युग में 'प्रकृति की शोभा' शीर्षक के इस विवेचन के अन्त में निष्कर्ष स्वरूप कुछ तथ्य सामने आते हैं। युग की प्रकृति विषयक व्यापक दृष्टि का निर्माण संस्कृत साहित्य के प्रकृति-काव्य के अनुसरण से हुआ। ब्रजभाषा भाषागत समर्थता के कारण प्रकृति-चित्रण की अभूतपूर्व छटा को अभिव्यक्त करने में सफल रही। प्रारम्भिक आठ-दस वर्षों तक खड़ी बोली में भाषागत असमर्थता के कारण सूक्ष्म चित्रांकन का सामान्यतः अभाव रहा। ब्रजभाषा काव्य के प्रकृति-चित्रण में प्रकृति की विविध रूपात्मकता, स्वतन्त्र सत्ता एवं उसके अपार सौन्दर्य की भावप्रवण अभिव्यक्ति सर्वप्रथम इस युग में हुई। आलोच्य-युग के ब्रजभाषा प्रकृति-काव्य के अधिकांश में परम्परागत चमत्कार प्रदर्शन और शृंगारिकता जैसी रूढ़ भावना से अनुस्यूत प्रकृति का त्याग हुआ। द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य की यह अप्रतिम उपलब्धि है। इस काव्य में नवीन सन्दर्भ में आधुनिक जन-जागरण और राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में भी प्रकृति का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त आध्यान्तरिक प्रकृति-चित्रण, जिसका विकास आगे चलकर खड़ी बोली प्रकृति काव्य में हुआ, का भी प्रणयन ब्रजभाषा प्रकृति-काव्य में हुआ था। प्रकृति की रहस्यमयता और कवि की रहस्य भावना का जो प्रसरण परवर्ती खड़ी बोली काव्य में देखा जा सकता है, उसका भी सूत्रपात इस ब्रजभाषा प्रकृति-काव्य में हुआ। प्रसाद का 'नीरव-प्रेम' (चित्राधार में) आगे चलकर प्रकृतिवादी रहस्यवाद में विकसित हुआ। अतः खड़ी बोली प्रकृति-काव्य की पूर्वपीठिका के रूप में ही इस युग का ब्रजभाषा काव्य उपस्थित होता है। प्रकृति के प्रति परवर्ती काल में, जो प्रगाढ़ अनुराग खड़ी बोली के कवियों में परिलक्षित होता है, उसका रूप भी ब्रजभाषा के कवियों—'कविरत्न', पाठक, प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि में

१. आलोच्य-युग में प्रकृति-चित्रण के उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त प्रकृति को देश के अंग रूप में तथा देश की दरिद्र जनता के परिप्रेक्ष्य में भी चित्रित किया गया है। इस रूप का उल्लेख अध्याय छः 'राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य' के अन्तर्गत किया गया है। इसके अतिरिक्त काव्य में भावुकता के प्रसरण के साथ ही प्रकृति को व्यक्तिगत दुःख और वेदना के सन्दर्भ में भी चित्रित किया गया। इस रूप का उल्लेख अध्याय पाँच में 'भावात्मकता' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।



देखा जा सकता है। कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली प्रकृति-काव्य इस युग के ब्रजभाषा प्रकृति-काव्य का विकसित रूप था। खड़ी बोली के प्रकृति-काव्य में अवश्य अधिक भावाभिव्यंजकता और कलात्मक सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। उसमें पश्चिमी और बंगला प्रकृति चित्रणों से जो नवीनता प्राप्त हुई उसके परिप्रेक्ष्य में ब्रजभाषा के प्रकृति काव्य की महत्ता कम नहीं होती, उसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है।

### निष्कर्ष

इस अध्याय के अन्त में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आलोच्य-काव्य साहित्य के वर्ण्य विषयों तथा उसमें अन्तर्निहित विचारधारा का सूत्रपात पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हुआ। वर्ण्य विषय सम्बन्धी उनकी विचारधारा<sup>१</sup> में यद्यपि कुछ सीमाएँ परिलक्षित होती हैं तथापि आधुनिक नवीन काव्य-साहित्य की अन्तरात्मा का दिग्ग-निर्देशन उन्होंने किया। कहा जा चुका है, द्विवेदी जी रसमय, समयानुकूल एवं उपयोगी काव्य के प्रबल समर्थक थे। खड़ी बोली को काव्य-भाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने के लक्ष्य से उन्होंने प्रारम्भ में जिस नियमबद्धता से काम लिया, वह सर्वथा आवश्यक था। आधुनिक काव्य-साहित्य की उपलब्धियों का मूल श्रेय द्विवेदी जी को ही प्राप्त होना चाहिए। संक्षेप में कहा जाये तो 'सरस्वती' के माध्यम से निम्न काव्य-विषयों और प्रवृत्तियों का पल्लवन हुआ।

'सरस्वती' ने प्राचीन रूढ़ काव्य प्रवृत्तियों का तीव्र विरोध किया। उसमें तत्कालीन जन-जागरण और राष्ट्रीयता के भाव को उद्बलित करने के लिए स्फुट ऐतिहासिक-पौराणिक लघु प्रसंगों पर कविताएँ होने लगीं। इन फुटकर कविताओं से नवीन विचारधारा का पोषण होता रहा। उदीयमान कवियों को भी नयी भाषा में कविता करने में सरलता अनुभव हुई। भारतीय सांस्कृतिक गरिमा का परिचय इन्हीं लघु कविताओं से कवियों और जनता को प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय उन्मेष और स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए सांस्कृतिक गरिमा का परिचय अनिवार्य होता है। अतः यह काव्य अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी रहा। परवर्ती अन्तर्मुखी काव्य में भी इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का स्वर संलग्न रहा। 'निराला' और प्रसाद की राष्ट्रीयता के भाव से प्रेरित कविताओं में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है।

विवेच्य-युग के काव्य में प्रथम बार व्यवस्थित रूप से दीन-दरिद्र जनता, किसानों और मजदूरों की दयनीय स्थिति का समुचित विवेचन हुआ।



इस काव्य में उनके प्रति अभिव्यक्त भावविह्वलता का नवीन स्वरूप सामने आता है। किसान और मजदूर वर्ग पर हो रहे शोषण को प्रगतिशील समाज और उन्नत राष्ट्र के निर्माण में बाधक समझा गया। परवर्ती काव्य में भी इस विचारधारा का विकास हुआ किन्तु वैयक्तिकता के प्रसरण से कवियों ने इनको भी वैयक्तिक गुणों से सम्पन्न देखा। तथापि द्विवेदी-युग ने इस दिशा में जितना कुछ मनन किया था उसमें विशेष अन्तर नहीं आया। 'वह तोड़ती पत्थर'<sup>१</sup> में यद्यपि पत्थर तोड़ने वाली की वैयक्तिकता उभरती है तथापि वह अपने शोषित वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करती है।

सामाजिक क्षेत्र में इस युग ने नारी के प्रति सर्वथा नवीन विचारधारा का परिचय दिया। आधुनिक बौद्धिकतावाद के प्रभाव से नारी को रूढ़ परम्परागत बन्धनों से मुक्त किया गया। उसे सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक समझा गया, साथ ही उसको आदर्श भारतीय नारी के रूप में भी चित्रित किया गया। इस युग ने नारी की स्वतन्त्रता, समानता और समानाधिकारिता पर बल दिया। नारी का प्रेमिका रूप आदर्श प्रेमिका रूप में परिवर्तित हुआ। उसमें समाज-सेवा और राष्ट्र-प्रेम की भावना पुरुष से किसी मात्रा में कम नहीं है। वह अब मात्र दया की पात्र नहीं है अपितु 'पथिक', 'मिलन' और 'प्रियप्रवास' की स्वस्थ सामाजिका है। परवर्ती काव्य में नारी के प्रति कवियों का दृष्टिकोण कुछ और परिवर्तित हुआ। उसका स्वरूप प्रारम्भ में सामाजिक बन्धनों से मुक्त स्वच्छन्द प्रेमिका और सहचरी के रूप में कल्पित किया गया तथा बाद में वह छायावादी कल्पना लोक में आकर वायवी रूप धारण करती गयी। जिसके फलस्वरूप छायावादी कल्पना शक्ति अन्त में दार्शनिक पलायन में पर्यवसित हुई।

राष्ट्रीय और सामाजिक जागरूकता तथा मानवीयता की प्रबलता के इस युग में परम्परागत ईश्वरत्व को आदर्श मानव के रूप में ग्रहण किया गया। मानव को ईश्वर के हाथ कठपुतली न मानकर मानव को ही ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न माना गया। प्राचीन अवतारवाद के अन्तर्गत अलौकिकता का किंचित मात्रा में खण्डन किया गया। मानवीय गुणों के उपासक और सामाजिक प्रगति के पोषक व्यक्ति सच्चे भक्त माने गये। दीन-दुःखियों के प्रति प्रेम रखने वाले वास्तविक ईश्वर-प्रेमी कहलाये। धर्म और भक्ति का इस प्रकार नवीनीकरण किया गया।

युग की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप कवि का मन प्रकृति की व्यापक सत्ता की ओर आकृष्ट हुआ। हिन्दी काव्य में प्रथम बार प्रकृति-सौन्दर्य और

१. अनामिका : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०१५ वि०, पृ० ७६-८०।



उसकी विविध रूपात्मकता रूपायित हुई। यह प्रकृति-आकर्षण सहज और स्वाभाविक था। इसके पीछे किसी प्रकार की कुंठा अथवा वासना न थी। प्रकृति-वासना ही मात्र वासना थी। यही कारण है कि युग की उद्दीपनगत प्रकृति में भी प्राचीन उद्दीपनगत प्रकृति से मौलिक अन्तर प्राप्त होता है। इस प्रकृति-काव्य में मनोवैज्ञानिक चित्रणों पर अधिक बल दिया गया, मात्र परम्परा पालन और चमत्कार प्रदर्शन इसका उद्देश्य न रहा। युग की इस नवीन क्रान्तिकारी विचारधारा का सूत्रपात ब्रजभाषा कवियों द्वारा हुआ। ब्रजभाषा काव्य परम्परा की यह महान् उपलब्धि थी।

खड़ी बोली और ब्रजभाषा काव्य के सापेक्ष महत्त्व की दृष्टि से देखा जाये तो विवेच्य-युग के काव्य को समृद्ध बनाने में इन दोनों काव्यधाराओं ने यथेष्ट योग प्रदान किया। इस युग की काव्य उपलब्धियों में जहाँ खड़ी बोली काव्य ने युग की नवीन वैचारिक क्रान्ति का प्रतिनिधित्व किया वहीं ब्रजभाषा काव्य ने अपने को परम्परागत रूढ़िग्रस्तता से मुक्त करते हुए युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अपने को ढालने का सफल प्रयत्न किया। वैचारिक क्षेत्र में भी ब्रजभाषा काव्य ने नवीनता को ग्रहण करते हुए खड़ी बोली काव्य का साथ दिया। सत्यनारायण 'कविरत्न' की प्रबुद्धता और रामचन्द्र शुक्ल एवं श्रीधर पाठक के प्रकृतिवादी तथा स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं।





## अध्याय—चार

# द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा-काव्य की साहित्यगत विशेषता

द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा-काव्य के पीछे चार सौ वर्ष की प्रशस्त परम्परा थी जिसमें भक्ति और शृंगार काव्य का सृजन प्रभूत मात्रा में हुआ था। समय और परिस्थितियों के प्रभाव से ब्रजभाषा-काव्य की प्राचीन धारा के साथ यह दुर्भाग्य रहा है कि उसमें विषय-व्यापकता के स्थान पर विषय-संकुचन की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। फुटकर नीति और वीर काव्य के अतिरिक्त भक्ति और शृंगार ही इस काव्य के प्रधान वष्य विषय रहे हैं। ब्रजभाषा काव्य वास्तव में कृष्ण और राधा की भक्ति, उनकी प्रेम-भावना, उनके विविध रूप आदि का ही काव्य है। भक्तिकाल के अन्तर्गत ब्रजभाषा-काव्य में प्रधान रूप से कृष्ण भक्ति की सगुणोपासना चित्रित है। सूर आदि अष्टछाप के कवियों ने ब्रजभाषा-काव्य में अपनी भक्ति भावना का वह प्राणमय स्वर अनुगुंजित किया जिसके आधार पर इस युग को ब्रजभाषा-काव्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। भक्ति-भावना, आदर्श जीवन, आदर्श समाज, आदर्श प्रेम इत्यादि इस युग के काव्य का संदेश रहा। भक्ति और शृंगार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। भक्तिकालीन भक्ति-भावना में निहित सात्विक प्रेम परवर्ती काल में समसामयिक परिस्थितियों के कारण वासना और विलास में परिवर्तित हो गया। भक्तिकाल की 'मधुरा-भक्ति' और 'लोकोत्तर भावना' दरबारी वासना विलास और ऐश्वर्य के वातावरण में 'लोकोत्तर छटा' से वंचित होकर स्थूल लौकिक प्रेम और वासना में परिवर्तित हो गयी।<sup>१</sup> भक्त कवियों ने कृष्ण-राधा की प्रेम-लीलाओं से जिस 'गूढ़ातिगूढ़' भक्ति-भावना को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की थी, वे लीलाएं सामन्ती वातावरण के विलास की प्रतीक बनती गयीं। कृष्ण और राधा, सामान्य नायक-नायिका के स्तर पर आकर वासना से विकृत हो गये। इस लौकिक प्रेम की भावना का इतना प्राधान्य इस युग में रहा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम और कुल और समाज की प्रतिष्ठा के लिए धरती में प्रवेश करने वाली सीता अपनी मर्यादा भूलकर वृन्दावन के स्थान पर अयोध्या के केलि-कुंजों में विहार करने लगी। राम और सीता का आदर्श जीवन राधा-कृष्ण की रति-चेष्टाओं और विलास-क्रीड़ाओं में परिवर्तित किया



गया ।<sup>१</sup> वस्तुतः रीतिकालीन कवियों में ऐसा एक भी कवि न था जिसे सूर की भाँति 'सीकरी' से काम न हो । दरबारों की चारदीवारी में बन्द, जन-जीवन की विविधताओं से दूर, देश की परिस्थितियों से अनभिज्ञ, जीवन की विषमताओं से अपरिचित ये कवि सुरा और सुन्दरी तक ही सीमित थे । तत्कालीन समाज में उच्चवर्ग मुसलमानों के आधिपत्य की स्थापना के अनन्तर सामान्यतः विलासपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा था । हिन्दू राजाओं ने अपनी मान-मर्यादा के लिए मर मिटना छोड़ दिया था । ये लोग समृद्धि-क्षीण एवं साहस-विमुक्त हो चुके थे । इसीलिए 'अपने मुसलमान शासकों की प्रवृत्तियों का अनुसरण करते हुए उनकी दृष्टि भी नारी-सौन्दर्य की ओर बढ़ी । ये भी नारी के नेत्रों से अपने जीवन की परिधि खींचने लगे ।'<sup>२</sup> अतः प्रमुख रूप से इस युग में वासना और विलास का अतिरंजित ऊहात्मक वर्णन प्राप्त होता है ।

ब्रजभाषा-काव्य के विषय-संकुचन को किंचित मात्रा में व्यापक धरातल प्रदान करने का स्तुत्य प्रयास सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया । यद्यपि भारतेन्दु-युग अपनी विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थिति के कारण परम्परागत ब्रज-भाषा काव्य-विषयों में अधिक परिवर्तन लाने में सफल नहीं रहा,<sup>३</sup> तथापि उस युग ने ब्रजभाषा काव्य को सामन्ती वातावरण से उभारकर देश और जनता-जनार्दन के हृत्स्पन्दनों के निकट लाने का प्रयास किया । देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति की ओर ब्रजभाषा-काव्य का ध्यान पहली बार आकृष्ट हुआ । सामन्ती युग के संकुचित जीवन के आगे इस युग का काव्य लोक-जीवन की व्यापकता को समेटने का प्रयास करने लगा ।

ब्रजभाषा काव्य-परम्परा में वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन द्विवेदी-युग में ही हुआ । भारतेन्दु-युग, ब्रजभाषा-युग होते हुए भी जिस परिवर्तन को न ला सका, वह खड़ी बोली-युग द्विवेदी-युग में सम्भव हो सका । द्विवेदी-युग में आकर बौद्धिकता, वैज्ञानिक दृष्टि, राष्ट्रीयता और जन-जागरण से जो व्यापक वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न हुई उससे परम्परागत ब्रजभाषा-काव्य अछूता न रह सका । वैज्ञानिक प्रगति के परिचय ने धीरे-धीरे अलौकिक व्यापार, चमत्कार, अन्धविश्वास, अतिशय वायवी कल्पनाशीलता, शब्द-चमत्कार, धार्मिक रूढ़ि-ग्रस्तता आदि के स्थान पर तर्क और विवेचना को स्थापित किया । धर्म जहाँ

१. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास : रामवहोरी शुक्ल, भगीरथ मिश्र—हिन्दी भवन, जालन्धर, इलाहाबाद—१९५६ ई०, द्वितीय खण्ड (भगीरथ मिश्र), पृ० ४८-४९ ।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २१२ ।
३. दे० अध्याय एक ( द्विवेदीयुगीन काव्य की पूर्व-पीठिका ) ।



मानव को पारलौकिक कल्पनाओं से अभिभूत करता आ रहा था, वहाँ विज्ञान ने उसे यथार्थ और संसार की ओर प्रेरित किया। सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय भावना से अब भारतीय जनमानस सांस्कृतिक गरिमा की ओर उन्मुख हुआ। इस युग का कवि त्याग, प्रेम, सेवा, कष्टना, आत्माभिमान, राष्ट्रीयता, देश प्रेम, देश सेवा, स्वतन्त्रता इत्यादि के प्रति अत्यधिक आस्थाशील हो गया। नवीन बौद्धिक एवं वैचारिक क्रान्तियों के अन्तर्गत शोषित, उपेक्षित एवं घृण्य वर्गों की ओर भी बुद्धिजीवी प्रवृत्त हुए। इस व्यापक परिवर्तन का विकास धीरे-धीरे अवश्य हुआ किन्तु ब्रजभाषा काव्य के लिए परम्परागत विषय-संकुचन के पारंप्रेक्ष्य में यह परिवर्तन युगान्तरकारी था। चार सौ वर्षों में जो सम्भव नहीं हो पाया था वह बीसवीं शताब्दी में कुछ वर्षों में ही सम्भव हो सका।

इस युगान्तरकारी परिवर्तन की प्रक्रिया को आलोच्य-युग के ब्रजभाषा काव्य में प्रमुखतया दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो परम्परागत विषयों में नवीन व्यापक विस्तार देने की चेष्टा की गयी। विषय यद्यपि परम्परा से प्राप्त थे किन्तु आधुनिक युग के बौद्धिक जीवन के प्रभाव से उनमें नवीनता का आग्रह स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके अन्तर्गत सत्यनारायण 'कविरत्न' का 'भ्रमरदूत', जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का 'उद्धव शतक', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'रस कलस', दुलारेलाल भागवत की 'दुलारे दोहावली' तथा स्फुट समस्या प्रतियाँ इत्यादि रचनाएँ विवेचित की जा सकती हैं। इस प्रथम प्रवृत्ति में कवियों ने परम्परा को रूढ़ अर्थ में स्वीकार न करके स्वस्थ विचारधारा से अपनाते हुए उसमें नवीन प्राण-प्रतिष्ठा की। दूसरी प्रवृत्ति के अन्तर्गत कवियों ने नवीनता को प्राथमिकता देते हुए ब्रजभाषा काव्य को खड़ी बोली की आधुनिक विचारधारा के समानान्तर प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया। इस प्रवृत्ति में युग की बौद्धिक चेतना स्पष्ट रूप से कार्यरत देखी जा सकती है। जिसके फलस्वरूप इस काव्य में प्रकृति, प्रेम, वीर तथा राष्ट्रीय एवं सामाजिक भावधारा का समावेश हो सका। ब्रजभाषा काव्य ने अपने विगत वैभव-काल में जो अर्जित नहीं किया था, वह इस प्रवृत्ति के कारण उसे प्राप्त हो सका। सांसारिक विविधता और जीवन के तथ्य और सत्य प्रथम बार ब्रजभाषा-काव्य में समादृत हुए। विवेचन की सरलता हेतु इन दो प्रवृत्तियों पर क्रमशः विचार इस प्रकार किया जा रहा है—

### परम्परागत विषयों में व्यापक-विस्तार की चेष्टा

ब्रजभाषा-काव्य प्रारम्भ से ही प्रधानतया कृष्ण-कथा के विविध अंगों से अनुस्यूत रहा है। कृष्ण-भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों ने इसी भाषा में अपनी भक्ति भावना और दार्शनिक विचारधारा को प्रस्तुत किया। कृष्ण-कथा का



अत्यधिक मार्मिक प्रसंग, जिसका आधार श्रीमद्भागवत् है, कृष्ण का मथुरा-गमन है। शैशव की अद्भुत लीलाओं से जिसने यशोदा और नन्द को पुलकित किया तथा युवावस्था में अपनी विमुग्धकारी लीलाओं से जिसने ब्रज के जन-जीवन को आह्लादित किया, उसके अकस्मात् मथुरा-गमन से ब्रजवासी सीमा-तीत दुःख-सागर में निमग्न हो जाते हैं। भागवत् के दशम स्कन्ध के इस कथासूत्र में भागवतकार ने एक और मार्मिक प्रसंग उद्धव-ब्रज-आगमन तथा उसका सन्देश जोड़ा है। इस सन्देश को सुन गोपियाँ भाव-विह्वल होकर अपनी विरह-व्यथा उद्धव को सुनाती हैं। उसी समय एक भौरा किसी गोपिका के निकट गुंजन करने लगता है तो वह गोपिका उसे कृष्णदूत समझकर उपालम्भ में कृष्ण की निर्दयता, उसके कपटी रूप एवं उसकी अकृतज्ञता इत्यादि का विशद् वर्णन करती हुई प्रकारान्तरे से अपनी प्रेमाभक्ति की अनन्यता की गम्भीरता को स्पष्ट करती है। कृष्ण-काव्य में इस मार्मिक प्रसंग को प्रायः सभी कवियों ने चित्रित किया है। भ्रमरगीत की इस परम्परा का सर्वप्रथम प्रशस्त प्रणयन सूरदास से माना जाता है।<sup>१</sup> उन्होंने भागवत् से भिन्न उद्धव को ज्ञानमार्गी और गोपियों की भक्तिमार्गी सगुणोपासक भक्त के रूप में चित्रित किया। गोपियों की इस भक्ति के समक्ष उद्धव का ज्ञान ढह जाता है और वे भक्ति-मार्ग की सगुणोपासना को स्वीकारते हैं। प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण-कथा के इस प्रसंग पर स्फुट अथवा प्रबन्धात्मक काव्य रचनाएँ की हैं। इस प्रसंग पर आधारित, भक्तिकाल का दूसरा काव्य नन्ददासकृत 'भँवरगीत' है। इस रचना की विशेषता गोपियों की वाग्विदग्धता एवं मुखर पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धान्त के सरस निर्वह में है। कृष्ण-काव्य का यह प्रिय विषय रीतिकालीन कवियों ने भी अपनाया। भारतेन्दु-युग में भी इस विषय को लेकर रचनाएँ होती रहीं जो सामान्यतः सूर के भ्रमरगीत से ही अनुप्राणित रहीं। भावाभिव्यक्ति के स्तर पर यत्किञ्चित् परिवर्तनों के अतिरिक्त अन्य किसी नवीन प्रसंग की कल्पना इन रचनाओं में नहीं की गयी।

द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य-धारा में भी परम्परा से प्राप्त इस विषय को अपनाया गया। 'कविरत्न', 'रत्नाकर', 'रसाल' इत्यादि कवियों ने इस प्रसंग पर रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनमें से विशेष उल्लेखनीय प्रथम दो कवियों की ही रचनाएँ हैं। विषयगत विस्तार की दृष्टि से आधुनिक ब्रजभाषा काव्य में सत्यनारायण 'कविरत्न' कृत 'भ्रमरदूत' का अन्यतम महत्त्व है।

### (१) भ्रमरदूत

कविवर 'कविरत्न' ने इस परम्परागत विषय में नूतनता का समावेश करके इसकी मार्मिकता को द्विगुणित कर दिया है। इस काव्य-रचना में उद्धव



का ब्रज आगमन नहीं होता है, फलतः उद्धव-गोपी संवाद के तर्क-वितर्क का समावेश इसमें नहीं हुआ है। कथा में केवल दो पात्र हैं—यशोदा और भ्रमर। अन्य पात्रों—नन्द, गोप, गोपियाँ, राधा इत्यादि का भी समावेश नहीं हुआ है। इसमें कृष्ण मथुरा से द्वारिका चले गये हैं और उनका न कोई समाचार आता है और न ही उनके लौटने की अब कोई आशा है। काव्य में सर्वत्र माँ यशोदा का विकल एवं शोकातुर मातृ-हृदय स्पन्दित होता है। वात्सल्यमयी माँ की करुणा और विवशता को 'कविरत्न' ने मार्मिक ढँग से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः 'कविरत्न' का यह काव्य तत्कालीन देश की दारुण-दशा से प्रेरित है। इसमें यशोदा भारत माँ और पिछड़ी हुई भारतीय नारी की प्रतीक है और ब्रज भारत का प्रतीक है। पुत्र-वियोग से शोक-विह्वल यशोदा वर्ण, गुण और स्वभाव-साम्य के आधार पर भ्रमर के माध्यम से कृष्ण को उपालम्भ देती है। इस उपालम्भ में यशोदा जो ब्रज की दशा का वर्णन करती है, वह तत्कालीन भारत का सटीक चित्रण है। भ्रमर को समझाती हुई यशोदा स्त्री-शिक्षा<sup>१</sup>, देश-प्रेम<sup>२</sup>, भारतीय सांस्कृतिक गरिमा<sup>३</sup>, ग्राम जीवन की महत्ता और निष्कलुषता<sup>४</sup>, जातीयता<sup>५</sup>, बढ़ती हुई भौतिकता से ग्राम जीवन की हानि एवं विष्टुंखलता<sup>६</sup> तथा देशीय भाषा की महत्ता<sup>७</sup> इत्यादि का विवेचन करती है। आलस्य, रुढ़ग्रस्तता तथा आपसी भेद-भाव के रहते देश को स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। अतः व्यापक जन-जागरण एवं जागरूकता की तत्कालीन आवश्यकता की ओर इंगित करते हुए कवि ने यशोदा से कहलवाया है—

वा बिनु गो ग्वालनु को हित की बात सुनावे।

अरु स्वतन्त्रता, समता, सहभ्रातृता सिखावे।

यदपि सकल विधि ये सहत, दारुण अत्याचार।

पै न कछु मुख सों कहत, कोरे बने गँवार।

कोउ अगुआ नहीं ॥<sup>८</sup>

द्विवेदीयुगीन आधुनिकता से प्रभावित यह काव्य ब्रजभाषा-काव्य का प्रमुख ग्रन्थ है। परम्परा से प्राप्त इस विषय को 'कविरत्न' ने अपनी प्रतिभा से

१. हृदय तरंग (भ्रमरदूत), पृ० १०१-१०२।

२. वही०, पृ० १०३।

३. वही०, पृ० १०२।

४. वही०, पृ० १०५।

५. वही०, पृ० १०६।

६. वही०, पृ० १०७।

७. वही०, पृ० १०६।

८. वही०, पृ० १०५।



मार्मिक एवं सटीक बनाया है। इसके साथ ही युग की विचारधारा के अनुरूप ही कवि ने गोपियों का उल्लेख किया है। इस काव्य की गोपियाँ न तो भक्ति और दर्शन पर तर्क-वितर्क करने वाली प्रबुद्धा हैं और न ही रीतिकालीन विलासिता की मूर्तियाँ। 'कविरत्न' ने इस काव्य में गोपियों को सर्वथा क्रांतिकारी रूप में प्रस्तुत किया है। गोपियाँ अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक रूप में ही उपस्थित हुई हैं—

कहूँ बालिका-पूँज कुंज लखि परियत पावन ।

सुख-सरसावन सरल सुहावन हिय सरसावन ।

कोकिल-कंठ-लजावनी, मनभावनी अपार ।

भ्रातृ-प्रेम-सरसावनी, रागत मंजु मल्हार ।

हिडोलनि झूलतीं ॥<sup>१</sup>

आधुनिक युग के बौद्धिकतावाद, आदर्शवाद एवं नैतिकता ने कृष्ण-गोपियों की काम-लीलाओं और रति-चेष्टओं को स्वीकार नहीं किया। कृष्ण-गोपियों की निरंकुश स्वच्छन्दता, समाजविरोधी समझी जाने लगी थीं। अतः इस युग में परम्परागत कृष्ण-गोपियों का रूप कवि ने स्वीकार नहीं किया। उसने न केवल परम्परा से प्राप्त इस विषय को मौखिकता से ग्रहण किया, अपितु इस युग के ब्रजभाषा-काव्य की ओर से समस्त ब्रजभाषा-काव्य को एक नवीन देन भी दी। 'कविरत्न' जी का यह काव्य अद्वितीय मौलिकता सम्पन्न होते हुए दुर्भाग्यवश अपूर्ण है।

(२) उद्धवशतक

आलोच्य-युग में भ्रमरगीत परम्परा में दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना 'उद्धवशतक' है। कविवर 'रत्नाकर' की इस रचना में एक ओर सूर और नन्ददास की भावुक एवं प्रबुद्ध गोपियों की फिर से खवतारणा हुई है तो दूसरी ओर रीतिकालीन कला-सौन्दर्य का उदात्त रूप भी इसमें प्राप्त होता है। रीतिकालीन कवियों ने भ्रमरगीत परम्परा को विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत लेते हुए 'ऊधो', 'भ्रमर', 'मधुकर' अथवा 'मधुप' को विरहावस्था की मार्मिक अभिव्यंजना का माध्यम बनाया। परन्तु सामान्यतः गोपियों के पास भ्रमर के आने की परम्परा आदि को ग्रहण नहीं किया गया। वस्तुतः रीतिकालीन ऊहापोह में कथा के मार्मिक स्थलों की ओर कवियों का ध्यान नहीं गया।<sup>२</sup> रत्नाकर जी ने रीतिकालीन परम्पराओं से प्रभावित होते हुए भी इस रचना में अस्वाभाविक ऊहात्मक कल्पनाओं का सहारा न लेकर स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक चित्रण

१. हृदय तरंग (भ्रमरदूत), पृ० १००।

२. रत्नाकर—उनकी प्रतिभा और कला : डॉ० विश्वम्भरनाथ भट्ट, दिल्ली पुस्तक सदन, नई दिल्ली, १९५७ ई०, पृ० १८२।



की प्रवृत्ति को अधिकाधिक अपनाया। 'भ्रमर' का समावेश 'उद्धवशतक' में स्पष्ट रूप से नहीं होता है। गोपियाँ उद्धव को लक्ष्य करके ही अपने प्रेम और अनन्य भक्ति-भाव को अभिव्यक्त करती हैं। सम्भवतः इसीलिए इसका नाम 'भ्रमरगीत' न होकर 'उद्धवशतक' है। कथावस्तु की दृष्टि से रत्नाकर जी ने इस काव्य में एक नवीन मौलिक अंश जोड़ दिया है। सामान्यतः भ्रमर-गीत परम्परा में गोपियों के विरह और दुःख का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। उनमें कृष्ण की विह्वलता की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। प्रेम एकपक्षीय नहीं होता है। पुरुष भी भावुक एवं संवेदनशील हो सकता है तथा प्रेयसी के विरह में वह भी विह्वल हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की उपेक्षा 'उद्धवशतक' से पूर्व के प्रायः सभी भ्रमरगीतों में हुई है। 'रत्नाकर' जी ने परम्परा से प्राप्त इस दोष का निवारण सर्वप्रथम किया। उनके कृष्ण की विह्वलता उसी कोटि की है जिस कोटि की विह्वलता गोपियों की है। राजनीतिक उलझनों में फँसे कृष्ण के मन में नन्द-यशोदा एवं गोपियों की स्मृति काटि की भाँति निरन्तर चुभती रहती है। 'उद्धवशतक' की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। परम्परा से प्राप्त विषय-वस्तु में नवीन विस्तार देने की यह महती चेष्टा है। इससे न केवल भ्रमरगीत परम्परा में एक नवीन मौलिकता का समावेश हुआ अपितु विरह-वर्णन अधिक सजीव एवं मर्मस्पर्शी हो सका। 'रत्नाकर' जी के 'उद्धवशतक' की गोपियों के विरह, त्याग, आत्मसमर्पण और बलिदान को इस सन्दर्भ से अधिक व्यापकता एवं मनोवैज्ञानिक आधार प्राप्त होता है। साथ ही कवि ने इस प्रसंग से काव्य में नवीन नाटकीयता और प्रभावोत्पादकता का समावेश किया है।

स्तन करते हुए कृष्ण को जब पानी में एक मुरझाये हुए कमल के दर्शन होते हैं तो उनकी विरह-विह्वल स्मृति में तुरन्त राधा की मूर्ति बिजली-सी कोंध जाती है। राधा की दुःख-विह्वला मूर्ति की याद आते ही कृष्ण के मानस-पटल पर ब्रज में बिताये हुए दिनों की अनेक स्मृतियाँ एक के बाद-एक उभरने लगती हैं। कृष्ण दुःखाभिभूत होकर रो पड़ते हैं। उद्धव जैसा ज्ञानी पुरुष भी प्रेम की अपूर्व छटा को देखकर विचलित हो उठता है। कृष्ण को 'जसोमति' के 'प्रेम-पगे-पालन' की, 'गोरस' और गोकुल 'गैल-गैल' की याद निरन्तर सताती रहती है। कृष्ण यद्यपि अत्यन्त संयम और धैर्य से काम लेते हैं तथापि राधा की स्मृति आते ही उनके मन की विह्वलता द्विगुणित हो जाती है—

करत गम्भीर धीर-लंगर न काज कछू  
मन को जहाज डगि डूबन लगत है।<sup>1</sup>



कृष्ण को राजसी ठाट-बाट आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता, गोकुल की 'रज' के सामने उन्हें तीन लोकों की सम्पत्ति भी नहीं चाहिए किन्तु 'दिननि' के फेर से अब वे ऐसे विवश हैं कि—

फिरत हुते जू जिन कुंजनि में आठों जाम  
नैननि में अब सोई कुंज फिरिबौ करें ।<sup>१</sup>

इसीलिए उद्धव के समझाने पर, उपदेश और ज्ञान की गरिमा से परिचित कराने पर उनका विरही मन, गोपियों की ही भाँति व्याकुल हो उठता है। संसार को 'असत्' और 'ब्रह्मा' कहने वाले उद्धव की ज्ञान भरी बातें उनके मन को बोध नहीं दे पातीं। आँसुओं को रोकने के लिए उद्धव के कथन का प्रत्युत्तर वे इन भावविह्वल शब्दों में देते हैं—

हा ! हा ! इन्हें रोकने को टोक न लगावौ तुम  
बिसद-बिवेक-ज्ञान-गौरव-दुलारे हूँ ।

प्रेम रतनाकर कहत इमि ऊधव सो  
थहरि करेजो थामि परम दुखारे हूँ ।

सीतल करत नैकुं हीतल हमारी परि  
विषम-वियोग-ताप-स्रमन पुचारे हूँ ।

गोपिन के नैन-नीर ध्यान-नलिका हूँ धाई

दृगनि हमारे आइ छूटत फुहारे हूँ ॥<sup>२</sup>

स्मृतिजन्य वेदना और 'टेलिपैथी' का यह सर्वोत्कृष्ट उदाहरण समस्त भ्रमरदूत काव्य में अनूठा है।

कथावस्तु के इस नवीन प्रसंग के अतिरिक्त इस काव्य की दूसरी मौलिकता कवि की विश्लेषण क्षमता है। कवि ने मनोभावों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही चित्रित किया है। कृष्ण की विह्वलता<sup>३</sup>, उद्धव की मनःस्थिति<sup>४</sup>, गोपियों की उत्सुकता एवं प्रेम विह्वलता<sup>५</sup>, गोपियों की निराशा<sup>६</sup>, नन्द-यशोदा की वात्सल्य-सिक्त मनोव्यथा<sup>७</sup> आदि का विश्लेषण कवि ने अत्यन्त मामिक, स्वाभाविक एवं मौलिक ढँग से किया है। वर्णन में विभिन्न मनोभाव एवं मनोदशाएँ पाठक के सामने भूत हो जाती हैं।

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (उद्धवशतक) पृ० १४८ ।

२. वही०, पृ० १५२ ।

३. वही०, पृ० १५४ ।

४. वही०, पृ० १५५, १८८-८९ ।

५. वही०, पृ० १५६, १८४-८५ ।

६. वही०, पृ० १५८ ।

७. वही०, पृ० १८४ ।



भावपक्ष की इस प्रबलता के अतिरिक्त इस काव्य का कलापक्ष<sup>१</sup> भी अत्यन्त प्रौढ़ है। कवि का ध्येय चमत्कार की ऊहात्मक सर्जना के स्थान पर रसमयता के लोकोत्तर आनन्द की स्थापना है। यही कारण है कि इस काव्य में अलंकार-बहुलता मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना की सहायक ही सिद्ध हुई है। कवि ने एक-एक छन्द में ही अनेक अलंकारों का समावेश किया है। उदाहरण के लिए एक ही छन्द में सांगरूपक, उपमा, पुनर्वाक्य, अनुप्रास इत्यादि का अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग कृष्ण की विरह-व्यथा को चित्रित करने में किया गया है।<sup>२</sup> रीतिकालीन कवियों की अलंकार-योजना में शब्दों का प्रयोग प्रायः मनमाने ढंग से हुआ है किन्तु प्रस्तुत कवि की भाषा-शुद्धता और प्रांजलता अनुकरणीय है। इनकी भाषा में प्रत्येक स्थल पर प्रवाहयुक्त, मधुर एवं प्रासादिक पदावली प्राप्त होती है।

इस प्रकार 'उद्धवशतक' यद्यपि 'कविरत्न' के 'भ्रमरदूत' के समान आधुनिकता से प्रेरित नहीं है, तथापि नवीन उद्भावनाएँ, अलंकारों की छटा, भाषा-शुद्धता एवं माधुर्य, रसमयता, चित्रण की सूक्ष्मता, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तत्त्व इस काव्य को समस्त भ्रमरगीत परम्परा से अलग एवं विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं।

### (३) रसकलस

'रसकलस' रसनिरूपक एक रीति-ग्रन्थ है। 'हरिऔध' जी ने परम्परा से प्राप्त इस काव्य-विषय को नवीनता से मण्डित किया। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा—'मैं यह स्वीकार करता हूँ कि प्राचीन प्रणाली का अनुसरण ही आजकल अधिकांश वर्तमान ब्रजभाषा के कवि कर रहे हैं, निस्सन्देह यह एक बड़ी त्रुटि है। समय को देखना चाहिए और सामयिकता को अपनी कृति में अवश्य स्थान देना चाहिए... यह विचार कर ही प्राचीन प्रणाली के कवियों की दृष्टि इधर आकर्षित करने के लिए 'रसकलस' की रचना की गयी।<sup>३</sup> अतः युगानुकूलता और नूतनता के आग्रह ने इस ग्रन्थ को पूर्ववर्ती रीति-ग्रन्थों से भिन्न, सर्वथा मौलिक स्वरूप प्रदान किया। संक्षेप में इस ग्रंथ की कुछ मौलिकताएँ इस प्रकार हैं—

प्राचीन रीतिकाव्य-ग्रन्थों में प्रायः शृंगार रस की ही विशद विवेचना की

१. विशेष विस्तार के लिए दे० इस अध्याय के अन्तर्गत 'रस', 'छन्द', 'अलंकार', 'पद-योजना' एवं 'भाषा'।
२. रत्नाकर ग्रंथावली (उद्धवशतक), पृ० १४८।
३. रसकलस : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस-२००१ वि० (विशेष वक्तव्य)।



जाती थी, अन्य रसों के विवेचन के प्रति सामान्यतः इन ग्रंथों में विशेष रुचि उपलब्ध नहीं होती है। 'रसकलस' शास्त्रोक्त नौ रसों का वास्तविक अन्यतम 'कलस' है। इसमें शृंगार के अतिरिक्त अन्य सभी रसों की विस्तृत एवं व्यापक विवेचना सूक्ष्मता के साथ सोदाहरण की गयी है।

'रसकलस' की द्वितीय मौलिकता शृंगार रस निरूपण एवं नायिका-भेद में है। 'हरिऔध' जी ने शृंगार रस की शास्त्रीय विवेचना के साथ उसके सामाजिक पक्ष को भी विश्लेषित किया। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में शृंगार रस और नायिका-भेद का जो निरूपण किया, वह युगान्तरकारी एवं मौलिक है। शृंगार के रस-राजत्व को स्वीकार करते हुए उसे उन्होंने सांसारिक जीवन का आधार माना।<sup>१</sup> शृंगार और प्रेम मानव-जीवन और सांसारिक धर्म के लिए आवश्यक है। प्रेम जीवन का सर्वाधिक प्रिय एवं रसमय सूत्र है। नायिका भेद और शृंगार रस की परम्परा साहित्य में लोकहित की भावना से ही अनुस्यूत हुई थी। यदि परिस्थिति विशेष में पढ़कर यह भावना रूढ़ एवं ह्रासशील अवस्था को प्राप्त हुई तो उसके संशोधन की आवश्यकता है। उससे भागना सम्भव नहीं है। इसीलिए कवि ने इस परम्परा की ओर संकेत करते हुए कहा—“.....यह न समझना चाहिए कि मैं परम्परा के अन्धानुकरण का पक्षपाती हूँ। परम्परा वहीं तक ग्राह्य है जहाँ तक वह आपत्तिजनक न हो। जब उसके द्वारा समाज अथवा जाति का अमंगल होता हो, जब उसके आधार से उनमें बुराईयाँ फैलती हों तो वह इस योग्य है कि उसकी उपेक्षा की जावे। इसको मैं स्वीकार करता हूँ।”<sup>२</sup> अतः मानव-मन के इस अनिवार्य पक्ष की विवेचना मनोविकार रहित, सत् प्रेरणा और सत् उद्देश्य से होनी चाहिए। उसी में सामाजिक कल्याण निहित है। किन्तु जहाँ नायिका-भेद, शृंगार रस-निरूपण अथवा नख-शिख वर्णन व्यक्तिगत वासना और मनोविकार से संपृक्त हो जाते हैं तो वे अश्लील और समाज-विरोधी हो जाते हैं। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए 'हरिऔध' जी का कथन है कि “.....ऐसे कवि पाये जाते हैं जिनकी काम-वासनामय प्रवृत्ति उनसे अश्लील रचना कराने में समर्थ हुई जो किसी भीति अनुमोदनीय नहीं।”<sup>३</sup> इन रचनाओं में वीभत्स काण्ड की पराकाष्ठा हो गयी है।<sup>४</sup> अतः रीतिकालीन शृंगारिकता की वासना और विलास की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कवि

१. रसकलस (भूमिका), पृ० ८६।

२. वही०, पृ० १४२-४३।

३. वही०, पृ० १५६-५७।

४. वही०, पृ० १६५।



शृंगार रस की समयानुकूल विवेचना पर बल देता है। तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए 'हरिऔध' जी इस नवीन दिशा की ओर सर्वप्रथम प्रवृत्त हुए। शृंगार रस का विरोध करने मात्र से समाज का कल्याण नहीं हो सकता, प्रत्युत उसकी वैज्ञानिक एवं आदर्श विवेचना से ही सामाजिक-कल्याण सम्भव है। 'हरिऔध' जी द्विवेदी-युग के अग्रणी बौद्धिक थे। इसीलिए उन्होंने शृंगार रस के इस घोर विरोध-काल में भी 'रसकलस' की रचना की। शृंगार रस के आलोचकों को समझाते हुए उन्होंने कहा,— "मैं जानता हूँ कि समय क्या है? और इस समय समाज और देश को किन बातों की आवश्यकता है, परन्तु भ्रान्त बनने से काम नहीं चलेगा, उचित पथ ग्रहण करने से ही सिद्धि प्राप्त होगी। देशानुराग के गीत गाये जावें, सोये देश को जगाया जावे, सूखी धमनियों में उष्ण रक्त का प्रवेश कराया जावे... ऐसी ज्वलन्त उत्साहमयी ग्रन्थमालाएँ निकाली जावें जिनसे... भारतीय भी संसार में अपना मुख उज्ज्वल कर सकें, इसमें किसको आपत्ति है?... किन्तु बातुल बनकर न तो सुधा को गरल कहा जावे, न चिन्तामणि को काँच। शृंगार रस जीवन है, जिस दिन आप उसका त्याग करेंगे, उसी दिन आपका स्वर्ण-मन्दिर ध्वंस हो जावेगा और आप रसातल चले जायेंगे। आवश्यकता है आप शृंगार रस के मर्म को समझें और दूसरों को समझावें।"<sup>१</sup> अतः कवि ने, यद्यपि इस ग्रन्थ में शास्त्रोक्त मान्यताओं के आधार पर ही सामान्यतः विवेचना की है, तथापि परिवर्तित एवं परिनिष्ठत दृष्टिकोण के कारण देश-काल के अनुकूल शृंगार रस-निरूपण में नवीन मौलिकता का परिचय दिया।

नायिका-भेद में जाति के आधार पर चार भेद करने के पश्चात् उन्होंने प्रकृति के आधार पर उत्तमा, मध्यमा और अधमा तीन भेद प्रस्तुत किये। इसी प्रकार उन्होंने धर्मानुसार स्वकीया, परकीया तथा सामान्या भेदों का भी विश्लेषण किया है। इस विवेचन में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है तथापि प्रकृति के आधार पर उत्तमा नायिका के भेदों की विवेचना कवि की मौलिकता है। उन्होंने इस भेद में आठ प्रकार की नवीन नायिकाओं का समावेश किया है—'पति-प्रेमिका'<sup>२</sup>, 'परिवार-प्रेमिका'<sup>३</sup>, 'जाति-प्रेमिका',<sup>४</sup> 'देश-प्रेमिका'<sup>५</sup>,

१. रसकलस, पृ० १७०-७१।

२. वही०, पृ० ६६।

३. वही०, पृ० ६७।

४. वही०, पृ० ६८।

५. वही०, पृ० ६९।



‘जन्मभूमि-प्रेमिका’<sup>१</sup>, ‘निजतानुरागिनी’<sup>२</sup>, ‘लोकसेविका’<sup>३</sup> तथा ‘धर्म-प्रेमिका’<sup>४</sup> ये नायिकाएँ कवि की बौद्धिकता और तत्कालीन वैचारिक क्रान्ति की स्पष्ट उपज हैं। देश और राष्ट्र के उत्थान और स्वातन्त्र्य हेतु नारी-कर्त्तव्य की सूक्ष्म विवेचना इस नायिका-भेद में सन्निहित है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दीर्घ-काल में इन आठों नायिकाओं के उदाहरण प्राप्त करना कठिन नहीं है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागरूकता से ‘हरिऔध’ जी आप्लावित थे अतः भावी भारतीय नारी के विभिन्न रूपों की भविष्यवाणी वे सहजरूप से कर सके। युग ने जिस नवीन क्रान्ति का उद्घोष किया था उसमें नारी रीति-कालीन वासना की पुतली न होकर आत्माभिमान से संयुक्त पुरुष और राष्ट्र की स्वस्थ एवं पवित्र सम्बल है। नारी-स्वातन्त्र्य की यह महान् उद्घोषणा है। द्विवेदीयुगीन नारी को निरीह और दयनीय कहने वालों के लिए ‘हरि-औध’ जी का यह विवेचन नवीन दृष्टि प्रदान करता है। नारी न केवल पति, राष्ट्र, जन्मभूमि, धर्म, लोक, परिवार और जाति से ही प्रेम करने वाली है अपितु उसमें वैयक्तिक गुणों का भी समावेश है, वह व्यक्तित्व विहीन नहीं है।

इस ग्रन्थ में सर्वत्र कवि की कवित्व शक्ति और गद्यांशों में आचार्यत्व की प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उन्होंने जिन उदाहरणों को प्रस्तुत किया है, वे किसी भी उत्कृष्ट उदाहरण से कम नहीं हैं<sup>५</sup> किन्तु उनमें मर्यादा का उल्लंघन अथवा अश्लीलता कहीं नहीं है। सामान्यतः उन्होंने ऊहात्मक कल्पनाओं का आश्रय नहीं लिया है। इसके अतिरिक्त अन्य रसों के विवेचन में भी कवि ने अद्भुत मौलिकता का परिचय दिया है। रसों के भाव, अनुभाव तथा संचारी भावों की ही विस्तृत विवेचना करने के उपरान्त उनको उचित उदाहरणों से समझाने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः हिन्दी काव्य-साहित्य में सर्वप्रथम इस व्यापक एवं मौलिक ढंग से रसों का विस्तृत विवेचन किया गया। नवीनता की दृष्टि से मनोभावों के चित्रण में कवि को प्रायः विशेष सफलता प्राप्त हुई है। अन्य नवीन उद्भावनाओं में वीर रस की विवेचना उल्लेखनीय है। वीर रस को साहित्यशास्त्रियों ने विशेष महत्ता प्रदान की है। इसके सर्वमान्य चार भेद—युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर और दानवीर हैं। आधुनिक युग की विशिष्ट परिस्थितियों से प्रभावित होकर कवि ने इनमें पाँचवाँ भेद—कर्मवीर

१. रसकलस, पृ० १०२।

२. वही०, पृ० १०३।

३. वही०, पृ० १०४।

४. वही०, पृ० १०६।

५. ‘हरिऔध’—जीवन और कृतित्व : डॉ० मुकुन्ददेव शर्मा, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, १९६१ ई०, पृ० २५३।



जोड़ दिया है, जो सर्वथा उपयुक्त भी है। आधुनिक भारतीयान के दिनों में जिस प्रकार की कर्मठता की आवश्यकता है, उस प्रकार के वीरों का विवेचन करना 'हरिऔध' जी की महत्ती मौलिकता एवं देन है। इस प्रकार 'रसकलस' निश्चय ही द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य की एक अन्यतम उपलब्धि है।

#### (४) दुलारे-दोहावली

ब्रजभाषा-काव्य में दोहे तथा संकलन रूप में दोहावलियाँ लिखने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। मुक्तक-काव्य की इस शैली में प्रत्येक दोहा अपने आप में पूर्ण एवं वर्ण्य-विषय को पूर्णतया अभिव्यक्ति प्रदान करने में समर्थ होना चाहिए। विवेच्य-युग में कवि दुलारेलाल भार्गव की प्रस्तुत दोहावली विशद विवेचन की वस्तु रही है।<sup>१</sup> इसमें एक ओर जहाँ प्राचीन परम्परागत विषयों में से कृष्ण-राधा प्रणय, गोपी-विरह, संयोग के विभिन्न पक्ष, रूप-चित्रण तथा नायिका-निरूपण इत्यादि का समावेश हुआ, वहाँ दूसरी ओर देश और राष्ट्र-प्रेम<sup>२</sup>, गाँधी जी<sup>३</sup>, अछूत-समस्या<sup>४</sup>, हिन्दू-मुस्लिम एकता<sup>५</sup>, आर्थिक समस्या<sup>६</sup>, राजनीतिक स्थिति<sup>७</sup>, शिवाजी<sup>८</sup>, स्वराज्य-आन्दोलन<sup>९</sup>, वीर रस तथा वे देश-प्रेम<sup>१०</sup>, भामाशाह का दान<sup>११</sup>, वीरांगना दुर्गावती<sup>१२</sup>, श्रीमती कस्तूरबा गान्धी<sup>१३</sup>, हिन्दी भाषा<sup>१४</sup> इत्यादि अनेक सम-सामयिक विषयों पर भी अत्यन्त मनोयोग से लिखे दोहे प्राप्त होते हैं। दोहावली की विषय-विविधता इसे आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

१. आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य : डा० जगदीश वाजपेयी—अजन्ता प्रकाशन मुजफ्फरनगर, १९६४ ई०, पृष्ठ १४८।

२. दुलारे-दोहावली, पृ० ६, १६, ३५ इत्यादि।

३. वही०, पृ० ६, ६३ इत्यादि।

४. वही०, पृ० १७, ३०, ३७, ५६, ६२ इत्यादि।

५. वही०, पृ० ५, २६।

६. वही०, पृ० ३५।

७. वही०, पृ० ६४।

८. वही०, पृ० २२।

९. वही०, पृ० १५।

१०. वही, पृ० ३।

११. वही०, पृ० ४२।

१२. वही०, पृ० ३५।

१३. वही०, पृ० ४३।

१४. वही०, पृ० ४४।



कविवर 'निराला' जैसे छायावादी कवि ने भी इस ग्रन्थ की मामिकता, विषय विदग्धता, भाषा प्राञ्जलता एवं विभिन्न रसों की उदात्त परिणति की प्रशंसा की है—“.....कविवर श्री दुलारेलाल वर्तमान समय में ब्रजभाषा के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं और उनकी दोहावली ब्रजभाषा-साहित्य की वर्तमान सर्वोत्तम कृति । (इसी) ब्रजभाषा की कोमल कान्त पदावली, शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओज-स्विनी सूक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शान्त-रस की सुधा-धारा, रसानुकूल अलंकृत भाषा का मुहावरेदार प्रयोग और संक्षेप में कहने का अद्भुत कौशल.....”<sup>१</sup> अद्वितीय ही है । दोहावली में कवि ने प्रकृति-चित्रण के प्रति भी नवीन मौलिक दृष्टि का परिचय दिया है ।<sup>२</sup> कवि ने अपने अभिव्यंजना-कौशल से अपने लिए परम्परागत वर्णनों से भिन्न स्थान बना लिया है । उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

नायिका के सौन्दर्य की अपूर्वता का चित्रण कवि ने अत्यन्त मौलिक ढंग से किया है—

बिब देखिवे कों कहा झकति प्रपातहि तीर ?

भोरी, तव मुख छबि लखै होत बिकल, चल नीर ।<sup>३</sup>

परम्परागत उपमानों के माध्यम से स्वराज्य आन्दोलन के चित्रण में प्राचीन और नवीन का समन्वय भी दर्शनीय है—

भारत-सरहि सरोजिनी गान्धी-पूरब-ओर—

तकि सोचति—हूँ है कबै प्रिय स्वराज-रवि भोर ।<sup>४</sup>

आधुनिक विचारधारा से यह कवि पूर्णतया प्रभावित है । मार्क्स के साम्यवाद का चित्रण देखिए—

काम, दाम, आराम कौ सुधर समनवय होय,

तौ सुरपुर की कल्पना कब हूँ करै न कोय ।<sup>५</sup>

सम-सामयिकता, बौद्धिकता एवं नवीन वैचारिक क्रान्ति से यह दोहावली पूर्णतया प्रभावित है । अतः अनेक प्राचीन परम्पराओं को स्वीकारते हुए भी आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य का यह अनुठा ग्रन्थ है जिसमें प्राचीनता और नवीनता का उदात्त समन्वय प्राप्त होता है । परम्परागत विषयों पर काव्य-रचना करने के कारण दोहावली में कतिपय स्थानों पर अत्यधिक अलंकार-

१. दुलारे-दोहावली, (विज्ञप्ति), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', १९६१ वि० ।

२. दे० अछयाय तीन 'प्रकृति की शोभा' ।

३. दुलारे-दोहावली, पृ० ३३ ।

४. वही०, पृ० ३५ ।

५. वही०, पृ० ७० ।



प्रियता<sup>१</sup>, क्लिष्टता<sup>२</sup> इत्यादि दोषों का समावेश तो हुआ है पर ऐसे स्थल अपवाद ही हैं। संक्षेप में विवेच्य-युग की परिवर्तित परिस्थितियों से प्रभावित प्रस्तुत ग्रन्थ ने ब्रजभाषा काव्य-परम्परा के विषय और भाव क्षेत्र में नवीन क्रान्ति का स्वर उद्घोषित किया। ब्रजभाषा काव्य की आधुनिकता में यह ग्रन्थ एक मार्ग-चिह्न है।

#### (५) समस्यापूर्तियाँ

ब्रजभाषा काव्य की विशिष्टता समस्या-पूर्ति-प्रथा भी है। समस्या-पूर्तियों की परम्परा को रीतिकालीन दरबारी वातावरण में अत्यधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ। कवियों की कवित्व शक्ति, रचना-कौशल, चमत्कार प्रदर्शन, वाणी-विलास इत्यादि प्रवृत्तियों का पोषण समस्यापूर्तियों के द्वारा होता रहा। आधुनिक-युग में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस परम्परा को वाणी की विगर्हणा कहा था तथापि ब्रजभाषा कवियों में से 'रत्नाकर', 'हरिऔध', 'पूर्ण', 'सनेही', 'शंकर' इत्यादि ने समस्यापूर्तियों की परम्परा को निभाया। भारतेन्दु-युग की परम्परा में इस युग में भी 'सुकवि' ('सनेही' द्वारा कानपुर से सम्पादित) तथा 'काव्यकलाधर' (रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश' द्वारा कलकत्ता से सम्पादित) नामक पत्रिकाओं द्वारा इस परम्परा का पल्लवन होता रहा। इसी प्रकार 'काशी-कवि-समाज' में कवि 'रत्नाकर' और कानपुर के 'रसिक समाज' एवं उसके दो पत्रों—'रसिक-वाटिका' और 'रसिक-मित्र' में कवि 'पूर्ण' भी इस परम्परा को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे। ब्रजभाषा के इन कवियों ने अनेकानेक समस्यापूर्तियों की रचना की। सामान्यतः इन सभी समस्यापूर्तियों में रीतिकालीन परम्परा को ही निभाया गया। उक्ति-वैचित्र्य, चमत्कारिक प्रवृत्ति, कल्पना की ऊहात्मकता इत्यादि सभी परम्पराएँ इन रचनाओं में सहज ही प्राप्त हो जाती है। इनमें प्रायः आधुनिक युग की किसी भी स्वस्थ परम्परा का प्रभाव नहीं दिखता। वस्तुतः आलोच्य-युग की समस्यापूर्तियाँ 'रत्नाकर' आदि कवियों को छोड़कर अन्य कवियों के लिए कौतुक की ही विषय थीं। 'रत्नाकर' आदि कवियों के लिए समस्यापूर्तियाँ काव्य-सर्जना की अंग थीं। यही कारण है कि समस्यापूर्ति के निमित्त रचे गये उनके कई छन्द बाद में 'उद्धवशतक' में जोड़ दिये गये।<sup>३</sup>

परम्परा-पालन की इस प्रक्रिया में कुछ एक समस्यापूर्तियाँ ऐसी भी हैं जिनमें आधुनिक जन-जीवन की विविधता का समावेश हुआ है। यद्यपि ऐसी

१. दुलारे-दोहावली, पृ० ३३।

२. वही०, पृ० ५४।

३. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला : डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट, पृ० ५५ (तथा दे० उद्धवशतक छन्द संख्या ६० एवं ४५)।



समस्यापूर्तियाँ अपवाद स्वरूप ही प्राप्त होती हैं तथापि कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं। 'धीर धरै ना' समस्या की पूर्ति में कवि नाथूराम शंकर शर्मा ने तत्कालीन दरिद्रता, भूख तथा भारत के 'हृतभागिन' की दुर्दशा का मार्मिक चित्र खींचा है—

शंकर नाहि उधार मिले धन वातन ते कछु काज सरै ना,  
हारि हिये दिन-राति अनेक उपाय करें पर पेट भरै ना।  
रोटिन को रिरियात फिरें कितहू दुखियान की दार गरै ना,  
भारत के हृतभागिन कौ दल दीन भयो अब धीर धरै ना।<sup>१</sup>

इसी प्रकार नाथूराम शंकर शर्मा ने 'पामर पंच कहायो',<sup>२</sup> 'ताकनि तेरी',<sup>३</sup> 'आयो अकेलो सिधायो'<sup>४</sup> तथा 'मनौ नाहि आनत आन तियान'<sup>५</sup> आदि समस्यापूर्तियों के माध्यम से क्रमशः सज्जन एवं निष्काम पुरुषों की भर्त्सना करने वालों पर व्यंग्य, विधवाओं के प्रति सहानुभूति तथा रूढ़ समाज के प्रति आक्रोश, संसार की असारता तथा विभिन्न प्रकार के पतियों की विवेचना के माध्यम से पुरुष समाज पर तीव्र व्यंग्य प्रकट किया है। नवीन आधुनिकता से प्रभावित होकर रामकुमार वर्मा ने भी 'स्वराज्य' और गान्धी जी पर ब्रजभाषा में कुछ एक समस्यापूर्तियों की रचना की है।<sup>६</sup> उपर्युक्त कवियों ने भी जहाँ ब्रजभाषा समस्यापूर्तियों में अधिकांशतः प्राचीन परम्परा का अवलम्बन किया वहाँ खड़ी बोली की समस्यापूर्तियों में नवीन युग की चेतना को ही ग्रहण किया। इस सम्बन्ध में कवि 'सनेही' एवं 'शंकर' की खड़ी बोली समस्यापूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य-युग के ब्रजभाषा काव्य ने परम्परा का अवलम्बन ग्रहण करते हुए भी उसमें युग की बौद्धिक क्रान्ति, राष्ट्रीय जागरूकता एवं सामाजिक चेतना का अभूतपूर्व सम्मिश्रण किया। यदि इस युग के कवियों ने अपनी काव्य-प्रतिभा को उपर्युक्त समन्वयात्मक प्रवृत्ति तक ही सीमित रखा होता तो कदाचित् इस युग के ब्रजभाषा-काव्य

१. शंकर सर्वस्व, पृ० ३५१।

२. वही०, पृ० ३५१।

३. वही०, पृ० ३५२।

४. वही०, पृ० ३५२।

५. वही०, पृ० ३८३।

६. डा० रामकुमार वर्मा की अप्रकाशित कविताओं की पाण्डुलिपि से 'स्वराज्य लहरति' 'विश्व मोह लीनो है' आदि समस्यापूर्तियाँ, जिनकी रचना कवि ने सन् १९२० के आस-पास की है।



की महत्ता अधिक न होती। तब यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता था कि द्विवेदी-युग का ब्रजभाषा काव्य भारतेन्दु युग की विचारधारा से आगे न बढ़ सका। परन्तु इन कवियों ने द्विवेदी-युग के परिवर्तित जीवनदर्शन की गम्भीर विवेचना अपने काव्य में की है। इन्होंने आधुनिक स्वच्छन्दतावाद की नवीन काव्य-प्रणाली को अपनाकर युग के प्रारम्भिक खड़ी बोली काव्य की सीमाओं को भी पीछे छोड़ दिया। यदि खड़ी बोली को नवीन भाषा और नवीन विषयों को अपनाने की शक्ति प्राप्त करनी थी तो द्विवेदीयुगीन ब्रज-भाषा काव्य को चार सौ वर्षों की विषयगत रूढ़ियों से अपने को मुक्त करना था तथा रीतिकालीन ऊहात्मक वासना-काव्य के चिह्नों को मिटाकर नवीन स्वस्थ समाज के उपयुक्त काव्य-कृतियों को प्रस्तुत करना था। विरोध और अविश्वास के वातावरण में ब्रजभाषा-काव्य के लिए यह कार्य निश्चय ही कठिन था। संक्षेप में नवीन विचारधारा से संपृक्त इस ब्रजभाषा-काव्य का विश्लेषण इस प्रकार किया जा रहा है—

### नवीन प्रयोगात्मक प्रयास

बीसवीं शताब्दी की सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं वैचारिक चेतना से द्विवेदी-युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन स्पन्दन दृष्टिगत होता है। प्राचीन जीवन-मूल्यों की विवेचना भारतीय परतन्त्रता एवं दुःख-दारिद्र्य के सन्दर्भ में की जाने लगी। युग की स्वच्छन्द प्रवृत्ति ने न केवल मानव को सम्मानित दृष्टि से परखा अपितु मानवेतर प्रकृति की भी विशद् एवं व्यापक प्रतिष्ठापना उसने की। ऐसे वातावरण में प्रगतिशील बौद्धिक कवि अछूता नहीं रह सकता था। अतः ब्रजभाषा कवियों ने भी अपनी रचनाओं में इस वैचारिक क्रान्ति की उदात्त परिणति प्रस्तुत की। इस सम्पूर्ण आधुनिक काव्य-धारा को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है—

### वीर भाव-धारा

ब्रजभाषा काव्य-परम्परा पर शृंगार रस की अतिशयता का जो दोषारोपण समवेत स्वर से किया जाता रहा है, उसका परिहार द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा वीरकाव्य-धारा ने किया। हिन्दी साहित्य में वीर रस की कल्पना युद्ध वीर तक ही सीमित रही है।<sup>१</sup> इस दृष्टिकोण की परिधि भी प्रायः अधिक विस्तार प्राप्त न कर सकी। आधुनिक युग में नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से युद्ध की परम्परागत परिभाषा बदल चुकी थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत की प्राचीन शासन-व्यवस्था, छोटे-छोटे राज्य इत्यादि सभी कुछ बदल दिये थे। एक केन्द्रीय सत्ता के स्थापित हो जाने पर परम्परागत युद्ध-गीतों



और वीरों के परिवेश भी परिवर्तित हुए। नवीन सांस्कृतिक चेतना से भिन्न-भिन्न टुकड़ों में विभाजित भारत ऐक्य-भावना से उद्वेलित हो उठा। अतः भारतीय सांस्कृतिक गरिमा के पुनर्मूल्यांकन के बाद जनता का मानस इसके तत्त्वों के पोषण और पल्लवन की ओर प्रवृत्त हुआ। इस सांस्कृतिक महत्ता को बनाये रखने के लिए जिन-जिन महापुरुषों ने अपना जीवन अर्पित किया था, उनकी वास्तविक महत्ता का ज्ञान एक नवीन आत्मविश्वास और आत्माभिमान की चेतना उत्पन्न करने में सहायक हुआ। परम्परा से प्रसिद्ध वीर, शिवाजी, छत्रसाल आदि को सीमित दृष्टिकोण से न परखकर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परखा गया। उनकी तुलना अब गान्धी जैसे राष्ट्रीय नेताओं से की गयी।<sup>१</sup>

वीर रस के शास्त्रोक्त एवं मान्य चार भेद—युद्ध वीर, धर्म वीर, दान वीर, एवं दया वीर कहे जाते हैं।<sup>२</sup> यद्यपि 'रस गंगाधर' में आचार्य जगन्नाथ ने पाण्डित्य वीर, सत्य वीर, बलवीर, क्षमा वीर इत्यादि अन्य भेदों की कल्पना की थी तथापि उपर्युक्त चार भेद ही सर्वथा मान्य रहे हैं।<sup>३</sup> प्रायः हिन्दी साहित्य में 'बीसलदेव रासौ' (नरपति नाल्ह), 'बाल्ह खण्ड' (जगनिक), 'पृथ्वीराज रासौ' (चन्द्रबरदाई), 'खुमानरासौ' (दलपति विजय) 'वीरसिंह देव चरित' (केशवदास), 'राजविलास' (मान) 'शिवराजभूषण' (भूषण), 'छत्र-प्रकाश' (लाल) आदि ग्रन्थों में वीर रस के अन्तर्गत, अधिकांश में युद्ध वीर का ही चित्रण किया गया है। आधुनिक काल में उपर्युक्त परिवर्तित परिवेश के कारण वीर रस के परम्परागत स्वरूप में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन और जन-जागरण के युग में अब न केवल युद्ध वीरों पर कविताएँ रची गयीं अपितु परम्परा से प्राप्त दानवीर, धर्मवीर और दयावीरों पर भी कविताएँ लिखी गयीं। इसके अतिरिक्त युग और काल के अनुकूल नवीन वीरों की भी कल्पना की गयी। ब्रजभाषा-काव्य में यह कार्य सर्वाधिक सफल रूप से वियोगी हरि ने अपने वीर रस के ग्रंथ 'वीरसतसई' से किया। अन्य कवियों में लाला भगवानदीन, 'पूर्ण', 'हरिऔध', 'रत्नाकर', 'मिश्रबन्धु' इत्यादि ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योग दिया। परन्तु 'वीर सतसई' इस काव्य-धारा की प्रतिनिधि रचना है।

इस वीरकाव्य-धारा की प्रमुख विशेषता यह रही कि इसमें परम्परागत एवं नवीन दोनों वीरों को व्यापक भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण से ही चित्रित किया। प्रत्येक वीर की वीरता, भारतीयता की पोषक है। देश की स्वतन्त्रता

१. दुलारे दोहावली, पृ० २२।

२. साहित्य कोष—भाग १, पृ० ७३३।

३. वही०, पृ० ७३३।



प्राप्ति और जनता जनार्दन के दुःख-दारिद्र्य निवारण हेतु निरन्तर प्रयत्नशील गांधीजी सत्य और अहिंसा के बल से 'सत्य वीर' कहलाये।<sup>१</sup> इसी भाँति देवर-भाभी के पुनीत सम्बन्धों की रक्षा हेतु विषपान करने वाला 'हरदौल', 'धर्मवीर'<sup>२</sup>, प्रेम की अनन्यता और भक्ति भावना की पवित्रता हेतु तिल-तिल कर घुलने वाली विरहिणी गोपियाँ, 'विरह-वीर'<sup>३</sup>, चन्दन की शैथ्या को छोड़ शर-शैथ्या को ही ग्रहण करने वाले भीष्म पितामह 'प्रकृति-वीर',<sup>४</sup> देश की मान-मर्यादा और स्वतन्त्रता को अपनी नीतियों से सुरक्षित रखने वाले प्रसिद्ध नीतिज्ञ चाणक्य 'नीति-वीर'<sup>५</sup> तथा सामाजिक कल्याण और मानव जाति की सेवा में निरन्तर कर्मशील व्यक्ति 'कर्मवीर'<sup>६</sup> कहलाए। इसके अतिरिक्त परम्परागत दधीचि की अस्थिदान-कथा मानव सेवा और सद्कार्य के लिए आत्म-बलिदान तक करने की प्रेरक बनी। अतः 'दानवीर'<sup>७</sup> के रूप में उनका चित्रण किया गया। कवि वियोगी हरि ने वीर रस काव्य-धारा को नवीन एवं व्यापक अर्थ प्रदान किया। अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए उन्होंने पौराणिक-ऐतिहासिक वीरों की प्रशस्तियाँ लिखने के साथ ही आधुनिक युग के वीरों और वीरांगनाओं पर भी उत्साहवर्द्धक काव्य-रचना की। इस काव्य की एक और विशेषता यह रही कि इसमें पुरुषों के अतिरिक्त नारियों को भी वीर रस का आलम्बन बनाया गया। इस नयी विचारधारा से वीर रस की परम्परा में एक महान् परिवर्तन परिलक्षित होता है।

ब्रजभाषा वीरकाव्य-धारा की इस नवीन विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए 'वीर सतसई' से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

रानी लक्ष्मीबाई की अद्वितीय वीरता का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—

भई प्रगटि रण-कलिका, गढ़ झाँसी-पर तच्छ  
सुभट संहारे लच्छमी, लच्छ लच्छकटि लच्छ<sup>८</sup>

१. वीर सतसई : वियोगी हरि—साहित्यभवन, इलाहाबाद, १९६५ वि०, पृ० ७।
२. वही०, पृ० ७।
३. वही०, पृ० ९।
४. वही०, पृ० १३।
५. वही०, पृ० ५३।
६. रसकलस, पृ० ३१६।
७. वीर सतसई, पृ० १०।
८. आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य : सं० शुक्रदेवविहारी मिश्र एवं डॉ० 'रसाल'—सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००६ वि०, पृ० ६६।



युग के आलस्य और युवकों के विलासी जीवन पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा—

सुमन-सेज संग बाल तुम पोंढे करि सिंगार ।

को भीषम-सर-सेज को अब पत-राखनहार ।<sup>१</sup>

युद्ध वीर का मनमोहक एवं प्राणोत्तेजक चित्र कवि इस प्रकार खींचते हैं—

केसरिया बाणो पहिरि, कर कंकण, उर माल,

रण-दुलह ! वरि लाइयो, दुलहिन विजय सुवाल ।<sup>२</sup>

देश की स्वाधीनता और जाति के उत्थान के लिए जो वीर निरन्तर प्रयत्नशील हैं उन्हें कवि भारत माँ के सच्चे सपूत कहता है और अन्य सबको कपूत । अपनी आन और धर्म की रक्षा हेतु भारत के राजपूतों का इतिहास वीरता की अद्भुत घटनाओं से भरा पड़ा है । कवि ने इस समस्त इतिहास को रूपक के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

लै असि-हुल, जोती मही, बोयो सीस सुधान,

करि सुचि खेती, जस लुन्यो, धनि रजपूत किसान ।<sup>३</sup>

इसके अतिरिक्त कवि ने ऐतिहासिक वीरों पर अन्यान्य कविताएँ रची हैं जिनमें 'चामुण्डराय की वीरता', 'लंगरिराय', 'आल्हा-ऊदल', 'गोरा बादल', 'पद्मिनी-जौहर', 'महाराणा सांगा', 'जयमल और पत्ता', 'महाराणा प्रताप', 'महाराणा राजसिंह', 'शिवाजी', 'चूड़ावत', 'महाराज छत्रमाल', 'गुरु तेगबहादुर', 'गुरु गोविन्द सिंह आदि कविताएँ उल्लेखनीय हैं । आधुनिक वीरों और वीरांगनाओं पर भी इन्होंने प्राणोत्तेजक कविताएँ रचीं, जिनमें से उल्लेखनीय, 'तिलक', 'देशबन्धुदास', 'वीरा', 'चाँद बीबी', 'नील देवी', 'दुर्गावती' इत्यादि हैं ।

वियोगी हरि के अतिरिक्त अन्य कवियों में से कवि 'पूर्ण' ने चन्द्रकुमार भानुकला नाटक में 'हरिऔध' ने 'रसकलस' और फुटकर रचनाओं में, 'सनेही' ने फुटकर रचनाओं में, रत्नाकर ने 'वीराष्टक' में तथा मिश्रबन्धु ने 'लव-कुश चरितसार' में इस काव्य-धारा को प्रवाहित किया । प्रायः इन कविताओं के अधिकांश में परम्परा का ही पालन किया गया तथापि इनमें यत्र-तत्र आधुनिकता का प्रभाव प्राप्त होता ही है । उदाहरण के लिए 'हरिऔध', 'रत्नाकर' और 'सनेही' आदि की रचनाओं में आधुनिक जन-जागरण की प्रवृत्ति स्पष्टतया परिलक्षित होती है । इन तीनों कवियों तथा इस धारा के अन्य सभी कवियों में ब्रजभाषा परम्परा का निर्वाह तथा तत्कालीन राष्ट्रीय स्थितियों के प्रति सजगता और कवि-कर्तव्यपरायणता दृष्टिगोचर होती है ।

१. वीरसतसई, पृ० ८३ ।

२. आधुनिक ब्रजभाषा काव्य: सं० डाँ० 'रसाल' आदि, पृ० ६३ ।

३. वही०, पृ० १०० ।



### प्रेमभाव-धारा

आधुनिक ब्रजभाषा काव्यधारा की दूसरी नवीन प्रवृत्ति परम्परागत रीति-कालीन शृंगारिकता का त्याग और स्वस्थ आदर्शमय समाज-सापेक्ष प्रेम की अभिव्यक्ति है। रीतिकालीन कवियों की संकुचित शृंगारिक प्रवृत्ति में प्रेम जैसा पवित्र सूत्र विकृत होकर कहीं घोर अश्लील तो कहीं मात्र कल्पना का विलास हो गया था। जिस समाज में वासना और विलास के प्रवाह में संन्यासिनें और भक्तिनें भी कुटनियों का कार्य करने लगे, उस समाज की प्रेम और सौंदर्य विषयक विचारधारा कितनी विकृत हो उठी होगी? <sup>१</sup> इस शृंगारिक प्रवृत्ति में प्रेम की अनन्यता, प्रेम की सौन्दर्यात्मक अनुभूति तथा प्रेम के व्यापक विस्तार और प्रभाव की कल्पना या अनुभूति नहीं है अपितु चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति से ही यह प्रेम अथवा शृंगारिक भावना उद्भूत हुई है। <sup>२</sup> विघटन के इस काल में तत्कालीन प्रभावों से मुक्त न होते हुए भी आत्मानुभूति, स्वच्छन्दता एवं स्वतन्त्रता की एक क्षीण लहर रीतिमुक्त कवियों—घनानन्द, ठाकुर, बोधा, आलम आदि में देखी जा सकती है। <sup>३</sup> समय और सामाजिक परिस्थितियों से यह काव्य अपने परिवेश को अधिक स्वस्थ दिशा की ओर उन्मुख न कर सका। यही कारण है कि आधुनिकता को ग्रहण करते हुए भारतेन्दु-युग भी अधिकांश में रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियों से अत्यधिक प्रभावित रहा।

द्विवेदी-युग के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में नायक-नायिका भेद, रूढ़ नस्ल-शिख वर्णन तथा विकृत वासनात्मक प्रेम की तीव्रान्विता आलोचना हुई। मानव सामन्ती वातावरण से निकलकर व्यापक सामाजिक परिधि में प्रवेश कर चुका था। तत्कालीन वैचारिक क्रान्ति एवं राष्ट्रीय जागरण से मानव सामाजिक उत्तरदायित्व को नये परिप्रेक्ष्य में समझने लगा था। विलास और दरबारों की चारदीवारी में बन्द नारी का वासनात्मक रूप अब राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं, जीवन की विषम परिस्थितियों, आये दिन की नितनयी यथार्थ-अनुभूतियों आदि से टकरा-टकरा कर चूर-चूर हो रहा था। उसके स्थान पर सहज, सरल एवं स्वाभाविक सम्बन्धों की स्थापना होती जा रही थी। शारीरिक एवं मांसल प्रेम के स्थान पर सहज भावनाओं का प्राधान्य होता जा रहा था। यद्यपि इस युग के कतिपय कवियों ने रीतिकालीन

१. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना : डॉ० बच्चन सिंह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि०, पृ० ७०।

२. वही०, पृ० ७२-७३।

३. वही०, पृ० २२३-२५।



शृंगारिक प्रवृत्ति का अनुसरण किया तथापि उसमें भी अब संयम और नैतिक अंकुश का आग्रह है। कविवर 'रत्नाकर' की 'हिंडोला', 'शृंगार लहरी' रचनाएँ तथा 'शंकर' और 'सनेही' की शृंगारिक समस्या पूर्तियाँ इसी कोटि की हैं। इन रचनाओं की संख्या कम ही है और निश्चय ही इनका महत्त्व नगण्य है। परम्परा-निर्वाह के साथ इन रचनाओं में कहीं-कहीं लोक-जीवन की झाँकी भी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए नयी बहू का स्वागत, बहु विवाह जैसी रूढ़ प्रथा एवं परम्परागत सौतिया डाह का एक साथ सुन्दर चित्रण कवि 'शंकर' ने निम्न समस्यापूर्ति में किया है—

सास ने बुलायी घर-बाहर की आयीं सो,  
लुगाइन की भीर मेरो घूँघट उघारे लगी,  
एक तिन में की तूण तोरि-तोरि डारे लगी,  
दूसरी सराई राई-नोन की उतारे लगी।  
शंकर जिठानी बार-बार कछु वारे लगी,  
मोद-मही ननदी अटोक टोना टारी लगी।  
आली ! पर साँपिन-सी सौत फुसकारे लगी,  
फेरि मुख 'ह्रा' कर निशाकर निहारे लगी।<sup>१</sup>

ब्रजभाषा काव्य की प्रेम विषयक विचारधारा का प्रतिनिधित्व इस युग में प्रधान रूप से जयशंकर प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल एवं सत्यनारायण 'कविरत्न' ने किया। प्रसाद जी की 'प्रेमपथिक' रचना इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। शुक्ल जी की 'शिशिर पथिक' कथात्मक कविता भी नवयुग की नवचेतना की द्योतक है। इन दोनों रचनाओं में प्रेम को आदर्श स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के रूप में देखा गया है। प्रेम को सामान्य घरातल से सार्वभौम रूप प्रदान करने में प्रसाद जी के 'प्रेम पथिक' का सन्देश महत्वपूर्ण है।

प्रसाद जी का 'पथिक' सामाजिक बन्धनों और रूढ़ परम्पराओं से त्रस्त एवं पीड़ित है। उसकी प्रियतमा को क्रूर समाज की मान्यताओं ने उससे छीन लिया है। प्रियतमा (चमेली) के अनिच्छापूर्वक विवाह के बाद वह विरह से संतप्त अपने 'सुखधाम चारु आराम' को त्यागकर मन की शान्ति के लिए देश-देशान्तर में भटकता है। रास्ते की धूल, 'अंशुमालि' के प्रखर-ताप और पपीहे की 'पी कहँ' से वह रात-दिन त्रसित रहता है। उसके मन की हूक और व्यथा का हाहाकार सुनने वाला कोई नहीं है। उसके मन में प्रेम की सत्यता और अनन्यता पर शंकाएँ उत्पन्न होती हैं, वह हारकर सोचता है—



हो रस मेघ न द्रवत वारि क्यों मीत ।

आशा-लता निरखि हम होत सभीत ॥<sup>१</sup>

उसी समय 'प्रेम' पुरुष प्रकट होकर उसे प्रेम-पथ की दुरूहता एवं दुष्करता से परिचित कराता है । वह पथिक अपनी समस्त व्यथा को उसके चरणों में उँडेलते हुए कहता है—

तेरे तीरथ में करि मज्जन आस,

भए तून्त न कबहूँ बुझी न प्याम ।<sup>२</sup>

और इतने पर भी 'प्रेम' तुम ज़रा भी दया नहीं दिखाते । तब 'प्रेम' उसे अपने वास्तविक स्वरूप से परिचित कराते हुए प्रेम में धैर्य, विरह, त्याग और बलिदान के महत्त्व को भी स्पष्ट करता है । प्रेम की व्यापकता को समझाते हुए वह कहता है—

हिए रखि कछु धीरज, सहि कछु पीर ।

आशा और निराशा नैनन नीर ।

× × × ×

पथिक धीर धरि चलिए पथ अति दूर ।

हूँ कटिबद्ध सदा सनेह में चूर ।<sup>३</sup>

वास्तव में सच्चे प्रेम में प्राप्ति की उतनी अभिलाषा-आकांक्षा नहीं होनी चाहिए जितनी धैर्य, त्याग और उत्सर्ग की भावना होनी चाहिए । प्रेम के व्यापक देश में भटकन, व्यथा और 'पीर' ही प्राप्य हैं । प्रसाद जी की प्रेम-भावना लौकिक आकर्षण और स्थूल शारीरिक सौन्दर्य से आध्यात्मिक तथा सूक्ष्म प्रेम-भावना की ओर उन्मुख है । प्रेम का यह व्यापक और सार्वभौम रूप कवि प्रसाद के मन की अनुभूति को और अधिक सूक्ष्म रूप प्रदान करता है । वे 'नीरव प्रेम' की रहस्यात्मक अनुभूति को भी अनुभव करते हैं—

तरल वीचि तिनादन में कहीं । प्रकृति के मधुराक्षर को पढ़ें ॥

करन व्यक्त चहै वहि भाव को । पर न पावत कोउ उपाव को ॥

तिमि करो तुम केलि अमन्द सो । हृदय में करिके छल छन्द सों ॥

तदपि नाहि कबों दरसात हो । प्रगट होन चहौ छिपि जात हो ॥<sup>४</sup>

१. प्रसाद साहित्य कोश : डॉ० हरदेव बाहरी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०१४ वि०, पृ० २७७ ।

२. वही, पृ० २७७ ।

३. वही, पृ० २७७ ।

४. चित्राधार : (नीरव प्रेम), पृ० १६८ ।



सात्त्विक प्रेम में शारीरिक सम्बन्ध की उतनी महत्ता नहीं जितनी मानसिक एवं आत्मिक तादात्म्य की। ऐसी स्थिति में प्रेमी को समस्त विश्व प्रियतम-मय दीखता है। प्रेम अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति, गहरी सहानुभूति तथा गम्भीर स्नेह-भावना को समस्त संसार में वितरित कर देता है। वह अपनी व्यष्टिगत अनुभूति से समष्टिगत अनुभूतियों तक संवेदनशील हो उठता है। प्रेम की यही वास्तविक उदात्त परिणति है। प्रसाद जी की प्रेम-भावना का यह विशद स्वरूप वास्तव में ब्रजभाषा काव्य-धारा के लिए अमूल्य देन है। प्रेम की इसी भावना का प्रसार 'आँसू' और 'कामायनी' तक देखा जा सकता है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी प्रेम को स्थूल शारीरिक अथवा मांसल प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया। उनकी प्रेम भाव-धारा में भी संयम, त्याग और आदर्श की भावना निहित है। उनका 'पथिक' प्रसाद जी के 'पथिक' की भाँति अविवाहित नहीं है। आर्थिक विपन्नता अथवा विदेशियों के प्रभुत्व के कारण वह किसी अंग्रेज फौजी अफसर के कहने पर अपनी नवविवाहिता वधू को छोड़कर अफगान युद्ध में सम्मिलित होता है। इस कथा में प्रेम के साथ सामाजिक यथार्थ एवं जीवन की विषमता का सुन्दर समावेश हुआ है। शुक्ल जी की 'पथिक-प्रिया' विरह संतृप्त होकर रीतिकालीन नायिकाओं की भाँति निश्चेष्ट होकर विलखती और तड़पती नहीं है अपितु कर्मरत होकर अपने पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रहती है। अपने वृद्ध पिता की सेवा तथा पथिकों के आतिथ्य सत्कार में वह विरह के दिन काटती है।<sup>१</sup> संयोगवश एक ठिठुरती शिशिर सन्ध्या को उसका प्रियतम एक पथिक के रूप में उसके यहाँ आता है। वह एक आदर्श समाज-सेविका की भाँति उसका स्वागत करते हुए उसे घर में बुलाती है—

‘निकसि झाइ बसौ यहि गेह में,

पथिक वेगि संकोच विहाइ कै।’<sup>२</sup>

इस प्रकार प्रेम-भावना को शुक्ल जी ने एक नवीन धरातल प्रदान किया। उन्होंने प्रेमी अथवा प्रेमिका के प्रेम की कसौटी एक ओर धैर्य, संयम और आदर्श को बनाया तो दूसरी ओर उन्होंने यह भी स्थापित किया कि प्रेम की वास्तविक परिणति सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने में ही है। 'हरिऔध' जी ने भी 'रसकलस' में नवीन नायिकाओं की सृष्टि करके प्रेम के इस स्वरूप की ओर इंगित किया था।

अतः यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य में प्रेम-भावना का नवीन स्वरूप विकसित हुआ। कवियों ने मात्र

१. शिशिर पथिक : रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती, मार्च १९०५ ई०, पृ० ८८।

२. वही०, पृ० ८८।



परम्परा-पालन न करके आधुनिक बौद्धिकतावाद के प्रभाव से समाज और देश की परिस्थितियों तथा मानव-कल्याण की भावना को दृष्टि में रखकर प्रेम-भावना को विस्तार दिया। प्रेम को वैयक्तिक हास-विस्वास से ऊपर उठाकर व्यापक सार्वभौम एवं मंगलमय रूप प्रदान किया गया। उदाहरण के लिए शुक्ल जी के 'बुद्धचरित' के एक उद्धरण को इस परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। सिद्धार्थ, यशोधरा के प्रेम और सौन्दर्य से अभिभूत है किन्तु जगत् और जीवन की वास्तविकता एवं सांसारिक विषमताएँ उसकी आत्मा को कचोटती रहती हैं। वह यशोधरा को पर-दुःखजन्य आत्मिक व्यथा समझाते हुए घर पर न रुक सकने की अपनी विवशता इन शब्दों में स्पष्ट कर देता है—

समय आय है इवै है जो कछु होनो सोऊ ।  
जो कुछ हमपै परै सहें हम तुम मिलि दोऊ ।  
जो आत्मा मम व्यथित अपरिचित जीवन के हित,  
जो परदुख लखि दुखी रहत हों मैं ऐसो नित,  
सोचो तो, मन मेरो बिहरणशील उच्चतर,  
रहि है कैसो लगो सदा घर के प्रानिन पर ।<sup>१</sup>

इस मानव-कल्याण के पथ पर अग्रसर होकर प्रेमी को न जाने कितनी यातनाएँ और दुःख सहन करने पड़ते हैं। यह यशोधरा से भी जगत्-हित के लिए उस दुःख को संवहन करने और उसे सहयोग देने के लिए कहता है—

परै दुःख जो कछु धीर धरियो गुनि यह चित  
होय कदाचित् हम दोउन के दुःख सों जग हित ।<sup>२</sup>

प्रेम का यही वास्तविक स्वरूप है। द्विवेदी-युग की खड़ी बोली काव्य-धारा में भी प्रेम-भावना का यही स्वरूप प्राप्त होता है। युग की जागरूक बौद्धिकता की यह आदर्श परिणति है, जो वास्तव में प्रशंसनीय है।

इस सन्दर्भ के अन्त में 'कविरत्न' की 'प्रेमकली' रचना भी विशेष उल्लेखनीय है। इस रचना को उन्होंने प्रेम का स्वरूप, प्रेम का 'आखर' और 'सबद' कहा। उपर्युक्त रचनाओं की भाँति इस रचना में किसी कथा के माध्यम से प्रेम विषयक नवचेतना को प्रस्तुत नहीं किया गया है अपितु उसे सीधे ही विवेचित किया गया है। प्रेम को कवि ने समस्त सृष्टि का आधार माना है<sup>३</sup>, तो प्रेमविहीन 'उर' को शोभाविहीन घोषित किया है।<sup>४</sup> प्रेम-

१. बुद्धचरित, पृ० ८४।

२. वही०, पृ० ८५।

३. हृदय तरंग (प्रेमकली), पृ० ५८।

४. वही०, पृ० ६०।



पथ अत्यन्त दुरूह है, उसके पंथी को अन्यान्य कष्टप्रद स्थितियों से जूझना पड़ता है<sup>१</sup>, किन्तु समस्त जगत् को ऐक्य के भाव में बाँधने की यह 'नरम शृंखला' है।<sup>२</sup> अतः कवि प्रेम की इस महत्वपूर्ण शक्ति को जन-जीवन के कल्याण हेतु आवश्यक मानता है। वह समस्त मानवता की कसौटी भी प्रस्तुत करता है —

श्रम औ निज कर्तव्य धार मुद मंगल देनी ।

जब सनेह सरसुती मिलत तब बहुत त्रिवेनी ॥

यही कसौटी बिस्व माँहि जन मनहि कसन की ।

यह ही साँची वस्तु आत्मबल दैन खसन की ॥<sup>३</sup>

प्रेम को साधारण एवं रूढ़ अर्थ से विश्वबन्धुत्व और सार्वभौमता तक विस्तृत करने का यह प्रयास, आलोच्य ब्रजभाषा-काव्य की अप्रतिम उपलब्धि है। 'कविरत्न' ने 'प्रेमकली' का निर्माण करके ब्रजभाषा-काव्य परम्परा की समस्त रूढ़ कल्पनाओं को ध्वस्त करके प्रेम की समाज, राष्ट्र और विश्व सापेक्ष विवेचना की।

#### प्रकृति भावधारा

आधुनिक ब्रजभाषा काव्य-धारा की अन्यतम उपलब्धि प्रकृति के प्रति नवीन आकर्षण की भावना है।<sup>४</sup> परम्परागत चमत्कार प्रदर्शन हेतु इस युग में प्रकृति निरीक्षण नहीं किया गया। वास्तव में हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता तथा उसकी विविध रूपात्मकता की स्थापना द्विवेदी-युग में ही हुई। ब्रजभाषा कवियों का प्रकृति-आकर्षण एक तो संस्कृत साहित्य के प्रकृति-काव्य के सम्पर्क से उत्पन्न हुआ, दूसरा स्वयं कवि किसी-न-किसी रूप में प्रकृति के स्वच्छन्द रूप से सम्बद्ध रहे। रीतिकालीन कवियों की भाँति इस युग के कवि दरबारों के गलीचों पर न बैठकर वास्तविक गाँव, नगर और पर्वतों के निकट जाकर प्रकृति का निरीक्षण करने लगे। युगानुयुग से दबती चली आ रही काव्य-प्रतिभा इस युग में प्रकृति के स्वच्छन्द प्रांगण में पहुँचकर मुखरित हो उठी। श्रीधर पाठक ने यदि नगरों और पर्वतों के भव्य प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया तो सत्यनारायण 'कविरत्न' और

१. हृदय तरंग (प्रेमकली), पृ० ६२-६३।

२. वही०, पृ० ६७।

३. वही०, पृ० ६७।

४. ब्रजभाषा प्रकृति काव्य-धारा का विवेचन अध्याय तीन में किया जा चुका है। अतः यहाँ पर प्रकृति भाव-धारा के महत्व का संकेत भर किया गया है।



रामचन्द्र शुक्ल ने गाँव और उपेक्षित प्रकृति सौन्दर्य को अभिव्यक्ति दी। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रकृति के आलम्बनगत रूप की नवीन परम्परा का सूत्रपात किया। प्रकृति के सौम्य, सुन्दर और भयावह दोनों रूपों में सौन्दर्य के दर्शन किये गये। रीतिकालीन कवियों की भाँति इस युग के ब्रज-भाषा कवियों के उद्दीपनगत प्रकृति-चित्रण मात्र ऊहात्मक कल्पना न होकर यथार्थ और स्वाभाविकता के अत्यधिक निकट हैं। कविवर प्रसाद ने प्रकृति-वादी रहस्यवाद और छायावादी प्रकृति-चित्रणों की भूमिका अपने ब्रजभाषा प्रकृति-चित्रण के काव्य में ही प्रस्तुत की। कवि 'पूर्ण' ने वसन्त और शरद के मनमोहक चित्र उपस्थित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की। इस युग में वस्तुतः प्रकृति-चित्रण के जितने भी मान्य स्वरूप हैं उन सभी रूपों का ब्रजभाषा प्रकृति भाव-धारा में प्रस्फुटन हुआ। प्रकृति के प्रति कवियों की यह संवेदनशीलता अद्वितीय है।

#### राष्ट्रीय भाव-धारा

भारतेन्दु-युग ने नवीन युगबोध को ग्रहण करते हुए तत्कालीन सामाजिक पतन, आर्थिक शोषण इत्यादि के प्रति जागरूकता की भावना को अभिव्यक्ति दी थी।<sup>१</sup> इसके साथ ही विशिष्ट परिस्थितियों के वश में राज-भक्ति जैसी प्राचीन भावना से वे विमुक्त न हो सके। द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य-धारा ने प्रारम्भिक वर्षों में राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा श्रीधर पाठक के माध्यम से इसी परम्परा का अनुसरण किया था। किन्तु युग के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में इस काव्य ने नवीन जागरूकता का परिचय दिया। सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर इन्होंने न केवल भारत के गरिमामय अतीत की खोज की अपितु भावी नवीन सामाजिक एवं राष्ट्रीय व्यवस्था के प्रति भी ये कवि जागरूक रहे। इस काव्य में नवीनता के आग्रह से आत्मबल, कर्मठता, कृतसंकल्पता, मानवीयता, आदर्शवादिता और बौद्धिकता से समादृत नवीन समाज और राष्ट्र की कल्पना की गयी। राज-नीतिक दृष्टि से किसानों, मजदूरों और निम्न वर्ग के प्रति इन लोगों की सहानुभूति तथा उनके उत्थान के लिए इन लोगों का संघर्ष वास्तव में प्रशंसनीय है। इस दिशा में सर्वप्रथम सत्यनारायण 'कविरत्न' की संवेदन-शीलता आकृष्ट हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन को अधिकाधिक सफल एवं सक्रिय बनाने के लिए इन लोगों ने जो भावप्रवणता प्रदर्शित की वह ब्रजभाषा काव्य-धारा के लिए सर्वथा युगान्तरकारी थी। ब्रजभाषा काव्य की राष्ट्रीय भावधारा

१. ब्रजभाषा काव्य की राष्ट्रीय भावधारा का विवेचन आगे अध्याय छः में किया गया है। यहाँ पर इसके महत्त्व का संकेत मात्र दिया गया है।



का स्वरूप किंचित मात्रा में अपने युग के नेताओं के राजनीतिक दृष्टिकोण से आगे था। उन्होंने सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को जो एक मान कर चलने की परम्परा चलायी उसे तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं ने प्रथम असहयोग आन्दोलन के विफल होने के पश्चात् ही सही अर्थ में स्वीकार किया। जहाँ इस युग के नेता राष्ट्रीय आन्दोलन को पढ़े-लिखे मध्यवर्ग और नगर निवासियों तक ही सीमित रख रहे थे, वहाँ इन कवियों की दृष्टि ग्रामीण जनता और मजदूरों की अपार शक्ति पर पहले से ही थी। संक्षेप में कहा जाये कि प्रस्तुत ब्रजभाषा काव्य में राष्ट्रीयता के भाव को पूर्णरूपेण विकसित देखा जा सकता है। यह काव्य भारतेन्दुयुगीन सीमित राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अधिक व्यापक, गम्भीर एवं सहृदयपूर्ण है।

अनुवादों की सरस परम्परा

उपयुक्त प्रमुख साहित्यगत विशेषताओं के अतिरिक्त इस काव्य-धारा की अन्य विशेषताओं में प्रमुख अनूदित रचनाओं की परम्परा है। वास्तव में 'सरस्वती' पत्रिका ने जिस अनुवादों की परम्परा को प्रारम्भ किया था उसके साथ इस काव्य-धारा की अनूदित रचनाओं की प्रेरणा सम्बद्ध है। अधिकांश अनुवाद संस्कृत साहित्य से किये गये और संस्कृत में भी विशेषकर कालिदास ने इन्हें अधिक आकर्षित किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी काव्य-साहित्य भी इन कवियों को प्रिय लगा। अतः उसमें से विभिन्न कवियों की रचनाओं को सरस एवं प्रवाहमयी ब्रजभाषा में अनूदित किया गया। इन अनुवादों की यह विशेषता थी कि इनमें मूल रचनाओं की भावप्रवणता, संवेदनशीलता और सम्प्रेषणीयता को अद्वितीय ढँग से सुरक्षित रखा गया है। शायद ही कहीं पर अनुवादों में शिथिलता अथवा नीरसता का समावेश हो पाया हो। संक्षेप में अनूदित रचनाओं की तालिका प्रस्तुत है—महावीरप्रसाद द्विवेदी 'विहार-वाटिका' (मूल जयदेव), श्रीधर पाठक 'ऋतु संहार', 'ऊजड़ ग्राम' (डेजेर्ट्स विलेज-गोल्डस्मिथ), राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' 'धाराधर-धावन' (मेघदूत-कालिदास-कृत), सत्यनारायण 'कविरत्न' 'उत्तर रामचरित', 'मालती माधव', होरेशस तथा अंग्रेजी कवि टेनिसन की कुछ कविताएँ, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (एस्से आन क्रिटिसिज्म-पोप) आदि आदि। उदाहरण के लिए 'धाराधरधावन' के एक छन्द को मूल मेघदूत के छन्द के समक्ष रखकर देखा जा सकता है—

कैसे हूँ स्वप्न में जो लहि भरन चहुँ अंग में तोहि प्यारी,  
तो निद्रा की दशा में गगन बिच दोऊ देहुँ बाहें पसारी,  
देखै जो सो अवस्था बनसुर-बनिता शोक धारें महान,  
आँसु के बिदु त्यागें द्रुमन दलन पै स्थूल मोती समान।<sup>१</sup>



सामाकाशप्रणिहितभुजं निदंयाश्लेवहेतो-

लंघायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां

मुक्तास्थूलास्तरुकिमलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥<sup>१</sup>

टेनिसन की प्रसिद्ध कविता 'ईनाक आरडिन' से एक उद्धरण प्रस्तुत है -

लम्बी शैल-श्रेणि खंडित जहाँ घाटी सोहती ।

समुद्र फेन अरु पीत बालुकन तहाँ मन मोहती ॥

दरसत सकरी घाट सट्यो बहुत सदन सुहावन ।

तासों चलि कछु परे जीर्ण गिरिजा गृह पावन ॥

पनचक्की दिसि जान तहाँ ऊपर पथ भ्राजत ।

परे कछुक नभ ओर धवल टीलो पुनि राजत ॥

तहाँ देनिस समसान सघन सुन्दर हरियल बन ।

नरियल बीनन सदाँ सरद में जहाँ आवत जन ॥

नीचे से में लहलहात धरि छटा अथोरी ।

ललित हरित रंग भरी घरी जनु कलित कटोरी ॥<sup>२</sup>

+

+

+

Long lines of cliff breaking have left a chasm ;  
And in the chasm are foam and yellow Sands ;  
Beyond, red roofs about a narrow wharf  
In cluster ; then a moulder'd church ; and higher  
A long street climbs to one tall-tower'd mill ;  
And high in heaven behind it a gray down  
With Danish barrows ; and a hazzel wood  
By autumn nutters haunted, flourishes  
Green in a cuplike hollow of the down.<sup>३</sup>

अनुवादों की इस परम्परा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना पं० रामचन्द्र शुक्ल का एडविन एर्नाल्ड के 'लाइट आफ एशिया' काव्य पर आधारित 'बुद्धचरित' काव्य है । इसका महत्त्व न केवल सफल अनूदित कृति के रूप में है अपितु मुक्तक प्रधान ब्रजभाषा काव्य का यह प्रथम प्रबन्ध काव्य भी है । इसकी भाव-प्रवणता, प्रकृति-चित्रण एवं मनोभाव चित्रण की सूक्ष्मता तथा

१. मेघदूत (उत्तर मेघ), छंद ४३ ।

२. हृदय तरंग, पृ० २६२ ।

३. ईनाक आरडिन : लॉर्ड टेनिसन ।



माधुर्य-प्रसाद समन्वित सानुप्रासिक अलंकारमयी ब्रजभाषा अद्वितीय है। कवि ने इस कृति का अनुवाद इतने मनोयोग और परिश्रम से किया है कि इसकी महत्ता मौलिक कृति के समान ही मानी जाती है। उदाहरण के लिए एक अनूदित स्थल प्रस्तुत है—

खड़ी उत्तर ओर हिमगिरि की अमल प्राकार  
नील नभ के बीच निखरो धवल मालाकार।  
विदित वसुधा बीच जो अद्भुत अगम्य अपार,  
जामु विपुल अधित्यका औ उठे विकट कगार,  
शृंग तुंग तुषार मंडित, वक्ष विशद विशाल,  
लहलहे अति ढार औ बहु दरी, खोह कराल,  
जात मानव छ्यान ले ऊँचे चढ़ाय-चढ़ाय,  
अमर धाम तकाय राखत सुरन बीच रमाय।<sup>१</sup>

+                      +                      +

Northwards Soared

The stainless ramps of huge Himala's wall,  
Ranged in white ranks against the blue-untrod,  
Infinite, wonderful-whose uplands vast,  
And lifted Universe of Crest and crag,  
Shoulder and Shelf, green slope and icy horn,  
Riven ravine and splintered precipice,  
Led climbing thought higher and higher until  
It seemed to stand in heaven and speak with gods.<sup>२</sup>

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के अन्त में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य-धारा ने अद्वितीय प्रगति की। उसने न केवल परम्परागत विषय-संकुचन की प्रवृत्ति को त्यागकर नवीन विषयों की ओर अभिरुचि प्रदर्शित की अपितु प्राचीन विषयों को भी नवीन व्यापक विस्तार प्रदान किया। ब्रजभाषा पर लगाये जाने वाले समस्त आक्षेपों का परिहार इस युग की कविता-धारा से सम्भव हो सका। परम्परा पालन, रूढ़ कल्पना विलास, चमत्कारिक प्रवृत्ति, घोर शृंगारिकता आदि सभी परम्पराओं का त्याग करके नवीन जीवन और जगत् की समीपता इस काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। कवियों ने न केवल नवीन विचारों को ही ग्रहण किया प्रत्युत

१. बुद्धचरित, पृ० ४०।

२. लाइट आफ एशिया : एडविन एनलड।



नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रति भी अपनी रुचि प्रदर्शित की। मोटर (भगवानदीन), पावरहाउस (दुलारेलाल भागवत), रेल ('पूर्ण') आदि पर लिखे गये छन्द इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि इस युग के ब्रजभाषा कवियों की प्रतिभा वास्तव में बहुमुखी थी। संक्षेप में, इस काव्य-धारा ने पूर्णरूपेण आधुनिक बौद्धिकता और भाव-बोध को सफलता से अभिव्यंजित किया।

द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा-काव्य की साहित्यगत विशेषताओं का विवेचन इस काव्य के कला-पक्ष के अनुशीलन से ही पूर्ण होगा। अतः यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण मूल्यांकन के लिए इस काव्य-धारा के कला-पक्ष के विभिन्न तत्त्वों की विवेचना यहाँ पर प्रस्तुत की जाये। इस विवेचना को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है।

### रस

रस काव्य की आत्मा है। संस्कृत एवं हिन्दी के अधिकांश काव्याचार्यों और कवियों ने काव्य में रस की प्रधानता को सर्वोपरि माना है। 'वाक्चातुरी की—अभिव्यंजनाकौशल की—प्रधानता रहने पर भी रस ही काव्य का जीवन है।'<sup>१</sup> ब्रजभाषा काव्य में इस युग के कवियों ने सामान्यतः रस की पूर्ववत् मान्यता को ही स्वीकार किया। मात्र शब्द-चमत्कार, 'लच्छेदार मीठे-मीठे शब्द' अथवा 'कोमल-कान्त पदावली' से उत्तम काव्य की सृष्टि नहीं होती है। इस युग के प्रणेता द्विवेदी जी ने कवियों को रीतिकालीन चमत्कारिक प्रवृत्तियों से बचाने और शुद्ध सरस काव्य रचने की प्रेरणा प्रारम्भ से ही दी थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'रस ही कविता का प्राण है और जो यथार्थ कवि है उसकी कविता में रस अवश्य होता है। नीरस कविता कविता ही नहीं।'<sup>२</sup> ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने भी सामान्यतः रसमय कविता को ही प्रधानता दी और उसके महत्त्व को स्वीकार किया। 'रसनाकर' जी ने काव्य-रीतियों, अलंकार और वक्रोक्ति के महत्त्व को स्वीकार करते हुए<sup>३</sup> रस-युक्त कविता से आनन्द की सृष्टि सम्भव मानी। ".....काव्य आह्लादोत्पादकता के कारणों में से सबसे उत्तम, श्रेष्ठ तथा प्रधान कारण रस है और यह भी हमको स्वीकृत है कि रस-युक्त काव्य से जो आनन्द प्राप्त होता है वह और प्रकार के काव्य से कदापि नहीं हो सकता....."<sup>४</sup> इसी प्रकार कवि श्रीधर पाठक ने

१. काव्य दर्पण : पं० रामदहिन मिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, १९५५ ई०, पृ० ४३।

२. प्राचीन पण्डित और कवि : महावीरप्रसाद द्विवेदी, कमरशल प्रेस, कानपुर, १९१८ ई०, पृ० ३५।

३. माधुरी, जनवरी, १९२६ ई०, पृ० ३।

४. साहित्य सुधानिधि, जून, १८९४ ई०, पृ० १७।



रस की महत्ता को स्वीकार तो किया किन्तु रस की अभिव्यक्ति के लिए साधन-रूप रीति के महत्त्व पर भी बल दिया।<sup>१</sup> कवि 'शंकर' ने मनोहर भावों की रससिक्त आनन्द-मुग्धा बरसाने वाले पद्य को ही काव्य कहा है तथापि इसमें दोषरहित, अलंकृत कोमल-कान्त प्रासादिक पदावली को भी महत्त्वपूर्ण माना है।<sup>२</sup> इसी भाँति सत्यनारायण कविरत्न ने ब्रजभाषा काव्य-लता को हरी-भरी बनाने के लिए 'धनश्याम' से रस बरसाने की प्रार्थना की है।<sup>३</sup> संक्षेप में कहा जाये कि द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा कवियों की रस विषयक विचारधारा प्रौढ़ एवं युक्ति-युक्त थी। उन्होंने रीतिकालीन अतिशय चमत्कारिक प्रवृत्ति को त्याग रससिक्त काव्य को महत्ता प्रदान की। साथ ही इस काव्य के साधनों—कोमल-कान्त पदावली, प्रासादिक भाषा, दोषरहित अलंकार-प्रयोग, उक्ति-चमत्कार, वक्रोक्ति इत्यादि के महत्त्व को भी स्वीकार किया। वास्तव में सच्चे, सरस एवं उत्तम काव्य के लिए इन सब तत्त्वों का सम्यक् समन्वित उपयोग आवश्यक है। संक्षेप में कुछ एक रसों की विवेचना यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :—

### (१) शृंगाररस

रस की इस पूर्ववत् मान्यता को स्वीकार करने के पश्चात् भी इस युग के काव्य में पूर्ववर्ती ब्रजभाषा काव्य की भाँति 'रस संकुचन' की प्रवृत्ति नहीं है। परम्परागत शृंगार और भक्ति तक ही इस युग के कवियों की संवेदन-शीलता आकृष्ट न हुई अपितु युग और समय के अनुकूल अन्य रसों की भी सरस अभिव्यक्ति इस काव्य में प्राप्त होती है। वस्तुतः इस युग में शृंगाररस की रचनाएँ अन्य रसों की तुलना में कम ही हैं। 'रत्नाकर' जी ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने परम्परागत शृंगार रस की अधिकांश रचनाएँ रचीं। कहा जा सकता है कि यह युग रस-वैविध्य का युग था। तत्कालीन जागरूकता के वातावरण में बौद्धिक एवं प्रगतिशील कवि शृंगार रस जैसी रचनाओं की अपेक्षा देश और राष्ट्र के उत्थान एवं नव-निर्माण के लिए उपयुक्त रचनाओं की सृष्टि करना आवश्यक समझता था। इसीलिए इस युग के ब्रजभाषा-काव्य में शृंगार रस की रचनाएँ अल्पसंख्यक ही हैं और इन रचनाओं में भी ('रत्नाकर को छोड़कर) रीतिकालीन प्रवृत्ति की अपेक्षा स्वाभाविकता, यथार्थता एवं संयमशीलता ही अधिक दुष्टिगत होती है। कवियों ने प्रयत्न यह किया कि प्रेम अथवा शृंगार रस की 'रीति' का विस्तार हो, वह संकुचित रूढ़ अर्थ से ऊपर उठकर व्यापक धरातल पर अवस्थित हो। सत्यनारायण कविरत्न इसी

१. प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कार्य विवरण, भाग २, पृ० ३१।

२. शंकर सर्वस्व, पृ० ३६६।

३. हृदय तरंग, पृ० १६७।



दृष्टि से प्रेमी की मनःस्थिति और प्रकृति के व्यापक स्वरूप के तादात्म्य को प्रस्तुत करते हैं—

चारु चाँदनी विलसत में उमगति नित छाती ।

लसत नखत नभ जनु प्रिय पाती तन पुलकाती ॥

चहचहात पंछीगन जनु कोउ राग अलापत ।

सनसनात चलि पवन मनहुँ प्रियतम सुधि लावत ॥<sup>१</sup>

शृंगार रस के परम्परागत स्वरूप की गहरी अनुभूति मिश्रित सुन्दर अभिव्यञ्जना कविवर 'रत्नाकर' ने विशद रूप से की है। उन्होंने प्रायः शृंगार रस के सभी तत्त्वों का विस्तृत विवेचन किया है। वस्तुतः इस युग में शृंगार रस का पूर्ण परिपाक उनकी ही रचनाओं में देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ० भट्ट का कथन द्रष्टव्य है—'उनकी दृष्टि रीतिकालीन कवियों से अधिक पैनी है। स्वाभाविक मनोवेगों की उन्होंने कहीं भी उपेक्षा नहीं की है। ..... विपरीत रति इत्यादि के वर्णनों में उन्होंने परम्परा का अनुसरण मात्र किया है, जहाँ पुरानी लीक का परित्याग करके उन्होंने स्वतन्त्र शृंगारिक चित्रों का निर्माण किया है, वहाँ तो उनके वर्णन निश्चय ही भावपूर्ण तथा कलात्मक बन पड़े हैं।'<sup>२</sup> 'रत्नाकर' जी के राधा-कृष्ण रीतिकालीन राधा-कृष्ण से अधिक भिन्न नहीं हैं। संयोग शृंगार की मादकता और मांसलता के दर्शन 'हिडोला' काव्य में हो सकते हैं। झूला झूलती राधिका का एक सूक्ष्म चित्रांकन प्रस्तुत है—

कबहुँ लतनि में लगि कोउ अंग उधारति सारी,

चौकि चकाइ तुरत तिहि सकुचि सम्हारति प्यारी ।

लखत लाल की ओर लाज-लहेसित नैननि सौ,

कछु जाननि की चाह जाति जानी सैननि सों।<sup>३</sup>

प्रायः शृंगार का यह उत्तेजक मांसल स्वरूप इस काव्य में आद्योपान्त है।<sup>४</sup> शृंगार के दोनों रूपों—संयोग और वियोग का वर्णन 'शृंगार लहरी' में देखा जा सकता है। इस काव्य में भी अधिकांशतः उसी रीति-परम्परा का ही निर्वाह किया गया है। 'उद्धवशतक' विप्रलम्भ शृंगार का अद्वितीय काव्य है। उसमें 'रत्नाकर' जी की काव्य-प्रतिभा की मौलिकता और कलात्मक सूक्ष्मता के दर्शन होते हैं। कवि ने तुल्यानुराग के आदर्श पर कृष्ण की विरह-व्यथा का

१. हृदय तरंग, पृ० ६४।

२. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला, डॉ० विश्वम्भरनाथ भट्ट, पृ० २५७-५८।

३. रत्नाकर ग्रन्थावली (हिडोला), पृ० १५।

४. दे०, वही० छन्द संह्या ६७, ६६-७१ इत्यादि।



अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के चित्रण कृष्ण-राधा प्रेम परम्परा में वस्तुतः अद्वितीय हो हैं—

राधा-मुख-मंजुल-मुधाकर के ध्यान ही सों  
प्रेम-रतनाकर हियें यों उमगत है।  
त्योहीं विरहातप प्रचण्ड सों उमडि अति  
ऊरध उसास कौ झकोर यों जगत है ॥  
केवट विचार की विचारौ पचि हारि जात  
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गात है।  
करत गंभीर धीर-लंगर न काज कछू  
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार 'रतनाकर' जी ने गोपियों के विरह का वर्णन सुन्दर एवं सफल कलात्मक ढँग से किया है। इस वर्णन की एक विशिष्टता यह है कि इसमें कवि ने अनुभावों के चित्रण के माध्यम से ही प्रायः रस-सृष्टि की है जो कुशल कवियों का ही काम है।

## (२) वीर रस

इस युग के ब्रजभाषा-काव्य का सर्वाधिक प्रिय रस वीर है। युग की नवीन परिस्थितियों के प्रभाव से कवियों ने राष्ट्रीय भावना को उद्बलित करने तथा उत्साह स्थायी भाव की सम्यक् संपुष्टि के लिए भारत के अन्यान्य वीरों की वीरता का वर्णन किया। उपर्युक्त विवेचन में इस सम्बन्ध में कवियों की विशेष रुचि एवं देन का उल्लेख किया गया है। वीर रस की सफल रचनाएँ 'हरिऔध', वियोगी हरि, 'पूर्ण', 'शंकर', 'रतनाकर' आदि कवियों ने प्रस्तुत कीं। कवि 'पूर्ण' का एक वीर रसात्मक छन्द प्रस्तुत है—

घावों रे समर वीर गाजौ रे विकट वीर,  
वैरिन को अंग खीर कगहु पछार झार।  
मारौ रे सघन तीर काटौ रे रिपुन भीर,  
छेदौ रे शरीर हूल हूल शूल धार दार ॥  
डारौ रे सबन चीर नैक न बिचारौ पीर,  
औसर मिले ना बीर बाजिडे कौ बार बार।  
शत्रु हिये हार हार भागे शस्त्र डार डार,  
घाव-घाव मार-मार काट-काट फार-फार ॥<sup>२</sup>

१. रतनाकर ग्रंथावली (उद्धवशतक), पृ० १५०।

२. पूर्ण पराग : सं० श्री हरदयालु सिंह, पृ० १०३।



‘हरिऔध’ जी के कर्मवीर का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

काम-धुन-वारो कौन काम है न साधि लेत  
वाकौ सारी काम किये साधना सरत है ।  
घरा में धँसत पैठि जात है पतार हूँ में  
बिहरत नभ में दिसा में पसरत है ।  
‘हरिऔध’ सम्भव बनावत असम्भव को  
लोक को अलौकिक-विभूति बितरत है ।  
बूझ-बल नागर करत है अनागर को  
सूझ-बल गागर में सागर भरत है ॥<sup>१</sup>

वियोगी हरि के ‘सत्यवीर’ का उद्धरण प्रस्तुत है—

नहि बिचल्यौ सतपन्थ तें, सहि असत्य दुःख-द्वन्द्व,  
कलि में गान्धी-रूप ह्वै, पुनि प्रकट्यौ हरिचन्द ॥<sup>२</sup>

नारी को वीर रस का आलम्बन बनाना इस युग की एक नवीन उपलब्धि है। देखिए ‘नीलदेवी’ की वीरता का स्वरूप—

या कटारि सुकुमारि कौ प्रथम चूमि मुख, खान !  
तब नीला अधरानु कौ मधु-रसु कीजौ पान ॥  
बोलि, चूमिहै फिरि कबों अधर सिहनी-केर ।  
शठ ! क्षत्राणी सों कबों कहि है ‘जानी’ फेर ॥<sup>३</sup>

### (३) करुण रस

इस काव्य में करुण रस की सर्जना भी विशद रूप से हुई है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है और आलम्बनप्रिय वियोग, बन्धु विनाश तथा पराभव आदि हैं। राष्ट्रीय पराभव की गहरी अनुभूति ने कवियों के मन को शोकविह्वल कर दिया था। भारत में जहाँ भी देखिए दीन-हीन जनता की करुणाजनक गाथा चित्रित-सी है। कवि सत्यनारायण ‘कविरत्न’ ने भारत माँ की इस करुण दशा का देखिए कितना मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है—

बन्दौ भारत-भुवि महतारी ।

शेष अस्थि पिजर बस केवल, भययुत चकित बिचारी ॥  
रोग अकाल दुकाल सतसई जीरन देह दुखारी ॥  
मुरझाई माधवी लता-सी, जनु पाले की मारी ॥  
गहरे उष्ण उसास भरति जो, नित नव विपति निहारी ॥  
धूल-धूसरित जाकी झलकें अलकें स्वेत उचारी ॥

१. रसकलस, पृ० ३१८-१९।

२. वीर सतसई, पृ० ७।

३. वीर सतसई, पृ० ७६-७७।



अंचल फटे-लटे तन ठाडि, सुधि बुधि सकल बिसारी ।

तदुपरि देश विदेश पुत्र दुख, चिन्ता-व्याकुल भारी ॥<sup>१</sup>

रस की दृष्टि में इस पद में भारत का पराभव आलम्बन, फटा अंचल, श्वेत धूलि धूसरित अलकों, अस्थि पंजर शरीर उद्दीपन, उच्छवास, मुरझायी दशा, अनुभाव तथा रोग, दैन्य, चिन्ता विषाद आदि संचारी भाव हैं। इनसे परिपुष्ट होकर स्थायी भाव शोक करुण रस में परिणत हुआ है। इस काव्य में ऐसे चित्रण प्रायः मिल जाते हैं।

युद्ध में मरे एक वीर के शव पर उसकी पत्नी का करुणाजनक उद्रेक भी द्रष्टव्य है—

कबहुँ नहि कियो कन्त, आलस्य जगत हे नेकहि खटका पाय ।

निपट वेखटके सोवत नाथ ! आज की कैसी निद्रा हाय ?

कबहुँ जो जाते हुते परदेस आप, वा खेलन काज सिकार ।

होत हो दारुन हमें क्लेस, रैन दिन प्रानन सालन हार ॥

हाय ! सोइ प्रीतम प्रेमनिधान, आज तुम गये नहीं परदेस ।

गये तुम सुरपुर हमें बिहाय, सदा को, हाय अपार क्लेस ॥<sup>२</sup>

#### (४) भक्ति रस

ईश्वर में परम अनुरक्ति को भक्ति की संज्ञा प्राप्त हुई है। भक्ति रस अत्यन्त व्यापक रस है। भक्त की अनन्यता, दैन्यता, प्रेम भावना, अनुराग-भावना इत्यादि इस रस की उत्कटता को तीव्र कर देती है। इसका स्थायी भाव ईश्वरानुराग है। इसके आलम्बन ईश्वर, राम, कृष्ण आदि अवतार; उद्दीपन भगवान का अद्भुत स्वरूप, उसके अलौकिक गुण आदि, अनुभाव रोमांच, गद्गद् वचन आदि तथा संचारी भाव हर्ष, गंव, निर्वेद, औत्सुक्य आदि हैं। आलोच्य-काव्य में भक्ति रस की अत्यन्त सुन्दर सृष्टि हुई है। ब्रज-भाषा काव्य में भक्ति रस की अन्यतम परम्परा रही है। अतः कवियों के भक्ति रस विषयक पद्य प्रायः परम्परा से ही सम्बद्ध हैं : गहनानुभूति के आधार पर 'कविरत्न' की भक्ति रस की रचनाएँ सर्वाधिक संवेदनशील एवं मार्मिक हैं। इस काव्य में कवि की वैयक्तिक अनुभूति और राष्ट्रीय भावना का अप्रतिम समन्वय भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त कवियों ने कबीर, सूर आदि कवियों की भक्ति-भावना का भी अनुसरण किया है।

सत्यनारायण 'कविरत्न' की भक्ति-भावना का मार्मिक स्रोत उपालम्भ के पदों में फूट पड़ा है। इनमें एक ओर कवि की अनन्य भक्ति अभिव्यक्त हुई है

१. हृदय तरंग, पृ० ५३ ।

२. पूर्ण पराग, पृ० १०५-०६ ।



तो दूसरी ओर जीवन और जगत् की विडम्बनाओं से दुःखाभिभूत भक्त की भगवान से शिकायत सुन्दर रस की सृष्टि करती है।<sup>१</sup> कबीर की भाँति कवि 'शंकर' लिखते हैं—

आज अली बिछुरो पिय पायो ।

मिट गये कलेस री ।<sup>२</sup>

भक्ति रस के अन्तर्गत प्रायः सभी परम्पराओं का सफल निर्वाह इस काल के काव्य में प्राप्त होता है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने ब्रह्म के निराकार स्वरूप<sup>३</sup>, ब्रह्म की व्यापकता<sup>४</sup>, एवं ब्रह्म और माया का अभिन्नत्व<sup>५</sup>, रत्नाकर ने भगवान की अमीम भक्तवत्सलता<sup>६</sup>, दैन्य प्रदर्शन<sup>७</sup> तथा दुलारेलाल भागवत ने अनन्त प्रकाश में लीन होने की उत्सुकता<sup>८</sup>, जीव और आत्मा का सम्बन्ध<sup>९</sup> आदि को इस रस के अन्तर्गत विवेचित किया है। 'हरिऔध' की 'प्रेमाम्बुवारिधि' रचना स्तुति, विनय एवं प्रार्थना आदि विषयक पदों का संग्रह है जो परम्परागत भक्ति—काव्य की कोटि में आता है।

संक्षेप में कहा जाये कि इस समस्त काव्य-धारा में प्रायः सभी रसों की सफल निष्पत्ति हुई है। उपर्युक्त प्रधान रसों के अतिरिक्त इस काव्य में रौद्र<sup>१०</sup>, वीभत्स<sup>११</sup>, शान्त<sup>१२</sup>, वात्सल्य<sup>१३</sup>, अद्भुत<sup>१४</sup>, आदि रसों की सरल अभिव्यंजना प्राप्त होती है।

१. हृदय तरंग, पृ० ३३-३६।
२. शंकर सवस्व, पृ० २६।
३. पूर्ण संग्रह, पृ० १८५।
४. वही०, पृ० १८८।
५. वही०, पृ० १९०।
६. रत्नाकर ग्रन्थावली, पृ० ४३१।
७. वही०, पृ० ३६६।
८. दुलारे दोहावली, पृ० ३१।
९. वही०, पृ० ५५।
१०. रत्नाकर ग्रन्थावली (भीष्म प्रतिज्ञा), पृ० ४८६।
११. पूर्ण पराग, पृ० ६३।
१२. बुद्धचरित, पृ० ६३ तथा रत्नाकर ग्रन्थावली (प्रकीर्ण पदावली), पृ० ५५५।
१३. हृदय तरंग, पृ० ६६ तथा रत्नाकर ग्रन्थावली, पृ० ४२५।
१४. बुद्ध चरित, पृ० १४३ तथा रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण) पृ० २५२।



काव्य रस की दृष्टि से प्रस्तुत युग के काव्य में न केवल शास्त्रोक्त सभी रसों का समावेश हुआ अपितु रसों के अन्तर्गत सामान्यतः मनोभावों का सम्यक् एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण भी किया गया। आधुनिक युग का कवि जब सीमित काव्य-विषयों से विषय-व्यापकता की ओर अग्रसर हुआ तो उसने मानव-मन के अनेक मनोभावों को चित्रित किया। तत्कालीन राष्ट्रीय जागृति के वातावरण में कवि ने कभी देशभक्ति के गीत गाये तो कभी देश की दरिद्र जनता और कृषकों की दुर्दशा के अनेक मार्मिक चित्रण भी प्रस्तुत किये। सामाजिक ह्रास और धार्मिक पतन से विह्वल होकर कवि ने कभी आक्रोश, कभी उपदेश तो कभी व्यथा की गहरी अनुभूति को अभिव्यंजित किया।

आलोच्य ब्रजभाषा-काव्य के इस अंग की विवेचना परम्परागत 'रसानुभूति' की दृष्टि से करने पर यह कहा जा सकता है कि यह काव्य गहन अनुभूति की स्थिति तक पहुँच कर पाठक को विचार और विवेक के स्तर पर उत्तेजित करता है 'रसमग्न' नहीं। तो क्या यह काव्य उच्चकोटि का काव्य कहलाने योग्य नहीं है? प्राचीन दृष्टिकोण से कहा जाये तो नहीं है। परन्तु इस काव्य में अभिव्यक्त नवीन युगबोध, राष्ट्रीय और सामाजिक उन्मेष की भावना, अनुभूति की सचाई, प्रतीक योजना, भावना की गम्भीरता आदि को दृष्टि में रखते हुए यह कहना संगत नहीं है कि यह काव्य उच्चकोटि का नहीं है। वास्तव में आधुनिक युग की परिवर्तित परिस्थितियों में 'रस-दृष्टि' से इस काव्य को मूल्यांकित करना 'रसानुभूति' और इस काव्य, दोनों के प्रति बन्ध्या होगा। प्रकृति-काव्य की जो उदात्त अभिव्यंजना इस काव्य में प्राप्त होती है, वह समस्त हिन्दी साहित्य में पहले कहीं नहीं थी। राष्ट्रीयता और देशभक्ति, समाज के सुधार और उत्थान का जो गरिमामय सन्देश इसमें मिलता है उसका समुचित सम्मान करना आवश्यक है। इस काव्य में निश्चय ही परम्परागत रस विषयक विचारधारा के परिवर्तन का स्पष्ट संकेत सामने आता है जिसका समुचित विकास झड़ी बोली कविता में हुआ। स्वच्छन्दतावाद के इस युग में सामान्यतः कवि बन्धनों से मुक्त होने की अदम्य अभिलाषा से काव्यक्षेत्र में प्रवृत्त हुए। उन्होंने जो परम्परागत 'रसानुभूति' की मान्यता काव्य में स्वीकार की वह अवश्य ही सराहनीय है किन्तु जहाँ उनके काव्य में व्यापक मानवीय घरातल की समाविष्टि के कारण अनुभूति प्रधान विचारोत्तेजक भावना का समावेश हुआ वहीं निश्चय ही इस काव्य की महत्ता अधिक बढ़ जाती है। मनोविज्ञान और विज्ञान के युग में नये-नये खालम्बनों और संचारियों की सृष्टि होना स्वाभाविक है, साथ ही प्रत्येक अनुभूति की रसानुभूति होना आवश्यक नहीं है। यह युग आत्मान्वेषण और जिज्ञासा का युग था। अतः 'रसानुभूति' का व्यापक प्रसार होना सम्भव न



था तथापि मनोवैज्ञानिक चित्रणों और प्रकृति-काव्य के उदात्त सौन्दर्य को दृष्टि में रखकर इस काव्य को रस-काव्य की संज्ञा देनी चाहिए। यह रस काव्य परम्पराविमुक्त नवीन रस-काव्य ही होगा जिसमें अनुभूति प्रधान भाव की सृष्टि से ही पाठक का मन प्रभावित हो उठे।

इस प्रकार न केवल परम्परागत मनोभावों को मनोवैज्ञानिक अभिव्यञ्जना विविध रसों में प्राप्त होनी है अपितु नवीन वातावरण में स्पन्दित हो रही नवीन भावनाओं का भी सफल चित्रण किया गया। इन दोनों प्रकार के चित्रणों को निम्न उद्धरणों में देखा जा सकता है।

‘कविरत्न’ का एक मार्मिक उद्धरण प्रस्तुत है—

भयो क्यों यह अनचाहुत को संग ।  
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतंग ॥  
लखि तब दीपति-देह-शिखा में निरत विरह-लौ लागी ।  
खिचति आप सों आप उतहि, यह ऐसी प्रकृति अभागी ॥  
यदपि सनेह भरी तव, बतियाँ, तउ अचरज की बात ।  
योग बियोग दोउन में इक सम नित्य जरावत गात ॥  
....

यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै ।

सत्य बतावहु, का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै ॥<sup>1</sup>

कहते हैं कि कवि सत्यनारायण ‘कविरत्न’ का वैवाहिक जीवन अत्यन्त कष्टप्रद एवं असह्य था। वे स्वयं तो सात्त्विक मनोवृत्ति के सनातनधर्मी थे दूसरी ओर उनकी पत्नी आर्य समाजी महिला थीं। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य बातें इन दोनों के व्यक्तित्व में अनमेल थीं। ऐसी परिस्थितियों में भावुक कवि तथा सात्त्विक मनोवृत्तियों का एक अनन्य भक्त दीर्घकालीन पारिवारिक जीवन की कटुता तथा असहनीय अनवरत उपेक्षा के दमघोंटू वातावरण से अभिभूत होकर कितने मनोवैज्ञानिक ढँग से अपने जीवन की व्यथा को भगवान के समक्ष रखता है। एक ओर कवि मन का हाहाकार है तो दूसरी ओर भक्त का भगवान को उपालम्भ है कि वह क्यों अपने भक्तों को इस अकल्पनीय वेदना के सागर में निस्सहाय छोड़ देता है।

कवि ‘रत्नाकर’ को भी ‘उद्धवशतक’ में मनोभावों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में सफलता मिली है। उदाहरण के लिए जब उद्धव कृष्ण से उनके रुदन का कारण पूछते हैं तो कृष्ण भाव विह्वल होकर और जोर से रोने लगते हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि संवेदना पाकर दुःखानुभूति और भी तीव्र हो उठती



है। गोपियों को अपने प्रेम पर गर्व है और वे यह भी कभी नहीं मान सकतीं कि उनके प्रति कृष्ण के प्रेम में कोई अन्तर आया होगा। कुब्जा ने ही उन्हें सताने तथा उनके प्रेम को अपमानित करने के लिए उद्धव को भेजा है, ऐसा उनका अनुमान है। इसीलिए वे उद्धव से कहती हैं—

रसिक-सिरोमणि को नाम बदनाम करौ  
मेरी जान ऊँची कूर-कवरी-पठाए हौ ।<sup>१</sup>

स्त्री-सुलभ ईर्ष्या का यह सुन्दर एवं स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण है।

मनोवैज्ञानिक चित्रणों के अतिरिक्त इस काव्य में मानवीकरण की भी एक प्रबल प्रवृत्ति प्राप्त होती है। इस प्रवृत्ति का प्रयोग यद्यपि शृंगार आदि रसों में होता रहा किन्तु इन कवियों ने इसका प्रयोग विशेष रूप से प्रकृति-चित्रण में किया है। कवि प्रकृति की अनुभूति और मानवीय भावनाओं को समन्वित करके प्रकृति को चेतन शक्ति प्रदान करता है। प्रकृति में मानवीय भावनाओं की छाया दिखायी देने लगती है अथवा वह मानवी क्रिया-कलाप से युक्त होकर प्रस्तुत होती है। भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण को पूर्ण रसानुभूति नहीं स्वीकार किया वरन् 'रसाभास' और 'भावाभास' के अन्तर्गत माना है। परन्तु यह संवेदनशील मनःस्थिति रसात्मक आनन्द के समकक्ष है।<sup>२</sup> प्रकृति-काव्य के अन्तर्गत भी रस की अपूर्व सृष्टि की सम्भावना है। कवि की गहरी अनुभूति और संवेदनशीलता से प्रकृति का स्वरूप पूर्ण रसदशा को प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार के सचेतन एवं मानवीकृत प्रकृति-चित्रणों की सुन्दर भावाभिव्यक्ति विवेच्य-युग के ब्रजभाषा काव्य में हुई है जिसका विवेचन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर एक उद्धरण ही यथेष्ट होगा। पावस की फुहार और रसभीनी वायु के वातावरण में कवि कल्पना करता है—

रज बिहीन पतरी लतिकन को देखहु लहकन ।

धूँघट पट सों मुख निकारि चाहत जनु चहकन ॥

झरत दुमन सों सुमनसौरभित डारनि हलि हलि ।

मनहुँ देत बनयली तोहि स्वागत-पुष्पांजलि ॥<sup>३</sup>

इस विवेचन के अन्त में यह कहा जा सकता है कि आलोच्य काव्य में रस की दृष्टि से उत्तम काव्य की सर्जना हुई। सभी रसों की सुन्दर सर्जना करते हुए कवियों ने मनोवैज्ञानिक चित्रणों और आधुनिक व्यापक दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखा। मानव-जीवन के प्रायः सभी पक्षों पर कवियों की

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (उद्धवशतक), पृ० १७५ ।

२. प्रकृति और काव्य : डा० रघुवंश, पृ० ७३ ।

३. हृदय तरंग, पृ० ६१ ।



दृष्टि गयी। देश, राष्ट्र, समाज, धर्म, प्रकृति, दरिद्र जनता, कृषक आदि सभी को इस रस-काव्य में उपयुक्त स्थान मिला।

### छन्द

“अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है।”<sup>१</sup> काव्य में निहित सौन्दर्य को उपयुक्त रस-निष्पत्ति तक ले जाने का साधन छन्द है, कदाचित् इसीलिए विभिन्न रसों के उपयुक्त छन्दों का कोटि-विभाजन भी किया गया है—जैसे शृंगार रस के लिए बरवै, दोहा और सवैया अधिक उपयुक्त ठहराये जाते हैं।<sup>२</sup> तात्पर्य यह है कि विभिन्न रसों के सम्यक् परिपाक के लिए उपयुक्त छन्द का चुनाव होना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि कवि प्रतिभा के अनुसार किसी भी छन्द का उपयोग नहीं कर सकता। आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य को परम्परा से कवित्त, सवैया, बरवै, दोहा आदि छन्दों की प्राप्ति हुई थी। रीतिकाल में आकर अन्य काव्य-परम्पराओं की भाँति छन्दों की परम्परा भी रुढ़ हो चली थी। कविगण गिने-गिनाये छन्दों का ही प्रयोग करते रहे।<sup>३</sup> द्विवेदी-युग में खड़ी बोली काव्य को स्थायित्व प्रदान करने हेतु द्विवेदी जी ने संस्कृत वर्णवृत्तों के प्रयोग पर बल दिया था। ब्रजभाषा काव्य को छन्दों की अबाध परम्परा प्राप्त थी। उसे किसी नये छन्द की आवश्यकता न दीख पड़ी। अतः इस युग के ब्रजभाषा काव्य में प्रायः प्राचीन छन्दों को ही अपनाना अधिक श्रेयष्कर समझा गया। छन्द तो मात्र बाहरी वस्तु है, आत्मा में यदि गहरी अनुभूति और रसमय उद्रेक हो तो छन्द भी संप्राण हो उठता है। इस युग के कवियों के छन्द-प्रयोग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन्होंने अत्यन्त सचेत होकर छन्दों का प्रयोग किया और छन्द-नियमों का अक्षरशः पालन किया। “इस समय की ब्रजभाषा कविता में छन्द सम्बन्धी यति और गति सम्बन्धी दोष बहुत कम मिलेंगे।”<sup>४</sup>

इस काव्य में परम्परागत कवित्त, सवैया, छन्दों का प्रयोग तो हुआ किन्तु अधिकतर रोला, हरिगीतिका, दोहा आदि का ही प्रयोग किया गया। इसके अतिरिक्त महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकरप्रसाद, नाथूराम शंकर शर्मा आदि ने कई नवीन मिश्रित छन्दों का भी प्रयोग किया। नये प्रयोगों के लिए कवि ‘शंकर’ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने ‘लावनी’ और ‘गजल’ के अन्त्यानुप्रास

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० २६०।

२. आधुनिक ब्रजभाषा काव्य : डा० जगदीश वाजपेयी, पृ० २३६।

३. वही०, पृ० २३७।

४. वही०, पृ० २३६।



क्रम को अपना कर कई मात्रिक और वर्णिक छन्दों की सृष्टि की।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त मिश्रित छन्दों में इन्होंने किसी छन्द के चार चरणों के साथ मिलिन्द पाद के दो चरण जोड़कर नये छन्द की भी सृष्टि की, जैसे—भुजंगप्रयात मिलिन्दपाद, थोटक मिलिन्दपाद आदि। इसके अतिरिक्त युग के प्रारम्भ में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ब्रजभाषा-काव्य में भी संस्कृत के वर्णिक छन्दों को लाने का प्रयास किया था। यह प्रयास कदाचित् रीतिकालीन छन्द-संकुचन के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप किया गया था। फलतः उन्होंने तथा कवि 'पूर्ण' ने वर्णिक छन्दों को अपनाने का प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए द्विवेदी जी ने स्वयं हरिगीतिका, शिखरिणी, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीडित, वसंततिलका, इन्द्रवज्रा, स्रग्धरा, दुतविलंबित, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग किया।<sup>२</sup> इसी परम्परा में कवि 'पूर्ण' ने भी स्रग्धरा आदि छन्दों के प्रयोग किये।<sup>३</sup> किन्तु ये छन्द केवल विभिन्न प्रकार के छन्द लिखने के लिए ही लिखे गये और कोई विशेष उद्देश्य इनमें निहित नहीं था।<sup>४</sup> वस्तुतः ब्रजभाषा के चिर-परिचित छन्दों का ही प्राधान्य इस युग में रहा। उदाहरण के लिए कविवर 'रत्नाकर' की रचनाओं को लिया जा सकता है। उन्होंने जहाँ मुक्तकों की रचना कवित्त एवं सर्वया छन्दों में की वहीं प्रबन्धात्मक रचनाओं के लिए रोला छन्द को ही अधिकतर अपनाया। 'हरिश्चन्द्र', 'कल-काशी', 'गंगावतरण', 'हिंडोला' आदि में रोला छन्द को उन्होंने अपनाया। इसी प्रकार 'कविरत्न' ने अपनी मार्मिक भक्ति-भावना को परम्परागत पद-शैली में ही प्रवाहित किया। संक्षेप में कहा जाये तो विभिन्न विषयों की दृष्टि से सामान्यतः रोला छन्द में शृंगार, वर्णन-वैचित्र्य, करुण आदि; दोहा में नीति उपदेश, शूरता आदि, सर्वया में शोभा-चित्रण; कवित्त में भक्ति, वीर प्रकृति-चित्रण आदि विषयों की सृष्टि की गयी। उदाहरण के लिए कुछ छन्द प्रस्तुत हैं—

कवित्त—यह मुक्तक वर्णिक छन्द की कोटि में माना जाता है। इसके ३१ अक्षरों में १६ एवं १५ पर यति और अन्तिम वर्ण गुरु होता है—

कज्जल पहार डारि-डारि निधि वारि बीच  
घोरि घोरि मंजु मसि भाजन भराइ ले।

१. दे०, अध्याय पाँच (छन्द)।

२. द्विवेदी ग्रन्थावली (विहारवाटिका) : संप्रहर्कर्ता—देवीदत्त शुक्ल, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद १९४० ई०, पृ० २१-३१।

३. कविता कलाप (रम्भाशुक संवाद), पृ० ७।

४. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १२६।



रुचिर सँवारि सुठि विस्तरित अचला के  
खोलि खोलि परत सु पत्तिरा सजाइ ले ॥  
सुन्दर पुरन्दर के नन्दन सुकानन सों  
पारिजात की उपार लेखनी बनाइ ले ।  
लहि एती संपदा मदा ही लिखे सारदा जो  
गाइले न तब गुन पार कों न पाइ ले ॥<sup>१</sup>

रोला — २४ मात्राओं का यह मात्रिक सम छन्द है । इसमें सामान्यतः  
११ और १३ पर यति का प्रयोग होता है ।  
फलकि फेन उफनाइ आइ राजत जरि जल पर ।  
मनहुँ सुधा-निधि महत सुधा उमहत तरि तल पर ॥  
फबति फुही की फाब घूम-धारा लों धावति ।  
गिरि-कोरनि पर मोर-पंख-तोरन-छबि-छावति ॥<sup>२</sup>

हरिगीतिका — २८ मात्रा का यह छन्द है, इसके अन्त में गुरु होता है—  
पल्लव लता नव विशद किशलय शोक उर उपजावहीं ।  
सुन्दर सुगन्धित मंद मारुत सुमन सुचित सतावहीं ॥  
गुंजत भ्रमरवर भंजु कंजनि लखत तप तन तावहीं ।  
ब्रजराज विनु सब काज आज अकाज करि अकुलावहीं ॥<sup>३</sup>

### अलंकार

अलंकार काव्य में भावोत्कर्ष का साधन है । कवि अपने विविध भावों की संपुष्टि तथा उनकी प्रभावोत्पादिका शक्ति बढ़ाने के लिए अलंकारों का माध्यम ग्रहण करता है । वस्तुतः काव्य में भावनाओं का जब उद्रेक होता है तो अलंकार अपने आप स्वाभाविक रीति से भाव के साथ संपृक्त हो जाते हैं । इस प्रकार के अलंकार-प्रयोग से काव्य में रस की सम्यक् सृष्टि होती है । जब कवि भावों को अधिक प्रेषणीय बनाने हेतु अलंकारों का साधन ग्रहण न करके अलंकारों की विविध योजना को ही साध्य बनाता है तो काव्य की गरिमा का ह्रास होता है । आधुनिक काल ने रीतिकालीन इसी अलंकारप्रियता का तीव्र विरोध किया । अतः विवेच्य-युग के ब्रजभाषा-काव्य में सामान्यतः अलंकारों का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक ढँग से हो हुआ है । प्रयोग और मात्रा की दृष्टि से कहा जाये तो श्रीधर पाठक के काव्य में अलंकारों का प्रयोग सब से कम हुआ है और 'रत्नाकर' जी के काव्य में सर्वाधिक । कवि शंकर के अधिकांश ब्रजभाषा-काव्य में अलंकारप्रियता के दर्शन होते हैं । इसी प्रकार

१. हृदय तरंग, पृ० २० ।

२. रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण), पृ० २६८ ।

३. द्विवेदी काव्य माला, पृ० २३ ।



यदि अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अलंकार 'कविरत्न' और 'हरिबोध' को अधिक प्रिय रहे तो रूपक, सन्देह, व्याजस्तुति, दीपक आदि 'रत्नाकर' जी को। इन अलंकारों के अतिरिक्त अन्यान्य अलंकारों की योजना इस काव्य में हुई है। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

अनुप्रास—घुमड़ि-घुमड़ि घन घनो घूम घिरि घोर घमण्डल ॥

कारे कजरारे मतवारे घूरवा धावत ।

मुख सरसावत हिय हरसावत जब बरसावत ॥<sup>१</sup>

यमक—बस न हमारी, करहु बस बस न लेहु प्रिय लाज,

बसन देहु, ब्रज में हमें बसन देहु ब्रजराज ॥<sup>२</sup>

रूपक—प्रथम चुराय चाय-नाय पै चढ़ाई नीके

न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं ।

प्रेम-रत्नाकर की तरल तरंग पारि

पलटि पराने पुनि प्रन पतवारी तैं ॥

और न प्रकार अब पार लहिबै को कछू

अदांकि रही हैं एक आस गुनवारी तैं ।

सोऊ तुम आइ बात विषम चलाइ हाय

काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ॥<sup>३</sup>

उत्प्रेक्षा—कल कपोल सों लट लटक, युगल कुचन पै भाति ।

सटकारी नागिन मनौ, जशि तजि मेरुहि जाति ॥<sup>४</sup>

अपन्हुति, यथासंख्य तथा परिकरालंकार एक ही छंद में—

चाल पर मरालगन कर पै मृणाल कंज,

भूंग जाल बारन पै मन को भुलायो है,

नैनन पै खंज-बुंद रीझो चंद आनन पै,

तप को बिधान सब ही के मन भायो है ।

एक पग ठाढ़े कोऊ, बूझत भ्रमत कोऊ

भसम रमावै कोख फेरा देत धायो है,

राधे हरि प्यारी तेरे रूप के उपासकन,

जग को सरद में तपोबन बनायो है ॥<sup>५</sup>

१. हृदय तरंग, पृ० ८६ ।

२. दुलारे दोहावली, दोहा संख्या ८६ ।

३. रत्नाकर ग्रन्थावली (उद्धव शतक) छंद ६६ ।

४. हृदय तरंग, पृ० २२२ ।

५. पूर्ण संग्रह, पृ० ११५-१६ ।



इन परम्परागत अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों—ध्वन्यर्थ व्यंजना तथा मानवीकरण के भी प्रयोग मिलते हैं। यद्यपि ये दोनों अलंकार ब्रजभाषा-काव्य में प्रचलित थे, तथापि आधुनिक युग में इनकी महत्ता अधिक स्वीकार की गयी है। परवर्ती खड़ी बोली काव्य में इन अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। इन दो अलंकारों में से ध्वन्यर्थ व्यंजना का सर्वाधिक प्रयोग 'कविरत्न' ने किया है। कहा जा सकता है कि यह और अनुप्रास उनके प्रिय अलंकार थे। इनके अतिरिक्त 'रत्नाकर' तथा 'पूर्ण' ने भी इसका प्रयोग किया है। मानवीकरण का प्रयोग प्रायः प्रकृति-चित्रणों में हुआ है। उदाहरण के लिए ध्वन्यर्थ व्यंजना का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है—

उछरि-उछरि जल-छाल-छिरकि क्षिति छर-र-र छकति ।

चंचल चपला चम चमाति चहुँधा चलि चमकति ॥

+ + + +

घर कोठनि की तरकनि दरकनि माँटी सरकनि ।

देखहु तिनकी अर र र-र र ऊपर सों ररकनि ॥

+ + + +

यमुना ढरकि करारनि दै दै ढका ढछावति ।<sup>१</sup>

अन्त में कहा जा सकता है कि विवेच्य-काल के अधिकांश कवियों में अलंकारों के प्रति विशेष मोह नहीं है। जहाँ कहीं अलंकारों का समावेश है वहाँ वे सप्रयास न होकर स्वाभाविक ढँग से प्रयुक्त हुए हैं। सप्रयास अलंकारों के उद्धरण कम ही मिलते हैं। अतः द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य में यह एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित होता है।

#### पद-योजना एवं भाषा

विवेच्य ब्रजभाषा-काव्य की भाषा निस्सन्देह प्रौढ़ एवं सशक्त है। रीति-कालीन काव्य की भाँति इसमें भाषा के मनमाने प्रयोग प्रायः नहीं किये गये। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक अर्थ एवं काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि करने की प्रवृत्ति इस काव्य में प्रायः सर्वत्र देखी जा सकती है। शुद्ध और व्याकरण सम्मत भाषा का उल्लंघन शायद ही किसी कवि ने किया हो। 'हरिऔध', 'रत्नाकर', 'पूर्ण', 'कविरत्न', श्रीधर पाठक, दुलारेलाल भार्गव, वियोगी हरि आदि की भाषा आदर्श साहित्यिक एवं प्रौढ़ ब्रजभाषा कही जा सकती है।

#### पद-योजना

अर्थव्यंजकता की शक्ति और भाव-सौन्दर्य की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने का दायित्व भाषा के ऊपर रहता है। अतः भाषा के चित्रमयता, नाद-सौन्दर्य,



लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता, ध्वन्यर्थ व्यंजना आदि गुणों का कवि को विशेष उपयोग करना पड़ता है। विवेच्य-काव्य इन सभी गुणों से परिपुष्ट होकर उत्कृष्ट व्यंजकता और सौन्दर्य की सृष्टि करने में समर्थ रहा है। इस काव्य में ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि बिहारी की पद-योजना और उसके शब्द-प्रयोगों को आदर्श बना लिया गया। 'रत्नाकर' और दुलारेलाल भागवत की पद-योजना इस तथ्य की द्योतिक है। बरसात की प्रथम फुहारों से जो सोंधी-सोंधी महक खेतों-खलिहानों में झूम उठती है, उसका स्वरूप सत्यनारायण 'कविरत्न' की भाषा में प्राप्त हो सकता है। उनके शब्द-प्रयोग और उनकी पद-योजना तथा मुहावरे और लोकोक्तियाँ ग्रामीण जीवन की सादगी के प्रतिबिम्ब हैं, किन्तु उनमें हृदय की मार्मिक एवं गम्भीर अनुभूति का समावेश देखा जा सकता है। इसी भाँति कोमलांगी कहलाने वाली ब्रजभाषा को समय और परिवर्तित जीवन की विकट समस्याओं से उत्पन्न कठोरता और दृढ़ता को वहन करने की शक्ति वियोगी हरि से प्राप्त हुई तो उर्दू की जिन्दादिली और रवानी 'दीन' और 'सनेही' के प्रयोगों से प्राप्त हुई। उदाहरण के लिए पद-योजना के अन्तर्गत कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं।

भावों को प्रस्तुत करने का सर्वाधिक सफल साधन, चित्रमय शब्दों और पदों की योजना है। इस प्रयोग से भाव पाठक के मानस-पटल पर चित्रित होते चले जाते हैं। स्वराज्य का स्वागत करते हुए श्रीधर पाठक देखिए कैसा चित्र उपस्थित करते हैं—

आनन्द-अँसुअन अंक लाय पग-पंक छुड़ाऊँ  
हिय सिंहासन सज्यौ यहाँ प्रिय आय विराजौ  
रंग-महल पग धारि सुमंगल-सोभा साजौ।<sup>१</sup>

उदव के मुख से 'अवह कहानी' सुनकर 'रत्नाकर' जी की गोपियों की मनोव्यथा शब्दों में लोटती हुई प्रसवित हुई है—

कोऊ थहरानी, कोऊ थानहि थिरानी है।  
कहे रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ  
कोऊ बिलखानी, बिकलानी बिथकानी कोऊ है॥<sup>२</sup>

कभी-कभी कवि शब्दों की ऐसी योजना करता है कि उन शब्दों से उत्पन्न नाद-व्यंजना से कवि के कथ्य में अभूतपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि होती है। 'गंगावतरण' में 'रत्नाकर' जी के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

१. भारतगीत : श्रीधर पाठक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९७५ वि०, पृ० ४०।

२. रत्नाकर ग्रन्थावली (उदवशतक), पृ० १५८।



कहुँ ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति ।  
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हें पकर्यौ मग सोधति ॥<sup>१</sup>

+ + +  
अति उछाह सों उछरि परी फहराति फलंगति ।

प्रबन-पाद सों दूरि भूरि-बल-पूरि उमंगति ॥<sup>२</sup>

वर्षागमन पर कवि 'पूर्ण' की 'लतिकाओं' का संगीत भी द्रष्टव्य है—

झूमि-झूमि लोनी-लोनी लतिका लवंगन की

भेंटती तरुण सों पवन मिस पाय-पाय,<sup>३</sup>

इसी प्रकार वीर रस के अनुरूप वियोगी हरि की यह पद-योजना उनकी भाषा-शक्ति की द्योतिक है—

चली चमाचम कोप सों चकचोंधिनि तरवार,

पटी लोथ पै लोथ त्यों, बही रक्त-नद-धार ॥<sup>४</sup>

दुलारेलाल भार्गव (आधुनिक बिहारी) की पद-योजना भी द्रष्टव्य है—

बिरह-सिंधु उमड़ियौ इती पिय-पयान-तूफान,

बिथा-बीचि बूड़त अली अधिर प्रान-जलजान ॥<sup>५</sup>

+ + +

उर-धरकनि-धुनि माहि सुनि पिय-पग-प्रतिधुनि कान-

नस-नस तें नैननि उमहि आए उतसुक प्रान ॥<sup>६</sup>

कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' की प्रकृति 'देवी' की छनछनाती अवतारणा भी सुन्दर बन पड़ी है—

झिल्लिनि की झनकार झुण्ड झट-झट झन झनकत

प्रकृति देवी के कड़े छड़े मानहु छन छनकत ॥<sup>७</sup>

'झ' एवं 'न' के आधिक्य से उक्त छन्द में कड़े और जड़े की छनछनाहट सजीव हो उठी है ।

कवियों ने अपनी पद-योजना में तत्सम् शब्दों के प्रयोग भी विपुल मात्रा में किये हैं, किन्तु उनमें किसी प्रकार की कर्ण-कटुता अथवा छन्द-प्रवाह में

१. रत्नाकर ग्रन्थावली, (गंगावतरण), पृ० २६३ ।

२. वही०, पृ० २६८ ।

३. पूर्ण संग्रह, पृ० १०६ ।

४. आधुनिक ब्रजभाषा काव्य : सं० डा० रसाल आदि, पृ० ६६ ।

५. दुलारे दोहावली, पृ० ६६ ।

६. वही०, पृ० २५ ।

७. हृदयतरंग, पृ० ८८ ।



कोई बाधा उनसे उत्पन्न नहीं हुई है। 'रत्नाकर', 'कविरत्न' एवं श्रीधर पाठक आदि को इस प्रकार की शब्द-योजना में अधिक सफलता प्राप्त हुई है—

रत्नाकर—रिपु-बल-खल-दल-दलन प्रजा-परिजन-दुख-भंजन ।

गुनि-जन-जीवन-मूल सुकृति-सज्जन-मन-रंजन ॥<sup>१</sup>

'कविरत्न'—मजुहासिनी, मधुर भासिनी, सुख विकासिनी बरदा पावनि ।

तीस कोटि मुख अट्टहास करि, दुरजन हिय अति भय उपजावनि ।<sup>२</sup>

श्रीधर पाठक—हिम-शैल-शुभ्र-सुभाल-भ्राजत दिव्य मौलि प्रभालयम्

सित्-अभ्र-जाल-विशाल-साजत राज-छत्र-छटायम्<sup>३</sup>

विशिष्ट अर्थ की व्यंजकता के लिए भाषा में मुहाविरों एवं लोकोक्तियों के भी प्रयोग किये जाते हैं। इससे न केवल भाषा के शब्द-भण्डार की वृद्धि होती है अपितु भाषा में लाक्षणिक वक्रता का भी समावेश होता है। इस युग में इस दिशा में सर्वाधिक सफलता 'रत्नाकर'<sup>४</sup> एवं 'कविरत्न' को प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त 'पूर्ण', 'शंकर', 'हरिऔध', 'सनेही' एवं जयशंकर प्रसाद ने भी लाक्षणिक वक्रता और मुहाविरों आदि का प्रयोग भाषा में किया। 'कविरत्न' के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं। लाक्षणिक वक्रता और मुहाविरों एवं लोकोक्तियों का एक साथ प्रयोग अन्यतम है—

माधव तुमहुँ भये बेसाख

वही ढाक के तीन पात हैं, करो क्यों न कोउ लाख ॥

भक्त अभक्त एक से निरखत, कहा होत गुन गाये ।

जैसी खीर खवाये तुमको वैसोहि सोंग दिखायें ॥

+

+

+

बे पैदो के लोटा के सम, तब मति गति दरसावै ।

यह कछु को कछु काज करत में, तुमहि लाज नहि आवै ॥

+

+

+

'ऊँची बड़ी दुकान तिहारी फीकी बने मिठाई'

+

+

+

वेद पुराण तुम्हारे जस के, नभ में महल बनावत ।<sup>५</sup>

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण), पृ० १६६ ।

२. हृदय तरंग, पृ० ४२ ।

३. भारत गीत, पृ० १२ ।

४. रत्नाकर ग्रन्थावली (प्रकीर्ण पदावली), पृ० ५७१-७२, वही० (शृंगारलहरी) पृ० ३५२, पृ० ३६१ तथा वही० (गंगावतरण) पृ० २१४ ।

५. हृदय तरंग, पृ० ३५-३६ तथा ३८-३९ ।



## भाषा

भाषावैज्ञानिक व्याकरण अथवा संरचना को भाषा का प्राण या भाषा का प्रमुख तत्त्व मानते हैं किन्तु काव्य में व्याकरण के बन्धन एक सीमा तक शिथिल हो जाते हैं। अतः भाषा का महत्त्वपूर्ण अंग शब्द-समूह होता है। इसी से भाषा को अभिव्यक्ति की शक्ति और गरिमा प्राप्त होती है। शब्द-समूह की दृष्टि से कहा जाये तो विवेच्य ब्रजभाषा-काव्य का शब्द-समूह सशक्त, प्राणवान एवं प्रवाहमय है। प्रायः कवियों का प्रयत्न यह रहा कि ब्रजभाषा की प्रवृत्ति और उसके स्वरूप की रक्षा हो। प्रायः सभी कवियों की भाषा प्रौढ़, साहित्यिक एवं विशुद्ध है। इस काल में तत्सम् शब्दों की प्रयोग-बहुलता देखी जा सकती है, किन्तु अधिकांशतः कवियों ने इन्हें ब्रजभाषा के अनुकूल डालने का ही प्रयत्न किया। वैसे तो ब्रजभाषा में उर्दू-फारसी शब्दावली का प्रयोग प्राचीन समय से ही होता आ रहा था किन्तु इस काल में उर्दू-फारसी के साथ अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी समावेश हुआ। विश्लेषण की सरलता के लिए विवेच्य-काव्य के भाषा रूप का विवेचन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है—

## संस्कृत शब्द-समूह का उपयोग

संस्कृत भाषा की शब्दावली को ग्रहण करने की प्रवृत्ति इस काव्य में प्रायः सभी कवियों में प्राप्त होती है। तत्सम् शब्दावली को ग्रहण करने के सामान्यतः दो कारण कहे जा सकते हैं। एक तो नवीन भावबोध, वैचारिक क्रान्ति और बौद्धिकता से उद्भूत भावधारा के उपयुक्त शब्दावली की कमी तथा दूसरा ब्रजभाषा को अधिक व्यापक बनाने की प्रवृत्ति। ब्रजभाषा की तद्भव शब्दावली कदाचित् इतनी घिसी-पिटी थी कि उसकी भाव-व्यंजकता की शक्ति शिथिल हो गयी थी। अतः कवियों ने नवीन विषयों और भावों की अभिव्यंजना के लिए तत्सम् शब्दावली को ग्रहण किया। इस युग से पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किये थे जिनका विकसित रूप 'रत्नाकर' आदि कवियों में देखा जा सकता है। एक और कारण कदाचित् यह भी हो सकता है कि इस काल में द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को जो संस्कृत भाषा के निकट लाने के प्रयत्न किये थे उनके प्रभाव से भी कवियों ने ब्रजभाषा में तत्सम् शब्दावली ग्रहण करने के प्रयत्न किये। तत्सम् शब्दावली के प्रवेश से यह तात्पर्य नहीं है कि ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ होकर अपना रूप खो बैठी। कवियों ने इस बात को सदैव ध्यान में रखा कि ब्रजभाषा की प्रवृत्ति कोमलकान्त पदावली की है अतः उसमें प्रयुक्त शब्दावली भी तदनु रूप होनी चाहिए। इसीलिए तत्सम् शब्दावली का चयन कवियों ने



प्रवाह और माधुर्य को ध्यान में रखकर ही किया। प्रायः इस प्रवृत्ति के कारण तत्सम् शब्द अर्द्ध-तत्सम् हो गये हैं। नये विषयों—देश भक्ति, राष्ट्रीयता, कृषक, दरिद्र जनता, राजनीतिक विषय, प्रकृति-काव्य आदि में इस प्रकार के शब्दों की बहुलता देखी जा सकती है।

उदाहरण के लिए 'रत्नाकर' के 'गंगावतरण' में संस्कृत मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग देखा जा सकता है—

गो-ब्राह्मण-प्रतिपाल ईस-गुरु-भक्त अदूषित।

बल-विक्रम-बुधिरूप-धाम सुम-गुन-गन-भूषित ॥<sup>१</sup>

श्रीधर पाठक के 'भारत गीत' से भी एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

कहुँ व्योम-चुंवि-जलोघ-संगत-शैल-शृंग-समुन्नतम्।

कहुँ शस्य-शालि-समूह संवृत-भूमि-निम्न-तमुन्नतम्।<sup>२</sup>

इसके अतिरिक्त प्रसाद जी की कविताओं में 'संकुलित', 'अद्भुत', 'प्राची', 'गरज', 'निशा', 'शून्य', 'विस्तृत', 'मकरन्द', 'अनन्त', 'सुकुमारी', 'आलोकित', 'सन्ध्या', 'गम्भीर', 'अनुकूल', 'प्रतीच' आदि तत्सम् शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है।

सामान्यतः अर्द्ध-तत्सम् शब्दों की ही बहुलता का इस काव्य में प्रयोग प्राप्त होता है। कवियों ने छन्द-लय तथा ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल बनाकर ही तत्सम् शब्दों का प्रयोग किया। इससे भाषा का स्वरूप अधिक परिनिष्ठित एवं साहित्यिक हो गया। इससे भाषा-सौन्दर्य में वृद्धि और व्यं-व्यंजकता अधिक प्रेषणीय हो गयी। प्रयोग की स्वाभाविकता और शब्दों की सुघड़ता से यह भी कहा जा सकता है कि तत्सम् शब्द स्वयमेव अर्द्ध-तत्सम् होते गये। इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण ब्रजभाषा की भाषा-सुघड़ता की लम्बी परम्परा है। प्रस्तुत काव्य में अर्द्ध-तत्सम् शब्दों की एक स्वस्थ परम्परा दृष्टिगत होती है। जैसे—'उसीर', 'सबद', 'बिबस', 'भसम', 'स्याम', 'स्यामा', 'बन्दना', 'बाम', 'जुगल', 'ससि', 'ससी', 'बय', 'दुसतर', 'केस', 'बसन', 'रजनि', 'प्रवीन', 'दुति', 'जोग', 'जलजान', 'विकसित', 'सोक', 'सोभा', 'आसा' आदि-आदि।

इसी प्रकार तत्सम् रूपों से अनुकूल शब्द-निर्माण करने की प्रवृत्ति भी इस काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है, जैसे—'पुलकि', 'प्रवहात', 'सम्हारति', 'अनुसारती', 'अधरानि', 'उपासकन', 'उरोजन', 'कपोलन', 'लहरात', 'भ्रमत', 'मुखहि', 'पुलकाती', 'विस्तारा', 'आतम-विस्मृति', 'कच-पातनि',

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण), पृ० १६६।

२. भारतगीत, पृ० १३।



‘समागम-समर’, ‘पातन’, ‘कायनि’, ‘व्यापि’, ‘मरालन’, ‘दुतिवंत’, ‘प्रकास्यो’, ‘कली-कल-कुंज’, ‘आलिंगति’, ‘दिशि’, ‘गूँजत’, ‘दुमन’, ‘अनिलहु’ आदि-आदि। प्रायः सभी कवियों ने प्रवाह और माधुर्य की रक्षा हेतु ऐसे शब्दों का प्रयोग अथवा निर्माण किया है। क्लिष्टता और अमधुर-प्रयोग अपवाद स्वरूप ही उपस्थित होते हैं। उदाहरण के लिए उर्दू-फारसी, संस्कृत और खड़ी बोली के प्रयोगों से कवि ‘शंकर’ की भाषा कहीं-कहीं कर्ण कटु और प्रवाहहीन हो गई है।

### अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

साहित्यिक स्वच्छन्दता के इस युग में कवियों ने मात्र रूढ़ भाषा-प्रयोगों के साथ ही अपने को सम्बद्ध नहीं किया। भाव और विचार क्षेत्र की उत्तरोत्तर प्रगति से कवि अन्य भाषाओं के निकट आने लगे थे। उर्दू साहित्य और अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से कवियों का नवीन विचारधारा से परिचय होने के साथ ही इन भाषाओं के स्वरूप इत्यादि से भी अच्छा परिचय प्राप्त हुआ। प्रायः सभी कवि बहुभाषाविज्ञ थे। उर्दू-फारसी, संस्कृत एवं अंग्रेजी का अच्छा परिचय प्रायः सभी कवियों को था। अतः यह स्वाभाविक था कि इन भाषाओं के शब्द इनकी भाषा में प्रवेश करते। उर्दू-फारसी तथा अंग्रेजी की शब्दावली का यह प्रयोग कवियों ने सचेत कलाकारों की भाँति किया है। उन्होंने इन प्रयोगों से अपनी भाषा के मूल स्वरूप को एवं प्रवाह और माधुर्य को क्षति नहीं पहुँचने दी अपितु इन नवीन शब्दों को भी ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप बना दिया। वैसे उर्दू और खड़ी बोली शब्दावली का सर्वाधिक स्वच्छन्द प्रयोग ‘सनेही’ एवं ‘शंकर’ आदि की रचनाओं में मिलता है, जिसके कारण इनकी भाषा को विशुद्ध ब्रजभाषा नहीं कहा जा सकता है।<sup>1</sup>

इन अन्य भाषाओं की शब्दावली की संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है—

उर्दू-फारसी शब्दावली :— ‘वजीफा’, ‘जईफा’, ‘सराफत’, ‘अंदेसी’, ‘बूँद’, ‘बूँदता’, ‘स्याही’, ‘गरम’, ‘होसला’, ‘नज़र’, ‘लतीफा’, ‘खंजर’, ‘फोजदार’, ‘जुलम’, ‘दरद’, ‘फरद’, ‘फंद’, ‘बाग’, ‘मुहताज’, ‘फिजूल’, ‘कबूल’, ‘जवान’, ‘नाहक’, ‘लंगर’, ‘रहीम’, ‘कुरान’, ‘दरार’, ‘करतूत’, ‘जिदगी’, ‘निसानी’, ‘मुरदार’, ‘बहार’, ‘बाजीगर’, ‘सितारन’, ‘भाप’, ‘सीना-जोरी’, ‘बनावट’ आदि आदि।



अंग्रेजी शब्दावली—‘एलेलबी’, ‘प्लीडर’, ‘बी० ए०’, ‘कांग्रेस’, ‘पेटलून’  
‘कोट’, ‘निपोलियन’, ‘इसटिक’, ‘फील्ड’, ‘हाकी’,  
‘गोल’, ‘बालहि’, ‘मोटर’, ‘आडिनेन्स’, ‘पुलिस’,  
‘जेल’, ‘लीडर’, ‘रेल’, ‘इंजन’, ‘पावरहाउस’  
आदि आदि ।

विवेच्य ब्रजभाषा-काव्य में प्रयुक्त उपर्युक्त शब्दों की तालिका को देखकर यह सहज ही कहा जा सकता है कि इस काव्य में कवियों ने जहाँ एक ओर पूर्ववत् माधुर्य और प्रवाह को बनाये रखने का प्रयत्न किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने आधुनिक भावबोध के लिए उपयुक्त नये शब्दों को भी अपनाने का प्रयत्न किया । उन्होंने यथासम्भव इन शब्दों को ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार ढालने का भी प्रयत्न किया । अतः यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि भाषा का प्रयोग, नवीन शब्दों का सामान्यतया अलंकारों के माध्यम से कवियों ने भाषा-माधुर्य और प्रवाह के साथ-साथ अर्थ-सौन्दर्य को भी सृष्टि की । वस्तुतः इनके लिए भाषा साधन ही रही, साध्य नहीं ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के अन्त में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युगीन ब्रजभाषा-काव्य की साहित्यगत विशेषताओं का स्वरूप विशद् एवं उदात्त है । इस काव्य में भाव-काव्य के सभी गुण सम्यक् रीति से सन्निहित हैं । परम्परागत विषय-संकुचन—शृंगार और भक्ति के वात्याचक्र से निकलकर यह काव्य विस्तृत मानवीय घरातल पर अवस्थित है । इसने न केवल परम्परागत विषयों को व्यापकत्व प्रदान किया अपितु आधुनिक जन-जीवन और जीवन-मूल्यों को भी सरस एवं साहित्यिक ढंग से अभिव्यक्त किया । वीर, प्रेम, प्रकृति एवं राष्ट्रीय भाव-धारा की नवीनतम काव्य-प्रवृत्तियों से यह काव्य तत्कालीन खड़ी बोली काव्य के समानान्तर ही गतिशील रहा । प्रकृति-काव्य की नवीन भाव-धारा से इसने किंचित मात्रा में खड़ी बोली काव्य को प्रारम्भ में निश्चय ही प्रभावित किया । इस काव्य में प्रेम की जिस नवीन भावना का सन्निवेश हुआ वह निश्चय ही युगान्तरकारी है । उसका विकास परवर्ती खड़ी बोली-काव्य में स्पष्टतया देखा जा सकता है । वीर भाव-धारा के माध्यम से इस काव्य ने कोमलांगी ब्रजभाषा को ओज और ‘पौरुष’ से मण्डित किया । अन्य भाषाओं के सम्पर्क से इस काव्य में पूर्ववर्ती काव्य से अधिक व्यापक विस्तार प्राप्त हुआ । इस सम्पर्क से भाव और भाषा, दोनों संपुष्ट हुए । परम्परागत रस-विषयक दृष्टिकोण को अधिकांश में अपनाते हुए भी इस काव्य में नवीन भावानुभूतियों के समावेश से नवीन ‘भाव-काव्य’ की स्पष्ट भूमिका प्रस्तुत हुई । अलंकारों और छंदों के अतिरिक्त इस काव्य की भाषा भी शुद्ध एवं साहित्यिक है । इसकी चित्रमयता, नादव्यंजकता और लाक्षणिकता विशेष उल्लेखनीय है ।





## अध्याय—पाँच

# द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली-काव्य की साहित्यगत विशेषता

आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक अभूतपूर्व घटना द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली-काव्य का विकास एवं उसकी आश्चर्यजनक प्रगति है। आज की हिन्दी कविता की समृद्धि को ध्यान में रखकर यह सहज ही कल्पनीय नहीं है कि उस युग के प्रारम्भ में कवियों के सामने कितनी गम्भीर मानसिक संकट की स्थिति थी। रूढ़ परम्पराओं से मुक्त होकर, नवीन जागरण की विविधताओं को देश की भूखी-प्यासी अवमर्दित जनता के सामने रखना सरल कार्य न था। खड़ी बोली की भाषागत अव्यवस्था, निरंकुशता और अस्थिरता से यह कार्य और दुष्कर हो रहा था। द्विवेदी-युग के उषा काल में कवि विचित्र धर्मसंकट में पड़ा हुआ था। एक ओर ब्रजभाषा-काव्य की लम्बी परम्परा का आकर्षण था तो दूसरी ओर आधुनिक बौद्धिकतावाद से उत्पन्न नवीन सामाजिक और राष्ट्रीय दायित्व का आग्रह। इस पर साहित्यिक जगत् में चारों ओर से शंकालु एवं छिद्रान्वेधी दृष्टि, तथा प्रकट-अप्रकट रूप से विरोध और अड़चनों का वातावरण। किन्तु जैसा कि कहा गया है कि हर महान् संकट की स्थिति का निवारण प्रायः सुन्दर ढँग से होता है, ठीक उसी भाँति महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी काव्य-साहित्य एक ऐसे पथ पर अग्रसर हुआ जिसका प्रतिफलन निश्चय ही परवर्ती समस्त हिन्दी काव्य कहा जा सकता है। वस्तुतः हिन्दी काव्य की उत्तरोत्तर प्रगति सदैव इस युग के प्रति ऋणी रहेगी। इस युग ने न केवल आधुनिक भारत को एक राष्ट्रभाषा प्रदान की अपितु हिन्दी साहित्य को सर्वप्रथम युगानुयुग के सामन्ती वातावरण से उठाकर जन-जीवन के हृत स्पन्दनों के निकट लाकर रख दिया। इसने सर्वप्रथम यथार्थ की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया। धर्म, जाति, संस्कृति, समाज, राष्ट्र मानव-सभी को इस युग ने आधुनिकता से मण्डित करके काव्य के लिए नवीन दिशाओं के द्वार खोल दिये। इस युग ने सर्वप्रथम काव्य-साहित्य को मुक्त वातावरण की स्वस्थ वायु से परिवर्तित कराया। भाषागत परिमार्जन के प्रयास और विषयगत विविधता के विवेचन के पश्चात् इस अध्याय में विवेच्य-युग के खड़ी बोली काव्य-साहित्य के विकास-क्रम एवं उसकी विशेषताओं को विवेचित करने का प्रयत्न किया जायेगा।



### इतिवृत्तात्मकता

वस्तुनिष्ठ यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति को इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति कहा जाता है। प्रायः सभी आलोचकों ने द्विवेदीयुगीन काव्य को इतिवृत्तात्मक काव्य कहा है। इस प्रकार की आलोचना का प्रारम्भ द्विवेदी-युग के उत्तराधिकारी छायावाद-युग से प्रारम्भ होता है। फलतः इस प्रकार की आलोचना से इस युग के महत्त्व का अवमूल्यन होता रहा। कदाचित् इसीलिए एक आलोचक ने कहा है—‘छायावाद के समीक्षकों ने द्विवेदी-युग को नीतिवादी और इतिवृत्तात्मक रचनाओं का युग कहकर उसे संकुचित किया है और हमारे मानस में उगका बिम्ब धुंधला हो गया है।’<sup>१</sup> स्पष्ट है कि इतिवृत्तात्मकता को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। इतिवृत्तात्मकता कह देने भर से द्विवेदी-युग की खड़ी बोली कविता का वास्तविक मूल्य प्रकट नहीं होता। अतः इसके मूल कारणों एवं इसके स्वरूप को विवेचित करने की आवश्यकता है।

इस युग के इतिवृत्तात्मक काव्य का सर्वप्रधान कारण नवीन भाषा थी। खड़ी बोली को ब्रजभाषा के समान किसी साहित्यिक परम्परा का सम्बल न था। इस युग से पूर्व साहित्यिक क्षेत्र में खड़ी बोली को लगभग कोई स्थान प्राप्त नहीं था। भारतेन्दु ने यद्यपि इस दिशा में कुछ प्रयत्न अवश्य किये थे, परन्तु वे प्रयत्न अत्यन्त प्रारम्भिक प्रयास ही थे। उस युग में इसे काव्य-भाषा के रूप में स्वीकार करने वाले व्यक्तियों की संख्या इतनी कम थी कि उन्हें नगण्य कहना अतिरंजना न होगी। दूसरा कारण, इस काव्य ने अपने शिशु-कंधों पर न केवल हिन्दी जगत् के आधुनिक भावबोध के महान् दायित्व का भारी बोझ लादने का निश्चय किया अपितु समस्त भारतीय जन-जीवन की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं का प्रतिनिधित्व करने का गम्भीर कार्य भी स्वीकार किया। अतः इसका पथ रीतिकालीन ऊहापोह और कल्पना-विलास की ओर न होकर भविष्य के अपरिचित पथ की ओर उन्मुख हुआ। ऐसी परिस्थितियों में कवियों से उदात्त काव्य-सौन्दर्य से समन्वित रचनाओं की अपेक्षा करना संगत नहीं है। यह समय भाषागत शक्ति-संचय तथा विषय-वैविध्य का था। हिन्दी काव्य को सामन्ती वातावरण की संकुचितता से निकालकर भारतीय जीवन से अनुस्यूत करने की आवश्यकता थी। तीसरा कारण, गद्य और पद्य की भाषा एक हो, इस सिद्धान्त के परिपालन से भी काव्य में गद्यात्मकता का प्रवेश हो गया। इस सिद्धान्त की व्यापकता को कवि उस समय ग्रहण न कर

१. साहित्य सन्देश (द्विवेदी स्मृति अंक), जुलाई—अगस्त, १९६४ ई०, पृ० २०।



सके। खड़ी बोली का गद्य पद्य से किंचित मात्रा में अधिक विकसित था। अतः यह स्वाभाविक था कि कवि गद्य शैली को ही आदर्श मानकर पद्य रचने लगे। प्राचीन काव्य-शैलियों की वर्जना से भी कवि इस ओर प्रवृत्त हुए।

द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली-काव्य के इस प्रथम उत्थान-काल को इतिवृत्तात्मकता की दृष्टि से सन् १९०० से १९१० ई० तक माना जाना चाहिए। यह युग भाषा-परिमार्जन और शक्ति-संचय का ही युग था। इस युग की कविताएँ मात्र प्रयोगात्मक कही जा सकती हैं। इनकी उपयोगिता भावी काव्य के लिए अवश्य है क्योंकि इन कविताओं से कवि ने न केवल भाषा के स्वरूप को सुव्यवस्थित किया अपितु भाव-वैविध्य का भी परिचय प्राप्त किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इन दोनों क्षेत्रों की समृद्धि के लिए संस्कृत भाषा और काव्य, पौराणिक, ऐतिहासिक विषयों तथा अंग्रेजी काव्य की ओर कवियों को प्रोत्साहित किया। फलस्वरूप इस प्रारम्भिक उत्थान-काल के काव्य का स्वरूप कहीं संस्कृतमय होकर संस्कृत-कवियों की अतिशय कल्पनाशीलता से ग्रस्त होकर शिथिल हो गया तो कहीं आधुनिक जन-जीवन से प्रेरित होकर सरल एवं इतिवृत्तात्मक चित्रणों में ढल गया। इस काव्य की ये दो प्रधान विशेषताएँ हैं कि कहीं कवि की भावना अतिशय अलंकारिक कल्पना-प्राचुर्यता से प्रभावित है तो कहीं अत्यधिक सरल एवं सामान्य प्रतिक्रिया से। वस्तुतः जैसा कि कहा गया है, ये प्रयोग प्रायः भाषा को सुघड़ और प्रांजल बनाने के लिए ही हो रहे थे। इनमें भावाभिव्यक्ति की मार्मिक अभिव्यंजना का प्रायः अभाव है। संक्षेप में इस उत्थान-काल के काव्य की निम्न विशेषताएँ हैं :—  
वर्णन-वैचित्र्य

संस्कृत-काव्य के सम्पर्क से कवियों ने वर्णनात्मक एवं चमत्कारिक अभिव्यक्ति को ग्रहण किया था। संस्कृत के सूक्ति, अन्योक्ति एवं सुभाषित काव्य तथा कालिदास, माघ, भारवि इत्यादि के आलंकारिक वर्णनों से कवियों का सम्पर्क वर्णन-वैचित्र्य की प्रणाली से हो गया। अतः इन कवियों की कल्पनाशीलता संस्कृत-काव्य के कल्पना-प्राचुर्य से अधिक भिन्न नहीं है। द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक रचनाओं में इस प्रकार की अभिव्यक्ति प्रायः दृष्टि-गोचर होती है। उदाहरण के लिए 'कविता-कलाप'<sup>१</sup> में संकलित दो कविताओं, 'सुकेशी-मालावार सुन्दर' और 'मोहनी' को लिया जा सकता है।

१. कविता-कलाप द्विवेदी-युग की प्रारम्भिक रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन है। इसके सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसकी भूमिका में लिखा था कि इस संकलन का उद्देश्य यह है कि तत्कालीन समस्त काव्योपलब्धियों को साहित्यिक जगत् के समक्ष रखा जाये। इसका प्रकाशन १९०९ ई० में हुआ था। इसमें खड़ी बोली के अतिरिक्त ब्रजभाषा की कविताएँ भी संगृहीत थीं।



गुप्त जी की 'सुकेशी' के नयनों का सौंदर्य द्रष्टव्य है—

लम्बित ललित लोल लोचन लुभावना त्यों  
मन्द किया जिसने मिलिन्दों का प्रताप है ।

+ + +  
मीन के समान यदि लोचन बखानिये तो  
भृकुटी अवश्य ही तरंग के समान ये ।<sup>१</sup>

और कवि नाथूराम 'शंकर' की 'मोहिनी' की माँग का विचित्र चमत्कारिक चित्रण भी दर्शनीय है—

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि  
श्याम घन मण्डल में दामिनी की धारा है ।

+ + +  
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि

ढाल पर खांडा कामदेव का दुधारा है ।<sup>२</sup>

ऐसे चमत्कारपूर्ण एवं आलंकारिक चित्रणों<sup>३</sup> से इन कविताओं द्वारा यद्यपि कवियों को संस्कृत-काव्य की कल्पनाशीलता और संस्कृत भाषा के शब्द-समूह से परिचय अवश्य हुआ किन्तु उनकी रचनाओं में प्रायः काव्यगत गुणों की सृष्टि न हुई । चमत्कार और अलंकारप्रियता के युग रीतिकाल से तत्कालीन समाज मुक्त हो रहा था । अतः इस प्रकार के चमत्कृत करने वाले 'परुष' वर्णन अधिक सफल नहीं कहे जा सकते हैं । इस तथ्य का समर्थन स्वयं कवियों की अन्य रचनाओं से भी होता है जिनमें अभिव्यक्ति की सरलता और वर्णन की सादगी की प्रधानता है ।

**बोधपरक वर्णन**

'सरस्वती' में प्रकाशित 'चित्रों' पर लिखित कविताओं में सामान्यतः कवि चित्रकार के मनोभावों के साथ एकाकार होने का प्रयत्न करते थे । फलतः चित्रों में चित्रित विविध मनोभावों के समझाने के प्रयत्न में कवियों के वर्णन बोधपरक हो जाते थे । इन कविताओं के अधिकांश में भावना की तीव्रता के स्थान पर सामान्य-जन की प्रतिक्रिया का ही प्राधान्य रहा । उदाहरण के लिए शकुन्तला के 'पत्र-लेखन' की मुद्रा का चित्रण देखिए गुप्त जी कैसे प्रस्तुत करते हैं—

करते रचना पत्र की घरे हुए प्रिय-ध्यान,  
यह वियोगिनी हो रही संयोगिनी समान ।

१. कविता कलाप, पृ० ६४ ।

२. वही०, पृ० १४ ।

३. वही०, पृ० ११, १३, १५ आदि ।



संयोगिनी समान प्रफुल्लित दिखलाती है,

शब्द सोचती हुई अलौकिक छवि पाती है ।<sup>१</sup>

यह छन्द निश्चय ही कविता कम चित्र का पद्यात्मक शीर्षक अधिक प्रतीत होता है। इसमें चित्र में चित्रित भाव-मुद्रा से इतर कवि की वैयक्तिक अनुभूति का सर्वथा अभाव है। यदि कुछ अनुभूति है भी तो वह इतनी सामान्य कि उससे काव्यगत प्रभावोत्पादकता सम्भव नहीं। ठीक इसी भाँति 'परशुराम' के चित्र को देखकर कामताप्रसाद गुरु भी पूछते हैं—

पर सहसा यह रूप देख होता है विस्मय,

आर्य लोग क्या एक समय थे ऐसे निर्भय ?<sup>२</sup>

इस प्रकार की बोधपरक अन्यान्य कविताएँ इस युग के प्रारम्भ में देखी जा सकती हैं। इनमें जो इतिवृत्तात्मकता मिलती है, उसके फलस्वरूप काव्य-रस की सृष्टि भले ही न हुई हो किन्तु भाषा में सरलता एवं सुस्थिरता का समावेश होता गया। इससे कवियों की अभिव्यक्ति में सरलता प्राप्त हो सकी जिससे वे भावनाओं की गम्भीर विवेचना की ओर धीरे-धीरे प्रवृत्त होने लगे। इसीलिए इस इतिवृत्तात्मक काव्य में कहीं-कहीं भावना की न्यूनाधिक सुन्दर अभिव्यक्ति का समावेश हुआ है।

#### संवेदनशील वर्णन

जैसा कि कहा जा चुका है कि खड़ी बोली के इस उत्थान-काल में कवियों ने अधिकांश में रोचक एवं प्रसिद्ध पौराणिक-ऐतिहासिक आख्यानो का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया। प्रायः इन कविताओं के कथानकों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कथा के मार्मिक प्रसंगों को विशेष परिश्रम से लिखा जाता था। इन संवेद्य स्थलों की अभिव्यजना में भावना को किंचित मुखर बनाने का प्रयत्न किया जाता था। इनमें कवि का मानस विशेष रूप से काव्य-रस की ओर प्रवृत्त होता रहा जिससे भाषा में लालित्य, प्रवाह और प्रांजलता का समावेश होता गया। प्रारम्भिक काव्य के इतिवृत्तात्मक स्वरूप का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। इसी काव्य-स्वरूप की प्रगति भावी गीतात्मकता और संवेदनशीलता की गहरी अनुभूति में हुई। आख्यानक कविताओं के अतिरिक्त इस स्वरूप में तत्कालीन समाज और देश के प्रति भी कवियों की संवेदना में किंचित गम्भीरता दीख पड़ती है। वास्तव में १६०७ ई० और १६०८ ई० के पश्चात् कविता की इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति का शनैः-शनैः परिहार होता गया। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

१. कविता कलाप, पृ० ५६।

२. वही०, पृ० १६।



कामता प्रसाद गुरु की 'परशुराम' कविता का एक चित्र प्रस्तुत है—

हुआ समय का फेर हाय ! पलटी परिपाटी,

जो था कभी सुमेरु आज है केवल माटी ।

क्षत्रीय-कुल निर्वंश सहज में करनेहारे,

परशुराम मुनि निरे राम बालक से हारे ॥<sup>१</sup>

गुप्तजी का एक ओजपूर्ण वर्णन भी विचारणीय है। अपमानित द्रोपदी के सतीत्व की वाणी द्रष्टव्य है—

मुझे एक वस्त्रावस्था में केश खींच लाया जो हाय !

दुष्ट-बुद्धि दुःशासन का यह प्रकट देखकर भी अन्याय ।

सभ्य, ख्यात-नामा ये सारे सभा-मध्य बैठे चुपचाप ।

तो क्या धर्म-हीन धरणी में शेष रह गया केवल पाप ?<sup>२</sup>

तत्कालीन पढ़े-लिखे वर्ग की मानसिक दासता और उनके आत्माभिमान रहित व्यक्तित्व पर देखिए कवि कितने सुन्दर ढंग से व्यंग करता है—

खुश हूँ मेरे साहिब मुझ पर,

मैं जाता हूँ निज उनके घर ।

×

×

×

पढ़ कर गोरों के अखबार,

हुए हमारे अटल विचार ।<sup>३</sup>

इस व्यंग में चोट की गहरी शक्ति है और इससे यह भलीभाँति सिद्ध होता है कि कवि अब आलंकारिक एवं चमत्कृत करने वाली शब्दावली से विमुक्त होकर सरल एवं सहज अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हो रहा था। सन् १९०८ के आस-पास से ही कवियों ने वर्ण्य-विषयों को अधिक गम्भीरता से समझने और अभिव्यक्त करने के प्रयास प्रारम्भ किये थे। संस्कृत-काव्य के वर्णन-वैचित्र्य और आलंकारिकता तथा भाषा की समस्त-पद-शैली के प्रभाव से जो शैथिल्य काव्य में प्रवेश कर चुका था, उसका परिहार किया जा रहा था। इस प्रवृत्ति को सर्वाधिक सहायता अब भाषा में उत्पन्न सुस्थिरता से मिली। वस्तुतः जब कवियों का अधिकार भाषा पर होता गया तो वे अधिक आश्वस्त होकर भावाभिव्यञ्जना करने लगे। दूसरी ओर खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकृति भी प्राप्त होती जा रही थी। अतः अभ्यास और प्रयोग के इति-वृत्तात्मक काव्य से कवि भावना की सरसता और गीतात्मकता की ओर प्रवृत्त

१. कविता कलाप, पृ० १६।

२. वही०, पृ० २५।

३. 'सोऽहम्'—बी० ए०, सरस्वती, नवम्बर १९०७ ई०, पृ० ४५२-४३।



होने लगा। इसलिए प्रथम उत्थान-काल ('कुमारसम्भवसार' से 'रंग में भंग' तक) को भाषा-परिमार्जन एवं इतिवृत्तात्मक प्रयोग-काव्य की संज्ञा दी जा सकती है तथापि इस काल में सरस अभिव्यंजना के बीज स्फुट रूप से यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। अंग्रेजी कविताओं के अनुवादों से कवियों को भावाभिव्यक्ति की सरलता और मार्मिक अभिव्यंजना से परिचय हो चुका था। अतः संस्कृत काव्य और अंग्रेजी काव्य के मिश्रित प्रभाव से १९१० ई० के बाद नवीन काव्य स्वरूप का विकास हुआ। इस विकास क्रम को गीतात्मक काव्य की संज्ञा दी जा सकती है क्योंकि इसमें कवियों की भावानुभूति सहज एवं सरल किन्तु प्रभावोत्पादक गीतियों के रूप में प्रस्फुटित हुई।

### गीतात्मकता

खड़ी बोली काव्य के इस विकास क्रम के द्वितीय सोपान को सामान्यतः १९१० ई० से १९१९-२० ई० तक माना जाना चाहिए। भाषा और भाव की समृद्धि का स्पष्ट उदाहरण गुप्त जी का 'जयद्रथ वध' काव्य कहा जा सकता है। प्रारम्भिक तुलनाहट के स्थान पर अब भाषा में आत्मविश्वास की गरिमा आ गयी थी। 'रंग में भंग' का कथानक-वैविध्य 'जयद्रथ वध' के भाषा लालित्य, ओज, अर्थ-सौरस्य एवं मार्मिक चित्रण में परिवर्तित हो रहा था। फरवरी १९०८ ई० में एक अंग्रेजी कविता का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए उसकी भाव गरिमा और सरसता की प्रशंसा करते हुए द्विवेदी जी ने कहा था कि 'आदर्श कविता' सरस और भावपूर्ण होनी चाहिए। स्पष्ट है कि वे काव्य की इतिवृत्तात्मकता को अब भाव की गहनता और अभिव्यक्ति की सरसता की ओर ले जाना चाहते थे। वे इतिवृत्तात्मक काव्य के समर्थक नहीं थे। सन् १९१० तक आते-आते अब ऐसी कविता की सम्भावना हो रही थी जिसमें उनके अनुसार आदर्श कविता के गुण हों। उनके प्रधान शिष्य गुप्त जी ने इस स्वप्न को मूर्त करने का प्रथम अनुकरणीय प्रयास 'जयद्रथ वध' के माध्यम से किया। 'जयद्रथवध' में प्रचलित कथानक है। काव्य रूप की दृष्टि से भी उसमें कोई नवीनता नहीं है। साहित्यिक अभिव्यक्ति, मार्मिक मनोभाव चित्रण और सरस एवं प्रांजल भाषा इसके प्रधान गुण हैं, जिसके कारण पन्द्रह वर्षों में ही इसके चौदह संस्करण प्रकाशित हुए।<sup>१</sup> भावानुकूल भाषा की प्रौढ़ता और प्रभावोत्पादकता के कारण यह कहा जा सकता है कि द्वितीय उत्थान-काल की यह सर्वाधिक सफल रचना थी। इस उत्थान-काल की अधिकांश रचनाओं की भाषा इसी ग्रन्थ की परम्परा में विकसित होती रही। भाषा की प्रगति के साथ



ही इस काल में भावना के वैभव का विकास हुआ। कवियों की अनुभूति अब प्रारम्भिक सामान्य प्रतिक्रिया से गम्भीर हो रही थी। उनमें मनोभावों के सूक्ष्म विश्लेषण की क्षमता विकसित होती जा रही थी। खड़ी बोली-काव्य अब बौद्धिकता से उत्पन्न निरी उपदेशात्मकता के स्थान पर आदर्श की स्थापना सरस ढंग से करने में प्रवृत्त हो रहा था। देश और राष्ट्र के प्रति भी कवि की संवेदना में तीव्रता और व्यापकता का प्रसार होता जा रहा था। स्वच्छन्दतावाद के इस युग में कवियों की संवेदनशीलता से प्रकृति-चित्रण वस्तु-परिगणन से संश्लिष्ट चित्रणों में परिवर्तित हुए। कवियों ने प्रकृति-वर्णन के प्रायः सभी प्रचलित रूपों में सरस अभिव्यक्ति की। संक्षेप में कहा जाये कि इस काल में आकर खड़ी बोली-काव्य कोमल एवं सरस भावानुभूति की अभिव्यंजना से युक्त हो गया। द्वितीय उत्थान-काल के इस काव्य-विकास की अधिकांश रचनाओं में सामान्यतः निम्न साहित्यिक विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं—

घटना अथवा परिस्थिति का सरस अभिव्यक्तिकरण

इस काल में खड़ी बोली-काव्य घटना या परिस्थिति के रसानुकूल अभिव्यक्तिकरण की ओर अग्रसर हुआ। प्रारम्भिक इतिवृत्ति से कवि गम्भीर विश्लेषण की चेष्टा करने लगे। 'रंग में भंग' और 'जयद्रथ वध' के बीच यही विकास परिलक्षित होता है। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक घटनाओं के सजीव चित्र प्रायः सभी कवियों ने उपस्थित किये। 'जयद्रथ वध' का एक कर्ण चित्र द्रष्टव्य है—

मेरे हृदय के हर्ष हा ! अभिमन्यु, तू है कहाँ ?

दूग खोल वेटा, तनिक तो देख हम सब को यहाँ।

मामा खड़े हैं पास तेरे, तू मही पर है पड़ा।

हा गुरुजनों के मान का तो बोध था तुझे बड़ा।<sup>१</sup>

कवि ने यहाँ अभिमन्यु के उदात्त चरित्र को संकेत से प्रस्तुत करते हुए सुभद्रा की व्यथा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। इसी प्रकार प्रताप की स्वातन्त्र्य-प्रियता, कर्मनिष्ठा एवं उसके महान् त्याग का चित्र गुप्त जी इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

उदासी छाई थी, वह समय भी था विकट ही,

झुधा-क्षीणा बेटी रुदन करती थी निकट ही।

वहाँ क्या था ? रागी विवश मन में घैर्य घर के—

बनातीं थीं रोटी विरस तूण का चूर्ण करके।<sup>२</sup>

१. जयद्रथ वध, पृ० ४१

२. 'महाराणा प्रताप का पत्र', सरस्वती, नवम्बर १९१३ ई०, पृ० ६०४।



इस प्रकार के सजीव एवं कोमल चित्रणों को इस काल के कथात्मक काव्य में प्रायः सर्वत्र देखा जा सकता है। देश की तत्कालीन परिस्थितियों की मार्मिक अभिव्यंजना तथा स्वातन्त्र्य पिपासा की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ ही जनता की अभिलाषाओं का दृढ़ स्वर भी इस काव्य में प्राप्त होता है। पूर्ववर्ती भाषा-शैथिल्य के स्थान पर प्रांजलता, कोमलता एवं प्रवाहमयता इन रचनाओं में सहज ही प्राप्य है। रूपनारायण पाण्डेय तत्कालीन जनमानस के दृढ़ स्वर को देखिए कैसे प्रस्तुत करते हैं—

कहते हैं लोग हमें, हम दीन-हीन हैं, भिक्षुक हैं,

कुछ भी हो, हम लोग अभी अच्छे बनने के इच्छुक हैं।

सच है, वैभव रहा नहीं, पर बुद्धि हमारी दीन नहीं,

पौरुष कम है, मगर हुए हैं मनुष्यत्व से हीन नहीं।<sup>1</sup>

इस प्रकार के चित्रण और भावानुभूति की सरस अभिव्यंजना का प्रसार अन्य कवियों में भी देखा जा सकता है।<sup>2</sup>

कवियों की भावना की व्यापकता से और भाषा की सुस्थिरता से काव्य में लाक्षणिक अभिव्यंजना का भी समावेश होता गया। तत्कालीन शोषित वर्ग, किसान, मजदूर, दरिद्र जनता आदि की दयनीय स्थिति से संवेदनशील होकर कवियों के मन से व्यंग्य वाणों की तीव्र धारा प्रवाहित हुई। कहीं कवियों ने इन परिस्थितियों का कर्षण चित्रण प्रस्तुत किया तो कहीं लाक्षणिक अभिव्यंजना से कर्षण-व्यंग्य की सर्जना की। उदाहरण के लिए एक उद्धरण प्रस्तुत है—  
ग्रीष्म की कड़कड़ाती धूप में गर्मी से त्रस्त एक किसान हल चला रहा है। इतनी कड़ी मेहनत करने के पश्चात् भी इस किसान की दुरावस्था का अन्त नहीं है। कवि किसान से कुछ न कहकर उसके बैल की दुर्दशा से विह्वल होकर उससे पूछता है—

“बूढ़े बैल, खेत में नाहक क्यों दिन भर तुम मरते हो ?

क्यों न चरागाहों में चलकर, मौज मजे से करते हो ?”

सुनकर मेरी बात बैल ने कहा दुःख से भर कर आह—

‘इस अनाथ असहाय कृषक का होगा फिर कैसे निर्वाह !’<sup>3</sup>

१. ‘मातृमूर्ति’, सरस्वती, दिसम्बर १९१३ ई०, पृ० ६६७।

२. ‘स्वर्गीय संगीत’ : मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, जनवरी १९१४ ई०, पृ० ४, ‘जन्मभूमि भारत’ : रामनरेश त्रिपाठी, वही, पृ० २७, ‘परिचय’ : रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, दिसम्बर १९१६ ई०, पृ० ३२०, ‘प्रतिज्ञा’ : मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, अक्टूबर १९१६ ई०, पृ० १६६ आदि आदि।

३. ‘निःस्वार्थ सेवा’ मुकुटधर पाण्डेय, सरस्वती, दिसम्बर १९१८, पृ० ३२२।



इसी लाक्षणिक व्यंजना का प्रयोग गोपालशरण सिंह ने 'भारतमाता'<sup>१</sup> तथा रामचरित उपाध्याय ने 'हमीहम'<sup>२</sup> एवं 'खुणामदी टट्टू'<sup>३</sup> आदि कविताओं में किया। इनके अतिरिक्त अन्य कवियों में 'सनेही', 'शंकर' तथा लाला भगवानदीन आदि भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

द्वितीय उत्थान-काल की अन्य रचनाओं में से कतिपय प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार गिनायी जा सकती हैं—'करुणालय' (१९१२ ई०), 'महाराणा का महत्त्व' (१९१४ ई०)—जयशंकर प्रसाद, 'स्वदेशी कुंडल' (१९१० ई०), 'वसंत वियोग' (१९१० ई०)—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', 'मौर्य विजय' (१९१४ ई०), 'अनाथ' (१९१७ ई०)—सियारामशरण गुप्त, 'वीर पंचरत्न' (१९१४ ई०)—लाला भगवानदीन, 'प्रणवीर प्रताप' (१९१६ ई०)—गोकुलचन्द्र शर्मा, 'भारत भारती' (१९१४ ई०), 'किसान' (१९१७ ई०), 'विकट-भट' (१९१८ ई०), 'वैतालिक' (१९१९ ई०), 'पत्रावली' (१९१९ ई०)—मैथिलीशरण गुप्त, 'गर्भरण्डा रहस्य' (१९१९ ई०), 'वायस विजय' (१९१९ ई०)—नाथूराम 'शंकर' शर्मा आदि। इन रचनाओं में प्रायः उपर्युक्त प्रवृत्ति का ही विकास एवं प्रसार परिलक्षित होता है।

मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण एवं आदर्श की सरस अभिव्यक्ति

आधुनिक वैज्ञानिक युग में कवियों को नवीन मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रेरणा मिली। प्रारम्भिक सामान्य प्रतिक्रिया से अब कवियों ने मनोभावों की स्वाभाविक एवं गम्भीर विवेचना प्रस्तुत करके काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि की। इस प्रकार के चित्रणों से काव्य में कथा-सूत्र की मार्मिकता, चरित्र-चित्रण की सफलता और रसात्मक अभिव्यक्ति का प्रसार होता गया। खड़ी बोली काव्य के विकास-क्रम के इस काल में प्रायः सभी कवियों ने इस ओर विशेष रुचि का प्रदर्शन किया है। यद्यपि कतिपय स्थलों पर कवियों को सफलता प्राप्त नहीं हुई है तथापि सामान्यतः मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक मनोभाव चित्रणों में काव्य-सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। उदाहरण के लिए 'प्रियप्रवास' को लिया जा सकता है। इस काव्य में स्थल-स्थल पर मनोभावों के स्वाभाविक चित्रणों की अद्भुत सफलता प्राप्त होती है।<sup>४</sup> कृष्ण के मथुरागमन पर समस्त ब्रजवासी दुःखविह्वल हो उठते हैं। उनके बार-बार रोकने पर भी कृष्ण मथुरा चले

१. सरस्वती, फरवरी १९१६, पृ० ६०।

२. वही०, पृ० १०१।

३. सरस्वती, जनवरी, १९१८ ई०, पृ० ४१-४२।

४. प्रियप्रवास (सर्ग ४ में राधा का चित्रण, पृ० ३६-४०; सर्ग ७ में नन्द का अकेले लौटना और यशोदा आदि की मनोव्यथा का चित्रण आदि-आदि।)



जाते हैं। जाते हुए रथ को ब्रजवासी व्यथा भरी आँखों से मूर्तिवत् निहार रहे हैं। ऐसी स्थिति का चित्रण कवि ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया है। यह चित्रण सर्वथा मनोवैज्ञानिक है—

टापों का नाद जब तक था कान में स्थान पाता।

देखी जाती जब तक रही यान ऊँची पताका।

थोड़ी सी भी जब तक रही व्योम में धूलि छाती।

यों ही बातें विविध करते लोग ऊबे खड़े थे।<sup>१</sup>

इसी प्रकार पवनदूती-प्रसंग में कवि ने अपनी मौलिक सूझ से काम लिया है। राधा के विरह की सीमा की कल्पना नहीं की जा सकती। यह राधा चिर-परिचित रीतिकालीन नायिका नहीं है। स्वस्थ मनोवृत्तियों से इसका चरित्र निमित्त हुआ है। इसमें धैर्य और गाम्भीर्य का अद्भुत सम्मिश्रण है। अतः विरहावस्था में उससे किसी ऊहापोह की आशा नहीं की जा सकती। किन्तु विरह की ज्वाला से उसका मन जल तो रहा ही है, अतः कवि ने उसका चित्रण अनुकूल मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। राधा प्रातःकालीन सुगन्धित वायु से उनमना हो उठती है। उसे यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसके भीतर-बाहर चारों ओर रिक्तता का प्रसार हो रहा है।<sup>२</sup> कवि का यह चित्रण बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। इस प्रकार के चित्रण अन्य कवियों ने भी यथासम्भव मौलिकता से प्रस्तुत किये हैं। 'सनेही' जी शैव्या के विलाप का चित्रण प्रकृति की पृष्ठभूमि में प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं—

उदासी घोर निशा में छा रही थी,

पवन भी काँपती धर्रा रही थी।

विकल थी जाह्नवी की वारि-धारा,

पटक कर सिर गिराती थी कगारा ॥<sup>३</sup>

मनोवैज्ञानिक मनोभाव-चित्रण का एक और उद्धरण द्रष्टव्य है। शकुन्तला से गन्धर्व विवाह करके दुष्यन्त उसे वन में छोड़कर चले गये हैं। शकुन्तला के मन में अनेक आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं। बहुत दिनों तक न बुलाये जाने पर शकुन्तला के सामाजिक निन्दा-भय और व्यक्तिगत विरह को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

भूँग-रव सुन के विचारती हूँ-धीरे से—

रोती वन-देवियाँ हैं दुःखिनी के दुःख से !

१. प्रियप्रवास, पृ० ६४।

२. वही०, सर्ग ६, छन्द २६-२६।

३. सरस्वती, जनवरी १९२० ई०, पृ० २६।



सोचती हूँ स्रोतोनाद सुन-धननाद से !  
 निन्दा सी करते हैं तुम्हारी वनदेवता  
 डरती हूँ शाप कहीं दे उठें तुम्हें न वे  
 + + +  
 बैठ के रसाल तले, मूंद दग्ध नेत्रों को  
 भ्रान्त हुई सोचती हूँ-शीघ्र ही मैं पाऊँगी  
 वे पुनीत पाद-पद्म, छाती है घड़कती—  
 होता पद-शब्द है तो आखें खोलती हूँ मैं  
 हर्ष से, परन्तु मृगी देख के विषाद से  
 रौने लगती हूँ उसे मार हटा देती हूँ ।<sup>१</sup>

कवि 'मधुप' (गुप्त जी) को इस प्रकार के चित्रणों से यहाँ अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई। इनमें भावों का स्वच्छ, स्वाभाविक और सुन्दर वर्णन मार्मिक ढंग से किया गया है, जिसका प्रसार उनकी अन्य रचनाओं में भी देखा जा सकता है।

आधुनिकता के प्रभाव से कवियों ने जिस बौद्धिक क्रान्ति के उन्मेष को समेटने का प्रयत्न किया था, उसकी अभिव्यक्ति में प्रारम्भिक उपदेशात्मकता से अब सरस भावाभिव्यंजना का समावेश हो रहा था। धर्म, संस्कृति, मानव, समाज आदि सभी को कवियों ने नवीन बौद्धिकता और आदर्शवादी दृष्टि से परखने का प्रयत्न किया। सामान्यतः इस प्रक्रिया से काव्य में सरसता की ही सर्जना हुई। इस दिशा में इस युग का दीप-स्तम्भ महाकवि 'हरिऔध' का 'प्रियप्रवास' कहा जा सकता है। उन्होंने आधुनिक बौद्धिकतावाद को भारतीय सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन के साथ अनुस्यूत करके इनको अर्थ-सौरस्य और नवीन अभिव्यंजना शैली में अभिव्यक्त किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्वितीय उत्थान-काल में प्रारम्भिक तीरस उपदेशात्मकता आदर्शवाद की सरस अभिव्यक्ति में परिवर्तित हो रही थी। उदाहरण के लिए एक उद्धरण यथेष्ट होगा। अहिंसा के आदर्श पर चलने वालों के लिए महान् त्याग, आत्मबल और कर्तव्यनिष्ठा की आवश्यकता होती है। ऐसे अहिंसक वीर सत्याग्रहियों का मनोबल बढ़ाने के लिए देखिए किस प्रकार कवि 'त्रिशूल' उन्हें सम्बोधित करते हुए सत्याग्रह का मर्म समझाते हैं—

तुम होगे सुकरात जहर के प्याले होगे,  
 हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होगे।

१. 'शकुन्तला-दुष्यन्त के प्रति' : 'मधुप', सरस्वती, मई १९१८ ई०, पृ० २३२-३३।



‘ईसा’ से तुम और जान के लाले होंगे,  
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे ॥  
होना मत व्याकुल कहीं, इस भव-जनित विषाद से ।  
अपने आग्रह पर अटल, रहना बस प्रह्लाद से ॥<sup>१</sup>

### वैयक्तिकता का प्रवेश

द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली-काव्य धारा अधिकांश में बहिर्मुखी ही रही । राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, दरिद्र जनता-जनार्दन, पौराणिक-ऐतिहासिक आख्यान इत्यादि ही काव्य के वर्ण्य-विषय रहे । युग की समस्त बौद्धिकता, जागरूकता और आधुनिकता की अभिव्यक्ति प्रायः इन्हीं विषयों के माध्यम से होती रही ।<sup>२</sup> युग के उत्तरकाल में काव्य-धारा की प्रवृत्ति में एक नवीन परिवर्तन के लक्षण दृष्टिगोचर होने प्रारम्भ हुए । काव्य बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होने लगा । कवि जग-विश्लेषण के साथ-साथ आत्म-विश्लेषण भी करने लगा । काव्य में वैयक्तिकता का भी समावेश प्रारम्भ हुआ । वैयक्तिकता का यह प्रारम्भिक स्वरूप अधिक मुखर न होते हुए भी भावी भाव-काव्य की पूर्व सूचना अवश्य है । इस परिवर्तन का प्रधान कारण पश्चिमी और बँगला काव्य का सम्पर्क है । अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद ‘सरस्वती’ में प्रारम्भ से ही छपते रहे । इन अनुवादों में ‘जापानी युद्ध गीत’<sup>३</sup> जैसी देश-प्रेम की कविताओं के अतिरिक्त ‘बायरन’ की ‘तरुणी तू चल बसी’<sup>४</sup> (दो आर्ट डेड ऐज यंग एण्ड फेयर) जैसी वैयक्तिक सुख-दुःख एवं प्रेम-विरह की कविताएँ भी छपती थीं । इस प्रकार की कविताओं में कवियों को जीवन और व्यक्तिगत राग-विराग का नवीन अनुभव होता रहा । पाठक जी के ‘एकांतवासी योगी’ की भी परम्परा इन कवियों को प्राप्त थी । प्रेम के जिस सार्वभौम रूप की कल्पना कविवर प्रसाद ने ‘प्रेम-पथिक’ में की वह बायरन की उपयुक्त कविता के भाव के कितनी निकट है, यह निम्न दो पंक्तियों से स्पष्ट हो सकता है —

नहीं समाधि-शिला आवश्यक बतलाने को तेरा स्थान,  
सकल सृष्टि में देख रहा हूँ मैं तुमको हे जीवन-प्राण ॥<sup>५</sup>

१. राष्ट्रीय मन्त्र : ‘त्रिशूल’—पं० रमाशंकर अवस्थी, कानपुर, १९२१ ई०, पृ० ६ ।
२. विशेष विस्तार के लिए देखिए अध्याय तीन एवं चार ।
३. सरस्वती, नवम्बर १९०४ ई०, पृ० ३७३ ।
४. सरस्वती, जून १९०४, पृ० १८३ (अनुवादक गौरीदत्त बाजपेयी) ।
५. वही०, पृ० १८३ ।



किन्तु भाषा की इस अव्यवस्था और अनगढ़ता की स्थिति में कवि-मन की भावुकता प्रवाहित होनी कठिन थी। इसीलिए इस प्रकार की वैयक्तिक अनुभूतियों का प्रसार अत्यन्त क्षीण रूप में होता रहा। सन् १९१३-१४ में भाषा की सुघड़ता और कोमलता की प्रतिष्ठापना के पश्चात् इस भाव-धारा को बँगला काव्य के सम्पर्क ने अधिक गतिशील बनाया। सन् १९१३ में बँगला के कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को विश्व-मान्यता प्राप्त हुई। उनके काव्य की ओर हिन्दी कवि का आकर्षित होना स्वाभाविक था। सन् १९१३ में 'सरस्वती' में उन पर एक लेख भी प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष गुप्त जी बँगला के एक और प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन को 'विरहणी ब्रजांगना' के माध्यम से हिन्दी में लाये। 'सरस्वती' में बँगला कविताओं के अनुवादों की संख्या बढ़ने लगी।<sup>१</sup> प्रायः अनुवादों में मूल की भाव-गरिमा को प्रवाहपूर्ण एवं सुकोमल भाषा में सुरक्षित ढँग से प्रस्तुत किया गया। इनसे न केवल कवियों की नवीन भावानुभूति के व्यापक सौन्दर्य की सर्जना से परिचय प्राप्त हुआ अपितु खड़ी बोली की रही-सही भाषागत कर्कशता कोमलता और माधुर्य गुण में परिवर्तित होती गयी। इसी से आगे चलकर कोमलता और सामासिकता के साथ ही नाद-सौन्दर्य और अमूर्त-विधान आदि काव्य-शिल्प भी हिन्दी को प्राप्त हुए।<sup>२</sup> इसके साथ ही कविवर प्रसाद अपनी वैयक्तिक भाव-विह्वलता को लेकर ब्रजभाषा से खड़ी बोली में पूर्णतः अग्रसर हो रहे थे। सन् १९१३ में उन्होंने ब्रजभाषा के 'प्रेमपथिक' को खड़ी बोली में प्रकाशित किया। अतः 'चित्राधार' की प्रेम-विह्वलता, नीरव की खोज और वैयक्तिकता खड़ी बोली में धीरे-धीरे प्रवाहित होने लगी। उनका 'कानन कुसुम' काव्य-संग्रह भी १९१३ ई० में ही प्रकाशित हुआ। इस प्रकार १९१३-१४ ई० के पश्चात् द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-धारा में विशेष परिवर्तन के चिह्न स्पष्ट परिलक्षित होते हैं जिनका विकास १९२० ई० तक आते-आते पंत जी की 'ग्रन्थि' रचना के भाव-काव्य में हुआ।

१. 'भारत लक्ष्मी' (रवीन्द्रनाथ की एक कविता का भाव) : सियारामशरण गुप्त, सरस्वती, अगस्त, १९१४ ई०, पृ० ४४०; 'कवि' (मधुसूदन माइकेल की कविता की छाया) : मुकुटधर पांडेय, सरस्वती, अक्टूबर, १९१६, पृ० १७८; 'कर्त्तव्य' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता का भावानुवाद) : सियारामशरण गुप्त, सरस्वती, जून १९१४, पृ० ३१२; 'प्रेम विह्वल' (गीतांजलि के एक गीत का भाव) : सियारामशरण गुप्त, सरस्वती, फरवरी १९२०, पृ० ८६।
२. खड़ी बोली आन्दोलन : शितिकंठ मिश्र, पृ० ३२२।



इस वैयक्तिकता के प्रसार को सामान्यतः दो रूपों में अभिव्यक्त देखा जा सकता है। प्रथम रूप में कवि के ध्येयगत दुःख-तथा उसकी वेदना और विह्वलता को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। भावना का यही रूप आगे चलकर छायावादी वैयक्तिक निगूढ़-वेदना में विकास की चरम सीमा को पहुँचा। इस प्रकार के काव्य का प्रथम प्रस्फुरण इस युग के प्रारम्भ में अंग्रेजी कविताओं के सम्पर्क से उद्भूत माना जा सकता है। 'बायरन' की एक कविता का उल्लेख किया जा चुका है। सन् १६०४ में 'जेम्स टेलर' की कविता 'माई मदर' का अनुवाद छपा था जिसमें इसी प्रकार की भावना की अभिव्यंजना हुई थी। इसी परम्परा में अनन्तराम पाण्डेय ने इसी वर्ष अपने पिता की मृत्यु पर 'पितृ वियोग'<sup>१</sup> कविता लिखी थी। आगे चलकर यह वैयक्तिक दुःख तथा भावानुभूति विस्तृत होती गयी। कवि के हृदय में समस्त विश्व की वेदना के प्रति नवीन संवेदना का संचार हुआ। उदाहरण के लिए मुकुटधर पाण्डेय की 'हृदय' कविता की भाव-विह्वलता को देखा जा सकता है—

वह सिसकता जो सड़क पर है खड़ा,  
है नहीं घर-द्वार का जिसके पता,  
बाँह ऐसे दीन की गहता हृदय  
और उसके आँसुओं को पोछता।<sup>२</sup>

कवि की भावना का आत्मगत यह रूप वैयक्तिकता से समस्त विश्व के प्रति संवेदनशील होता है। काव्य का यह स्वरूप अत्यन्त उदात्त स्वरूप कहा जाता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि तभी सम्भव होती है जब कवि की अनुभूति का स्तर अत्यन्त गम्भीर और गहन होता है। कवि सदैव अपने ही दुःख का रुदन नहीं करता है अपितु उसके हृदय पर वस्तु-जगत् की प्रतिक्रिया की सूक्ष्मता में भी आत्मगत कविता का स्वरूप देखा जा सकता है।<sup>३</sup>

वैयक्तिकता के प्रसार का दूसरा रूप कवियों की अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा एवं उस परम् तत्त्व के साथ एकाकार होने की अदम्य कामना है। रवीन्द्र के प्रभाव से इस खड़ी बोली काव्य में ईश्वर, परम् सत्ता आदि के प्रति नवीन भक्ति-धारा का प्रवेश हुआ। यह भक्ति-भाव रहस्यमूलक आध्यात्मिक चेतना के रूप में उपस्थित हुआ। इसका सर्वप्रधान अंग कवि की निगूढ़ वेदना है

१. सरस्वती, जून १६०४, पृ० २२४।

२. सरस्वती, मार्च १६१७, पृ० १५१।

३. हिन्दी कविता में युगान्तर : डॉ० सुधीन्द्र, पृ० ३६१।



जिससे इसमें अनुभूति की तीव्रता और भावना की व्यापकता का समावेश हुआ। काव्य की यही भावना आगे चलकर छायावाद की रहस्यवादी अभिव्यंजना में परिवर्तित हुई। इस प्रकार की रचनाओं को ही द्वितीय उत्थान के उत्तरकाल में अधिकांशतः देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए कवि मुकुटधर पाण्डेय की कविता का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

मेरे जीवन की लघु तरणी !  
 आँखों के पानी में तर जा ॥  
 मेरे उर का छिपा खजाना,  
 अहंकार का भाव पुराना,  
 बना आज तू मुझे दिवाना,  
 तप्त स्वेद-बूंदों में ढर जा ॥<sup>१</sup>

इस नवीन भावना के अन्तर्गत कवि परम् सत्ता में विलीन होने की कामना रखते हुए भी मानवीय धरातल पर ही उसे ग्रहण करना चाहता है और इस भक्ति-भाव और रहस्य-भावना में मानवतावाद का स्पष्ट आग्रह है जिससे यह परम्परागत भक्ति और रहस्य-भावना से भिन्न हो जाता है। इस प्रकार की अन्य कविताओं में उल्लेखनीय 'भक्त की अभिलाषा'<sup>२</sup>—'सनेही'; '(सागर और तिनका) मनुष्य और सागर'<sup>३</sup>, 'काला रंग'<sup>४</sup>, 'सद्गुरु प्रार्थना'<sup>५</sup>—'वद्रीनाथ भट्ट'; 'पुष्पांजलि'<sup>६</sup>, 'कवि-चतुष्टय'<sup>७</sup> (पुनर्जन्म, देना-लेना, पुरुषजीवित, यथेष्ट-दान), 'खेल'<sup>८</sup>, 'स्वयमागत'<sup>९</sup>, 'हाट'<sup>१०</sup>,—मैथिलीशरण गुप्त; 'विश्व-बोध'<sup>११</sup>, 'रूप का जादू'<sup>१२</sup>, 'क्षमा-प्रार्थना'<sup>१३</sup>, 'लज्जात्रस्त'<sup>१४</sup>—मुकुटधर पाण्डेय

१. 'उद्गार' सरस्वती, अप्रैल १९१८, पृ २१२।
२. वही, मई १९१६, पृ० २८६।
३. वही, अक्टूबर १९१६, पृ० २०६।
४. वही, मई १९१७, पृ० २३२।
५. वही, अप्रैल १९२०, पृ० १८३।
६. वही, जून १९१७, पृ० ३०३।
७. वही, जनवरी १९१८, पृ० ३५-३६।
८. वही, अक्टूबर १९१८, पृ० १७६।
९. वही, नवम्बर १९१८, पृ० २२८।
१०. वही, नवम्बर १९१९, पृ० २२५।
११. वही, दिसम्बर १९१७, पृ० ३२६।
१२. वही, मई १९१८, पृ० २२५।
१३. वही, जून १९१८, पृ० ३१७।
१४. वही, अप्रैल १९२०, पृ० २२५।



आदि हैं। राय कृष्णदास की 'खुला द्वार', 'अहोभाग्य' तथा सियारामशरण गुप्त की 'गूढ़ाशय' आदि कविताएँ भी इसी परम्परा की हैं। इन सभी कविताओं में स्वानुभूति एवं रहस्य-भावना की अभिव्यंजना का सुन्दर स्वरूप दृष्टिगत होता है। वस्तुतः ये कविताएँ भावी छायावादी काव्य की रहस्यात्मक निगूढ़ वेदना की स्पष्ट पृष्ठभूमि हैं।

### भावात्मकता

सन् १९१९ में कविवर पंत की 'ग्रन्थि' रचना के प्रकाशन के साथ ही द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-धारा के तृतीय उत्थान का प्रवेश होता है। घटना अथवा परिस्थिति के कोमल एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्तिकरण तथा वैयक्तिकता के प्रसार के बाद यह उत्थान-काल सर्वथा स्वाभाविक ही था। भाषा का सुदृढ़ आधार पाकर कवियों की भावना अधिक गम्भीर होती गयी। बँगला और अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से भावना को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई। प्रथम महायुद्ध के भीषण परिणाम और प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन की अस्पष्टता और असफलता से बौद्धिक कवियों के मन में दुःख और वेदना का प्रसार हुआ। जीवन और जगत् की निस्सारता से भी कवि ईश्वर की रहस्यमयता और प्रकृति की उन्मुक्त विशालता की ओर आकर्षित हुआ। इसके अतिरिक्त आधुनिकता के विकास में गत सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से भी कवि प्रभावित हुए। अब काव्य मानव-मात्र की वेदना से सवेदनशील हो रहा था। प्रथम महायुद्ध के भीषण नर-संहार के विरुद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया विश्वज-नीनता और प्रेम के सार्वभौम रूप की अभिव्यक्ति थी। खड़ी बोली काव्य-धारा का यह विकास प्रसाद जी की रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। 'चित्राधार' का 'नीरव प्रेम' अब 'झरना' के प्रकृति तादात्म्य की गम्भीर वैयक्तिक अनुभूति में विकसित हुआ। कवि अब 'किरण' को 'अज्ञात विश्व की विकल वेदना-दूती' के रूप में स्वीकार करते हैं। अज्ञात के प्रति कवि की जिज्ञासा का अब भावाभिभूत अभिव्यक्तिकरण हुआ। दूसरी ओर कवि ने जीवन के वैभव और विलास की नश्वरता पर विकल हृदय की विरह-पीड़ा के शत्-शत् 'आसू' बहाये। तृतीय उत्थान की यह अन्तिम और अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। छायावादी काव्य का स्वरूप इस प्रकार १९२५ ई० तक स्पष्ट हो चुका था।

द्वितीय उत्थान-काल की ओर जिस प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने १९०८ ई० में संकेत किया था, उसी भाँति भाव-काव्य की इस वैयक्तिकता की ओर भी उन्होंने १९२० ई० में स्पष्ट संकेत किया था। काव्य-सौन्दर्य और नवीन काव्य-परिवर्तन के विषय में द्विवेदी जी स्पष्ट लिखते हैं—'कवि का काम न तो शिक्षा देना है और न दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या करना है।



उसके हृदय से तो वह गान उद्गम होना चाहिए जिससे समस्त मानव-जाति की हृत्तन्त्री में विश्व-वेदना का स्वर बज उठे।<sup>१</sup> युग की प्रारम्भिक इति-वृत्तात्मकता की परिणति जिस कोमलतम अभिव्यक्तिकरण में हुई थी उसी शृंखला की कड़ी में समापन रूप में भावी काव्य की ओर द्विवेदी जी इंगित करते हुए आगे कहते हैं—“बाह्य-प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है। तब साहित्य में कविता का रूप परिवर्तित हो जाता है। कविता का लक्ष्य ‘मनुष्य’ हो जाता है। संसार से दृष्टि हटाकर कवि व्यक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। वह सान्त में अनन्त का दर्शन करता है और भौतिक पिंड में असीम ज्योति का आभास पाता है। भविष्य कवि का लक्ष्य इधर ही होगा। अभी तक वह मिट्टी में सने हुए किसानों और कारखानों से निकले हुए मूले मजदूरों को अपने काव्य का नायक बनाना नहीं चाहता था। ..... अब वह क्षुद्रों की भी महत्ता देखेगा और तभी जगत् का रहस्य सब को विदित होगा। जगत् का रहस्य क्या है, इस पर एक ने कहा है कि असाधारण में यह रहस्य नहीं है। जो साधारण है वही रहस्यमय है, वही अनन्त सौन्दर्य से युक्त है। इसी सौन्दर्य को स्पष्ट कर देना भविष्य कवियों का काम होगा।”<sup>२</sup> इस कथन के माध्यम से द्विवेदी जी ने एक ऐतिहासिक घोषणा की थी। काव्य का स्वरूप इसी ओर प्रवृत्त हो रहा था। भावी छायावादी और प्रगतिवादी काव्य-धारा की ओर उन्होंने स्पष्ट संकेत किया। इससे स्पष्ट है कि वे कोरी इतिवृत्तात्मक नैतिक कविता को ही प्रश्रय नहीं देते रहे। वह तो समय और परिस्थितियों की अनिवार्यता थी। इसीलिए वे अब विश्व-वेदना, सान्त में अनन्त की छाया, वैयक्तिकता, मानवतावाद, यथार्थवाद आदि काव्य प्रवृत्तियों को कवि का कर्तव्य बताते हैं। वस्तुतः सन् १९२० एवं १९२५ ई० तक खड़ी बोली काव्य-धारा का स्वरूप इस दिशा में प्रवृत्त हुआ। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं।

इस काल में अलौकिक अनन्त सौन्दर्य में विलीन होने की अदम्य कामना का विकास कवियों में सर्वत्र प्राप्त होता है। अव्यक्त की खोज करने जब कवि निकलता है तो वे उसे अपने निकट समस्त मानवीय दुःख और वेदना के

१. कविता का भविष्य : ‘सरस्वती सम्पादक’, सरस्वती, सितम्बर १९२०, पृ० ११६-१७।
२. कविता का भविष्य : ‘सरस्वती सम्पादक’, सरस्वती, सितम्बर १९२०, पृ० ११७।



उच्छ्वास में पाता है। कवि निराला अपना 'अधिवास' खोजने निकलते हैं तो परम्परागत उत्तर से वे सन्तुष्ट नहीं होते हैं—

क्या कहा ?—'रकती है गति जहाँ' ?<sup>१</sup>

वे आगे अपनी वैयक्तिक भावना के आधार पर ही 'मैं' शैली अपना कर एक दुःखी भाई की आर्त्त पुकार में ही उस अव्यक्त को अभिव्यक्त पाते हैं। वे रूढ़ ईश्वरवादी विश्वास को उत्तर देते हुए कहते हैं—

उसकी अधु-भरी आँखों पर मेरे करुणांचल का स्पर्श  
करता मेरी प्रगति अनंत, किन्तु तो भी मैं नहीं विमर्ष,

छूटता है यद्यपि अधिवास

किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास।<sup>२</sup>

कवि मैथिलीशरण गुप्त भी इसी भाँति आर्त्त में अव्यक्त का 'परिचय' प्राप्त करते हैं। परम्परागत विश्वास के कारण वे कुछ समय तक भ्रमित अवश्य हुए किन्तु अन्ततः उन्हें 'परिचय' प्राप्त ही हुआ।

आर्त्त गिरा कानों में छाई,

वह थी तेरी आहट लाई

पर मैं उस पर ध्यान न लाया—

बार बार तू आया।

पीड़ित के निःश्वास—अरे रे

मैं क्या जानूँ कर थे तेरे,

मुझ पर था कितना मद छाया ?<sup>३</sup>

कवि रामनरेश त्रिपाठी भी अव्यक्त का 'अन्वेषण' करते हुए थक जाते हैं। पूजा-पाठ और भजन में उन्होंने अपनी भावना को व्यक्त किया था किन्तु उन्हें ईश्वर का सामीप्य प्राप्त न हुआ। अन्त में वे भी सान्त में अनन्त-सौन्दर्य के दर्शन करने लगे।<sup>४</sup>

कवियों की वैयक्तिकता का प्रसार इस काल के प्रकृति-काव्य में भी प्रायः दृष्टिगत होता है। भाव-काव्य के अन्तर्गत इस काव्य का स्वरूप अत्यन्त उदात्त है। इसमें कवियों की तीव्र संवेदनशीलता, निगूढ़ वेदना की सूक्ष्म अभिव्यंजना तथा रहस्यमय प्रेम-भावना की सौन्दर्यपरक अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरण के लिए प्रसाद के दो चित्रण प्रस्तुत हैं—

१. 'अधिवास' : 'निराला', माधुरी, अप्रैल, १९२३, पृ० ३५३।

२. वही०, पृ० ३५३।

३. 'परिचय' : मैथिलीशरण गुप्त, माधुरी, अगस्त १९२४, पृ० ६४।

४. 'अन्वेषण' : रामनरेश त्रिपाठी, माधुरी, जुलाई १९२२, पृ० ३१-३२।



वैयक्तिक दुःखवाद की अभिव्यक्ति प्रकृति के उपकरणों के माध्यम से—

किसके अन्तःकरण अजिर में,  
अखिल व्योम का लेकर मोती ।  
औसू का बादल बन जाता,  
फिर तुषार की वर्षा होती ।<sup>१</sup>

तथा रहस्यात्मक प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है—

शिशिर-कणों से लदी हुई, कमली के भीगे हैं सब तार ।  
चलता है पश्चिम का मास्त, लेकर शीतलता का भार ॥  
भीग रहा है रजनी का वह, सुन्दर कोमल कवरी-भार ।  
अरुण किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम ! खोलो द्वार ॥<sup>२</sup>

इसी भाँति सुमित्रानन्दन पंत एवं 'निराला' आदि ने भी प्रकृति को निजी वैयक्तिक अनुभूतियों से संयुक्त किया । इन वर्णनों में कवियों ने कल्पना के आश्रय से चित्रमय एवं व्यञ्जनापूर्ण काव्य-सौन्दर्य की अपूर्व सृष्टि की है ।

कहा जा चुका है कि द्वितीय उत्थान-काल से ही कवियों की भावनाओं की प्रवृत्ति रहस्यमय सत्ता की ओर भी प्रवृत्त हो रही थी । इस काल में इस भावना का और अधिक विस्तार हुआ । इस प्रकार की रहस्यात्मक अनुभूतियों की सरस अभिव्यञ्जना अनेक कवियों ने की । प्रायः कवियों ने अपनी रहस्यात्मक भावना को प्रकृति की रहस्यमयता के अत्यधिक निकट पाया । इस भावना के पीछे जीवन और जगत् की निस्सारता से उत्पन्न दुःखवाद की भावना भी कार्यरत थी ।

मदनमोहन मिहिर कहते हैं—

नाविक

हाँ-यह तरी खोल दे अब अनन्त में,  
जाता हूँ मैं आज वहाँ—उस पार !  
बहुत दिनों के बाद आहा ! प्रीतम ने—  
सुधि ली है अब-सफल किये जीवन को ।  
लायी है सन्देश आज उस पार से—  
प्रिय की दूती सन्ध्या वह मृदु हासिनी ।<sup>३</sup>

१. धरना : जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, १९६१ वि०, पृ० १७ ।

२. वही०, पृ० ७ ।

३. 'उस पार-तरी खोल दे', माधुरी, अप्रैल १९२४, पृ० ३४७ ।



भाति कवि सियाराम शरण गुप्त जीवन के तिमिरावृत प्रदेश को आलोकित करने के प्रयास में 'अनुरोध' करते हैं—

जब इस तिमिरावृत मन्दिर में

उषालोक कर चुके प्रवेश

तब तुम हे मेरे हृदयेश ।

हाथ बढ़ाकर इस दीपक की

ज्वाला कर देना निःशेष ।<sup>१</sup>

भाव-काव्य परम्परा में उल्लेखनीय मैथिलीशरण गुप्त की 'आहट', 'खोज' तथा कवि प्रसाद की 'तुम' एवं 'अव्यवस्थित' आदि कविताएँ हैं। इन सभी कविताओं में कवियों की स्वानुभूति, रहस्यमय अभिव्यंजना तथा अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा अभिव्यक्त हुई है। वस्तुतः इस काल में मानवतावाद, विश्व-प्रेम, रहस्यात्मक प्रेमानुभूति तथा दुःखवाद की ओर ही खड़ी बोली काव्य अग्रसर हुआ।

भाव-काव्य की इस नवीन संवेदनशीलता को उपयुक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए कवि धीरे-धीरे भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन करने लगे। काव्य में 'सस्वर' और 'चित्रमय' भाषा की आवश्यकता समझी गयी। 'हृदय का नादमय सौन्दर्य' बन जाने के कारण काव्य की भाषा में नवीन लाक्षणिकता, घमंविपर्यय, प्रतीकात्मकता, मानवीकरण तथा ध्वन्यर्थ व्यंजना आदि को लाने के प्रयत्न किये गये। इस दिशा में प्रायः कवियों ने अंग्रेजी अभिव्यंजना शैली का सहारा लिया। नये शब्दों के निर्माण में संस्कृत भाषा ने यथेष्ट योगदान प्रदान किया। कवियों ने भाषा की कोमलता और प्रवाहमयता को ध्यान में रखते हुए भाषा को संस्कृतगर्भित कर दिया। प्रवाह और गति के लिए यत्र-तत्र ब्रजभाषा की शब्दावली का भी प्रयोग किया गया।<sup>२</sup>

इस विश्लेषण के अन्त में यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य इतिवृत्तात्मकता और नैतिकता का ही नीरस काव्य न था अपितु सामयिक अनिवार्यता और विवशता के फलस्वरूप उसमें आयी हुई गद्यात्मकता और इतिवृत्त-प्रणाली की परिणति कालान्तर में भाव-काव्य के उदात्त सौन्दर्य में हुई।

द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य के इस विकास-क्रम के विवेचन के पश्चात् यहाँ पर इसके कलापक्ष का अनुशीलन करना अनुपयुक्त न होगा। काव्य के

१. 'अनुरोध', माधुरी, नवम्बर १९२३, पृ० ४०१।

२. विशेष विवरण के लिए देखिए इसी अध्याय के अन्तर्गत 'भाषा' और 'पद-योजना'।



इस आवश्यक अंग के विवेचन से इस युग के खड़ी बोली काव्य की साहित्यिक विशेषताओं का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जा सकेगा। अतः इस पक्ष का विवेचन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है।

## रस

रस और काव्य को अन्योन्याश्रित माना गया है। द्विवेदी-युग के प्रायः सभी कवियों ने काव्य में रस की स्थिति को आवश्यक माना। गत अध्याय में देखा जा चुका है कि इस विचारधारा को स्वीकार करने के उपरान्त भी इस युग के ब्रजभाषा-काव्य में नवीन विचारधारा के प्रभाव से ऐसे विषयों का भी वर्णन यथेष्ट मात्रा में किया गया जिनको परम्परागत रसवादी रस-सिद्धान्त के विरुद्ध मानते आये थे। प्रकृति-काव्य की अभूतपूर्व परम्परा का जो सूत्रपात इस युग में हुआ, वह 'रस-दृष्टि' के अनुकूल नहीं है। देशप्रेम और समाज-कल्याण की दृष्टि से प्रेरित काव्य में 'रसानुभूति' की कोई कल्पना नहीं की जा सकती? भक्तिकाल के राम और कृष्ण और रीतिकाल की नायिकाओं का स्वरूप इस युग में बदल चुका था। राम और कृष्ण के नाम मात्र से अब कवि श्रद्धान्त होकर सहज ही 'रसमग्न' नहीं हो सका, उसके मन में इन दो विभूतियों के प्रति, इनकी जीवनचर्या और चारित्रिक विशेषताओं के प्रति नवीन जिज्ञासा के भाव उद्भूत होते हैं। कृष्ण की अलौकिक क्रियाओं को बुद्धिसंगत न देखकर उनके स्मरण अथवा वर्णन से सहज ही अब रसानुभूति नहीं हो सकती थी। राम के सामने आते ही विभीषण, बालि, सीता आदि के साथ किये गये उनके व्यवहार का भी स्मरण हो जाता है। इसी प्रकार रीतिकालीन नायिकाएँ आधुनिक युग में उपहास और तिरस्कार के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को जागृत नहीं कर सकीं। मध्य-युग में कवि के सम्मुख एक निश्चित चित्र परम्परा से प्राप्त था अतः रसानुभूति सहज ही सम्भव थी। मध्ययुगीन काव्य में साधारणतया इसीलिए वैयक्तिकता का नितान्त अभाव देखा जा सकता है। रसानुभूति के समय यह आवश्यक है कि कवि या पाठक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण परिहार हो। फलतः उनकी जिज्ञासा एवं बौद्धिकता तथा उनके विवेक एवं व्यक्तित्व की विशिष्टता का भी विलयन हो जाना आवश्यक है। जिज्ञासु बुद्धि, विज्ञान एवं मनोविज्ञान के आधुनिक युग में यह सम्भव नहीं है। कवि और पाठक दोनों पग-पग पर अपने व्यक्तित्व की विशिष्टता को प्रदर्शित करते हैं। इसी कारण आधुनिक आध्यात्मिकता में सामान्यतः परम्परागत समर्पण की भावना नहीं है। कवि अपने व्यक्तित्व को समर्पित नहीं कर सकता। छायावादी काव्य में इस तथ्य का पूर्ण विकसित रूप स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। डॉ० रामकुमार वर्मा की भाँति कवि अब



‘सिद्धि पाकर भी तुम्हारी साधना का ज्वलित क्षण हूँ’ में अधिक विश्वास रखते हैं।

आधुनिक युग सहज मानवीय संवेदनों का युग है। आज का कवि देश, राष्ट्र और समाज को उपेक्षित करके ‘रस-सृष्टि’ नहीं कर सकता। उसका मानस सदैव जन-मानस की ओर प्रवृत्त रहता है। आर्थिक एवं सामाजिक विषमता और राष्ट्रीय उथल-पुथल के इस युग में कवियों ने जिस काव्य की सृष्टि की, उसमें ‘रसानुभूति’ की मात्रा उतनी नहीं जितनी देशवासियों के सुषुप्त मानस को झकझोरने और उनके विचारों को उत्तेजित करने की शक्ति है। कवि का उद्देश्य विचारोत्तेजना, नवीन निष्ठा, आत्मविश्वास एवं सह-अस्तित्व की स्थापना है। इसलिए इस काव्य के अधिकांश में परम्परागत रसानुभूति की अवतारणा सम्भव नहीं थी। जिज्ञासु-युग में ‘रसानुभूति’ सम्भव नहीं होती। ‘रसानुभूति’ श्रद्धा का विषय है, विवेक और तर्क का नहीं। इसीलिए आलोच्य-काव्य में बुद्धि और भावना का सामन्जस्य प्राप्त होता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने रस को काव्य का प्राण मानने ने साथ ही काव्य को ज्ञानराशि का कोश और चित्तवृत्तियों का चित्र भी कहा था। उन्होंने कवि के लिए यह आवश्यक माना कि उसे मनोविकारों और प्राकृतिक बातों का यथेष्ट ज्ञान हो।<sup>१</sup> तत्कालीन नवीन वातावरण के लिए ये सब तत्त्व आवश्यक थे। इसीलिए इस युग के काव्य में जहाँ एक ओर परम्परागत ‘रस-दृष्टि’ का समर्थन मिलता है, वहीं दूसरी ओर उल्लंघन भी मिलता है। इस काव्य में ऐसे अनेक स्थल हैं जिनको रसवादी रस-दोष की संज्ञा देकर ‘निम्न कोटि’ का काव्य कह सकते हैं। प्रकृति का मानवीकरण, स्वशब्द (रस दोष), प्रकृति विपर्यय आदि कई रस-दोष आलोच्य-काल के काव्य में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए दो उद्धरण देखिए—

स्वशब्दवाच्य (रस दोष—आचार्य मम्मट के अनुसार किसी रस की सृष्टि करते समय यदि उस रस का नाम अथवा उसके विभाव, अनुभाव या संचारी भाव का नाम वर्णन में आ जाये तो उसे रस-दोष कहा जाता है।<sup>२</sup> कश्चन रस के प्रसंग में यदि ‘कश्चन’ शब्द आ जाये तो रस-दोष माना जायेगा और रचना का स्तर निम्न हो जायेगा। जैसे—

कौन, प्रकृति के कश्चन काव्य-सा,

वृक्ष पत्र की मूढ छाया में।

१. सरस्वती, जुलाई १९०७, पृ० २८१।

२. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ६१६।



लिखा हुआ-सा अचल पड़ा है,  
अमृत सदृश नश्वर काया में ॥<sup>१</sup>

कवि ने यहाँ 'विषाद' (करुण रस का एक संचारी भाव) का चित्रण करते हुए 'करुण' नाम का प्रयोग किया है। अतः रसवादियों की दृष्टि से यह दोष है किन्तु कवि प्रसाद की इस प्रसिद्ध कविता में करुण रस की पूर्ण अभिव्यक्ति अत्यन्त सुन्दर ढँग से हुई है। कवि की भावना की तन्मयता और अनुभूति की प्रगाढ़ता से पाठक सहज ही प्रभावित हो उठता है। आधुनिक काव्य की यही 'रस-दशा' है। इसमें अनुभूति की व्यापकता का परिचय प्राप्त होना ही यथेष्ट है। इसी प्रकार मानवीकरण के माध्यम से कवियों ने प्रकृति के चेतन रूप-सौंदर्य की अनुभूतपूर्व सृष्टि की। 'झरना' से एक उद्धरण प्रस्तुत है—

रिक्त चषक-सा चन्द्र लुढ़क कर है गिरा,  
रजनी के आपानक का अब अन्त है ॥  
रजनी के रंजक उपकरण बिखर गये,  
धूँधल खोल उषा ने झाँका और फिर—  
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पड़ी,  
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी ॥<sup>२</sup>

इसको रसवादी असत् का सत् कहकर काव्य-दोष मान सकते हैं, किन्तु काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि ने जिस गहन अनुभूति का इसमें चित्रण है, वह कदाचित् 'रस-काव्य' में प्राप्त न हो सके। 'रस-काव्य' में तो प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता का निषेध किया गया है जब कि मानव की आदिम सहचरी प्रकृति ही है। आज के वैज्ञानिक युग में प्रकृति के अनेक रहस्यों का उद्घाटन होने के पश्चात् भी उसका आकर्षण कवि के लिए कम नहीं हुआ है।

मम्मट ने रस-दोषों का विवरण देते हुए कहा कि जिस प्रकृति के लिए जो वर्णन अनुचित है, उसका वहाँ वर्णन करना सर्वथा अनुचित और रस-दोष है। जैसे कालिदास ने शिव-पार्वती के विवाहोपरान्त उनके दाम्पत्य-प्रेम अथवा संभोग-शृंगार का वर्णन किया तो वह शिव और पार्वती के भगवद्स्वरूप के विरुद्ध है अतः वह रस-दोष है।<sup>३</sup> आधुनिक मानववादी एवं बौद्धिक दृष्टि ने भगवान को भी मानव का रूप प्रदान किया। उसने मानवोचित गुण-अगुण की कल्पना मानव और ईश्वर में समान रूप से की। अतः उस पर यह

१. झरना—प्रसाद, पृ० १६।

२. वही०, पृ० ११।

३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग, १, पृ० ६१८।



आक्षेप नहीं लगाया जा सकता है कि उसका वर्णन रस-परम्परा के विरुद्ध है। परम्परागत रूढ़ विवाधाधारा का त्याग इस काव्य की सर्वाधिक प्रबल धारा है। अतः वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर ही ईश्वर मानव को स्वीकार हो सकता है।

संक्षेप में कहा जाये कि द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य के अधिकांश में अनुभूति की प्रगाढ़ता, मुखर वैयक्तिकता, परम्परा-विमुक्त नवीन आलंबन, बौद्धिक तर्क-वितर्क की प्रधानता, समाज-सापेक्ष दृष्टि की अनिवार्यता आदि का ही प्रमुख स्वरूप प्राप्त होता है। इन कारणों से यदि शास्त्रोक्त रसानुभूति की स्थिति तक यह ग्राह्य न पहुँच सके तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काव्य का समुचित रूप से मूल्यांकन अनुभूति और भाव के स्तर पर ही हो सकता है। रस-काव्य की अनुभूति में व्यक्तित्व का परिहार होना आवश्यक नहीं है। कदाचित् इसी प्रकार की अनुभूति को ध्यान में रखकर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रसानुभूति को विभिन्न कोटियों में विभक्त करके इस प्रकार की अनुभूति को इस की 'नीची' अवस्था माना था।<sup>१</sup> डॉ० जगदीश गुप्त ने 'रसानुभूति' को रूढ़िबद्ध एवं सीमित माना है। उनका मत है कि आधुनिक काव्य में जो आत्मीयता और संवेदना का व्यापक प्रसार है उससे रसानुभूति के इतर सह-अनुभूति की स्थिति उत्पन्न होती है। रसानुभूति अपने आप में एक आदर्श अवश्य है किन्तु मानवीय दृष्टिकोण से सह-अनुभूति अधिक उत्कृष्ट है। आधुनिक बौद्धिकतावाद के कारण काव्य में मात्र भाव का ही प्रसार नहीं है अपितु प्रत्येक भाव के पीछे एक विशिष्ट दृष्टि भी संलग्न है। रसानुभूति में केवल भाव-विस्तार अभीष्ट रहता है किन्तु सह-अनुभूति में भाव और दृष्टि दोनों का विस्तार अपेक्षित है।<sup>२</sup> इस प्रकार यह काव्य निम्न स्तर का काव्य नहीं है। उदाहरण के लिए गुप्त जी की कविताओं को लिया जा सकता है। उनके काव्य में लोक-विश्रुत राम-कृष्ण सम्बन्धी कथानकों पर आधारित काव्य-रचनाओं में सामान्यतः परम्परागत रसानुभूति प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त साधारण जन-जीवन तथा सामान्य पात्रों किसान, अछूत, विधवा, राजपूत आदि पर आधारित काव्य की भी उन्होंने रचना की है। इस काव्य का मूल्यांकन यदि जनता ने रसानुभूति के परम्परागत सिद्धान्त के आधार पर किया होता तो कदाचित् वे आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति के आह्वान और राष्ट्र-कवि की पदवी न प्राप्त कर सकते। उनके काव्य में सांस्कृतिक चेतना का जो उदात्त स्वरूप प्राप्त होता है, वह साधारणतया

१. चिन्तामणि, भाग १, पृ० २३१।

२. नयी कविता, अंक ४, सन् १९५६, पृ० १८-२१।



रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं आ सकता है। परन्तु उसमें अनुभूति की सचाई, उनके भावों की गम्भीरता और विचारों का जो उदात्त स्वरूप प्राप्त है, वह अवश्य ही उच्च स्तर के काव्य के लक्षण हैं। कदाचित् इसी कारण डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित कहते हैं—“...रस हो या न हो, किन्तु यदि किसी रचना में अनुभूति की सचाई है, अभिव्यक्ति की विषदता है, व्यंजना की शक्ति है और प्रतीकों में भाव-विस्तार का सामर्थ्य है तो वह कविता है और वह रसवादी के द्वारा भी तिरस्कार्य न होगी। ... न रसमय सही, भावमय या अनुभूतिमय तो हो। अनुभूति तो कोई-न-कोई भाव पाठक के मन में उठायेगी ही, भले ही वह संचारियों की या स्थायी की निश्चित तालिका के बाहर हो।”<sup>१</sup>

उपयुक्त विवेचन के अनन्तर आलोच्य-काव्य में अभिव्यक्त विभिन्न रसों का संक्षिप्त उल्लेख करना भी अपेक्षित है। आलोच्य-युग में सामाजिक पतन, देश भर में व्याप्त दरिद्रता तथा शोषित वर्गों की अकथनीय दुर्दशा से कवि द्रवीभूत होकर करुणासिक्त हुए। इस काव्य का एक प्रधान स्वर करुण ही है। दूसरी ओर राष्ट्रीय भाव-धारा के विकास के अनुकूल रचित काव्य में उत्साह और बलिदान की भावना ने वीर रस को द्वितीय प्रधान स्वर बना दिया। शृंगार, हास्य और भक्ति इस युग के गौण रस कहे जा सकते हैं। इस युग में रीतिकालीन शृंगारिकता के विरोध में रचे गये संयमित शृंगार की ही भावना को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई। भक्तिकालीन समाज-निरपेक्ष भक्ति के स्थान पर इस युग में उस प्रकार की भक्ति को अधिक मान्यता प्राप्त नहीं हुई। मानवत्व को जब ईश्वरत्व की संज्ञा मिली तो ‘भक्ति-रस’ की रचनाओं की कमी स्वयं स्पष्ट है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्थान में अवरोध उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों को इस युग के कवियों ने व्यंग्य और उपहास का पात्र बना दिया। प्रायः इस प्रकार की रचनाओं को आलोच्य-युग के प्रारम्भिक वर्षों में अधिक देखा जा सकता है। इस प्रकार इस काव्य में हास्य रस के अन्तर्गत व्यंग्य की भी प्रधानता रही।

### (१) करुण रस

सामान्यतः करुण रस की सर्जना इस काव्य में पीड़ित एवं शोषित कृषक, मजदूर तथा उपेक्षित नारी के माध्यम से ही हुई है। इसके अतिरिक्त इस युग में सामाजिक विषमता से उत्पन्न वैयक्तिक दुःख से भी करुण रस की समाविष्टि हुई। आलोच्य-काव्य की प्रायः सभी प्रमुख रचनाओं—‘जयद्रथ-

१. रस सिद्धान्त—स्वरूप विश्लेषण : आनन्दप्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली—सन् १९६०, पृ० ४२५-२६।



वध', 'प्रियप्रवास', 'कहनालय', 'कानन कुसुम', 'झरना', 'आँसू', 'भारत-भारती', 'किसान', 'साकेत', 'अनाथ' आदि में इस रस को व्याप्त देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए दो उद्धरण प्रस्तुत हैं—

दुर्मिक्ष और गरीबी से पीड़ित भारतीय जनता का एक कहण चित्र गुप्त जी देखिए कैसे प्रस्तुत करते हैं—

वह पेट उनका पीठ से मिलकर हुआ क्या एक है ?  
मानो निकलने को परस्पर हड्डियों में टेक है।  
निकले हुए दाँत बाहर, नेत्र भीतर हैं घँसे,  
किन शुष्क आँतों में न जाने प्राण उनके हैं फँसे !  
अविराम आँखों से बरसता आँसुओं का मेघ है,  
है लटपटाती चाल उनकी, छटपटाती देह है।  
गिरकर कभी उठते यहाँ, उठकर कभी गिरते वहाँ,  
घायल हुए से घूमते हैं वे अनाथ जहाँ तहाँ ॥<sup>1</sup>

सांसारिक विषमता से उद्भूत वैयक्तिक दुःख से विह्वल हृदय की कहणासक्ति वाणी भी द्रष्टव्य है। कवि प्रसाद अपने दुःख-विह्वल मन की व्यथा एवं कहना को प्रकृति के उपकरणों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

क्यों व्यथित व्योम-गंगा सी छिटका कर दोनों छोरें,  
चेतना-तरंगिनि मेरी लेती है मृदुल हिलोरें।  
+ + + +  
नीचे विपुला धरणी थी दुःख भार वहन-सी करती,  
अपने खारे आँसू से कहना-सागर को भरती ॥<sup>2</sup>

## (२) बीर रस

द्विवेदी-युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। भारतीय इतिहास एवं पुराणों में वर्णित वे समस्त पात्र, जो अपने आत्माभिमान, सत्य, देशी-सत्ता और अधि-कार के लिए प्राणों को बलिदान तक करने से नहीं हिचके, इस युग में कवियों की राष्ट्रीय भाव-धारा के प्रतीक बन गये। रानी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, चाँद-बीबी, पंजाब की नील देवी, मालवा की जसमा, वीरा, अर्जुन, अभिमन्यु, राम, लक्ष्मण, शिवाजी, छत्रसाल, प्रताप, दुर्गादास, गोरा-बादल, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोविन्द सिंह आदि इस युग के कवियों की प्रेरणा के अजस्र स्रोत बने। इन पात्रों पर फुटकर रचनाओं—'वीरपंचरत्न' आदि से लेकर प्रबन्ध-काव्यों

१. भारत भारती, पृ० ८८।

२. आँसू (प्रथम संस्करण), पृ० २ तथा ६।



—‘रंग में भंग’, ‘जयद्रथ वध’, ‘विषट भट’, ‘प्रणवीर प्रताप’, ‘मौर्य विजय’ आदि तक की रचना की गयी। तत्कालीन साम्राज्यवादी राज्यसत्ता की दमन और शोषण नीति के विरुद्ध इस प्रकार के काव्य से जनता में अपार उत्साह का सन्निवेश हुआ। दूसरी ओर राजनीतिक कारणों से तत्कालीन विदेशी सत्ता का स्पष्ट विरोध करना भी खतरे से खाली न था, अतः कवि अपने विरोध को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करते रहे। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

मालवा देश की एक झाँड़-पटेल (कुआँ खोदने वाली) जाति के ‘टीकम’—सरदार की अति सुन्दर पत्नी ‘जसमा’ अपने सतीत्व की रक्षा हेतु रणचण्डी का रूप धारण करके देखिए कैसी अमृतपूर्व वीरता की सृष्टि करती है—

ऐसा देख पटेल जसमा पटेबाज बन जाती है,  
‘हु’ ‘हु’ कर कराल काली-सी रण में रक्त बहाती है।  
किसी अश्व का शीश उड़ाकर घड़ घरती टपकाती है ॥  
किसी जवान की कमर कतरकर यमपुर उसे पठाती है,  
पैर पकड़कर किसी जवान को झू पर खींच गिराती है।  
गर्दे पर गिरते हूँ उसकी गर्दन भी उड़ जाती है ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार की वीरता के अतिरिक्त गान्धीवाद के प्रभाव से अहिंसक सत्याग्रही वीरों की वीरता का भी एक चित्र प्रस्तुत है—

मुँह से उफ़ तक नहीं करेंगे भालों पर चढ़ जावेंगे।  
पीछे कदम नहीं रखेंगे जीते जी जल जावेंगे ॥  
मातृभूमि के लिए हिमालय के हिम में गल जावेंगे।  
असहयोग व्रत से तथापि हम कभी नहीं टल जावेंगे ॥<sup>२</sup>

कवि ‘त्रिशूल’ के ‘कर्मवीर’ का एक चित्र भी द्रष्टव्य है—

सम करते हैं विषम भूमि को अपने कर से,  
पुष्प बीज बो लाभ उठाते हैं अवसर से।  
दया शाम घन करें नीर बरसे फिर बरसे,  
अगर न बरसे स्वयं सींचते खूने जिगर से ॥<sup>३</sup>

इस काव्य में वीरता के परम्परागत स्वरूप में नवीन विकास एवं परिवर्तन हुआ। वीरता के आलम्बन जहाँ पुरुषों के साथ नारियाँ भी हुईं, वहाँ वीरता

१. वीर पंचरत्न : लाला भगवानदीन (१९२१ ई०), पृ० ३२२।

२. स्वतन्त्रता की झंकार : सं० ‘त्रिशूल’, पृ० ११।

३. राष्ट्रीय मंत्र : त्रिशूल, पृ० २२।



के आलम्बन अब अहिंसक, असहयोगी और कमरत वीर भी हुए। वस्तुतः यह परिवर्तन इस युग की महती देन है।

### (३) शृंगार रस

कहा जा चुका है कि शृंगार रस इस काव्य का एक गौण रस है। शृंगार रस के संयमित और समाज-सापेक्ष रूप की ही प्रधानता इस काव्य में रही। 'साकेत', 'प्रियप्रवास', 'पथिक', 'मिलन' आदि में प्रेम समाज और कर्तव्य-निष्ठ है। उसमें स्वच्छन्दता और निरंकुशता का कहीं लेशमात्र भी संयोग नहीं है। परवर्ती भावकाव्य में यद्यपि उत्तेजक शृंगारिक चित्रों के दर्शन होते हैं, तथापि वे अपवाद ही कहे जा सकते हैं। 'आसू' और 'ग्रन्थि' में ऐसे कुछ चित्र अवश्य हैं किन्तु वस्तुतः ये दोनों काव्य शृंगार रस प्रधान नहीं हैं।

संयमित शृंगार के संयोग पक्ष का एक मनोहारी चित्र गुप्त जी 'साकेत' के प्रथम सर्ग में उमिला-लक्ष्मण के दाम्पत्य-जीवन का चित्रण करते हुए प्रस्तुत करते हैं—

'क्यों न अब मैं मत्त-गज-सा झूम लूं ?  
कर-कमल लाओ तुम्हारा चूम लूं।'  
कर बढ़ाकर जो कमल-सा था खिला,  
भुसकुरायी और बोली उमिला—  
'मत्त-गज बनकर विवेक न छोड़ना,  
कर कमल कहकर न मेरा तोड़ना।'<sup>१</sup>

इसके विपरीत प्रसाद जी द्वारा चित्रित उत्तेजक संयोग शृंगार का एक चित्र देखिए—

परिरम्भ-कुम्भ की मदिरा, निःश्वास मलय के झोंके,  
मुख-चन्द्र-चाँदनी-जल से मैं उठता था मुँह धोके।  
थक जाती थी सुख-रजनी मुख-चन्द्र अंक में होता,  
श्रम सीकर सदृश नखत-से खम्बर-पट भीगा होता।<sup>२</sup>

### (४) हास्य रस

सामाजिक काव्य की प्रचुरता के कारण आलोच्य-काव्य में हास्य रस का समावेश भी हुआ। प्रायः समाज विरोधी तत्त्वों, रुढ़िग्रस्त विचारधारा एवं धार्मिक विश्वास, अंग्रेजी सभ्यता का अधानुकरण करने वाले युवक, सम्पादक, आलोचक, ग्रन्थकारों आदि के प्रति कवियों की व्यंग्यात्मक उक्तियों से हास्य

१. साकेत, पृ० २१।

२. आसू, पृ० १८।



रस की सृष्टि हुई। हास्य के सामान्यतः व्यंग्य, यन्त्रोक्ति, हास्य और वाक्चातुरी आदि भेद किये जाते हैं।<sup>१</sup> आलोच्य-काव्य में सामान्यतः व्यंग्य की ही प्रधानता रही क्योंकि व्यंग्य हास्यरस का अत्यधिक सामाजिक रूप कहा जा सकता है और यह काव्य सामाजिक काव्य ही था। उदाहरण के लिए व्यंग्य का एक उद्धरण प्रस्तुत है, जिसमें गुप्त जी ने तत्कालीन सामाजिक पतन पर कचोटने वाला व्यंग्य किया है—

बूढ़े होने पर भी मेरा तरुण रहेगा चित्त ।  
मरते दम तक नयी वधू-बहू ब्याहूँ पुत्र-निमित्त ॥  
बाल बूढ़े शृंगारूँगा  
'किसी से कभी न हारूँगा' ।<sup>२</sup>

नाथूराम 'शंकर' शर्मा ने तत्कालीन भारतीयता एवं देवनागरी के विरोधी, अंग्रेजी सभ्यता से मोहित पढ़े-लिखे वर्ग पर अत्यन्त सटीक व्यंग्य किया है—

ईश गिरिजा को छोड़ यीशु गिरजा में जाय,  
शंकर स्वदेशी मैन मिस्टर कहावेंगे ।  
बूट, पतलून, कोट, कम्फाटर टोपी डाँट,  
जाकट को पाकट में वाच लटकावेंगे ।  
बूमेंगे घमंडी बने लेडी का पकड़ हाथ,  
पीयेंगे बरांडी सीट होटल में खावेंगे ।  
फारसी की छारसी उड़ाय अंग्रेजी पढ़,  
मानो देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे ।<sup>३</sup>

कवि 'शंकर' ने इसी प्रकार तुक्कड़ों,<sup>४</sup> दुराचारी एवं कुचाली व्यक्तियों,<sup>५</sup> रुढ़िग्रस्त समाज<sup>६</sup> आदि पर भी व्यंग्य किये। इसके अतिरिक्त 'गर्भरण्डा रहस्य', 'सलोने का आल्हा', 'टैसुराय' तथा 'हिजड़ों की मजलिस' में भी उन्होंने सुन्दर हास्य रस की अवतारणा की है। वस्तुतः कवि 'शंकर' आलोच्य-काल के हास्य रस के प्रतिनिधि कवि हैं। वाक्चातुरी के माध्यम से भी हास्य की सृष्टि होती है। शृंगार रस के अन्तर्गत गुप्त जी ने 'साकेत' के प्रथम सर्ग

१. काव्य दर्पण : रामदहिन मिश्र, पृ० २०० ।

२. सरस्वती, जून १९०८, पृ० २७७ ।

३. शंकर सर्वस्व, पृ० ३२४ ।

४. वही०, पृ० ३२४ ।

५. वही०, पृ० ३२५ ।

६. वही०, पृ० ३२६ ।



में इस प्रकार के हास्य की सुन्दर अभिव्यंजना की है। इसके अतिरिक्त हास्य के अन्य भेद हास्य एवं वक्रोक्ति के भी उद्धरण इस काव्य में प्राप्त होते हैं।

### (५) भक्ति रस

आलोच्य-काव्य में परम्परागत भक्ति-भावना की रचनाएँ 'शंकर', 'हरिऔध' तथा 'पूर्ण' आदि कवियों ने अवश्य की, किन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है। सामान्यतः कवियों की ईश्वर-विषयक रति रहस्यात्मक ढँग से ही अभिव्यक्त हुई है। यह भक्ति समाज-सापेक्ष होने के कारण शुद्ध परम्परागत भक्ति-भावना के अन्तर्गत नहीं आती है। यही कारण है कि वैष्णव होते हुए भी गुप्त जी राम की अलौकिकता को युगानुरूप परिवर्तित करते हैं। कृष्ण जननायक के रूप में उपस्थित होते हैं। इस भक्ति काव्य का स्वर निश्चय ही रहस्यात्मक होते हुए भी समाज-सापेक्ष एवं व्यापक है। उदाहरण के लिए गुप्त जी की भक्ति का स्वरूप द्रष्टव्य है—

मैंने तुझको नाथ ! अपना जीवन भेंट किया

पर तूने उसको न लिया यह क्या किया कि फेर दिया ?

हुई मुझसे भूल, जीवन का क्या मूल ?

वह है झड़ता फूल ।

उमको ओरों को दूंगा, फल मैं आप न लूंगा

तू लेना कृताथं हूंगा ।<sup>1</sup>

स्पष्ट है कि कवि जीवन को जगत-हित के लिए समर्पित करना ही उचित समझता है। ईश्वर को दान देना व्यर्थ है, क्योंकि जीवन का दान ईश्वर से ही तो प्राप्त हुआ है। निष्काम कर्म ही भक्ति है और उसी में मुक्ति है। इसी प्रकार की भावना सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, गोपालशरण मिश्र, बदरीनाथ भट्ट, 'प्रसाद' एवं 'निराला' आदि कवियों ने भी व्यक्त की है।

उपयुक्त विवेचन के अन्त में यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य में आधुनिक युग की बौद्धिकता और जन-जागरण की प्रवृत्ति के कारण परम्परागत रस-दृष्टि में परिवर्तन परिलक्षित हुआ। कवियों ने विवेक, मनोविज्ञान, समाज और राष्ट्र को भी अपनी भावना का आधार बनाया। नये आलम्बनो और नयी अनुभूतियों एवं भावनाओं के कारण यह काव्य अधिकांश में अनुभूतिपरक ही रहा। भावना की गहनता, अनुभूति की सचाई, बिम्ब-ग्रहण एवं प्रतीक-योजना की सरस अभिव्यक्ति इस काव्य में उपलब्ध होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक रस-बोध में मनोविज्ञानजनित संवेदना अधिक प्रखर होती गयी।



छन्द

आधुनिक युग के हिन्दी काव्य को सर्वप्रथम छन्द-विविधता का अनुपम दान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्राप्त हुआ था। इससे पूर्व हिन्दी कविता में गिने-चुने छन्दों की ही परम्परा का निर्वाह होता रहा। द्विवेदी-युग में खड़ी बोली काव्य की छन्द-विषयक दृष्टि में एक भारी परिवर्तन परिलक्षित हुआ। भारतेन्दु ने जिस लोक-छन्द परम्परा को अपनाया था, उसका स्वरूप आगे विकसित न हो सका। इसका सर्वप्रधान कारण खड़ी बोली काव्य का संस्कृत भाषा और साहित्य के साथ संपृक्त हो जाना है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली की समृद्धता हेतु ही यह आश्रय ग्रहण किया था। हिन्दी काव्य-धारा की परम्परा में छन्द-योजना की दृष्टि से आलोच्य-युग में आश्चर्यजनक प्रगति और विविधता के दर्शन हुए। छन्दशास्त्रियों ने अन्यान्य छन्दों को विवेचित किया था, किन्तु उनमें से कुछ ही छन्द हिन्दी-काव्य में प्रयुक्त हुए थे। द्विवेदी-युग ने न केवल अन्यान्य शास्त्र-अनुमोदित छन्दों का प्रयोग किया अपितु नवीन छन्दों की भी रचना की। इसके अतिरिक्त उर्दू-फारसी, अंग्रेजी आदि देशी-विदेशी भाषाओं की छन्द-योजना का भी इस युग के काव्य में समावेश हुआ। संक्षेप में इस युग की छन्द-योजना का विवेचन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) वर्ण-वृत्त

संस्कृत भाषा और साहित्य से सम्बद्ध होने के साथ ही महावीरप्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को हिन्दी में लाने का प्रयास किया। कदाचित् संस्कृत साहित्य और भाषा के अधिक समीप आने तथा परम्परागत रुढ़ छन्द-योजना के विरोध में ही इस प्रकार की नीति से उन्होंने काम लिया। उन्होंने स्वयं खड़ी बोली में अनेक वर्ण-वृत्तों में कविता की। संस्कृत से अनूदित 'महिम्न स्तोत्र', 'विहार-वाटिका', 'पीयूष लहरी' आदि रचनाएँ वर्णिक छन्दों में ही प्रस्तुत की गयीं। खड़ी बोली से पूर्व ब्रजभाषा में कविता करते रहने पर भी वे वर्णिक छन्दों का प्रयोग करते रहे। खड़ी बोली में आने पर तो उन्होंने तत्कालीन कवियों को इस ओर अधिकाधिक प्रेरित किया। उन्होंने जितने भी वर्णिक छन्दों का प्रयोग स्वयं किया उनको उनके बाद 'पूर्ण', 'हरिऔध', लाला भगवानदीन, कामताप्रसाद गुरु, गिरिधर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, कन्हैयालाल पोद्दार आदि सभी कवियों ने प्रयुक्त किया। फलतः वर्णिक वृत्तों की एक नवीन परम्परा का प्रचलन हिन्दी काव्य में हुआ। इन कवियों की छन्द-विविधता वस्तुतः आश्चर्यजनक है। उदाहरण के लिए इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, वसंततलिका, मालिनी, स्रगधरा, शिखरिणी, शार्ङ्गल विक्रीडित, भुजंग प्रयात, पंच चामर, मंदाक्रांता, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, इन्दिरा, वंतालीय आदि छन्दों का प्रयोग इस युग की विभिन्न रचनाओं में हुआ। आधुनिक युग की इस परम्परा की प्रसिद्ध रचना 'प्रियप्रवास' है। 'हरिऔध' जी ने संस्कृत के



अतुकांत वर्णिक वृत्त-परम्परा को इस काव्य में अभूतपूर्व ढँग से निभाया। इसी सम्बन्ध में मैथिलीशरण गुप्त की 'पन्नावली' रचना भी उल्लेखनीय है। इन्होंने 'हरिऔध' की भाँति तुक के मोह को नहीं छोड़ा। आगे चलकर इसी परम्परा में कवि अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' और 'वर्द्धमान' काव्य की रचना की। वर्णिक-वृत्तों की प्रयोग-सफलता गुप्त जी के 'साकेत' काव्य में भी यत्र-तत्र देखी जा सकती है। उन्होंने इस महाकाव्य के दशम सर्ग को वैतालीय अर्द्ध-सम वर्णिक-वृत्त में ही रचा है। उदाहरण के लिए एक छन्द प्रस्तुत है—

इसके विषम चरणों में—सगण, सगण, जगण, गुरु (॥S, ॥S, ॥S, S)

तथा सम चरणों में—सगण, भगण, रगण, लघु (॥S, S॥, S॥S, ॥, S)  
एवं गुरु होते हैं।

वह स्वप्न कि सत्य, क्या कहूँ ?

सरयू, तू वह और मैं बहूँ।

प्रकटी प्रिय-मूर्ति मोदिता,

कब सोई यह दृष्टि रोदिता।

इसके अतिरिक्त प्रचलित छन्द-नियमों में यथावसर गुप्त जी ने परिवर्तन किए हैं, जिसके पीछे कहा जा सकता है, कवि की सुविधा और भाव की प्रवाहशीलता की अनुकूलता ही कार्यरत है। उदाहरण के लिए शिखरिणी छन्द को लिया जा सकता है। नियमतः इस छन्द में छठवें और ग्यारहवें वर्ण पर यति मानी गयी है<sup>१</sup>, किन्तु गुप्त जी ने इसमें ६/६/५ पर यति का नियम अपनाया है—

उदासी छाई थी वह समय भी था विकट ही,

क्षुधा-क्षीणा बेटी रुदन करती थी निकट ही।<sup>२</sup>

इसी भाँति उन्होंने इन्द्रवज्रा और उपजाति के यति-नियम का भी स्वतन्त्रता से प्रयोग किया है।<sup>३</sup> प्रयोग की दृष्टि से 'हरिऔध' जी ने छन्दों का प्रायः शुद्ध रूप ही प्रयुक्त किया है। 'प्रियप्रवास' में वंशस्थ, वसंततलिका, शादूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, शिखरिणी तथा द्रुतविलम्बित छन्दों का प्रयोग उनकी प्रगल्भ प्रतिभा का परिचय है। उदाहरण के लिए एक उद्धरण प्रस्तुत है—

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना : डॉ० पुत्तलाल शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय; लखनऊ, २०१४ वि०, पृ० १६०।

२. 'महाराणा प्रताप सिंह का पत्र', सरस्वती, नवम्बर १९१३, पृ० ६०४।

३. आधुनिक हिन्दी कविता में छन्द योजना : डॉ० पुत्तलाल शुक्ल, पृ० १६०।



संस्कृत के प्रसिद्ध विप्रलम्भ एवं करुण-काव्य 'मेघदूत' की रचना कालिदास ने मन्दाक्रान्ता (मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, गुरु, गुरु—SSS, SII, III, SSI, SSI, S, S) छन्द में की थी। 'प्रियप्रवास' भी करुण रस प्रधान विप्रलम्भ काव्य है, अतः 'हरिऔध' जी ने इसी छन्द में विभिन्न करुण-प्रसंगों की अवतारणा की है। कृष्ण के मथुरागमन का प्रसंग अत्यन्त करुण प्रसंग है, समस्त प्रकृति दुःखविह्वल है—

फूलों पत्तों सकल पर हूँ बारि बूँदें दिखाती ।

रोते हैं या विटप सब यों आँसुओं को दिखाके ।

रोयी थी जो रजनि दुख से नन्द की कामिनी के ।

ये बूँदें हैं निपतित हुई या उसी के हगों से ।<sup>१</sup>

इन प्रशंसनीय प्रयोगों के होते हुए भी संस्कृत के वर्णवृत्त खड़ी बोली की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से भिन्न पड़ते हैं। संस्कृत की सामासिक शब्द-योजना-प्रवृत्ति इन छन्दों के चरणों की अखण्डता के अनुकूल पड़ती है। इसीलिए संस्कृत वृत्तों के व्यापक प्रयोग के पश्चात् भी खड़ी बोली-काव्य में मात्रिक छन्दों का ही अधिक प्रचलन है। द्विवेदी-युग में भी, जिसे वर्णिक वृत्तों का उन्नायक युग कहा जाता है, मात्रिक छन्दों के प्रयोग बहुलता से हुए। इससे यह सिद्ध होता है कि खड़ी बोली-काव्य के लिए संस्कृत वर्णवृत्त अधिक अनुकूल नहीं हैं।

## (२) मात्रिक छन्द

काव्य में प्रवाह और गति का महत्त्व सर्वोपरि माना गया है। आधुनिक युग में कवि खड़ी बोली-काव्य में माधुर्य, प्रवाह, लालित्य एवं प्रांजलता लाने के लिए विशेष रूप से प्रवृत्त हुए। ब्रजभाषा का भाषा माधुर्य और लालित्य उनके समक्ष चुनौती के रूप में था। खड़ी बोली के सरल प्रांजल और असामायिक रूप में प्रवाह और गति लाने के लिए इसीलिए मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ। यही कारण है कि द्विवेदी जी के प्रधान शिष्य होते हुए भी गुप्त जी ने मात्रिक छन्दों का प्रयोग बहुलता से किया। इस युग में उनकी सर्वाधिक जनप्रिय रचना 'जयद्रथ वध' हरिगीतिका सममात्रिक छन्द में ही रचित है। इस युग में वर्ण वृत्तों का सफल प्रयोग तो हुआ किन्तु काव्यगत प्रवाह के स्थान पर उसमें किञ्चित् शिथिलता का प्रवेश भी हुआ। 'प्रियप्रवास' जैसी उदात्त काव्य-कृति में भी ऐसी शिथिलता यत्र-तत्र देखी जा सकती है। कदाचित् इसीलिए वर्ण वृत्तों के प्रथम सफल प्रयोगकर्ता होते हुए भी 'हरिऔध' जी ने अन्यान्य मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया। भाषा के स्वरूप की सुस्थिरता



प्रतिष्ठापित होने के पश्चात् कवियों ने उसमें काव्यगत गति एवं संगीतात्मकता लाने के लिए मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया। इस सम्बन्ध में डॉ० शुक्ल का कथन है कि 'द्विवेदी-काल में वृत्त शैली केवल साहित्यिक प्रयोग मात्र थी। उस समय में भी दो-चार पुस्तकों को छोड़कर समस्त रचना मात्रिक छन्दों में ही हुई।'<sup>1</sup> यह तथ्य इस युग में प्रयुक्त मात्रिक छन्दों की विविधता और संख्या से स्पष्ट हो जाता है। दस मात्राओं के दीप<sup>2</sup> छन्द से इकतीस मात्राओं के वीर<sup>3</sup> छन्द तक अन्यान्य छन्दों का प्रयोग इस युग में हुआ। अकेले 'हरिऔध' जी ने दोहा छन्द के शास्त्रोक्त तेईस भेदों में से सोलह भेदों का सफल प्रयोग किया।<sup>4</sup> इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इस युग में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अत्यन्त व्यापक रूप से हुआ। उदाहरण के लिए इस युग में प्रयुक्त कतिपय छन्दों की तालिका इस प्रकार है—पीयूषवर्षी, सार, ताटंक, रोला, तिलोकी, रूपमाला, हाकलि, प्लवंगम, चौपई, चौपाई, मधुमालती, गीति, आर्या, हरि-गीतिका, सोरठा, तोमर दिग्पाल, पदपादाकुलक, उपगीति, गीतिका, विष्णुपद आदि-आदि।

जिस प्रकार 'हरिऔध' जी ने अतुकान्त वर्णवृत्तों का प्रयोग किया था, उसी प्रकार मात्रिक छन्दों में सर्वप्रथम अतुकान्त प्रयोग प्रसाद जी ने 'प्रेम पथिक' रचना में किया। 'निराला' जी भिन्न तुकान्त प्रयोग के प्रथम प्रयोग-कर्त्ताओं में जयशंकर प्रसाद, रूपनारायण पाण्डेय, 'हरिऔध' तथा गिरिधर शर्मा को मानते हैं।<sup>5</sup> इस प्रयोग के पीछे कवियों की एक विशिष्ट मनोवृत्ति कार्यरत थी। कवि काव्य में संगीत और प्रवाह का अधिकाधिक प्रयोग चाहते थे। तुक मिलाने के प्रयत्न में उनकी भावधारा के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो जाता था। अतः छन्द के नियमों का पालन करते हुए भी अंत्यानुप्रास की अवहेलना की परम्परा का प्रचलन हुआ। इस परम्परा का निर्वाह प्रसाद जी के बाद मुकुटधर पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त तथा पंत जी आदि कवियों ने किया है। 'प्रेमपथिक' का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है (१६ मात्राएँ)

शान्त भवन में टिक रहना (१४ मात्राएँ)

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना : डॉ० पुत्तलाल शुक्ल, पृ० १९८-१९९।

२. दीप छन्द में श्रीधर पाठक ने 'सान्ध्यअटन' की रचना की।

३. वीर छन्द में गुप्त जी ने 'गुरुकुल' की रचना की।

४. हरिऔध : जीवन और कृतित्व—डॉ० मुकुन्ददेव शर्मा, पृ० ४६४।

५. परिमल (भूमिका)।



किन्तु पहुँचना उस सीमा पर (१६ मात्राएँ)

जिसके आगे राह नहीं । (१४ मात्राएँ)

इसी प्रकार कवि पंत ने भी 'ग्रन्थि' में अतुकान्त पियूष वर्ष छन्द का सफल प्रयोग किया । कवि सियारामशरण गुप्त तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं ।

इस अतुकान्त मात्रिक छन्द-प्रयोग से पूर्व कवियों ने गजल और लावनी के अन्त्यानुप्रास तथा दो भिन्न छन्दों के मेल से नये छन्दों की सृष्टि की थी । कवि 'शंकर' के भुजंग्यात्मक राजगीत, रुचिरात्मक राजगीत, सुमनात्मक राजगीत आदि छन्द इसी कोटि के थे ।<sup>१</sup> इसी प्रकार का प्रयोग कवि मुकुटधर पाण्डेय ने भी किया था । उन्होंने चौपाई के दो चरण और सरसी के एक चरण से एक छन्द का अर्द्धक बनाकर उसकी आवृत्ति करके एक छन्द निर्मित किया । उनकी प्रसिद्ध कविता 'रूप का जादू' में इस नवनिर्मित छन्द का प्रयोग देखिए —

मैंने उसको हृदय दिया था,

रुचिर-रूप-रस पान किया था,

था न स्वप्न में मुझको उसकी निष्ठुरता का ध्यान ।

मन तो मेरा और कहीं था,

मुझको इसका ज्ञान नहीं था—

छिपा हुआ शीतल किरणों में है मरु-भूमि महान ॥<sup>२</sup>

इसी परम्परा में मैथिलीशरण गुप्त ने भी कई प्रयोग किये । 'साकेत' के नवम सर्ग में उन्होंने दोहा और शृंगार छन्द के दो चरणों को मिला कर ऐसा ही प्रयोग किया है ।<sup>३</sup> सियारामशरण गुप्त ने रोला + १५ + १३ मात्राओं के छन्द का प्रयोग 'मौर्य विजय' में किया है ।<sup>४</sup>

इस प्रकार के छन्दों में अधिक नवीनता के दर्शन नहीं होते । इनमें प्रायः दो प्रचलित छन्दों को मिलाकर एक मिश्र छन्द की ही सृष्टि की गयी अन्यथा छन्द-नियमों का परिपालन यथावत् किया गया । छायावादी कवियों ने जिस प्रकार विभिन्न लयों को मिलाकर एक नवीन लय खण्ड का आविष्कार किया, उस प्रकार के प्रयोगों की यह भूमिका अवश्य कही जा सकती है ।

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृ० १३० ।

२. सरस्वती, मई १९१८, पृ० २२५ ।

३. दे० साकेत, पृ० २६३ ।

४. दे० मौर्य विजय, पृ० १७ ।



### (३) अन्य भाषाओं के छन्द

जैसा कि कहा गया है कि इस युग में कवियों का सम्पर्क अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के साथ हुआ। फलतः कवियों ने नवीनता के आग्रह में कई अन्य भाषाओं के छन्दों को भी अपनाया। इनमें 'हरिऔध', 'सनेही', 'दीन' आदि कवियों ने उर्दू की बहरों को अपनाया था। उर्दू की बहरों में मात्रा-क्रम अथवा संख्या पर ध्यान न देकर वजन या लय पर अधिक बल दिया जाता है। इसलिए उसमें अधिक गति और प्रवाह की सम्भावना रहती है। इसी कारण हिन्दी के कवियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। कहा जा सकता है कि उर्दू बहरों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग 'हरिऔध' और 'सनेही' ने किया। इनके ये पद्य हिन्दी-काव्य को एक देन हैं। एक छन्द प्रस्तुत है—अठारह मात्राओं का निम्न छन्द उर्दू बहर पर आधारित है। हिन्दी में इस प्रकार का कोई छन्द नहीं है। अतः यह कवि की मौलिक देन है।<sup>१</sup>

रह गया अब कहीं न वह अनुराग।

है दिखाती कहाँ बसंती धाग ॥

हैं उमंगें न झूमतीं आतीं।

जी नहीं चाहता कि खेलें फाग ॥

'हरिऔध' जी ने उर्दू गज़ल के वजन पर भी कई नये छन्दों का निर्माण किया। अंग्रेज़ी 'साँनेट' के आधार पर उन्होंने चतुर्दशपदी की रचना की तथा इसका विस्तार पंचदशपदी और षष्ठदशपदी तक भी किया। यह नवीन प्रयोग अधिक सफल और प्रचलित नहीं रहे।

### (४) नवीन छन्दों का आग्रह

नवीन भाव-काव्य के प्रसार से द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य के तृतीय उत्थान-काल से पूर्व ही छन्द-विषयक धारणाओं में परिवर्तन होने लगे थे। छन्दों की नियमबद्धता को भाव की नियमबद्धता मानकर कवियों ने छन्दों के प्रचलित नियमों में इच्छानुसार परिवर्तन करने प्रारम्भ किये। वस्तुतः स्वच्छन्दता की यह प्रक्रिया उपर्युक्त छन्द विवेचना के विकास में सम्भावित ही कही जा सकती है। प्रायः इस प्रकार के नवीन परिवर्तनों का श्रेय कविवर पंत और 'निराला' को दिया जाता है। इस प्रकार के छन्दों की लयें सामान्यतः पुरानी ही हैं किन्तु 'उनका अन्त्य क्रम, परिसंख्यान (मात्रा संख्या या वजन) और मात्राक्रम नवीन होता है'।<sup>२</sup> पंत जी की इस प्रकार की कविताएँ 'उच्छ-

१. हरिऔध। जीवन और कृतित्व—डॉ० मुकुन्ददेव शर्मा, पृ० ४६६।

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना : डॉ० पुत्तलाल शुक्ल, पृ० ३३१।



वास', 'बाँसू', 'परिवर्तन' आदि हैं। इस प्रकार के प्रारम्भिक प्रयोग की एक कविता का मात्राक्रम द्रष्टव्य है—

|                            |                            |
|----------------------------|----------------------------|
| उस फँली हरियाली में        | (१४ मात्राएँ)              |
| कौन अकेली खेल रही, माँ !   | (१६ मात्राएँ)              |
| सजा हृदय की थाली में       | (१४ मात्राएँ)              |
| झीड़ा कौतूहल कोमलता        | (१६ मात्राएँ)              |
| मोद मधुरिमा हास-विलास      | (१५ मात्राएँ)              |
| लीला विस्मय अस्फुटता भय    | (१६ मात्राएँ)              |
| स्नेह पुलक सुख सरल हुलास ! | (१५ मात्राएँ) <sup>१</sup> |

इस प्रकार के छन्दों में प्रायः कवियों ने अर्थ, भाव और लय के आधार पर ही स्वतन्त्रता से मात्रा-संख्या एवं अन्त्य-क्रम का निर्माण किया।

#### (५) मुक्त छन्द

सन् १९१९ के जनवरी मास की 'सरस्वती' में श्री शिवाधार पाण्डेय ने खड़ी बोली काव्य के मात्रिक छन्दों के प्रति अधिक झुकाव को उसकी स्वतन्त्रता का द्योतक माना था। इसी आधार पर उन्होंने मुक्त-काव्य को खड़ी बोली के लिए सर्वथा उपयुक्त माना था। उन्होंने कहा—'मुक्त-काव्य खड़ी बोली में हो सकता है? खवश्य। खड़ी बोड़ी ही के लिए ही वह रचा हुआ है'<sup>२</sup>। वस्तुतः इस परम्परा में वास्तविक विद्रोहात्मक सृष्टि कविवर 'निराला' ने मुक्त छन्द की रचना से की। उन्होंने कहा—'मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना'<sup>३</sup>। 'निराला' जी ने समस्त छन्द परम्परा के विरुद्ध विद्रोह करके मुक्त छन्द की स्थापना लय, गति और प्रवाह पर आधारित की। कवि के भावों का, विचारों का और उसके चिन्तन का जब सहजोद्रेक होता है, तो उसमें स्वभावतः एक लय और एक गति होती है, उस गति को किसी छन्द के बन्धन में डालना, उस समस्त काव्य-सौन्दर्य को बन्धन में डालना है। 'निराला' जी के अनुसार मुक्त छन्द का आधार हिन्दी का सर्वाधिक प्रिय और 'स्वकीय' छन्द 'कवित्त' बन सकता है। उन्होंने इस छन्द को नाटकीय शैली की भाँति अत्यन्त प्रभावोत्पादक माना।<sup>४</sup> सन् १९१६ में उन्होंने इस छन्द में 'जूही की कली' की

१. पत : काव्य-कला और जीवन दर्शन—सं० शची रानी गुट्ट, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, १९५७ (पत और प्रकृति : प्रभाकर माचवे, पृ० ६७)।

२. 'मुक्त काव्य' सरस्वती, जनवरी १९१९, पृ० ५२।

३. परिमल (भूमिका), पृ० ६।

४. वही०, पृ० १४-१५।



रचना की थी। इसके बाद उन्होंने इसमें अनेक उत्कृष्ट कविताओं की रचना की। आधुनिक काल में यह छन्द अत्यन्त प्रचलित छन्द है। इस छन्द का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

कहाँ ?  
मेरा अधिवास कहाँ ?  
क्या कहा ?  
रुकती है गति जहाँ ?  
भला इस गति का शेष—  
सम्भव है क्या—

करण स्वर का मुझ में जब तक रहा है आवेश ?<sup>१</sup>

इसी छन्द में 'निराला' जी की प्रसिद्ध 'सन्ध्या सुन्दरी', 'शेफालिका' आदि कविताएँ रची गयी हैं। वस्तुतः 'निराला' जी का यह छन्द मानव की प्रतिष्ठापना और काव्य की स्वतन्त्रता का प्रतीक बन चुका है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-धारा की छन्द-योजना का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध है। इस युग से पूर्व समस्त हिन्दी काव्य-धारा में इतने छन्दों की विविधता और प्रचुरता दृष्टिगत नहीं होती। खड़ी बोली को सूदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए 'वृत्त-शैली' के अनुसरण की जो परम्परा इस युग के प्रारम्भ में प्राप्त होती है, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। भाषा और भाव-क्षेत्र में ज्यों-ज्यों खड़ी बोली समृद्ध होती गयी, त्यों-त्यों कवियों ने भाव को लय, गति और प्रवाह की ओर प्रवृत्त करने के लिए नित-नये छन्दों का प्रयोग किया। छन्दों की योजना के प्रति इस युग में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं रहा। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त, 'हरिऔध', 'पूर्ण', 'शंकर', 'दीन', प्रसाद, पंत और 'निराला' आदि कवियों ने हिन्दी-काव्य को समृद्ध छन्द-परम्परा प्रदान की। छन्द-प्रयोग की दृष्टि से भी इन कवियों को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। युग के अन्त में छन्द-विषयक विचारधारा में नवीन क्रान्तिकारी स्वर उद्घोषित हुआ। यह परिवर्तन वास्तव में हजारों वर्षों की छन्द-परम्परा के प्रति आधुनिकता, मुक्ति एवं स्वतन्त्रता की ओर निरन्तर बढ़ते हुए मानव का विद्रोह है।

**अलंकार**

द्विवेदी-युग रीतिकालीन आलंकारिक काव्य के प्रति एक विद्रोह था। उनके काव्य में निश्चय ही अलंकारों के प्रति अधिक मोह न होना स्वाभाविक ही है। प्रारम्भिक भाषा-परिमार्जन के काल में इसीलिए कवियों ने खड़ी बोली-



काव्य में अलंकारों की ओर अधिक ध्यान न दिया। द्विवेदी-युग के प्रारम्भिक खड़ी बोली-काव्य में सीधी-सादी भाषा और स्पष्टवादिता की भावना का प्राधान्य रहा। शब्द-चमत्कार और अर्थ-चमत्कार की अलंकारिक प्रवृत्ति का विकास इस काव्य में भाषा के सुव्यवस्थित होने के साथ-साथ होता रहा। देश और राष्ट्र-विषयक कविताओं में यदि इस प्रवृत्ति का पालन कम हुआ तो चित्र-काव्य परिपाटी में रचित कविताओं में अलंकारों की प्रवृत्ति पर अधिक ध्यान दिया गया। प्रायः इन वर्णनों में प्रचलित अलंकारों की छटा के ही दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए 'शंकर' की 'वसंत सेना' कविता का उल्लेख किया जा सकता है। इसी प्रकार भीमर पाठक ने अपनी अनूदित रचनाओं में अंग्रेजी अथवा संस्कृत की अलंकार-परम्परा को तो निभाया किन्तु मौलिक रचनाओं में अलंकारों की ओर उन्हें विशेष रुचि न रही। महावीरप्रसाद द्विवेदी तो रीतिकालीन अलंकारिकता के सर्वथा विरुद्ध थे ही। अतः इस प्रारम्भिक प्रवृत्ति से एक विशेष लाभ यह हुआ कि कवि ने भाषा की शक्ति और उसके स्वरूप को सीधे ग्रहण किया, अलंकारों की चमत्कृत करने वाली शैली के माध्यम से नहीं। इसका फल यह हुआ कि भावी काव्य-धारा में जहाँ भाषा की स्वच्छता और शुद्धता का निरन्तर विकास हुआ वहाँ अलंकारों का प्रयोग भी सफल और सरस रूप में होता रहा। जहाँ मँथिलीशरण गुप्त, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मुकुटधर पाण्डेय, जयशंकर प्रसाद आदि कवियों ने परम्परागत उपमानों का प्रयोग सरस अभिव्यञ्जना के लिए किया, वहाँ 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी आदि ने नवीन उपमानों की सृष्टि करके भावी भाव-काव्य की भूमिका प्रस्तुत की। पाश्चात्य और बँगला काव्य के सम्पर्क से आगे चलकर अलंकार-योजना में विशेष प्रगति हुई। प्रसाद और पंत ने काव्य में कल्पना के माध्यम से अद्भुत अलंकार-योजना को प्रस्तुत किया। यहाँ तक आते-आते अलंकार-विषयक विचार-धारा में भारी परिवर्तन हुआ। इस दिशा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान कल्पनाशील कवि पंत ने दिया। उन्होंने परम्परागत उपमानों का प्रयोग तो किया, साथ ही नवीन उपमानों एवं अलंकारों की भी योजना करके हिन्दी-काव्य में एक अभूतपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि की। उनके इस अलंकार-विधान को रामनरेश त्रिपाठी के अलंकार-विधान का विकसित स्वरूप भी कहा जा सकता है। प्रसाद जी के प्रारम्भिक काव्य में द्विवेदीयुगीन प्रारम्भिक काव्य की भाँति अलंकारों के प्रति विशेष मोह नहीं है किन्तु उनके परवर्ती काव्य में अलंकारों से पुष्ट भाव-धारा का उत्कृष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। इस काव्य की अलंकार-योजना को निम्न शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा रहा है—



## (१) शब्दालंकार

काव्य में शब्दालंकारों का महत्त्व संगीत, नाद एवं प्रवाह के लिए विशेष-रूप से माना गया है। इनमें विशिष्ट शब्द-योजना, वर्ण-योजना, ध्वन्यात्मकता एवं पदावृत्ति के प्रयोग से ही प्रायः सौन्दर्य की सृष्टि की जाती है। उदाहरण के लिए निम्न छन्दों को देखा जा सकता है —

वृत्यानुप्रास—कुल बोर कठोर महाकपटी, कव कोमल कर्म-कलाप करें,

पशु पोच प्रचण्ड-प्रमाद-भरे, भर पेट भयानक पाप करें।<sup>१</sup>

यमक —वे जागते हैं रात भर, दिन भर पड़े सोवें न क्यों?

है काम से ही काम उनको, दूसरे रोवें न क्यों?<sup>२</sup>

शब्दालंकारों में 'हरिऔध' जी को भी विशेष सफलता मिली है। उनके 'प्रियप्रवास' में अनुप्रास के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं।<sup>३</sup> इसी प्रकार अन्य कवियों में कवि 'पूर्ण' भी उल्लेखनीय हैं।<sup>४</sup>

## (२) अर्थालंकार

काव्य के बाह्य चमत्कार-सौन्दर्य के लिए यदि शब्दालंकारों की आवश्यकता मानी जाती है तो आन्तरिक सौन्दर्य के लिए जो कि काव्य का वास्तविक सौन्दर्य है, अर्थालंकारों की अपेक्षा की जाती है। भाव, विचार और कल्पना-वैभव के लिए अर्थालंकारों को विशेष महत्ता प्रदान की जाती है। वस्तुतः सत्काव्य में अलंकारों का उद्रेक सहज रूप से होता है। अलोच्य-काव्य में अलंकारों का प्रयोग जहाँ भी हुआ है वहाँ पर सामान्यतः सहज रूप से ही हुआ है। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

परम्परागत उपमानों को ग्रहण करते हुए कवि 'शंकर' 'वसंत सेना' की माँग का वर्णन सन्देह अलंकार के माध्यम से इस प्रकार करते हैं—

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि,

श्याम घनमण्डल में दामिनी की धारा है।

यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि

राहु के कबन्ध में कराल केतु तारा है।<sup>५</sup>

इस प्रकार के वर्णन में चमत्कार की सृष्टि अवश्य होती है, किन्तु काव्यगत सौन्दर्य का अभाव ही रहता है। सामान्यतः कवियों ने भावानुकूल अलंकार प्रयोग किये हैं।

१. शंकर सर्वस्व, पृ० ६२।

२. भारत-भारती, पृ० ११३।

३. प्रियप्रवास, पृ० ११३, १२६ आदि।

४. पूर्ण संग्रह, पृ० १३२ आदि।

५. कविता कलाप, पृ० १४।



वृन्दावन की भूमि का वर्णन कवि 'हरिऔध' देखिए कैसे सुन्दर ढंग से करते हैं। मालोपमा की यह सृष्टि है—

हरीतिमा का सु-विशाल-सिन्धु सा ।

मनोज्ञता की रमणीय-भूमि सा ।

विचित्रता का शुभ-सिद्ध-पीठ सा ।

प्रशान्त-वृन्दावन दर्शनीय था ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार कवि 'पूर्ण' अपने प्रकृति-निरीक्षण की सूक्ष्म दृष्टि को अपनहुति अलंकार के माध्यम से निश्चय ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं—बसंत आगमन के मूल कारण का निषेध कर समस्त प्राकृतिक प्रफुल्लता को वे नवीन वर्ष का कारण बताते हैं—

नहीं भ्रमर गुंजार, करे झनकार बीत के झाले,

पिक की नहीं पुकार वचन हैं रोचक स्वागत वाले ।

नहीं कमलदल कलित ताल पै ललित भूँग मतवाले,

फूलदार पट पै 'अभिनन्दन' लेख सुनहले काले ॥<sup>२</sup>

कवि की यह कल्पना निश्चय ही परम्पराविमुक्त है। वस्तुतः ऐसे नवीन प्रयोगों का महत्त्व अधिक है। गुप्त जी ने अपने चरित्रों की मनःस्थिति को चित्रित करने के लिए अलंकारों का प्रयोग सफल रीति से किया है। 'जयद्रथवध' में युधिष्ठिर को चिन्ता है कि अर्जुन की अभिलाषा पूरी हुई होगी अथवा नहीं? यद्यपि उन्हें विश्वास है कि उसने निश्चय ही जयद्रथ का वध किया होगा किन्तु कोई निश्चित समाचार प्राप्त न होने के कारण वे व्यग्र हो उठते हैं। ऐसी मानसिक स्थिति का चित्रण कवि ने उपमा-अलंकार के माध्यम से किया है—

राजा युधिष्ठिर उस समय दोनों तरफ ओझित हुए,

प्रमुदित न विमुदित उस समय वे कुमुद-सम-शोभित हुए ॥<sup>३</sup>

कुमुद की उपमा इसलिए अधिक सार्थक हो जाती है कि सायंकाल का समय है और सूर्य के डूबने के साथ-साथ कुमुद की पंखड़ियाँ भी प्रस्फुटित-सी हो रही हैं और यह समय पार्थ की प्रतिज्ञा की अन्तिम सीमा है।

जैसा कि कहा गया है कि इस युग के मध्य-काल से अलंकारों के विषय में कवियों ने नवीन प्रतिभा का परिचय दिया। परम्परागत उपमानों के स्थान पर नवीन उपमानों की योजना की ओर काव्य प्रवृत्त होने लगा। आधुनिक

१. प्रियप्रवास, पृ० १३२।

२. पूर्ण संग्रह, पृ० २२६।

३. जयद्रथ वध, पृ० ७७।



वैज्ञानिक युग के प्रसरण से कवि का मानस विशद और व्यापक दृश्य जगत् के सम्पर्क में आने लगा था। इसलिए नये उपमानों से नवीन प्रयोगों की क्षमता धीरे-धीरे विकसित हो रही थी। उदाहरण के लिए पं० बदरीनाथ भट्ट का एक नवीन उपमान देखिए—

यह निकला कैसा उजियाला।

हिमकर-शर-समूह ने तम का जर्जर कर शरीर डाला,

अथवा निशि ने साबुन से निज कृष्ण रूप को धो डाला,<sup>3</sup>

‘हिमकर’ के लिए ‘साबुन’ शब्द का प्रयोग अत्यन्त चित्रमय एवं प्रभाव-शाली है। रजनी ने ‘हिमकर’ को हाथ में लेकर किसी रमणी की भाँति अपने कृष्ण रूप को धो डाला। उपमान प्रायः रंग, रूप, गुण और आकार-साम्य के आधार पर ही प्रयुक्त होते आये हैं। उपयुक्त उपमान भी इसी परम्परा में प्रयुक्त हुआ है। आगे चलकर एक नवीन परम्परा का प्रणयन हुआ। इसमें उपमानों की योजना प्रभाव-साम्य के आधार पर की गयी। कहा जा सकता है कि यह प्रवृत्ति पश्चिमी साहित्य के सम्पर्क से उत्पन्न हुई। उपमानों की इस नवीन योजना के अतिरिक्त उल्लेखनीय आलंकारिक विशेषता कवियों का अमूर्त-विधान है। मूर्त को अमूर्त करना एवं अमूर्त को मूर्त बनाना निश्चय ही काव्य-सौन्दर्य को वृद्धि करता है। इसमें भी प्रभाव-साम्य पर आधारित अमूर्त-विधान की सृष्टि और अधिक सुन्दर होती है। सामान्यतः इस प्रकार के अलंकारों के प्रयोगों का श्रेय कवि पंत को दिया जाता है। निश्चय ही उन्होंने इस प्रकार के अलंकारों के अन्यतम प्रयोग किये हैं, किन्तु द्विवेदी-युग में इस प्रकार के प्रयोग उनसे पूर्व हो चुके थे। अतः यह एक विकास-क्रम है। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं।

गोखले की मृत्यु पर दुःख-विह्वल कवि ‘शंकर’ ने अपने दुःख, गोखले की विनम्रता, उनकी नीति-निपुणता, कठणा आदि अमूर्त भावों का चित्रण करने के लिए मूर्त उपमानों का प्रयोग किया है—

चूड़ियाँ फोड़ें विनय की, काट करुणा की लटें,

नीति के नूपुर उतारे हाय मिस्टर गोखले!<sup>2</sup>

गोखले की मृत्यु से ‘विनय’, ‘करुणा’, और ‘नीति’ विधवा हो गयी हैं। इन तीनों गुणों को गोखले ने बरा था, अतः उनकी मृत्यु पर इन्होंने क्रमशः चूड़ियाँ तोड़ना, बाल काटना और आभूषण उतारने का विधवाचित्त कार्य किया है।

१. ‘परिवर्तन और भय’, सरस्वती, अक्टूबर १९१४, पृ० ५३७।

२. शंकर सर्वस्व, पृ० २४६।



‘हरिओध’ जी ने भी ऐसे ही मूर्त्त को अमूर्त्त एवं अमूर्त्त को मूर्त्त बनाने का प्रयत्न किया है —

कहीं कहीं था विमलाम्बु भी भरा,

सुधा समासादित संत-चित्त-सा ।<sup>१</sup>

+

+

+

न्यारे-न्यारे-कुसुम कितने भाव के थे अनेकों,

उत्साहों के विपुल-विटपी थे महा मुग्धकारी ॥<sup>२</sup>

इनमें ‘विमलाम्बु’ के लिए ‘संत चित्त’, ‘भाव’ के लिए ‘कुसुम’ और ‘उत्साह’ के लिए ‘विटपी’ का प्रयोग हुआ है ।

इस परम्परा में विशेष उल्लेखनीय कवि रामनरेश त्रिपाठी हैं । उनकी अलंकार-योजना में भावी भाव-काव्य की अलंकार-योजना का पूर्वाभास प्राप्त होता है । उनका अमूर्त्त का मूर्त्त और मूर्त्त का अमूर्त्त द्रष्टव्य है—

तीर पहुँचकर देखी उसने सलिल राशि गम्भीर,

सतत् प्रवाहित पूर्व दिशा में, समय समान अधीर ।<sup>३</sup> (मूर्त्त का अमूर्त्त)

+

+

+

+

हुई निबिड तम में प्रभात-बेला-सी जागृत आशा

देख पुण्य का उदय हुई बलवती उच्च अभिलाषा ।<sup>४</sup> (अमूर्त्त का मूर्त्त)

इसी प्रकार त्रिपाठी जी की ‘पथिक-प्रिया’ का चित्र नवीन उपमानों से छाया-वादी काव्य की पूर्व सूचना देता है—

उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरन-सी बामा ।

कवि के स्वप्न-समान, विश्व की विस्मय-सी, अभिरामा ॥

सिन्धु-गोद में लय से पहले तरंगिता सरिता-सी ।

आकर चकित हुई तट पर प्रियतम-दर्शन की व्यासी ॥<sup>५</sup>

ये उपमान सर्वथा मौलिक एवं हिन्दी-काव्य के लिए नवीन हैं । आगे चलकर कवियों ने इन नवीन अभिव्यक्ति की विधाओं को प्रौढ़ता प्रदान की । प्रारम्भिक परम्परागत अलंकरण प्रयोग के उपरान्त प्रसाद जी की रचनाओं में भी नवीन उपमानों, अमूर्त्त-विधान आदि की मौलिकता का यथेष्ट परिचय

१. प्रियप्रवास-सर्ग १३, छन्द ६ ।

२. वही०, सर्ग १०, छन्द ४८ ।

३. मिलन, पृ० १२ ।

४. पथिक, पृ० ४६ ।

५. वही०, पृ० २ ।



प्राप्त होता है। वस्तुतः इन कवियों ने द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली-काव्य को विशिष्ट अभिव्यंजना-सौन्दर्य से मण्डित किया। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं। उद्धरणों में सर्वत्र नवीनता का आग्रह है—

मनोवृत्तियाँ खग कुल सी थीं सो रहीं

अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड में।<sup>१</sup>

+ + +

सुन्दर कुटी देख लो कैसी रम्य तटी में सरिता के,

शान्त तपस्वी सी है बत्ती के झुरमुट में बनी हुई।<sup>२</sup>

+ + +

राग रक्त अरुणोदय सहसा हृदय-गगन में साथ हुआ,

फैला था उत्साह सदृश अभिनव उज्ज्वल आलोक अहो।<sup>३</sup>

छायावादी अलंकार-योजना में इसी नवीनता का विकास एवं प्रसार देखा जा सकता है। पंत जी के काव्य-क्षेत्र में अवतरण से काव्य में अलंकरण की नवीनता का एक सदृढ़ युग प्रारम्भ होता है। उनकी कल्पनाशीलता ने हिन्दी काव्य को अन्यान्य सुन्दर उपमानों की देन दी। उनकी विशेषता प्रभाव-साम्य की प्रवृत्ति है। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से उन्होंने 'मानवीकरण', 'विशेषण-विपर्यय' तथा 'छव्यर्थ-व्यंजना' का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

मानवीकरण— कौन ! कौन तुम परिहृत-वसना

म्लान-मना, भू-पतिता-सी ?

धूलि-धूसरित, मुक्त-कुन्तला,

किसके चरणों की दासी ?<sup>४</sup>

आह ! यह मेरा गीला-गान

वर्ण वर्ण है सर की कम्पन

शब्द शब्द है सुधि की दंशन

चरण चरण में आह,<sup>५</sup>

१. झरना, पृ० ५।

२. प्रेम पथिक : जयशंकर प्रसाद—साहित्य सुमन माला, संख्या ४, १९७०  
वि०, पृ० ३।

३. वही०, पृ० ७।

४. वीणा, पृ० १३।

५. पल्लव, पृ० १७।



विशेषण विपर्यय—

अँगड़ाते-तम में  
अलसित-पलकों से स्वर्ण-स्वप्न नित  
सजनि ! देखती हो तुम विस्मित  
नव, अलम्य, अज्ञात !<sup>1</sup>

+ + +

द्वयर्थ व्यंजना - गरज, गगन के गान ! गरज गम्भीर-स्वरों में,  
भर अपना सन्देश उरों में, ओ अधरों में,  
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में,<sup>2</sup>

पंत जी के काव्य में ऐसे ही अनेक अद्वितीय प्रयोग प्राप्त होते हैं। इन पाश्चात्य अलंकारों के अतिरिक्त परम्परागत अलंकार-प्रयोग में भी उन्होंने नवीनता का परिचय दिया। वस्तुतः उनकी उर्बर कल्पना से ही इस प्रकार के अद्भुत प्रभाव की सृष्टि हो पायी है।

इस विवेचन के अन्त में कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-धारा में अलंकारों का प्रयोग सामान्यतः काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से ही हुआ है। प्रारम्भिक काल में जो अलंकारों के प्रति शंका और डर की दृष्टि थी, वह एक अल्पकालीन प्रवृत्ति थी। इस युग में धीरे-धीरे भाषा के परिमार्जन के साथ-साथ अभिव्यंजना की शक्ति में प्रौढ़ता आती गयी। सामान्यतः अनावश्यक अलंकार-भार से काव्य को मुक्त ही रखा गया। अलंकरण, अर्थ-सौरभ्य और प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से ही होता रहा। परम्परागत अलंकारों के अतिरिक्त नवीन उपमानों और अलंकारों की योजना से काव्य के कला-पक्ष की आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई।

भाषा

द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-भाषा महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाषा-नीति<sup>3</sup> के आधार पर विकसित हुई। तत्कालीन भाषा-अस्थिरता एवं निरंकुशता को रोकने के लिए उन्होंने जो प्रयास किये, वे वास्तव में स्तुत्य हैं। उन्होंने खड़ी-बोली को सुस्थिर बनाने के लिए संस्कृत भाषा का सहारा लिया। भाषा के शब्द-समूह की वृद्धि के लिए संस्कृत के अपार शब्द भण्डार के अतिरिक्त

१. वीणा, पृ० ६६।

२. पल्लव, पृ० ५।

३. दे० अध्याय २, 'द्विवेदी-युग में खड़ी बोली का आन्दोलन'।



अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों के समावेश की भी उन्होंने कवियों को आज्ञा प्रदान की। कहा जा सकता है कि इस काव्य की भाषा के विकास के तीन सोपान थे।

प्रारम्भिक अस्थिरता को रोकने के लिए जिस व्याकरणिक नियमबद्धता का अनुसरण किया गया, उससे प्रारम्भ में भाषा गद्यात्मक हो गयी। यह स्थिति सामान्यतः १९१० ई० तक मानी जा सकती है। इस प्रथम सोपान में कवियों की दृष्टि भाषा के शब्द-समूह की वृद्धि, व्याकरणिक शुद्धता और वर्णनात्मक शैली तक ही सीमित रही।

द्वितीय उत्थान में कवियों ने भाषा के प्रवाह और माधुर्य गुण की ओर ध्यान दिया। फलतः भाषा को भावानुकूल ढँग से प्रयुक्त करने की चेष्टा की गयी। प्रथम सोपान की गद्यात्मक एवं संस्कृत प्रधान शैली के स्थान पर अब प्राञ्जल, प्रवाहयुक्त सुमधुर खड़ी बोली के दर्शन होने लगे। वस्तुतः द्विवेदी-युग के अधिकांश काव्य की भाषा का यही स्वरूप है। शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का यह युग था। इस भाषा के स्वरूप को सन् १९१० से १९१९-२० तक माना जा सकता है। इस काल की प्रायः सभी रचनाओं—‘कृष्णालय’, ‘कानन कुसुम’, ‘प्रेम पथिक’, ‘स्वदेशी कुंडल’, ‘मौर्य विजय’, ‘अनाथ’, ‘किसान’, ‘प्रणवीर प्रताप’, ‘वीर पंचरत्न’, ‘गर्भरण्डा रहस्य’, ‘रामचरित चिंतामणि’, ‘पत्रावली’, ‘भारत-भारती’, ‘वैतालिक’ आदि की भाषा का स्वरूप ‘जयद्रथ वध’ (१९१० ई०) की भाषा की परम्परा में ही आता है। निश्चय ही यह सर्वाधिक व्यवहृत स्वरूप था। खड़ी बोली का सरल, प्रवाहमय शुद्ध ओजस्विनी स्वरूप कवियों का आदर्श था। इस काल में संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्वरूप को देखा जा सकता है। कविवर ‘हरिऔध’ का ‘प्रियप्रवास’ इस भाषारूप का ज्वलन्त उदाहरण है। तथापि यह भाषारूप अधिक जनप्रिय न हुआ। उर्दू-फारसी शब्दावली प्रधान भाषा का भी प्रयोग कवियों ने किया, किन्तु अधिकांशतः इन भाषाओं के प्रचलित शब्दों को ही अपनाया गया। संक्षेप में कहा जाये तो द्वितीय सोपान की इस भाषा में भावानुकूलता, रसमयता, सरलता और प्रवाह को अधिक प्रश्रय दिया गया। यही कारण है कि ‘प्रियप्रवास’ की रचना करने के पश्चात् भी ‘हरिऔध’ ने भाषा के सरल रूप को ही अधिक अपनाया।

कहा जा चुका है कि खड़ी बोली काव्य के द्वितीय उत्थान-काल के मध्य से बँगला और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से भावक्षेत्र में नवीन परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। कवि जब आत्म-विश्लेषण, दुःखवाद और सांसारिक निस्सारता से प्रभावित होने लगे तथा काव्य जब बहिर्जगत् की ओर प्रवृत्त



हुआ तब भाषा को तदनुकूल रूप धारण करना पड़ा। भाषा का स्वरूप अत्यन्त सुदृढ़ हो चुका था। अतः इस नवीन भावात्मक काव्य-रूप के साथ काव्य-भाषा भी अधिक कोमल, मधुर और भावभरित होती गयी। खड़ी बोली में अनुकूल भाव-व्यंजना, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता आदि का विकास होने लगा। भाषा का यह रूप सन् १६२० तक सामने आ चुका था।

काव्य-जगत् में कवि पंत के अवतरण से जैसे भावजगत् में नवीन परिवर्तन परिलक्षित हुए वैसे ही काव्य-भाषा में भी प्रौढ़ विकास की परम्परा का प्रणयन हुआ। गत सोपान के अन्तिम वर्षों की भाषा में अब भाव-काव्य के वातावरण में नवीन ध्वन्यर्थ व्यंजना, नाद सौन्दर्य, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता आदि का समावेश होने लगा। संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों से नवीन शब्द गढ़े जाने लगे। 'स्वप्न' से 'स्वप्निल' और 'इनोसेण्ट' से 'अजान' बनाये जाने लगे। इस दिशा में पंत जी का विशेष योगदान रहा। वस्तुतः वे काव्य-भाषा के क्षेत्र में नवीन क्रान्ति का स्वर लेकर अवतरित हुए। प्रचलित शब्द-रूप और व्याकरण-नियमों के प्रति उनकी धारणा सर्वथा क्रान्तिकारी रही। हिन्दी में लिंग-भेद की समस्या का समाधान प्रचलित प्रयोग और संस्कृत व्याकरण के आधार पर ही किया जाता था। पंतजी ने अब लिंग-भेद आदि का निर्णय अर्थाधार पर करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—'जहाँ छोटी सी बूँद हो वहाँ स्त्रीलिंग, जहाँ बड़ी सी बूँद हो वहाँ पुल्लिंग, जहाँ हल्की-सी हृदय की कम्पन हो वहाँ 'स्त्रीलिंग', जहाँ जोर-जोर से घड़कन का भाव हो वहाँ 'पुल्लिंग'।'<sup>१</sup> इस काव्यमयी परिभाषा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा—'मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग-पुल्लिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है।'<sup>२</sup> इसी प्रकार लय और संगीत के आधार पर भी उन्होंने शब्दों में परिवर्तन किये। जैसे 'झंकार' को जब उन्होंने क्षीगुरों की क्षीनी झंकार के लिए प्रयुक्त किया तो वह 'झनकार'<sup>३</sup> हो गया। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के अनुकरण पर विविध अर्थबोधक शब्दों का भी निर्माण किया। जैसे अंग्रेजी के 'एअर' में उन्हें 'ट्रान्सपेरन्सी' लगी तो उसके उपयुक्त उन्होंने 'अनिल' शब्द को चुना

१. पल्लव (विज्ञापन), पृ० ग।

२. वही०, पृ० घ-ड।

३. 'झनकार' शब्द का प्रयोग, ठीक इसी अर्थ में पंत जी से पूर्व कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' कर चुके थे—दे० अध्याय चार 'पदयोजना एवं भाषा'।

४. पल्लव (विज्ञापन), पृ० च।



जिसमें खस की टट्टी से आ रही हवा की ध्वनि है। इसी तरह 'विण्ड' के लिए 'प्रभंजन' और 'जॉय' के लिए 'हर्ष' आदि शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया। इस प्रकार द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-भाषा का स्वरूप धीरे-धीरे विकसित होकर अत्यन्त समृद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ। काव्य-भाषा की उपयुक्त तीन शैलियों के निम्न उद्धरण प्रस्तुत हैं—

व्याकरण की नियमबद्धता से उत्पन्न गद्यात्मक भाषा रूप :—

देखो यहाँ सकल बालक ये खड़े हैं, छोटे अनेक, दस-पाँच कहीं बड़े हैं।

हे हे दयालु, इनका कर थाम लीजै, कीजै कृपा, अब इन्हें मत छोड़ दीजै।<sup>१</sup>

भाव एवं भाषा का गुम्फन और प्रवाहयुक्त भाषारूप :—

जो शरण अशरण के सदा अवलम्ब जो गतिहीन के,

जो सुखी दुखी जन के, तथा जो बन्धु दुर्विध दीन के।

चिर शान्तिदायक देव हे यम ! आज तुम ही हो कहाँ ?

लोगे न क्या हा ! हन्त !! तुम भी सुधि स्वयं मेरी यहाँ ॥<sup>२</sup>

भाव-काव्य की नवीन भावुकता की तीव्रता को वहन् करने वाली भाषा :—

जब सन्ध्या को हट जावेगी भीड़ महान्,

तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान।

नहीं तीसरे का कुछ काज।

नाथ सताती मुझको लाज ॥

शून्य-कक्ष के अथवा कोने ही में एक,

करूँ तुम्हारा बैठ यहीं नीरव-अभिषेक।

सुनो न तुम भी वह आवाज,

नाथ.....।<sup>३</sup>

सन् १९२० के बाद की प्रेमाभिव्यंजना एवं सूक्ष्म चित्रांकन को वहन् करने वाली भाषा—

बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती,

भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में,

अचल रेखांकित कभी थी कर रही,

प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

(‘ग्रन्थि’ पंत्)

१. द्विवेदी काव्य-माला, पृ० ३६२।

२. जयद्रथ वध, पृ० २२।

३. ‘लज्जा-त्रस्त’ : मुकुटधर पांडेय, सरस्वती, अप्रैल १९२०, पृ० २२५।



तथा छायावादी स्वर भी नवीन भाषा में द्रष्टव्य है—

कौन, प्रकृति के करुण काव्य सा,

वृक्ष पत्र की मधु छाया में ।

लिखा हुआ मा अचल पड़ा है,

अमृत सदृश्य नश्वर काया में ।

(‘विषाद’, अरना — प्रसाद)

संस्कृतनिष्ठ भाषा रूप के दो उद्धरण प्रस्तुत हैं—

सुरम्य रूपे ! रमराशि रंजिते ।

विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गयी ?

अलौकिकानन्द विधायिनी महा-

कवीन्द्र-कान्ते ! कविते, अहो कहाँ ?

(‘हे कविते’ महावीरप्रसाद द्विवेदी)

रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु-विम्बानना ।

तन्वगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली ।

शोभा-वारिधि की अमूल्य-मणि सी लावण्य-लीलामयी ।

श्रीराधा-मृदुभाषिणी मृगदगी-माधुर्य की मूर्ति थीं ।

(प्रियप्रवास, सर्ग ४)

इसके अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग कवियों ने यत्र-तत्र किया । उर्दू शब्दों के प्रयोग अधिकांशतः ‘सनेही’, ‘दीन’, ‘पूर्ण’ और ‘हरिऔध’ ने किये । इस प्रकार के प्रयोग से कवि जन-जीवन के अधिक निकट आने का प्रयास करते थे । तत्कालीन राजनीतिक अथवा सामाजिक घटनाओं या परिस्थितियों के चित्रण में ही ऐसी शब्दावली का अधिक प्रयोग प्राप्त होता है । उदाहरण के लिए असहयोग आन्दोलन पर लिखी ‘सनेही’ की कविता का एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

मनाते हो घर-घर खिलाफ़त का मातम

अभी दिल में ताजा है पंजाब का ग़म

तुम्हें देखता है खुदा और आलम,

यही ऐसे ज़ुल्मों का है एक मरहम ।<sup>1</sup>

इस प्रकार के ही प्रयुक्त कुछ अन्य उर्दू-फारसी शब्द इस प्रकार हैं—‘फ़र्श’, ‘सब्ज़’, ‘रंगीन’, ‘जिगर’, ‘लहू’, ‘सदमा’, ‘कलेजा’, ‘कमाल’, ‘तुहमत’, ‘बेक़सी’.

१. आचार्य सनेही अभिनन्द ग्रन्थ, नगरमहापालिका, कानपुर, १९६४ ई०, पृ० ३३५ ।



‘कुदरत’, ‘अखलाक’, ‘मुफलिसी’, ‘रंगत’, ‘तरस’, ‘सेहरा’, ‘गुल’, ‘दरदर’, ‘काहिल’, ‘खैरियत’, ‘य’ (ये या यह), ‘व’ (और) ‘प’ (पर), ‘औ’ (और), ‘हौसला’, ‘हाल’, ‘बुलबुल’, ‘आमद’, ‘हुक्म’ आदि आदि। सामान्य रूप से सभी कवियों ने उर्दू की प्रचलित शब्दावली का प्रयोग किया है। वस्तुतः भाषा में प्रवाह और प्रेषणीयता को लाने के लिए अन्यान्य उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया। इसी परम्परा में कई अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग यथावसर किया गया। कवि ‘पूर्ण’ का ऐसा ही एक प्रयोग द्रष्टव्य है—

मत समझो यह काम किसी डेप्यूटेशन का,  
है यह अपना काम और प्यारी नेशन का।  
हो यदि कुछ भी गर्व ओल्ड सिविलीजेशन का,  
सुना दीजिए बड़ा हिन्दसा डोनेशन का।<sup>१</sup>

इसी प्रकार ‘पूर्ण’ जी द्वारा प्रयुक्त अन्य अंग्रेजी शब्दों में से कुछ इस प्रकार हैं—‘लव’, ‘क्रास’, ‘कामनसेन्स’, ‘चाज’ आदि।

### (१) ब्रजभाषा का प्रभाव

ब्रजभाषा काव्य-परम्परा का विरोध करते हुए भी इस युग की काव्य-भाषा उसके प्रभाव को टाल न सकी। प्रारम्भ में तो ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता से भाषा में अत्यधिक निरंकुशता का समावेश हो गया था। श्रीधर पाठक की भाषा के अधिकांश में इस मिश्रित शब्दावली का प्रयोग देखा जा सकता है। उस समय ब्रजभाषा शब्दावली का प्रयोग खड़ी बोली की भाषागत सीमाओं के कारण किया गया था। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस निरंकुशता को रोकने के भीरुरथ प्रयत्न किये, जिसके फलस्वरूप इस प्रवृत्ति में कुछ कमी तो हो गयी किन्तु फिर भी यथावसर यत्र-तत्र ब्रजभाषा के शब्द काव्य में प्रयुक्त होते रहे। इसका एक और कारण यह भी था कि इस युग के अधिकांश कवि ब्रजभाषा से खड़ी बोली में आये थे। अतः स्वाभाविक है कि उस भाषा का प्रभाव उन पर पड़े। तीसरा कारण ब्रजभाषा का श्रुति-माधुर्य था। खड़ी बोली में प्रवाह और नाद-सौन्दर्य लाने के लिए कवियों ने ब्रजभाषा के शब्दों को ग्रहण किया। इस प्रवृत्ति का प्रसरण इस युग के परवर्ती काव्य और छायावादी कवियों में भी देखा जा सकता है। द्विवेदी जी के अनुशासन में रहने वाले कवियों ने यदि जान-बूझकर ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग नहीं किया तो परवर्ती कवियों ने जान-बूझकर किया। कवि पंत ने ‘पल्लव’ में समस्त ब्रजभाषा काव्य और भाषा-परम्परा की अत्यन्त कड़ी आलोचना की थी किन्तु उसी काव्य-संग्रह में उन्होंने स्वयं ब्रजभाषा के शब्दों को अपनाया। कहा जा



सकता है कि प्रस्तुत युग में मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी जैसे एकाध कवि ही ऐसे हैं जिन पर ब्रजभाषा का प्रभाव कम पड़ा। उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

हृदय हैं हरे मिष्ट बोल से निपट रावरे नेह में फँसे<sup>१</sup>

+ + + +

चिन्ता रहित विराज है निज खल्प कुटी का वह राजा<sup>२</sup> (श्रीधर पाठक)

+ + +

तब मेरे गुण-दोष चित्त में ये लावेंगे।

सम्भव है उस समय कदाचित् पछतावेंगे ॥<sup>३</sup> (महावीरप्रसाद द्विवेदी)

+ + +

होते हूँ स्मरण हैं जबलों न नीके,<sup>४</sup> (मैथिलीशरण गुप्त)

+ + +

है अंग्रेजी राज नहीं अब खौरंगजूबी,

सुनी करै उपदेश देश की वसुधा देवी।<sup>५</sup> (राय देवी प्रसाद 'पूर्ण')

+ + +

ऊधो से यों स-दुख थे भाखते गोप बातें

कभी उन्हें था जल बीच बोरता..... (अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध')

+ + +

भेजत हो अन्न पट पानी भूत प्रेतन को,

ऐसी रीति बापने पुरोहित जी जानी है

सोई विधि.....<sup>७</sup> (नाथूराम 'शंकर' शर्मा)

+ + +

आओ कीजें सुखद तब प्रजा, राज्य भोगो अनन्त।<sup>८</sup> (लोचनप्रसाद पाण्डेय)

+ + + +

नव नील पयोधर नभ में काले छाये।

भर-भर कर शीतल जल मतवाले धाये ॥

१. गोपिका गीत, पृ० ११।
२. श्रान्त पथिक, पृ० ११।
३. द्विवेदी-काव्य-माला, पृ० ३६४।
४. कविता कलाप, पृ० २३।
५. पूर्ण संग्रह, पृ० २२१।
६. प्रियप्रवास, पृ० १८६।
७. शंकर सर्वस्व, पृ० १६०।
८. पद्य पुष्पांजलि, पृ० ४८।



लहराती ललिता लता सुबाल लजीली,  
लहि संग तरुन के सुन्दर बनी सजीली ॥<sup>१</sup> (जयशंकर प्रसाद)

+ + +  
धूम-धुआरे काजर-कारे  
हम ही बिकरारे बाबर  
मदन-राज के बीर-बहादुर,<sup>२</sup> (सुमित्रानन्दन पंत)

+ +  
स्पष्ट है कि ये प्रयोग इस युग में बराबर चलते रहे, भेद केवल मात्रा का था ।  
कहीं ये प्रयोग नाद-सौन्दर्य की सृष्टि के लिए किये गये, तो कहीं खड़ीबोली  
की कर्कशता को कोमलता प्रदान करने के लिए । 'हरिऔध', 'पूर्ण शंकर',  
'लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा प्रसाद द्वारा प्रयुक्त कुछ अन्य ब्रजभाषा शब्दों  
की संक्षिप्त तालिका भी द्रष्टव्य है—

'हरिऔध'—'बिलसना', 'छन', 'लसना', 'पै', 'छार', 'बगरना', 'परस',  
'धिर' आदि ।

'पूर्ण'—'दरसै', 'अरु', 'नहि', 'आपुस', 'ह्या', 'ह्वाँ', 'लसी',  
'ले', 'झुके' आदि ।

'शंकर'—'छिपै', 'धिकै', 'मझारो', 'कहै', 'पाय', 'नीचु', 'उछार',  
'गहै', 'करतूति', 'नमाय' आदि ।

लोचनप्रसाद पाण्डेय—'करि', 'मारग', 'नीकी', 'परोसी', 'परतीत', 'हिया',  
'सुयस' आदि ।

जयशंकर प्रसाद—'हि', 'पोन', 'पूरन', 'दीखता', 'नेक', 'सुखमा', 'लहै',  
'मुस्क्यान' आदि ।

## (२) गढ़न्त शब्द

इस युग के प्रायः सभी कवियों ने नये शब्द गढ़ने के भी प्रयत्न किये हैं ।  
इस शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति से कहीं नये एवं सुन्दर शब्दों का निर्माण हुआ  
तो कहीं अनेक विकृत शब्द-रूपों का । प्रायः यह शब्द-निर्माण संस्कृत शब्दों  
को लेकर हुआ है । अंग्रेजी के अनेक शब्दों को भी अनूदित करके नये शब्द  
प्रयोग किये गये । इस प्रवृत्ति के पीछे साधारणतया विशिष्ट अर्थ की दृष्टि  
कार्यरत थी । प्रारम्भिक काल में कवियों ने संस्कृत शब्दों को ब्रजभाषा की  
प्रवृत्ति पर कोमल रूप देने का प्रयास किया । जैसे—'मूरखताई', 'सुन्दरताई',

१. कानन कुसुम, पृ० ३७-३८ ।

२. पल्लव, पृ० ९६ ।



‘प्रकटावो’ आदि। दूसरी ओर दो शब्दों को मिलाकर नये शब्दों की रचना छन्द की अनुकूलता के कारण भी की गयी, जैसे—‘कल्ही’ (कल ही), ‘मनीमन’ (मन ही मन) आदि। साधारणतया कहा जाये तो ये प्रयोग अत्यन्त प्रारम्भिक प्रयोग ही थे जो तत्कालीन भाषा-अव्यवस्था के युग में प्रचलित थे। नये शब्द-निर्माण की परम्परा का स्वस्थ रूप धीरे-धीरे विकसित हुआ। अंग्रेजी शब्दों के सुन्दर अनुवादों की परम्परा श्रीधर पाठक द्वारा ही प्रवृत्ति मानी जानी चाहिए तथापि इसका प्रौढ़ स्वरूप द्विवेदी-युग के उत्तर-काल में पन्त जी में ही देखा जा सकता है। शब्दों का निर्माण प्रायः प्रत्यय और उपसर्ग तथा शब्द-सन्धि के माध्यम से किया गया है। इस प्रकार के शब्दों की एक संक्षिप्त तालिका द्रष्टव्य है—

|                                   |                                       |                              |
|-----------------------------------|---------------------------------------|------------------------------|
| रूप—‘रूपता’                       | निर्माण—‘निर्माया’                    | अवगाहन—‘अवगाहा’              |
| स्वीकार—‘स्वीकारा’ <sup>१</sup>   | सुरभित—‘सौरभित’                       | अनुचर—‘अनुचरता’              |
| अधिक—‘अधिकार्ह’                   | नायक—‘नायकता’                         | संतोष—‘संतोषित’ <sup>२</sup> |
| सौरभ—‘सौरभीला’                    | उत्सुक—‘समुत्सुक’                     | हरित—‘विहरित’                |
| कान्त—‘कान्तता’                   | सुप्त—‘प्रसुप्त’                      | सद्भाव आश्रय—‘सद्भावाश्रयता’ |
| अवसन्न—‘अवसन्नता’                 | प्रतिबिम्ब—‘प्रतिबिम्बता’             | ग्रसित—‘ग्रसिता’             |
| पूरित—‘आपूरिता’                   | प्रफुल्ल—‘प्रफुल्लिता’                | शोभा—‘प्रशोभी’ <sup>३</sup>  |
| सख्य—‘सौख्य’                      | दास्य—‘औदास्य’                        | अनिल + अनल—‘अनिलानल’         |
| तिरस्कृत—‘तिरस्क्रिया’            | प्रथम अपराध—‘प्रथमापराध’ <sup>४</sup> | स्वप्न—‘स्वप्निल’            |
| भुलावा—‘भुलाव’                    | ऐंच—‘ऐंचीला’                          | निद्रित—‘निद्रित-सा’         |
| विस्मित—‘विस्मित-सा’ <sup>५</sup> |                                       |                              |

अंग्रेजी शब्दों के आधार पर निर्मित शब्द या पद भी द्रष्टव्य हैं—

इम्प्रोसेट—अज्ञान’, गोल्डन एज—‘स्वर्णकाल’, ब्रोकन हार्ट—‘भग्न हृदय’,  
 हैव्‌एनली लाइट—‘स्वर्गीय प्रकाश’, अंडरलाइन्ड—‘रेखांकित’,  
 टु टर्न ए न्यू लीफ—‘नया पन्ना पलटना’ आदि आदि।

१. महावीरप्रसाद द्विवेदी
२. श्रीधर पाठक
३. ‘हरिऔध’
४. मैथिलीशरण गुप्त
५. सुमित्रानन्दन पन्त।



### (३) तत्सम शब्द

आलोच्य-युग की खड़ी बोली काव्य-भाषा के उपर्युक्त शब्द-समूह के विभिन्न अंगों के अतिरिक्त संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग-बाहुल्य भी इस काव्य में दर्शनीय है। युग के प्रारम्भिक वर्षों में कतिपय स्थलों पर तत्सम शब्दों का प्रयोग निरंकुशता से किया गया जिसके फलस्वरूप अनेक ऐसे शब्द सामने आते हैं जो हिन्दी के लिए सर्वथा अपरिचित हैं। ऐसे शब्दों से प्रायः काव्य-भाषा की हानि ही हुई। उदाहरण के लिए 'हरिऔध' जी द्वारा प्रयुक्त कतिपय शब्द द्रष्टव्य हैं—'उपेल', 'कदन', 'उत्सन्न', 'घोटक', 'कियत', 'वपुष' आदि। ऐसे शब्दों से भाषा में विलङ्घता-दोष का ही समावेश हुआ। संस्कृत के वर्णिक छन्दों के प्रयोग करने से भी कवियों को तदनुकूल समस्त पदों को विशेष रूप से चुनना पड़ा। जैसे—'पुष्पाभारावनम्रा', 'उचिताभिलाषी', 'दर्शनोत्कंठिता', 'नभोपमान', 'सदभावांकुर', 'जनकात्मजाया', 'चंचलालोक', 'करुणैकधाम' आदि आदि। ऐसे प्रयोगों के अतिरिक्त सरल, मधुर एवं अनुकूल तत्सम शब्दों को ही प्रधानतया प्रयुक्त किया गया। युग के मध्यकाल में यद्यपि सरल और सहज भाषा पर ही बल दिया गया तथापि परवर्ती काल में भाषा संस्कृत-गर्भित होती गयी। वास्तव में आजकल की खड़ी बोली काव्य-भाषा सामान्यतः संस्कृत-गर्भित ही है। संस्कृत के तत्सम शब्द-समूह की तालिका इतनी विशद है कि उसे प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है तथापि क्रमानुसार एक संक्षिप्त तालिका प्रस्तुत है—

|            |            |                      |         |                       |           |                      |
|------------|------------|----------------------|---------|-----------------------|-----------|----------------------|
| 'कराल'     | 'अभिराम'   | 'अणु'                | 'शुचि'  | 'ध्वजा'               | 'पुरन्दर' | 'ज्योति'             |
| 'अरविन्द'  | 'भुक्ता'   | 'तड़ित' <sup>१</sup> | 'नवल'   | 'नीरज'                | 'सुरस्य'  | 'राशि'               |
| 'कवीन्द्र' | 'उपल'      | 'मृणाल'              | 'मंजु'  | 'नीरद'                | 'वज्र'    | 'सौम्य' <sup>२</sup> |
| 'प्रभा'    | 'मंदाकिनी' | 'प्रभञ्जन'           | 'भुक्त' | 'असित'                | 'अमित'    | 'धृति'               |
| 'अनुरक्त'  | 'सरोज'     | 'नीर' <sup>३</sup>   | 'व्योम' | 'दिवस'                | 'लोहित'   | 'लोचन'               |
| 'मेदिनी'   | 'विजित'    | 'पादप'               | 'कलिका' | 'सुधि'                | 'नीरव'    | 'मुकुर'              |
| 'अनुराग'   | 'ललित'     | 'मुहुर्मुह'          | 'निकेत' | 'संकुल'               | 'वापिका'  | 'अवनि'               |
| 'प्रतीति'  | 'मनोज्ञ'   | 'रञ्जित'             | 'मधु'   | 'अकीलित' <sup>४</sup> | 'कीर'     | 'विपिन'              |
| 'खञ्जन'    | 'जलधि'     | 'खग'                 | 'उडगण'  | 'व्याल'               | 'ललाट'    | 'ऊषा'                |

१. श्रीधर पाठक
२. महावीरप्रसाद द्विवेदी
३. राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'
४. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'



‘चिकुर’ ‘मारुत’ ‘पीयूष’ ‘भुभुक्षा’ ‘यामिनी’ ‘अविचल’ ‘कुमुद’  
 ‘प्रमुदित’ ‘कुसुमायुध’ ‘मृदु’ ‘वत्सल’ ‘मानस’ ‘तरणि’ ‘निशीथ’  
 ‘निभूत’ ‘न्यस्त’<sup>१</sup> ‘माधवी’ ‘अरुण’ ‘किरण’ ‘कवरी’ ‘कोतुक’  
 ‘आतप’ ‘हृत’<sup>३</sup> ‘कमनीय’ ‘मणि’ ‘मकरन्द’ ‘परिरम्भ’ ‘कुम्भ’  
 ‘मृदुल’ ‘उत्तरीय’ ‘चषक’ ‘बंकिम’ ‘मुकुल’ ‘अपांग’ ‘अकुश’  
 ‘कुन्तल’ ‘रंजक’ ‘क्षितिज’<sup>२</sup> आदि आदि ।

### पद-योजना

शब्द-समूह के इस विवेचन के पश्चात् पद-योजना का संक्षिप्त अनुशीलन अप्रासंगिक न होगा । काव्य में वाक्य-विन्यास एवं पद-योजना का विशिष्ट महत्त्व होता है । शब्द-संयोजन की कलात्मक रचना पर ही अर्थ-सौरस्य और काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि निर्भर होती है । काव्य-भाषा का शब्द-संयोजन यदि सुगठित एवं सुललित नहीं है, तो कवि के भाव की गम्भीरता और अर्थ की व्यापकता बिखर जाती है । इसीलिए काव्य में पद-योजना का महत्त्व अधिक माना गया है । ब्रजभाषा-काव्य की पद-योजना अत्यन्त प्रसिद्ध है । खड़ी बोली के प्रारम्भिक वर्षों में काव्य में गद्यात्मकता के प्रवेश के कारण पद-योजना की सुन्दर समाविष्टि नहीं हो पायी । केवल यत्र-तत्र मुहावरों तथा संस्कृत की समस्त पद-शैली के प्रयोग से किञ्चित् मात्रा में काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि हुई । भाषा की सुस्थिरता के साथ-साथ कवियों के काव्य-कौशल में अभिवृद्धि होती गयी । छन्दों में सुनियोजित एवं सुगठित शब्दावली का प्रयोग होने लगा । सरल से सरल शब्दों के गठन से काव्य में अभिव्यञ्जकता का आभास प्राप्त होने लगा । पद-योजना की इस प्रक्रिया को चित्रात्मकता, छव्यर्थ-व्यञ्जना तथा मुहावरेदार भाषा के अन्तर्गत विवेचित किया जा रहा है ।

### चित्रात्मकता

काव्य में चित्रात्मकता के माध्यम से कवि अपने भाव या वर्ण्य-वस्तु को ऐसे शब्दों में प्रस्तुत करता है कि वह शब्द-योजना पाठक के मानस पर एक चित्र अंकित कर देती है । इससे कथ्य की प्रभावोत्पादकता में अभिवृद्धि होती है । प्रायः काव्य में चित्रात्मकता का प्रयोग मनोभावों अथवा सूक्ष्म भावनाओं एवं घटनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए होता है । इस युग में प्रायः

१. मैथिलीशरण गुप्त

२. जयशंकर प्रसाद ।



सभी कवियों ने इस प्रणाली का अनुसरण किया है।<sup>१</sup> उदाहरण के लिए दो उद्धरण प्रस्तुत हैं—

निशि का सारा शान्त भाव हृत हो गया,  
नभ के उर का एक रत्न सा खो गया ॥  
आभा उसके अमल अन्तिमालोक की,  
रेखा सी षर गयी हृदय पर शोक की ॥  
सारे तारे उसे देखते ही रहे,  
हिम-कण-रूपी कोटि कोटि आँसू बहे ॥<sup>२</sup>

+                      +                      +

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग,  
स्वर्ण सरसिज किजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग ।  
धरा पर झुकी प्रार्थना सुदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन,  
किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना-दूती सी तुम कौन ?<sup>३</sup>  
इसके अतिरिक्त 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'जयद्रथ वध' आदि काव्यों में भी इस प्रवृत्ति का व्यापक अनुशीलन किया गया। युग के परवर्ती काव्य में भावनाओं के सूक्ष्म चित्रांकन की प्रवृत्ति का विशद विकास होता गया।

## (२) ध्वन्यर्थ-व्यंजना

पश्चिमी प्रभाव से खड़ी बोली काव्य में इस अलंकार का समावेश हुआ। शब्दों का ऐसा संयोजन, जिनकी ध्वनि मात्र से ही अर्थ का बोध हो, को ध्वन्यर्थ व्यंजना कहते हैं। अनुप्रास और यमक की छटा यद्यपि इसमें मिलती है तथापि यह इन दोनों अलंकारों से भिन्न है। उनमें शब्दों अथवा वर्णों का प्राधान्य रहता है तो इसमें शब्द अथवा वर्ण की ध्वनि प्रधान रहती है जो अर्थ व्यंजकता में सहायक होती है। इस नवीन अलंकार से खड़ी बोली काव्य-भाषा में नाद-मौन्दर्य, संगीत एवं प्रवाह का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ। साथ ही भाषा-व्यंजकता की शक्ति में भी अभिवृद्धि हुई। प्रायः इस प्रकार के भाषा-प्रयोग की प्रौढ़ प्रगति आलोच्य-युग के मध्यकाल के उपरान्त ही खड़ी बोली में देखी जा सकती है। ब्रजभाषा में इस प्रकार के प्रयोग देखे जा चुके हैं, उसमें

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १६२; 'धुआँधार' : लोचनप्रसाद पाण्डेय, सरस्वती, मई १९१८, पृ० २४८; वनाष्टक, पृ० ४; शंकर सर्वस्व, पृ० २१८; राष्ट्रीय मंत्र, पृ० १४; 'क्षमा प्रार्थना' : मुकुटधर, सरस्वती, जून १९१८; पृ० ३१७ तथा 'हृदय' : मुकुटधर, सरस्वती, मार्च १९१७, पृ० १५१।
२. 'नक्षत्र-निपात' : मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, जून १९१४, पृ० ३०४।
३. क्षरणा, पृ० १४।



भाषागत माधुर्य और प्रवाह सहज रूप से प्राप्त होने के कारण इस प्रकार की संगीतात्मकता का प्रणयन सरलता से हो पाया। खड़ी बोली में भाषागत अनगढ़ता समाप्त होने के पश्चात् ही अभ्यास और प्रयोग से इस प्रकार के सौन्दर्य की प्राप्ति सम्भव हुई। उदाहरण के लिए निम्न दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सखि, निरख नदी की धारा,  
ढलमल ढलमल चंचल अंचल, झलमल झलमल तारा।  
निर्मल जल अंतःस्तल भर के,  
उछल उछल कर, छल छल करके,  
थल थल, कल कल धर के,  
बिखराता है पारा।<sup>१</sup>

विरह-विदग्धा उमिला की व्यथा, उसके हृदय की आशंका तथा उद्दीप्त करण भावोद्रेक सरिता के 'ढलमल', 'झलमल', 'उछल उछल', 'थल थल' आदि से ध्वनित होता है। ध्वन्यर्थ-व्यंजना का यह एक सरस उदाहरण है। पंत जी भी पावस ऋतु के बादलों के 'छायामय मेल' के वातावरण में अन्य प्राकृतिक तत्त्वों की सुन्दर व्यंजना निम्न उद्धरण में प्रस्तुत करते हैं—

पपीहों की वह पीन-पुकार, निर्झरों की भारी झर-झर  
झींगुरों की झीनी-झनकार घनों की गुरु गम्भीर घहर,  
बिन्दुओं की छनती-छनकार दादुरों के वे दुहरे-स्वर,  
हृदय हरते थे विविध प्रकार शैल-पावस के प्रश्नोत्तर।<sup>२</sup>

शब्द-योजना और शब्द-नाद से कवि के प्रकृति-चित्रण की सूक्ष्म चित्रांकनता स्पष्ट हो जाती है।

### (३) मुहावरेदार भाषा

आलोच्य भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। वह शायद ही कोई कवि है जिसने मुहावरों का प्रयोग न किया हो। वस्तुतः जन-जीवन के व्यापक धरातल पर आकर भाषा को प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों ने नवीन व्यंजकता और लाक्षणिकता प्रदान की। श्रीधर पाठक, नाथूराम शंकर शर्मा, रामचरित उपाध्याय, 'हरिऔध', 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि सभी कवियों की रचनाओं में यत्र-तत्र मुहावरों की छटा देखी जा सकती है। 'हरिऔध' ने परिमाण की दृष्टि से सर्वाधिक मुहावरों का प्रयोग

१. साकेत (नवम संग), पृ० २८०।

२. पल्लव, पृ० २३।



किया है तथा उनको इनके प्रयोग में असाधारण सफलता भी मिली। मुहावरों से भाषा का पद-विन्यास सुगठित, सुललित एवं प्रभावोत्पादक होता है। उदाहरण के लिए निम्न उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

सारी शोभा सकल ब्रज की लूटता कौन क्यों है ?  
हा ! हा ! मेरे हृदय पर यों साँप क्यों लोटता है ।<sup>1</sup>

+ + +  
यह सकल दिशाएँ आज रो सी रही हैं,  
यह सदन हमारा, है हमें काट खाता ।<sup>2</sup>

+ + +  
गाढ़ा झीना जो मिले उसकी ही पोशाक,  
कीजै अंगीकार तो, रहे देश की नाक ॥<sup>3</sup>

+ + +  
सुध-बुध सब मेरी जी चुराने लगी है<sup>4</sup>  
+ + +

जाने उन्होंने शत्रुगण कितने वहाँ मारे नहीं,  
जाते किसी से हैं गिने आकाश के तारे नहीं ॥<sup>5</sup>

+ + +  
सुन करके आहें भरते थे, कृषक कलेजा थाम ।<sup>6</sup>  
+ + +

हीरा सा जीवन में क्यों कौड़ी के मोल बिकाओं ।<sup>7</sup>

लोकोक्ति के प्रयोग का भी एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

थाली हो जो सामने भोजन से सम्पन्न,  
बिना हिलाये हाथ के जाये न मुख में अन्न ।<sup>8</sup>

‘हरिऔध’ जी ने प्रचलित लोकोक्तियों को साहित्यिक रूप प्रदान करने की भी चेष्टा की है—

१. प्रियप्रवास, सर्ग ८, छन्द २२।

२. वही०, सर्ग ४, छन्द ३२।

३. पूर्ण संग्रह, पृ० २१४।

४. पञ्चावली, पृ० १८।

५. जयदथ वध, पृ० ६५।

६. मिलन, पृ० २७।

७. पथिक, पृ० १६।

८. पूर्ण संग्रह पृ० २१०।



जो होता है सुखित उसको अन्य की वेदनाएँ,  
क्या होती हैं विदित वह जो भुक्त-भोगी न होवे ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार अन्यान्य महावरो और लोकोक्तियों का प्रयोग भी कवियों ने खड़ी बोली काव्य में किये। सामान्यतः ये प्रयोग सफल ही कहे जा सकते हैं। कहीं-कहीं पर कवियों ने प्रचलित मुहावरों के रूप को परिवर्तित करके भी प्रस्तुत किया है, जैसे 'आँख लाल होना' का 'दृग लोहित होना' किया गया। ऐसे स्थल प्रायः अपवादस्वरूप ही उपस्थित होते हैं। इस भाषा में प्रयुक्त मुहावरों की संख्या अत्यधिक है, तथापि कुछ प्रयुक्त मुहावरों की संक्षिप्त तालिका इस प्रकार है—'कलेजा पत्थर होना', 'बाल बाँका न होना', 'आटे दाल का भाव मालूम होना', 'गाज गिरना', 'उड़ती चिड़िया पहचानना', 'अन्धे की लकड़ी', 'भुँह सूखना', 'होश-हवास न रहना', 'छाती फटना', 'समय का पलटा खाना', 'गला काटना', 'एक पंथ दो काज', 'आँखें लाल करना', 'आँखें दिखाना', 'पीठ दिखलाना', 'कायापलट होना', 'धूल उड़ाना', 'रंग जमाना', 'बेड़ा पार होना' आदि आदि।

आलोच्य-काल की खड़ी बोली काव्य-भाषा के इस विवेचन से स्पष्ट है कि इस काल की भाषा समृद्ध, प्रौढ़, साहित्यिक, मधुर, ललित, ओजपूर्ण एवं प्रवाह्ययुक्त थी। कवियों ने कृतसंकल्प होकर भाषा की प्रारम्भिक अनगढ़ता को अपनी कर्मठता से परिमार्जित कर उसे शुद्ध साहित्यिक रूप दिया। इस युग को आधुनिक भारत की राष्ट्रभाषा को उदात्त स्वरूप प्रदान करने का समस्त श्रेय दिया जा सकता है। खड़ी बोली की दयनीय स्थिति को इस युग ने अल्पकाल में ही एक ऐसा दृढ़ स्वरूप प्रदान किया जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य का आधुनिक मध्य भवन समादृत रूप से प्रतिष्ठित हो सका। वस्तुतः द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली काव्य-भाषा की यह क्षप्रतिम उपलब्धि है।

### निष्कर्ष

इस सम्पूर्ण विश्लेषण के अन्त में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युगीन खड़ी बोली-काव्य आधुनिक हिन्दी काव्य का सर्वप्रथम सुदृढ़ सोपान है। उसमें मात्र इतिवृत्तात्मकता अथवा नैतिकता का ही प्रवेश नहीं हुआ अपितु आधुनिक भाव-बोध की क्रान्तिमय विचार-धारा का सरस अभिव्यक्तिकरण भी उसमें हुआ। इस काव्य में आधुनिक काव्य में अभिव्यक्त 'वैयक्तिकता' का समुचित प्रवेश हुआ जिसका विकसित रूप छायावाद कहा जा सकता है। इसमें बहिर्जगत से अन्तर्जगत की ओर प्रवृत्त होने की सुनिश्चित पुर्वपीठिका प्रस्तुत हो चुकी थी। वैचारिक स्तर पर इसमें आधुनिक काव्य की प्रायः सभी



विचार-धाराओं का सूत्रपात हो चुका था। प्रारम्भिक अनगढ़ता से यह काव्य भाषागत माधुर्य, लाक्षणिकता, अर्थ-व्यंजकता, लालित्य एवं प्रतीक योजना आदि की ओर प्रवृत्त हुआ। युग के परवर्ती काल की भाषा निश्चय ही साहित्यिक मार्दव एवं कोमलता से परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इस काव्य में आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के प्रभाव तथा जन-जीवन के व्यापक सामीप्य के कारण परम्परागत 'रसानुभूति' की अवधारणा में परिवर्तन परिलक्षित हुआ। इसमें अनुभूति की गहनता और संवेदना की तीव्रता को ही अधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ तथापि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह काव्य सर्वथा सफल कहा जा सकता है। छन्द-वैविध्य का आश्चर्यजनक परिचय इस काव्य में प्राप्त होता है। इस युग में संस्कृत के वर्णिक छन्दों से लेकर छन्द-मुक्त काव्य तक की सृष्टि हुई जो निश्चय ही समस्त हिन्दी काव्य की छन्द-परम्परा में एक सफल विद्रोहात्मक स्वर था। छन्द-मुक्ति इस युग के कवियों की स्वातन्त्र्य भावना और वैयक्तिकता की प्रतीक बन गयी, जिसका विकास आज तक चला आ रहा है। युग के द्वितीय उत्थान-काल से काव्य में कलात्मक सूक्ष्मता और मार्मिक अभिव्यञ्जना का निरन्तर विकास होता गया। इस काव्य ने न केवल संस्कृत साहित्य अपितु अन्य देशी-विदेशी साहित्यों के प्रभावों को स्वस्थ रूप से समेटकर आधुनिक मानव के विस्तृत आयामों की ओर इंगित किया। वस्तुतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की अनवरत साधना और समय-समय पर के सम्यक् दिशा-निर्देशन का यह आश्चर्यजनक प्रतिफलन है। आधुनिक हिन्दी काव्य के लिए निश्चय ही आलोच्य काव्य की महत्ता अद्वितीय है। □



## अध्याय—छः

### युग-बोध के सन्दर्भ में खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा काव्य

द्विवेदी-युग को सम्पूर्ण अर्थ में आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रथम सुदृढ़ सोपान कहा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सांस्कृतिक-धार्मिक पुनरुत्थान तथा आधुनिक वैज्ञानिक युग के सम्पर्क से जिस वैचारिक क्रान्ति का प्रसार भारतीय बौद्धिक वर्ग में हुआ था, द्विवेदी-युग ने उसे न केवल सही सन्दर्भ में स्वीकार किया अपितु उसको व्यापक घरातल प्रदान करके बौद्धिक वर्ग से इतर सामान्य जन-मानस तक भी विस्तृत कर दिया।

बीसवीं शताब्दी में ही भारत में आधुनिकता का प्रचार एवं प्रसार हुआ। वस्तुतः इसका मूल १९ वीं शताब्दी की यूरोप की नवीन वैचारिक क्रान्ति है। १८ वीं शताब्दी की फ्रेंच-क्रान्ति ने जिस नवीन विचार-धारा का सूत्रपात किया था, उसका पूर्ण विकास यूरोप में १९ वीं शताब्दी में हुआ था। इस आधुनिकता ने मूलतः अलौकिकता से लौकिकता, परतन्त्रता से स्वतन्त्रता और सीमित जाति-प्रेम से विश्व-बन्धुत्व की ओर सर्वप्रथम मानव का ध्यान आकर्षित किया था। ये ही तीन तत्त्व आधुनिकता के द्योतक माने जाते हैं। इहलौकिकता एवं स्वातन्त्र्य की भावना पर ही विश्व-बन्धुत्व की भावना प्रतिष्ठित हो सकती है। बीसवीं शताब्दी में भारतीय बौद्धिक वर्ग नवीन वैचारिक क्रान्ति से प्रभावित होकर स्वातन्त्र्य और इहलौकिकता की स्थापना के लिए क्रियाशील होने लगा। फलतः राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक विचार-धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का सूत्रपात हुआ। स्वातन्त्र्य के लिए राष्ट्रीयता की भावना को उद्बलित करने के निरन्तर प्रयास होते रहे। इहलौकिकता के लिए धार्मिक एवं सामाजिक विचार-धारा को रूढ़िग्रस्तता से ऊपर उठाकर बोधगम्य बनाने एवं स्वस्थ स्वरूप प्रदान करने की तीव्र भावना का प्रसार दिनोंदिन बढ़ता गया। इन दोनों तत्त्वों की स्थापना के साथ ही विश्व-बन्धुत्व की स्थापना सम्भव हो सकती है। वस्तुतः ये तीनों तत्त्व आपस में एक-दूसरे के पूरक एवं एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं। अतः आलोच्य-काल का युग-बोध राष्ट्रीयता की आधुनिक विचार-धारा का प्रतिनिधित्व, सामाजिक उत्थान की तीव्र कामना तथा धार्मिक रूढ़िग्रस्तता के त्याग की प्रबल इच्छा है। द्विवेदी-युग की सम्पूर्ण काव्य-धारा



के प्रमुख वैचारिक केन्द्र-बिन्दु ये तीन तत्त्व हैं। इस युग ने जिस ईमानदारी और सच्चाई के साथ आधुनिक युग-बोध का निर्वाह किया है, वह निश्चय ही अद्वितीय है। साहित्यिक क्षेत्र में इस युग के सामने समस्याओं का विशाल सागर था तथापि इस युग के कवियों ने जिस कृतसंकल्पता से काव्य-साधना की, उसका प्रतिफलन आधुनिक हिन्दी काव्य-साहित्य की वैचारिक प्रगति है। अतः युग-बोध के सन्दर्भ में इस युग की खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य-धारा का विश्लेषण प्रमुखतः राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में किया जा रहा है।

### राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

मनुष्य मूलतः एवं स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। वह एक नहीं 'बहु' होकर रहना चाहता है। इस प्रवृत्ति के कारण उसमें सहज रूप से जन्म-स्थान-प्रेम ('लव आफ नेटिव प्लेस') तथा जातीयता ('नेशनैलिटी') की भावना का उद्रेक हुआ। जन्मस्थान-प्रेम वैयक्तिक भावना होने के कारण सीमित ही कही जा सकती है। जातीयता की भावना समूह-भावना होने के कारण व्यापक है। जातीयता की भावना के प्रधान तत्त्व समान भाषा तथा समान सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा हैं। इसी आधार पर एक जाति दूसरी जाति से भिन्न होती है। जातीयता की भावना वैचारिक स्तर पर अभिव्यक्त होती है तो जन्म-स्थान-प्रेम भावना के स्तर पर। दोनों के संश्लेषण से राष्ट्रीयता की भावना का प्रस्फुटन होता है। इसीलिए राष्ट्रीय भावना का कारण भौगोलिक स्थिति न होकर वैचारिक एकता ही मानी जाती है।<sup>१</sup> 'देश-भक्ति' (जन्म-स्थान-प्रेम) जब तक अपना आदर्श जातीयता की भावना को नहीं बनाती है तब तक वह संकुचित ही रहती है तथा राष्ट्रीयता के विस्तृत अर्थ को ग्रहण नहीं कर पाती। राष्ट्र अपनी जनता का 'व्यक्तित्व' होता है। यह व्यक्तित्व उस जनता की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परम्परा, सामान्य आर्थिक व्यवस्था एवं आवश्यकता तथा सामान्य जीवन-दर्शन से निर्मित होता है। इस व्यक्तित्व का अभिव्यक्ति-करण जन-भाषा करती है। इसी व्यक्तित्व के प्रति जब जनमानस जागरूक होता है और इसे प्राप्त करने के लिए किसी विदेशी अथवा देशी अन्यायी शासन-सत्ता का विरोध करने लगता है तो सांस्कृतिक राष्ट्रीयता, राजनीतिक राष्ट्रीयता की ओर अग्रसर होती है। राष्ट्रीयता की आधुनिक विचार-धारा का उद्देश्य स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व है। इस विचार-धारा का सर्वप्रथम

१. स्वतन्त्रता और संस्कृति : डॉ० राधाकृष्णन, पृ० ५२ ('फ्रीडम एण्ड कल्चर' का अनुवाद)।



उद्घोष अठारहवीं शताब्दी की फ्रेंच क्रान्ति में हुआ था। तभी से सांस्कृतिक राष्ट्रीयता, राजनीतिक राष्ट्रीयता के बाह्य किन्तु आवश्यक स्वरूप को ग्रहण करने की ओर प्रवृत्त हुई जिससे जन-साधारण को सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो तथा एक स्वस्थ समाज एवं प्रगतिशील राष्ट्र की स्थापना हो सके।

आधुनिक अर्थ में भारतीय राष्ट्रीयता का उत्थान बीसवीं शताब्दी में ही सम्भव हो सका। बीसवीं शताब्दी में जन-भाषा का सम्पर्क प्राप्त करने से गत शताब्दी के सांस्कृतिक पुनरुत्थान आन्दोलनों को विशेष व्यापकता एवं विस्तार प्राप्त हुआ। वैज्ञानिक आविष्कारों और भाषा के माध्यम से सुस्पष्ट जातीयता की भावना को जागृत करने में अधिकाधिक सुविधा प्राप्त होती गयी। खड़ी बोली हिन्दी का उत्थान इस भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान एवं नवीन युग-बोध के विकास के साथ-साथ सम्बद्ध होकर चलता है। फ्रेंच भाषा को जिस प्रकार फ्रेंच क्रान्तिकारियों ने जातीयता की भावना के प्रसार एवं उत्थान में आवश्यक समझा था, ठीक उसी प्रकार द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों, खड़ी बोली के समर्थकों एवं संस्थापकों ने खड़ी बोली के महत्त्व को समझते हुए उसे सम्पूर्ण रूप से साहित्य में प्रतिष्ठित कर राष्ट्रीय आन्दोलन एवं आधुनिक भाव-बोध की वाहिनी का गौरव प्रदान किया। वर्षों बाद भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस कार्य की महत्ता को ध्यान में रखते हुए 'हिन्दुस्तानी भाषा' को अपने आन्दोलन की भाषा स्वीकार किया था। खड़ी बोली के साथ ही अन्य प्रान्तीय भाषाओं ने भी इस कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। कदाचित् इसीलिए एक पश्चिमी विद्वान् का कथन है कि— "सैनिक विजयों तथा दमन-नीति, प्रशासकों की भाषा एवं धर्म के प्रसार, सैनिक अधीनता अथवा पराधीनता से राष्ट्रीयता की भावना दबी अवश्य रही किन्तु समाप्त नहीं हुई क्योंकि धीरे-धीरे देशी भाषाओं के उत्थान, देशी भाषाओं के साहित्य की प्रगति से जातीयता की भावना की उन्नति हुई। देशी भाषाओं के नवोत्थान में प्रेस एवं मुद्रण-कला के विस्तार तथा धार्मिक आन्दोलनों ने सहयोग दिया जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीयता की भावना का उत्थान हुआ।"<sup>1</sup> अतः इस संदर्भ में द्विवेदी-युग में राष्ट्रीयता का बोध सम्भव हो सका। इस युग की ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली काव्य-धाराओं की राष्ट्रीय भाव-धारा का विश्लेषण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है।

#### (क) समान भाषा

युगों से सुस्पष्ट भारतीय जन-मानस को राष्ट्रीयता की भावना से परिचित कराने तथा नवीन क्रान्तिपूर्ण सन्देश को देश के विस्तृत भू-भाग की अशिक्षित



एवं रूढ़िग्रस्त जनता तक पहुँचाने का माध्यम भाषा का शक्तिशाली स्वरूप ही था। भाषा का यह स्वरूप प्रधानतया हिन्दी के रूप में ही अधिकाधिक स्पष्ट एवं मान्य था। आलोच्य-युग के कवियों का कवित्व और उनकी अभिव्यंजन-प्रतिभा इस उद्देश्य से ही नियोजित थी। भाषा के माध्यम से ही भावात्मक एकता, जातीयता और राष्ट्रीयता की भावना को जगृत एवं उद्बलित किया जा सकता था। इस महान् कार्य के लिए हिन्दी से अधिक उपयुक्त 'समान भाषा' और कौन हो सकती थी। तत्कालीन परिस्थितियों में हिन्दी के प्रति न तो जनता जागरूक थी और न ही सरकार उसकी प्रगति के लिए प्रगतिशील थी। हिन्दी को 'मूखा' की संज्ञा प्रदान की जा चुकी थी। हिन्दी के प्रति जनता का विश्वास अन्यान्य कारणों से कुण्ठित हो रहा था। अतः आलोच्य दोनों काव्य-धाराओं में कवि राष्ट्रीय भावना के इस सशक्त एवं आवश्यक तत्त्व के प्रति जागरूकता से प्रवृत्त हुए और उन्होंने जनता को इस ओर आकर्षित किया।

### (१) ब्रजभाषा काव्य में भाषा-विषयक प्रबुद्धता

हिन्दी स्वयं देव-वाणी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है। उसकी परम्परा वैदिक ऋषियों के उषा-पूजन एवं संस्कृत के विश्वप्रख्यात कवियों की वाणी से पवित्र एवं उदात्त है। उसका सम्मान देश के प्रत्येक महान् पुरुष ने किया है। समस्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान, विद्या-कला और साहित्य को प्रतिष्ठित करने की समुचित क्षमता इसी भाषा में है। यही वह भाषा है जो भावात्मक एकता के धरातल पर समस्त भारत को उसके प्राचीनतम गौरव से संपृक्त कर सकती है। कविवर श्रीधर पाठक भावना के इसी तीव्र आवेग में इस भाषा तथा इसके देश को धन्य मानते हैं—

धनि धनि ध्रुव हिंद, हिन्दी-हितकारी  
विद्या-गुन-ज्ञान-सुमन, कविता-मधु पान प्रवन  
गुनियन-सनमान-भवन, सुमिरत सुख भारी,<sup>१</sup>

महावीरप्रसाद द्विवेदी तो नागरी जैसी सुव्यवस्थित, सरल, रसपूर्ण तथा व्यापक भाषा किसी अन्य भाषा को नहीं मानते। इस बात को वे 'स्वभुजा' उठाकर घोषित भी कर देते हैं।<sup>२</sup> किन्तु वर्तमान समय में उसकी सर्वथा अवहेलना हो रही है। उसे न केवल उर्दू-फारसी से प्रतिद्वन्द्विता है अपितु अपने अस्तित्व के लिए उसे अंग्रेजी, अंग्रेज़ तथा उनसे प्रभावित देशी सभ्य वर्ग

१. भारतगीत, पृ० ५५।

२. द्विवेदी काव्य-माला, पृ० १६७।



से भी जूझना पड़ता है। 'काशी', 'अयोध्या', 'पन्ना' एवं 'छत्रपुर' जैसे हिन्दी भाषा-भाषी राज्यों तक के राजाओं ने इसे उपेक्षित कर उर्दू-फारसी को सम्मानित किया था। महावीरप्रसाद द्विवेदी एक सफल निर्देशक की भाँति इस ओर संकेत करते हुए इन राज्यों से हिन्दी को उसका समुचित स्थान देने की 'प्रार्थना' करते हैं।<sup>१</sup> आलोच्य-युग के कवि यह स्पष्ट अनुभव कर रहे थे कि हिन्दी की उपेक्षा भारतीयता की उपेक्षा है। इस तथ्य से उद्बलित होकर कवि नाथूराम शंकर शर्मा तथाकथित सभ्य कहलाने वाले वर्ग की हिन्दी विरोधी विचारधारा पर व्यंग्य की करारी चोट करने से चूकते नहीं।<sup>२</sup> इस सभ्यता से आक्रान्त जनता दिनोंदिन हीन भावना से ग्रस्त होती जा रही थी। वे लोग, जो इस 'सभ्य' वर्ग में सम्मिलित नहीं हो सकते उनकी दशा समाज में इन सभ्यों की दृष्टि में निम्न स्तर की होती जा रही थी। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन करते हुए सत्यनारायण 'कविरत्न' आत्म-विश्वास से कहते हैं—

नागरी पढ़ी सप्रीति । पालहु निज-धर्म-रीति ।

सकल चलहु स्वकुल रीति । रहहु न मन मारे ।<sup>३</sup>

## (२) खड़ी बोली काव्य में भाषा-विषयक प्रबुद्धता

खड़ी बोली काव्य प्रणेताओं की वाणी भी इसी दिशा का अनुसरण करती रही। गुप्त जी देश की एक राष्ट्रभाषा न होने से 'भावैकता' की कमी को अनुभव कर रहे थे। अपनी प्रतिभासम्पन्न दूरदर्शी दृष्टि से वे इस तथ्य को सहज एवं सरल रूप में प्रस्तुत करते हैं—

है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश में कोई नहीं,

हम निज विचार जना सकें जिससे परस्पर सब कहें ।

इस योग्य हिन्दी है तदपि अब तक न निज पद पा सकी,

भाषा बिना भावैकता अब तक न हम में आ सकी।<sup>४</sup>

इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए युग के एक और जागरूक कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह हिन्दी को परम् पूज्य एवं गुणवती बतलाते हैं—

भारत भर की एक राष्ट्रभाषा हो जावे

जो हम सब में खूब परस्पर मेल बढ़ावे ।

१. द्विवेदी काव्य-माला, पृ० १६७ ।

२. शंकर सर्वस्व, पृ० ३२४ ।

३. हृदयतरंग, पृ० ११५ ।

४. भारत भारती, पृ० १७५ ।



यह अभिलाषा पूर्ण हमारी करने वाली

हिन्दी ही है परम् पूज्य गुणवती निराली ।<sup>१</sup>

उपर्युक्त हिन्दी की बाधाओं और उपेक्षाओं का चित्रण खड़ी बोली काव्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है। फारसी, उर्दू और अंग्रेजी से हिन्दी उन दिनों आतंकित थी। यहाँ तक कि हिन्दी प्रदेशों तक में ये भाषाएँ लादी जा रही थीं। 'सभ्यता' की चिह्न तथा आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण हिन्दी भाषा-भाषी भी इन भाषाओं को अपनी मातृभाषा के स्थान पर अपनाये हुए थे। इन भाषाओं के माध्यम से जिस भारतीयता को विकृत किया गया था तथा किया जा रहा था, उस ओर भी यह काव्य सजग था।<sup>२</sup> मात्र उपदेश देने से जनता को अपनी भाषा के प्रति जागरूक बनाना असम्भव था। जब तक भाषा को उसका उचित स्थान न मिले तब तक आर्थिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टियों से यह उपदेश निष्फल हो जाते हैं। अंग्रेजियत से आक्रान्त हीन-भावनाग्रस्त जनता में आत्म-विश्वास जगाना वास्तव में एक समस्या थी। अंग्रेजी की 'गिटपिट' के सामने सीधे, सरल एवं ईमानदार लोग आत्म-विश्वास खो देते थे। इसलिए इन कवियों को एक साथ कई मोर्चों पर कार्यरत होना पड़ा। एक ओर उर्दू-फारसी, अंग्रेजी तथा अंग्रेज, दूसरी ओर 'देशी अंग्रेज' तथा उनकी 'सभ्यता' एवं 'समाज' तथा तीसरी ओर अनपढ़ एवं अशिक्षित जनता में आत्म-विश्वास उत्पन्न कराना और उन्हें मातृभाषा की महिमा एवं गरिमा से परिचित कराना था। कविवर मैथिलीशरण गुप्त इसीलिए देश-वासियों से 'प्रतिज्ञा' करवाना चाहते हैं। उन्हें उद्बोधित करते हुए वे कहते हैं—

न अपनी हीनता को अब सहेंगे हम,

हृदय की बात ही मुँह से कहेंगे हम।

हमारी राष्ट्र-भाषा मातृ-भाषा है,

सफल होगी न क्यों? आत्माभिलाषा है।

.....

बह कर अब न विषयों में बहेंगे हम,

.....

हमों उस भावसागर को हिलोड़ेंगे

हलाहल देखकर भी मुँह न मोड़ेंगे।

१. 'भारतीय विद्यार्थियों के कर्तव्य', सरस्वती, फरवरी १९१५, पृ० १०६।

२. शंकर सर्वस्व, पृ० ३२९।



अमृत पीकर, अमर होकर रहेंगे हम ।<sup>१</sup>

भाषा-विषयक उपर्युक्त विचार-धारा के साथ ही इस काव्य में शिक्षा, शिक्षित समाज तथा अंग्रेजों की शिक्षा-नीति पर भी मौलिक विचार प्रस्तुत किये गये । प्राचीन सांस्कृतिक गौरव और आधुनिक युग के सन्दर्भ में शिक्षा के मानदण्ड क्या होने चाहिए, इस पर 'कविरत्न' ने विचार प्रकट किये<sup>२</sup> तो रामनरेश त्रिपाठी ने तत्कालीन शिक्षा-नीति के भयानक प्रभावों का रहस्योद्घाटन किया ।<sup>३</sup> गुप्तजी ने विद्या-बल पर जोर दिया<sup>४</sup> तो रामचरित उपाध्याय ने शिक्षित समाज के उच्छृंखल अनुत्तरदायित्वपूर्ण जीवन पर व्यंग्य कसे ।<sup>५</sup> युग-बोध के सन्दर्भ में तथा राष्ट्रीय भावोन्मेष के उद्देश्य से इस प्रकार की विचारधारा का विशेष महत्त्व है । भारत जैसे अशिक्षित देश में शिक्षित वर्ग के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व की ओर इन कवियों का संकेत निश्चय ही प्रशंसनीय है । ये कवि अत्यधिक सजग थे और इनकी दृष्टि सूक्ष्म एवं पारदर्शी थी ।

### सांस्कृतिक-ऐतिहासिक परम्परा

एक जातीयता (नेशनैलिटी) को दूसरी जातीयता से पृथक् करने वाला एक और तत्त्व उसकी ऐतिहासिक परम्परा होती है । भूत के कल्पित अथवा ऐतिहासिक अनुभवों से निर्मित यह परम्परा भारत के जातीय जीवन की एक अमर धाती है । हमारा देश किसी भी अर्थ में असम्भ्य, असंस्कृत अथवा पिछड़ा नहीं रहा है । यह तथ्य हमारे लिए गौरव और अभिमान का विषय है । भारत जैसे प्राचीन, समृद्ध एवं सम्पन्न देश के वासी जागरूकता की प्रथम लहर में एक घबके के साथ उठ बैठते हैं । अपनी ऐतिहासिक परम्परा का ज्ञान होने पर वे आत्माभिमान से अभिभूत हो उठते हैं । देश के प्रति उनके हृदय में ठीक वच्चे की अपनी माँ के प्रति भावुकता और प्रशंसा की भावनाएँ प्रस्फुटित हो उठती हैं । इस प्रकार से एक जातीय अथवा राष्ट्रीय संवेग का जन्म होता है । हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का संवेग १९वीं शताब्दी के अन्त में ही सम्भव हो सका ।

१. सरस्वती, अक्टूबर १९१९, पृ० १६९ ।

२. हृदय तरंग, पृ० १२१, १२७ तथा 'अमरदूत' ।

३. पथिक, पृ० ४३ ।

४. भारत भारती, पृ० ६३ ।

५. 'हमीहम', सरस्वती, सितम्बर १९१६ ।



(१) व्रजभाषा-काव्य

भारत-वन्दना—द्विवेदी-युग के प्रमुख कवियों में से सर्वप्रथम पं० श्रीधर पाठक को भारत वन्दना एवं राष्ट्रीय गीत लिखने का श्रेय प्राप्त होता है। उन्होंने सन् १८८५ से पूर्व ही ब्रजभाषा में भारत-वन्दना गीत लिखने प्रारम्भ किये थे। पाठक जी की यह देन ब्रजभाषा के बाद खड़ी बोली काव्य में धीरे-धीरे ब्योर भी मुखरित हो उठी। 'कांग्रेस बधाई' के साथ ही उनका 'हिन्द-वन्दना' गीत इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। राष्ट्रीय भावना को देश की भौगोलिक एकता तथा देश को देवता के रूप में चित्रित करना पाठक जी की अन्यतम देन है। उनकी यह परम्परा आज तक चली आ रही है। इन गीतों में अभिव्यक्त भाव-सौन्दर्य और सांस्कृतिक नाद-सौन्दर्य तत्कालीन परिस्थितियों में एक साहसिक एवं दूरदर्शी कार्य था। 'भारत गीत' की भाषा में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में तो हुआ ही भजन, गजल तथा प्रगीत के कई अन्य रूपों का भी प्रयोग सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। भारतमाता के इस अमर गायक एवं भक्त की 'नीमिभारतम्' कविता में भाव और भाषा दोनों दर्शनीय हैं—

हिम-शैल-शुभ्र-सुभाल-भ्राजत दिव्य-मौलि प्रभालयम्  
सित-अभ्र-जाल-विशाल-साजत राज-छत्र-छटा मयम्

+ + +  
 कहूँ देवदारु-सुव्रात-वृत, सुठि-पर्वंतालि, तट-स्थली  
 कहूँ शाल-ताल-तमाल-तत सुविशाल-वन-शोभा भली  
 कहूँ रम्य-तीर-दुमालि-बिंबित-स्वच्छ-नीर-सरोवरम्  
 + + +

मनुआदि नृपति-नृवर्य-जनु-थल-विनय-नय अनुशासितम्  
बल-वीर्य-बुद्धि-विलास-वर्द्धित-आर्य कुल अधिवासितम्<sup>1</sup>

इसी भाव से परिपुष्ट कई अन्य गीतों में कवि ने इसी शैली को अपनाया है। कवि की दूसरी विशिष्टता इस सम्बन्ध में यह रही कि उसने इन गीतों को संस्कृत के स्तवनों के धनुरूप ढालने का सफल प्रयास किया। बँगला के 'वंदेमातरम्' का प्रभाव भी इन गीतों में स्पष्ट झलकता है। इस प्रसिद्ध वंदना गीत पर भी संस्कृत की स्तवन शैली की छाप थी।

पाठक जी के इन वंदना गीतों की परम्परा ब्रजभाषा के अन्य कवियों ने भी अपनायी। संस्कृत शब्दावली एवं शैली का प्रयोग इन कवियों ने भी किया।



वंदना के साथ-साथ ये कवि नयी जाकरूकता एवं नये यथार्थ-बोध के आग्रह को भी अभिव्यक्ति देते रहे। भारतभूमि को हेय दृष्टि से देखने वाले भूल जाते हैं कि भारत माँ के 'तीस कोटि' संतान हैं और 'साठ कोटि' हाथ हैं। अतः वह किसी अर्थ में अबला नहीं है, वह सर्वशक्तिसम्पन्न है।<sup>१</sup> कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' की उन्मुक्त भावना का एक और रूप संस्कृतनिष्ठ भाषा में प्रस्तुत है —

करुणामयि विगति छद्म  
वसुधा मधि सुधा सद्म,  
आरज थल अमल पद्म-  
धूरि धारिणी

2

'धूरि धारिणी' शब्दों में माँ भारती की समस्त करुणा को कवि ने एक साथ उडेल दिया है। ब्रजभाषा-काव्य के लिए यह नवीन भाव-बोध द्विवेदीयुग की विशेष उपलब्धि है। कविवर पंत की पंक्ति 'भारतमाता ग्रामवासिनी' में लगता है 'कविरत्न' की ये पंक्तियाँ फिर से प्रतिध्वनित हो उठी हैं। 'हिन्दु वंदना' कविता में भी कवि ने भारत के भौगोलिक सौन्दर्य तथा उसकी संस्कृति एवं सभ्यता की भावपूर्ण वंदना की है। उसकी वर्तमान स्थिति पर क्षुब्ध होकर देश के युवकों को उद्बोधन देते हुए भारतेन्दु की शैली में उन्होंने लिखा—

सब मिलि पुजिय भारत-माई

आयं अनार्य सरस चाखत जिह, प्रेम भाव रुचिराई ।  
अस जननी-पूजन हित धावहु, बेला जनि कढ़ि जाई ॥

प्रिय स्वदेश व्यापार-अर्ध-जल, सिंचन करहु बनाई ।

जपहु मुदित मन सत्य-मंत्र 'बन्देमातरम' सुहाई ॥<sup>३</sup>

भारत माता की पूजा-अर्चना की समस्त सामग्री कवि उपस्थित करता है। देश की प्राकृतिक छटा को हमारी संस्कृति ने अमरत्व प्रदान किया है। निश्चय ही हमारी कला-ख्याति, ज्ञान एवं विद्या की गरिमा विदेशों को भी सभ्य बनाने में सहायक हुई है। इस भावना से तत्कालीन कवियों में आत्म-विश्वास दिनोदिन दृढ़तर होता गया।

१. हृदय तरंग, पृ० ४२ ।

२. वही०, पृ० ४४-४५ ।

३. वही०, पृ० ५२-५३ ।



### गौरवमयी परम्परा—

देश की अन्यतम परम्पराओं का कहीं अतिक्रमण हो गया तो उससे देश को हानि हुई। हरिश्चन्द्र और बलि का देश अब किन विपत्तियों से घिरा है, उस पर कवि 'शंकर' ने एक समस्यापूर्ति के माध्यम से कचोटने वाला व्यंग्य किया है। कहीं 'महिषासुर' और 'दशानन' का नाश करने वाली शक्तियाँ और कहीं भारत 'गौरव गमाय शिरो रोय-रोय मरि है'।<sup>१</sup> इस एक भूखण्ड की समृद्ध परम्परा से परिचालित एक भारतीय भाव से उद्बेलित एक भारतीय जातीयता के पुनर्स्थापन की आवश्यकता यदि किसी समय थी तो वह द्विवेदी-युग के कवियों को अपने समय में ही प्रतीत हुई और उस काल के कवियों ने इस राष्ट्रीय भावना को अपने काव्य में अलग-अलग ढंग से अभिव्यक्त किया। राष्ट्रीयता के भाव के लिए इस संघटना की प्रतीक्षा और प्रार्थना कवि 'सनेही' ने भावुकतापूर्ण ढंग से की है—

निज कुटिला करणी पर जब हम बार-बार पछितैहैं।

सरल शुद्ध कर अपने मन को प्रेम-प्रयाग नहैहैं ॥

कब हम एक भाव भाषा की धारा प्रबल बहैहैं।

माता, पिता, बन्धु सम सिंगरे भारत को अपनैहैं ॥<sup>२</sup>

इसी भाव से मिलती-जुलती अभिलाषा 'कविरत्न' भी करते हैं।<sup>३</sup> मातृ-भूमि के प्रति इस संवेग के कारण, कवियों का उसके प्राचीन गौरव को तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में देखना सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। इस परम्परा के परिचय और इसकी तुलना से ही राष्ट्रीयता का उत्थान सम्भव हो सका। कवियों ने भारत के भव्य प्राचीन को इस ढंग से प्रस्तुत किया कि उसे पढ़कर प्रत्येक देशवासी खोयी हुई समृद्धि को वापस लाने के लिए कटिबद्ध हो सकता था—'कविरत्न' ने इस सन्दर्भ में भाव-विह्वल होकर कई कविताओं की रचना की है। उदाहरण के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है—

जाग्यो जहाँ सुभग सुन्दर साम-गान।

चर्चा चलीं विमल सोचत शास्त्र-ज्ञान ॥

गावें तहाँ वटु सदा ! गनिका-कहानी।

झूठी कथानि रुचि राखत मोद-मानी ॥

श्री श्री कणाद, शुक, जैमिनि, व्यास शिष्ट।

दाता, दधीच, भृगु, गौतम, औ वशिष्ठ ॥

१. शंकर सर्वस्व, पृ० ३१७।

२. राष्ट्रीय बीणा (भाग-२), पृ० १०।

३. हृदय तरंग, पृ० २५।



ब्राह्मण्य देव कपिलादिक जो अमानी ।

हा ! हा !! पवित्र तिनकी सुकथा भुलानी ॥<sup>१</sup>

प्राचीन गौरवगान के साथ ही ऐतिहासिक पुरुषों एवं मनीषियों के यशोगान को भी इन्होंने अपनी राष्ट्रीयता का माध्यम बनाया। सच तो यह है कि इन्होंने जहाँ वहाँ भी भारतीय संस्कृति की अम्लान छाप देखी उसकी प्रशस्ति इन्होंने गायी और देशवासियों को उसके द्वारा सचेत किया। इस प्रकार आदर्श ऐतिहासिक कथाओं का सन्निवेश राष्ट्रीय काव्य-धारा में होना आरम्भ हो गया जिसका सर्वाधिक सफल स्वरूप वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में प्राप्त होता है।

(२) खड़ी बोली काव्य

भारत वन्दना—

भारत वन्दना की इस परम्परा का स्पष्ट प्रभाव खड़ी बोली काव्य में दिनोंदिन बढ़ता गया। पाठक जी का यह प्रयास बँगला की राष्ट्रीय चेतना से और शक्ति-सम्पन्न होकर समुन्नत होता गया। सन् १९०५ के वंग-भंग आन्दोलन का अभियान भी धीरे-धीरे 'रणघोष' बनता चला गया। बंकिम का 'वन्देमातरम' राष्ट्रीय गीत की पदवी को प्राप्त हुआ। हिन्दी में इसकी सर्व स्पष्ट छाप महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'वन्देमात्रम'<sup>२</sup> पर पड़ी। श्री गिरधर शर्मा ने तो इसके शब्दों को ही अपनी 'भारत माता' कविता में प्रयोग किया। बँगला के ही दूसरे महान् कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'राष्ट्रीय गान' का भी अनुकरण हिन्दी में हुआ। कवि श्रीधर पाठक ने 'भारत गीत' तथा 'भारत-भारती' कविताओं में इस गीत का अनुसरण किया। इसी सन्दर्भ में जापान के अभियान गीत का भी अनुवाद 'सरस्वती' में छपा। स्पष्ट है कि खड़ी बोली के ये कवि राष्ट्रीय आन्दोलन को सार्वदेशिक स्तर पर प्रश्रय देने के लिए कटिबद्ध थे। इनको किसी भाषा अथवा देश के काव्य का अनुसरण करना अपमान सूचक नहीं लगता था। भाषा के निर्माण के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह कार्य सर्वथा प्रशंसनीय है।

कवियों ने स्वतन्त्र रूप से भी माँ भारती की वन्दना भावपूर्ण शब्दों में की। कवि गिरधर शर्मा नवीन छन्द एवं शैली में 'राष्ट्रीय गान' लिखते हैं—

जय जय प्यारे देश ! रम्य हमारे देश !

दुग के तारे

१. हृदय तरंग, पृ० ११८ ।

२. द्विवेदी काव्य-माला, पृ० ३८३ ।



जग उजियारे,  
हिय के प्यारे, देश !  
वेदोदगाता  
सब सुखदाता देश !  
जय देश ! जय देश !<sup>1</sup>

परतंत्रता में दुखों, अत्याचारों, असहायता आदि की पराकाष्ठा से ही जातीय और राष्ट्रीय गौरव की भावना जन्मती और बलवती होती है। द्विवेदीयुगीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों ने ही कवियों को जगाया और मातृभूमि की वन्दना के द्वारा जन-मानस को उकसाने के लिए बाध्य किया। इन कवियों ने वंदना के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों का प्रयोग किया। मातृभूमि का मानवीकरण करके उसकी प्रशंसा करना अथवा प्रत्यक्ष रूप से उसकी वंदना इन कवियों ने मनोयोग से की। भारत के भव्य चित्र को रामचरित उपाध्याय इन पंक्तियों में अंकित करते हैं—

तेरे रजः कणों से ईश्वर भी निज देह बनाता है,  
अति कृतज्ञ होकर, वह तेरे अमित मुखों से गाता है।

स्वर्ग-लोक से आकर गंगा तेरे पद को धोती है,  
तेरी पूजा करने ही से वह भी पूजित होती है।<sup>2</sup>

इसी भाव को और विस्तार रामनरेश त्रिपाठी ने 'स्वप्न' में इस प्रकार दिया है—

जिनकी महिमा का है अविरल साक्षी सत्य-रूप हिमगिरिवर,  
उतरा करते थे विमान दल जिसके विस्तृत वक्षस्थल पर।<sup>3</sup>

इसी प्रकार के अनेक वंदना गीत और कविताएँ इस युग में रची जाती रहीं। यहाँ उनका संक्षिप्त उल्लेख अवांछित न होगा। 'मातृभूमि'—रूपनारायण पाण्डेय, 'हमारा देश'—लोचनप्रसाद पाण्डेय, 'मातृभूमि'—गोपालशरण सिंह, 'जन्मभूमि'—कामताप्रसाद गुरु, 'भारत-लक्ष्मी', 'जननी'—सियारामशरण गुप्त आदि आदि।

#### गौरवमयी परम्परा

खड़ी बोली के कवियों ने देश के इन वंदना गीतों में भारतीयता और राष्ट्रीयता के प्रति अपार श्रद्धा और आस्था को अभिव्यक्त किया। जन-मानस को इस भावात्मक संवेग से देश के भविष्य-निर्माण के लिए कर्मठता, आत्म-विश्वास, स्वाभिमान, त्याग और बलिदान की ओर उद्बलित करना था।

१. सरस्वती, दिसम्बर १९२०, पृ० २८१।

२. सरस्वती, जून १९२०, पृ० ३११।

३. स्वप्न, पृ० ७४।



यथार्थ से भली-भाँति परिचित होते हुए भी इन कवियों का आत्म-विश्वास कुण्ठित नहीं हुआ। फलतः ये कवि इस यथार्थ से जूझने तथा भविष्य-निर्माण के लिए समस्त भारतीय जन-मानस को मनोवैज्ञानिक धरातल पर लाने का भरसक प्रयत्न करते रहे। आदर्श की इस उच्च भूमि को स्थापित करने के निमित्त ही 'भारत-भारती' की रचना हुई थी। 'भारत-भारती' को 'साम्प्रदायिक भावना'<sup>१</sup> के विशेषण से अभिहित करके उसके मूल्य को घटाया नहीं जा सकता। 'भारत-भारती' अपने युग की एक क्रान्तिकारी कृति रही है जिस पर भाव-बिह्वल होकर गुप्त जी को राष्ट्रपिता ने राष्ट्रकवि के नाम से पुकारा था। भारत के प्राचीन गौरव का प्रशस्तिगान करते हुए कवि ने उससे वर्तमान के पतित, दुर्बल एवं क्षयग्रस्त भारत की जनता के स्वाभिमान को ललकारा था— जहाँ शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि तथा पुरु जैसे पूर्वजों की परम्परा हो, जहाँ—

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन, उनकी धरा-सी घोरता,  
वह भील उनका और उनकी वीरता, गम्भीरता,  
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता,  
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता।<sup>२</sup>

मानवीय सदाचारों, आदर्शों और चारित्रिक उच्चता की दिशा में विश्व-गुरु रहे भारत की वर्तमान दुर्दशा भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही अधिक स्पष्ट होती है—

द्रौपदी सी रो रही तू विकल और अधीर,  
दुःख-दुःशासन रहा है खींच तेरा चीर।  
पर कहीं श्रीकृष्ण सा है अब यहाँ वर वीर ?  
जो हरे हे मातु ! तेरी हृदय-पीर गम्भीर।<sup>३</sup>

कवि श्रीधर पाठक ने पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सभापति के पद से भाषण देते हुए कहा था—“अपने इतिहास-पुराणों का मन्थन करके जो-जो हमारे जातीय बलवर्द्धक उपयुक्त प्रसंग मिलें उनके आधार पर उत्कृष्ट काव्य प्रस्तुत करने से क्या हमारी वर्तमान स्थिति के सुधार और उन्नति में विपुल साहाय्य मिलने की सम्भावना नहीं है ?” गुप्त जी ने इस वक्तव्य को 'भारत-भारती' में सम्पूर्ण रूप से चरितार्थ किया। भारत को उसके सम्पूर्ण पौराणिक एवं ऐतिहासिक गौरव के साथ उन्होंने जनता के सामने रखा। हमारी न्याय-नीति, शिक्षा-नीति, युद्ध-नीति की परम्परा, धर्म और सत्य पर सब कुछ त्याग

१. 'श्री मैथिलीशरण गुप्त'—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी : नन्ददुलारे बाजपेयी, लोक-भारती, इलाहाबाद, १९९५, पृ० ३५।

२. भारत-भारती, पृ० ६।

३. 'भारत-माता' : गोपालशरण सिंह, सरस्वती, फरवरी १९१६, पृ० ६०।



करने की परम्परा, नारी जागरूकता एवं शिक्षा की उच्चस्तरीय परम्परा— सभी कुछ भारत के इस यशोगान में सम्मिलित हुआ। अन्य कवियों ने भी इस दिशा में प्रचुर मात्रा में सहयोग दिया। हिन्द के गौरव की याद दिलाते हुए कवि 'पूर्ण' ने उर्दू गज़ल शैली में 'हिन्द के कमाल' की याद दिलायी।<sup>१</sup> दूसरी ओर रामनरेश त्रिपाठी भी इस गौरव की परम्परा को ध्यान में रखते हुए उन आर्यों से पूछते हैं, जिन आर्यों की यशोगाथा समस्त संसार गाया करता था तथा जिनका व्यापार समुद्र पार दूर देशों तक से होता था—

पर-पद-दलित, पर मुखोपेक्षी,

पराधीन परतन्त्र, पराजित

होकर कहीं आर्य जीते हैं ?<sup>२</sup>

इस युग के कवि का मन विक्षुब्ध है, उसका जागरूक मस्तिष्क उसे निरन्तर कचोटता रहता है। देश की प्राचीन और वर्तमान अवस्था सामने आते ही वह सहसा पूछ उठता है—

पहले मृगराज समान रहा अब गीदड़ की घज धारत है,

बन पण्डित उन्नति के शिर से मतिमंद गिरा हिय हारत है।<sup>३</sup>

जहाँ राम सेतुबन्ध बना सकते थे और जहाँ कृष्ण पहाड़ उंगली पर उठा सकते थे, वहाँ अब पौरुष और शौर्य का ह्रास हो चुका है।<sup>४</sup>

इन कवियों ने पौराणिक गौरव का विस्तृत वर्णन तुलनात्मक ढंग से किया। वर्तमान की विक्षुब्ध अवस्था को इन्होंने अत्यन्त सरल एवं प्रेषणीय भाषा और भाव में प्रस्तुत किया। वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि इनका यह काव्य जन-मानस को आलोड़ित करने के लिए ही है अतः इसमें दुरुहता अथवा शब्दाडम्बर की ओर जाना व्यर्थ है।

जन-मानस में ऐतिहासिक नायकों का स्थान सदैव अक्षुण्ण रहता है। भारत में भारतीय जातीयता, संस्कृति, धर्म और आदर्श के लिए मर मिटने वाले अनेक ऐतिहासिक नायकों की प्रशस्त परम्परा रही है। इन लोगों के बलिदान, त्याग और शौर्य की कथाएँ भारतीय जन-मानस को राष्ट्रीय भाव-बोध से उद्बलित करने के लिए विशेष सहायक रहीं। आलोच्य-काव्य में प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध ऐतिहासिक आख्यानों पर निरन्तर कविताएँ होती रहीं। लघु कथात्मक कविताओं से लेकर बृहद् प्रबन्ध-काव्यों तक की रचना इन आख्यानों

१. पूर्ण संग्रह; पृ० २३८-३९।

२. स्वप्न, पृ० ७६।

३. शंकर सर्वस्व, पृ० ३१०।

४. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', माधुरी, जुलाई १९२३, पृ० ५९३।



पर हुई। कतिपय उल्लेखनीय रचनाएँ इस प्रकार हैं—‘शिवाजी’, ‘वीरांगना’, ‘चाँद बीबी’—कामताप्रसाद गुरु; ‘महाराणा का महत्त्व’—प्रसाद; ‘रंग में भंग’, ‘विकट भट’, ‘गुरुकुल’, ‘पत्रावली’—मैथिलीशरण गुप्त; ‘मोयें विजय’—सियारामशरण गुप्त; ‘वीर पंचरत्न’—लाला भगवानदीन, ‘वीर हम्मीर’—रामकुमार वर्मा आदि आदि।

इन ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित इस काव्य में भारतीय सांस्कृतिक गौरव एवं प्रशस्त धार्मिक परम्परा का सरस एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्तिकरण हुआ। इस काव्य-प्रवृत्ति की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इससे तथा तत्कालीन बौद्धिकता से प्रेरित होकर परम्परागत पौराणिक आख्यानों में भी आधुनिक भाव-बोध की समाविष्टि हुई। राम और कृष्ण के चरितों को आधुनिक राष्ट्रीय भावना से संपृक्त किया गया। उनकी देश-सेवा तथा उनका राष्ट्र-प्रेम ऐतिहासिक नायकों की प्राणोत्तेजक ओजस्वी गाथाओं के साथ मिलता-जुलता है। देश के लिए किये गये हनुमान के साहसी प्राणोत्तेजक कार्यों की प्रशंसा के लिए राम को शब्द नहीं मिलते हैं।<sup>१</sup> राम वानरों को दुःख और अन्याय तथा देश और राष्ट्र के लिए मर-मिटने की प्रेरणा देते हैं और वानर भी मरहठों की भाँति ही डटकर लड़ते-मरते हैं।<sup>२</sup> देश को ‘जयचन्दों’ के स्वार्थ और पतन के कारण शताब्दियों तक परतन्त्र रहना पड़ा। अपनी दासता के कारणों का विश्लेषण करते हुए इन कवियों ने इन ‘जयचन्दों’ को व्यंग्य-बाणों से छिद्रित किया। बौद्धिकता और देश-प्रेम के आग्रह से इन कवियों ने राम के अनन्य भक्त विभीषण को भी क्षमा नहीं किया। विभीषण को घोर देश-द्रोही के रूप में और रावण को अनन्य देश-भक्त के रूप में देखा गया—

बांधवों का वध कराना आत्म-वध से कम नहीं,  
क्यों विभीषण चित्त में तेरे हुआ कुछ गुम नहीं।

विभीषण के साथ-साथ भगवान राम के इस ‘अन्याय’ की ओर संकेत करते हुए कवि लिखता है—

जाति विद्रोही तुझे जो राम ने जीने दिया,  
यह उन्होंने काम अति अन्याय का जग में किया,  
.....

क्या बताओ के लिए मंदिर गिराना चाहिए?  
लोभ में पड़ शत्रु को क्या सिर झुकाना चाहिए?<sup>३</sup>

१. रामचरित चिन्तामणि, सर्ग १७, छन्द ७२।

२. वही०, सर्ग १६-२०।

३. ‘लंका का जयचन्द’—रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, सितम्बर १९१४, पृ० ४८८।



पौराणिक और ऐतिहासिक नायकों के साथ ही तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं और देश-सेवकों के आदर्शों से प्रभावित होकर कवियों ने उन पर भी काव्य-रचना की। गोखले, तिलक, गान्धी, नेहरू, दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द इत्यादि पर समय-समय पर अनेक कविताएँ रची गयीं। पाठक की 'गोखले गुणाष्टक', कवि 'शंकर' की 'हाय मिस्टर गोखले', लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर 'सनेही' की 'वज्रापात' रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। गोकुलचन्द्र शर्मा ने 'गान्धी-गौरव' में गान्धी जी की देश-सेवाओं और उनके राष्ट्र-प्रेम का सरस समावेश किया। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'विश्ववन्द्य बापू की जय', 'सुभाषचन्द्र', 'अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी' इत्यादि कविताएँ भी इसी सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

### राज-भक्ति : एक भ्रान्ति

उपयुक्त विचारधारा के अतिरिक्त इस काव्य के प्रारम्भिक वर्षों में राज-भक्ति की भ्रान्ति का समावेश भी हुआ। भारतेन्दु-युग के इस प्रभाव से कवि कुछ दिनों तक निश्चय ही मोहित रहे। शताब्दियों से मुसलमानों के शीषण अत्याचारों से ग्रस्त हिन्दू और हिन्दू-धर्म, अंग्रेजों के तथाकथित शान्ति के वातावरण से कृतज्ञ होकर राज-भक्ति की भावना से अभिभूत हुए। यही कारण है कि परम्परागत सनातन विचारधारा के कवि राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', आर्यसमाजी कवि 'शंकर' की अपेक्षा अधिक राजभक्त थे। कवि 'पूर्ण' द्विवेदी-युग के प्रमुख राजभक्त कहे जा सकते हैं। उनके लिए 'हरि-भक्ति' और 'राज-भक्ति' समान ही थीं और इसी धरातल पर वे 'देश-भक्ति' को भी स्वीकार करते रहे। विक्टोरिया के प्रसिद्ध आशवासनों का प्रभाव इस कवि पर अत्यन्त गहरा पड़ा भले ही वे समस्त आशवासन आगे चलकर बेमानी सिद्ध हुए। फलतः वे कहते हैं—

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म,

राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म।

सच्ची सही सुकर्म देश की भक्ति चाहिए,<sup>1</sup>

इनकी देश-भक्ति अंग्रेजी सत्ता के स्वाम्य में पलने वाले समाज-सुधार तक ही सीमित थी। अंग्रेजों की नीतियों का यथावत् समर्थन करना इनका स्वभाव था। देश की उन्नति का समय आया था, 'औरंगज़ेबी' नहीं 'अंग्रेजी राज' था अतः भारतवासियों को वे अपना 'किरदार' सँभालने और प्रगति करने की हिदायत देते हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही उन्होंने इस भाव को परिपुष्ट किया (तथापि आधुनिक विचार-धारा को भी उन्होंने कहीं-कहीं अभिव्यक्त किया है, जिसका उल्लेख यथास्थान किया गया है)। महावीर



प्रसाद द्विवेदी के आरम्भिक ब्रजभाषा-काव्य में भी हमें 'अयोध्या का विलाप' में लॉर्ड कर्जन के लिए 'लाटवीर' के माध्यम से राज-भक्ति का परिचय प्राप्त होता है तथा 'कृतज्ञता प्रकाशन' में उन्होंने ब्रिटिश-शासन के 'यश-सौरभ' से भारत देश के 'सुगन्धयुत' होने की कामना प्रकट की है ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्ष राजनीतिक दृष्टि से अस्पष्ट ही थे । अंग्रेजों की नीति का समर्थन कांग्रेस भी खुले आम कर रही थी । दूसरी ओर भारत के सुधार और स्वराज्य की कल्पना को भी पल्लवित किया जा रहा था । यह भ्रान्ति सच पूछा जाये तो कांग्रेस से बहुत दिनों तक छूट न पायी, यद्यपि इसके स्वरूप में परिवर्तन अवश्य होता रहा । महात्मा गान्धी के राज-नीतिक जीवन के आरम्भिक वर्ष भी अंग्रेज सरकार की सहायता (युद्धों में) और प्रथम महायुद्ध के समय उनके लिए 'जवान' ढूंढने में बीते थे । गान्धी जी ने स्वयं राज-भक्ति की इस भावना को भारत में प्रत्येक अंग्रेज के नाम एक पत्र में स्वीकार भी किया था ।<sup>१</sup> ये भ्रान्तियाँ, अस्पष्टता, निरुद्देश्यता, धूमिल गन्तव्य आदि यदि द्विवेदीयुगीन काव्य के प्रारम्भिक वर्षों में यत्र-तत्र प्रकट हों तो आश्चर्य नहीं है—यद्यपि इसकी मात्रा अत्यल्प ही है । एक ओर अंग्रेजों के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए देश के वीरों का आह्वान और दूसरी ओर स्वराज्य की कल्पना इसी परम्परा में स्पष्ट होती है—

लरिबो जो यहाँ के पुत्र विदेसहि जावैं ।

रन सों मुख मोरि न कुलहि कलंक लगावैं ॥

+

+

+

सुन्दर सुराज को स्वाद निरन्तर चाखें,

नस नस नव-जागृति-जोति सत्य संचारी ।<sup>२</sup>

इन्हीं कतिपय भ्रान्तियों के फलस्वरूप 'कविरत्न' ने 'सम्राट् स्वागत सौरभ', 'ब्रिटिश विजय प्रार्थना', 'विजय वंदना'; पूर्ण ने 'दिल्ली दरबार' तथा श्रीधर पाठक ने 'जाज वंदना' इत्यादि कविताएँ लिखीं । 'भारत भारती' के महागायक कविवर मैथिलीशरण गुप्त भी इसी परम्परा में अस्त हिन्दुओं को अभय प्रदान करते हैं—

अन्याय यवनों का हमें निज दोष से सहना पड़ा,

है किन्तु नारायण अहा ! न्यायी तथा सकरुण बड़ा ।

१. द महात्मा एण्ड द इज्म : ई०एम०एस० नमबूदिरीपाद, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, पृ० १३ ।

२. हृदय तरंग, पृ० ४-५ ।



देते हुए भी कर्म-फल हम पर हुई उसकी दया,  
भेजा प्रसिद्ध उदार जिसने ब्रिटिश राज्य यहाँ नया ।<sup>१</sup>

इसके साथ ही उनके मन की बौद्धिकता उन्हें कचोटती है कि क्या परतंत्रता किसी भी रूप में 'नारायण' का प्रसाद हो सकती है? लेकिन अपरिपक्व विचार-धारा हृदय की इस भावुकता पर तत्काल हावी हो जाती है फलतः—  
शासन किसी पर-जाति का चाहे विवेक-विशिष्ट हो,  
सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वाश में वह इष्ट हो ।

यह सत्य है, तो भी ब्रिटिश-शासन हमें सम्मान्य है,  
वह सु-व्यवस्थित है तथा आशा-प्रपूर्ण, वरदान्य है ।<sup>२</sup>

इस प्रकार इस विचार-धारा के मनोवैज्ञानिक कारण मुसलमानों से त्रस्त हिन्दुओं की अंग्रेजी राज में प्रतिक्रिया तथा राजनीतिक क्षेत्र में उद्देश्य की धूमिलता हैं । वैसे भी कोई ध्यवस्था नयी होने के कारण प्रारम्भ में आकर्षित करती है और कालान्तर में उसके दोष साफ दिखने लगते हैं । इसके साथ ही अंग्रेजों के नवीन आविष्कारों से मोहित होकर उनका अधानुसरण भी एक कारण था ।

### स्वतन्त्रता, स्वाधीनता एवं देश-भक्ति

उपर्युक्त भ्रान्ति अधिक दिनों तक टिक न पायी । ज्यों-ज्यों अंग्रेजों के आर्थिक शोषण और राजनीतिक अत्याचार बढ़ते गये त्यों-त्यों युग के इन प्रबुद्ध कवियों ने स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को पहचाना (यद्यपि इनकी यह स्वाधीनता 'स्वराज्य' की कल्पना के अधिक निकट थी) । इस भावना को खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा दोनों काव्य-धाराओं में देखा जा सकता है । उदाहरण के लिए कवि श्रीधर पाठक की 'स्वराज्य-स्वागत' कविता का उल्लेख किया जा सकता है । स्वातन्त्र्य के लिए छटपटाते भारत की इस कामना को भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में अभिव्यक्त किया गया । कहीं प्रकृति के माध्यम से, तो कहीं आत्म-प्रबोधन और कहीं पौराणिक कथाओं एवं प्रसंगों को माध्यम बनाया गया । स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के इस महायज्ञ में प्रत्येक भारतवासी अपने आपको 'हीम' करने को तत्पर है, उससे किसी भी बलिदान की आशा रखी जा सकती है—

जेल केलि वन, काल कोठरी क्रीड़ा गृह के सम होवे ।

पुष्प शयन से भूमि शयन भी, भगवन् हमें न कम होवे ॥

कनक कंकड़ों से भी बढ़कर, हथकड़ियाँ नित सुखद रहें ।

देश वेश जो तर्जें नहीं हम, चाहे भारी क्लेश सहें ॥<sup>३</sup>

१. भारत भारती, पृ० ८०-८१ ।

२. वही०, पृ० ८०-८१ ।

३. स्वतन्त्रता की शंकार, पृ० ५३ ।



ऐसे भावों से भरे देशवासी कुशासन की 'उग्रता' को सहते नहीं अपितु दल पर दल जेल जाते हैं और अंग्रेज सरकार उन्हें 'दौंच' 'दौंव' कर जेल में ठूसती है किन्तु वे पीछे हटने को तैयार नहीं हैं। वे बलिदान के लिए तत्पर हैं भले ही अंग्रेजों की 'पापी पशु-बल की प्रचण्डता रिसाति है'।<sup>1</sup>

आत्म-विश्वास की भावना से उद्बलित होकर कवि अब यह अनुभव कर रहे हैं कि भारत के पतन के दिन गुजर गये। जातीय भावना से भरे देशवासी 'वंग-भंग', 'आर्थिक शोषण', क्रूर शासन, भुखमरी, दुग्ध, सामाजिक पतन के मूल में विदेशी सत्ता को स्पष्ट रूप से कार्यरत् देख रहे थे—

पतन पूर्ण हो चुका सँभलने के दिन आये,  
आशा ऊपर उठा रही है गोद उठाये।  
फिर सपूत उत्पन्न किये भारत-माता ने,  
फिर देना आरम्भ किया हमको दाता ने।  
फिर वंशी गोपाल की बजी जगाने के लिए,  
फिर धाये मन-कुल-तिलक हमें उठाने के लिए ॥<sup>2</sup>

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता के भावानुवाद में सियारामशरण गुप्त भी देशवासियों को उद्बोधन देते हुए उन्हें कर्मरत होने तथा 'सुरों' से भी अधिक महान बनने के लिए प्रेरित करते हैं।<sup>3</sup> इसी प्रकार जहाँ एक ओर 'भारतीय', 'सरस्वती' (१९१६ ई०, पृ० ३५३) में अमरीकी कवि 'लॉबेल' की 'स्वदेश' कविता में भव्य एवं स्वतन्त्र देश की कल्पना करते हैं, वहाँ दूसरी ओर मन्मन द्विवेदी गजपुरी स्वदेश-प्रेम से विह्वल, अन्तिम साँसों गिनते नेपोलियन के मन की करुणा की अभिव्यक्ति 'बोनापार्ट के अन्तिम दिन' में करके जनता को प्रेरणा देते हैं। रूस तथा अन्य यूरोपीय देशों के स्वातन्त्र्य, स्वाभिमान, स्वच्छन्दता की हलचल एवं प्रगति से इस युग के कवि प्रभावित होकर भारतवासियों को अपने स्वाभिमान की दुहाई देते हैं एवं उन्हें अपने स्वत्व को प्राप्त करने के लिए ललकारते हैं।<sup>4</sup> विश्वव्यापी ऐसे वातावरण में क्या भारत जाग नहीं सकता? इसी भावना से उद्बलित होकर कवि रामनरेश त्रिपाठी तुलनात्मक आधार पर देशवासियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि स्वतन्त्रता के लिए अफ्रीका के काले ह्वशी भी आकुल हैं, 'ठिगना जापान' आकाश तक छलाँग मार रहा है और भारत अभी जाग नहीं रहा है। कवि को भारतीय स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के अभाव में संसार का रंगमंच सूना लगता है।<sup>5</sup>

१. शंकर सर्वस्व (समस्यापूर्ति — 'सही जाति है'), पृ० ३३६।

२. 'पतन और उत्थान': 'त्रिशूल', सरस्वती, अगस्त १९१५, पृ० ६४।

३. 'कर्त्तव्य', सरस्वती, जून १९१४, पृ० ३१२।

४-५. मानसी, पृ० ४३।



इसीलिए भारतीय जनता को उद्बोधित करते हुए एक और कवि ने लिखा कि समय आ गया है कि एकता, सहानुभूति, सच्चाई और धैर्य को धारण करते हुए भारतवासी स्वातन्त्र्य की आर प्रवृत्त हों।<sup>१</sup> देशवासियों को स्वतन्त्रता के लिए जागरूक बनाने के लिए प्रायः सभी कवियों ने इस प्रकार के उद्बोधन गीत रचे। देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की अभूतपूर्व प्रेरणा इन कविताओं में है। कवि 'शंकर' की 'बलिदान गीत', 'त्रिशूल' की 'जातीयता (राष्ट्रीयता)' आदि कविताएँ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। इतिहास के प्रसिद्ध आख्यानों को आधार बनाकर गुप्त जी ने भी यही सन्देश दिया है। 'वैतालिक', 'पत्रावली', 'गुरुकुल' इत्यादि रचनाओं का प्रणयन इसी उद्देश्य से हुआ था।

इस प्रकार के जागरण के साथ ही जनता में आत्म-विश्वास की एक लहर दौड़ पड़ी। भारतीय जन-मानस अपने ह्रास को पहचानने लगा, उसे उस पर क्षोभ हुआ तथा उससे मुक्त होने का निश्चय उसमें दिनोंदिन बढ़ता गया। रूपनारायण पाण्डेय, रामचरित उपाध्याय, 'सनेही', 'शंकर' आदि सभी कवि इस नवीन लहर को अपने छंदों में सजाते गये। इसी सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त ने 'अर्जुन और उवंशी' कविता में तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रकारान्तर से अर्जुन से कहलवाया—

व्यथित बांधव हैं सब हा ! मम,  
स्वपद-वंचित दीन दुखी सम।  
अहह ! जो सुख भोग करें हम,  
धिक हमें, हम हैं अधमाधम ॥<sup>२</sup>

ऐसे समय में देश और देशवासी अथक् परिश्रम, त्याग और बलिदान माँगते हैं। इसीलिए सुख और भोग में लिप्त जीवन पर धिक्कार है। राष्ट्रीय आन्दोलन और उन्नयन के प्रबल प्रवाह के समय कवि देश की वेदी पर बलिदान होने वालों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहना देते हैं। स्वातन्त्र्य की अभिलाषा रखने वाले देशसेवियों के लिए जेल-यात्रा एक नवीन अनुभूति थी और तिस पर जेल में होने वाले अत्याचारों से तो धीरों का धैर्य छूट जाये तो आश्चर्य नहीं। तथापि कृतसंकल्प देशवासियों की ओर से कवि 'शंकर' कहते हैं—

घड़ाघड़ मार खाते हैं हितु तो भी हमारे हैं,  
पड़ बन्दी गृहों में भी प्रतापी यों पुकारे हैं।

१. सरस्वती, अक्टूबर १९०५, पृ० ३७६।

२. सरस्वती, अप्रैल १९०८, पृ० १५६।



न हम ध्रुव धर्म छोड़ेंगे न संकर को विसारेंगे,  
भलाई को न भूलेंगे तुझे भारत सुधारेंगे ।<sup>१</sup>

गान्धी जी के राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण से आत्मिक बल, आत्मानुशासन, निष्काम कर्मठता, सत्याग्रह एवं सहनशीलता के नवीन विचार राष्ट्रीय आन्दोलन को प्राप्त हुए। उनके आकर्षक व्यक्तित्व से समूचा देश अभिभूत हो उठा। आलोच्य-काव्य में उनके इन नवीन विचारों की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में हुई है—

चमकती विजलियों से आस्मां घिर जायेगा शायद ।

खुदा जाने कि कैसे दोनों के ग्रह चार बैठे हैं ॥

मगर इस मधुभी पर कौन न शाबाश कहेगा ।

वे ले तलवार बैठे हैं, ये बे-हथियार बैठे हैं ॥

उधर बक्तर ठके कंधे इधर सीना भी खुला है ।

मगर फिर भी वे रोता मुँह लिये बेजार बैठे हैं ॥<sup>२</sup>

गान्धीजी के इस नवीन दर्शन से प्रेरित अहिंसक वीरों का यदि यह भव्य चित्र उपस्थित किया गया तो दूसरी ओर कवि इस पूरे दर्शन की व्याख्या करता है—

सहनशीलता कवच हमारा शान्ति अहिंसा व्रत होगा ।

ऐसे धर्म-युद्ध में जाना किसे नहीं अभिमत होगा ॥

आत्मिक-बल का पाठ जगत् भर को अब हम सिखला देंगे ।

दिव्य तेज से असुर शक्ति को अति नीचा दिखला देंगे ॥<sup>३</sup>

कवि 'सनेही' जेल में पड़कर या फाँसी के तख्ते पर झूलने वाले या विष का प्याला पीने वाले देश के हित मरने वाले ऐसे ही व्रतियों को उद्बोधित करते हुए उन्हें 'सुकरात', 'ईसा' और 'प्रह्लाद' की संज्ञा देते हैं।<sup>४</sup> इसी प्रकार इस युग में स्वाधीनता के लिए प्राण उत्सर्ग करने वालों के प्रति गान्धीवाद से अनुप्राणित अनेक अन्य कविताओं का सृजन हुआ। कवि 'शंकर' ने अपनी दोहावली के अनेक छन्दों में गान्धी जी की प्रशंसा की तथा उनको गुरु मानकर जनता का आह्वान किया। रामनरेश त्रिपाठी 'पथिक' खण्डकाव्य में इसी प्रभाव को ग्रहण करते हुए अपने नायक के सहनशील-त्याग, कृत संकल्प-असहयोग एवं सत्याग्रह का चित्रण करते हैं। अन्य कवियों में पूर्ण, पाठक, रामचरित उपाध्याय, 'हरिऔध', 'कविरत्न', 'रत्नाकर' आदि सभी ने गान्धीजी

१. शंकर सर्वस्व, पृ० १०० ।

२. स्वतन्त्रता की झंकार, पृ० २४ ।

३. वही०, पृ० ११ ।

४. राष्ट्रीय मन्त्र, पृ० ६ ।



के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। दुलारेलाल भागव अपनी 'दोहावली' में देशवासियों को इस प्रकार समझाते हैं—

गान्धी गुरु तैं ज्ञान लै, चरखा, अन्हद-जोर

भारत सबद-तरंग पर बहत मुक्ति की ओर।<sup>1</sup>

तिलक और एनिवसेण्ट के 'होमरूल लीग' और होमरूल आन्दोलन भी अन्य आन्दोलनों के साथ इस काव्य में अभिव्यक्त हुए। रामचरित उपाध्याय की 'नहीं डरेंगे', 'निबंल' तथा 'भारतीय प्रतिज्ञा' कविताएँ इन्हीं आन्दोलनों से सम्बन्धित हैं।

रूस की क्रान्ति और सन् १९२२ के राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलता से इस युग में कुछ कवि हिंसात्मक रूप से आन्दोलन को चलाने की भी कल्पना करने लगे। द्विवेदी-युग में गान्धीवादी नीतियों का पूर्ण एवं सुस्पष्ट विकास नहीं हो पाया था। इस युग के कवि अपनी बौद्धिकता और जागरूकता की शान पर देश की तत्कालीन अवस्था को परखते थे। अत्याचार, भ्रूषण दमन और अन्याय के सामने घुटने टेककर असहयोग और सत्याग्रह करना उनके लिए कदाचित् अव्यावहारिक था। अनीति और अन्याय के सशस्त्र विरोध से ये कवि अधिक परिचित थे। इन्होंने भारतीय पौराणिक-ऐतिहासिक परम्परा से इस विचार-धारा को प्राप्त किया था। इनके सामने प्रसिद्ध भारतीय वीरों की ओजस्वी कथाएँ थीं। अतः उसी परम्परा में इन्होंने अपने कर्तव्य और संकल्प में दृढ़ विश्वास रखते हुए तथा विदेशी स्वातन्त्र्य संग्रामों से भी प्रेरणा लेकर इस प्रकार के विचारों को अभिव्यक्त किया। 'भीरु' जन की भर्त्सना करते हुए रामचरित उपाध्याय क्रान्ति का आह्वान इस प्रकार करते हैं—

हृदय ! भीरु का जीवन कैसा ?

मान मिलेगा क्या दुर्जन से ?

जाकर पूछ इसे गुरुजन से ।

ओछों से जाशा मत कर तू

मृगतूष्णा में भटक न मर तू ।

साँप मानता है क्या पोस ?

प्यास बुझाती है क्या ओस ॥<sup>2</sup>

ध्यान देने की बात यह है कि कवि ने यह कविता सन् १९२२ के राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्व लिखी थी। अतः इसमें भारतीय संस्कृति से पूछने की बात उपर्युक्त तथ्य की ओर इंगित करती है। इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी सन्

१. दुलारे दोहावली, पृ० २६।

२. 'मान का मूल्य', सरस्वती, अप्रेल १९१६, पृ० २०१-०७।



१९१७ में प्रकाशित 'मिलन' में स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति पर जोर देते हैं किन्तु गान्धीजी के प्रभाव में आकर सन् १९२० के 'पथिक' में वे अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन की विचार-धारा को स्वीकार करते हैं। परन्तु सन् १९२१-२२ के असफल आन्दोलन के पश्चात् देश में व्याप्त भ्रान्तियों से प्रमित होकर वे 'स्वप्न' में पुनः सशस्त्र क्रान्ति पर जोर देते हैं। 'मानसी' में तो वे 'रण' का आह्वान ही कर बैठते हैं—

जाग रण ! जाग निज राग भर त्याग में,

विश्व के जागरण का तू ही चिह्न है।

सृष्टि परिणाम है घोर संघर्ष का,

शान्ति तो मृत्यु का एक उपनाम है ॥<sup>१</sup>

इस कविता में कवि स्पष्ट रूप से मानव-इतिहास और प्रकृति का मनो-वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक विश्लेषण करके सिद्ध करता है कि उन्नति एवं स्वतन्त्रता के लिए अहिंसा, सत्याग्रह और सहन-शक्ति से काम नहीं चल सकता। यह 'भीरु' मन का काम है अथवा उनका जो समूचे समाज का उन्नयन नहीं चाहते हैं। इस भाव को और अधिक विस्तार से कवि 'सनेही' की 'साम्यवाद' कविता में देखा जा सकता है। उनकी 'कर्मवीर' कविता में भी इसी भाव की पुष्टि हुई है। कवि 'शंकर' ने भी 'वायस-विजय' में भारतीय संस्कृति की विभिन्न नीतियों के आधार पर इस ओर निर्देश किया किन्तु यह उपर्युक्त कवियों की-सी प्रौढ़ विचार-धारा की कविता नहीं है।

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत इस प्रकार कवियों ने एक ओर भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का प्रशस्ति गान किया तथा दूसरी ओर आधुनिक पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित भारतीयता को राष्ट्रीय व्यक्तित्व एवं स्वातन्त्र्य की भावना से संबद्ध करने का सराहनीय प्रयास भी किया। ब्रजभाषा-काव्य में रचनाएँ यद्यपि खड़ी बोली की अपेक्षा कम हुईं तथापि वैचारिक स्तर पर उसमें भी नवीन भाव-बोध की कमी नहीं है। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों और राष्ट्रीय विचारधारा से यह काव्य निश्चय ही दो कदम आगे जा पड़ता है। सामाजिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य में आगे यह बात और स्पष्ट हो जायेगी।

### सामाजिक परिप्रेक्ष्य

आलोच्य-युग के आधुनिक युग-बोध का सशक्त अभिव्यक्तिकरण सामाजिक कविता-धारा के माध्यम से सर्वाधिक, स्पष्ट एवं मुखर रूप में हुआ। स्वातन्त्र्य की भावना और इहलौकिकता की भावना का समन्वित स्वरूप उन्नत समाज



की भित्ति पर ही स्थापित हो सकता है। विश्व-बन्धुत्व की भावना का प्रसार रूढ़ समाज और परतंत्र देश में सम्भव नहीं हो सकता। सांस्कृतिक गौरव और आधुनिक-युग की वैज्ञानिक प्रगति के संश्लेषण से ही आधुनिक भारतीय समाज की कल्पना की जा सकती है। इस दिशा में सर्वप्रथम सुदृढ़ कदम द्विवेदी-युग की ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली काव्य-धाराओं की सामाजिक चेतना में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतेन्दु युग की सामाजिक कविता, समाज की दीन-हीन अवस्था पर क्षुब्ध थी किन्तु द्विवेदीयुगीन काव्य कुशल चिकित्सक की भाँति सामाजिक कुरूपता की चीर-फाड़ करता है और उस पर आदर्श का फाहा लगाकर स्वस्थ समाज की ओर संकेत करता है। इस युग की समस्त काव्य-चेतना समाज और समाज के माध्यम से राष्ट्र की ओर ही उन्मुख रही। एक ओर इन्होंने जन-मानस को तत्कालीन विषमता, पतन और गलनशीलता से परिचित कराकर उद्वेलित किया तो दूसरी ओर कहीं अभिघा से तो कहीं लक्षणा-व्यंजना से उसके सुधार के सुझाव प्रस्तुत किये।

### (१) ब्रजभाषा काव्य में सामाजिक भाव-बोध

इस युग के जागरूक कवियों ने कुंठित समाज की कुरूपता को चित्रित करने के लिए अनेक प्रकार की व्यंग्योक्तियों और तिलमिला देने वाले शीर्षकों के अन्तर्गत कविताएँ लिखकर सामाजिक पतन पर कुठाराघात किया। कवि नाथूराम शंकर शर्मा इस दिशा में अग्रणी कहे जा सकते हैं। ब्रजभाषा में उन्होंने बच्चों के लिए 'कलियुग-राज', 'राम-रूपैया', 'कंजूस-रोगी', 'रेलवे-देवी', 'अफीमी की आफत', 'खिलाड़ी खटमल', 'अनोखे उल्लू' और 'खूचेरू लाल' जैसी व्यंग्यात्मक कविताएँ रचीं। इनमें उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के आलस्य एवं आडम्बर तथा उनकी रुढ़िग्रस्तता एवं तथाकथित आधुनिकता को उधेड़ कर रख दिया। इसी प्रकार की उनकी कई समस्यापूर्तियाँ भी हैं जिनमें समाजविरोधी तत्त्वों, वर्गों एवं विदेशियों की कूटनीति पर व्यंग्य किया गया है। 'शंकर' जैसे व्यंग्य और हास्य के कवि हिन्दी भाषा में इस युग से पहले कभी न हुए थे। महावीरप्रसाद द्विवेदी भी इस दिशा में आरम्भ से ही प्रयत्नशील थे। उनकी 'गदर्भ-काव्य' कविता 'हिन्दी बंगवासी' के २६ अगस्त १८५८ ई० के अंक में प्रकाशित हुई थी। उनकी अभिघा लक्षणा-शैली में सामाजिक पतन की मार्मिक अनुभूति उतर आयी है। हास्य के पुट से यह व्यंग्य कितना तीखा हो उठा है, दर्शनीय है—

चपत हमें चम्पा सम लागें, घूँसा फूल हजारा है,  
लात खात मुख बात न बोलै, अटल मोन विस्तारा है।



धम् धम् धम् धम् दस पाँच करै जब गुरुई गदा प्रहारा है,  
चलै पैग भरि तब कहूँ, ऐसो सहनशील हम धारा है ॥

+

+

+

हरी घास खुरखुरी लगी अति भूसा लगी करारा है,  
दाना भूलि पेट यदि पहुँचै, काटै अस जस आरा है।  
लच्छेदार चीथड़े, कड़ा जिन्हें बुहारि निकारा है,  
सोई, सुनौ सुजान शिरोमणि ! मोहन भोग हमारा है ॥<sup>१</sup>

समाज के विभिन्न पक्षों के पतन और ह्रास पर 'कविरत्न' ने 'करुण क्रन्दन' लिखा। सामाजिक विषमता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। दुर्जनों की संख्या की बाढ़ से 'सुजनों' के दुःख का निपटारा कैसे हो ? वे पूछते हैं—

मौजें उड़ें खलनि की, करि मित्र भेद।

मारे फिरें सुजन, नित्य उठाइ खेद ॥

उत्साह वर्द्धि तिनके चित न सम्हारौं।

तौ लौं बताउ जिय में कस धीर धारौं ॥<sup>२</sup>

परम्परागत वासना, ऐश्वर्य, दम्भ एवं नीच प्रवृत्ति का उन्मूलन करना इन कवियों का कर्तव्य था। धनिक वर्ग का शोषण तथा विदेशियों का दमन एक सुषुप्त समाज कैसे अनुभव कर सकता है ? कामुकता, धन और मृग-मरीचिका सम ऐश्वर्य की आशा से भरा समाज किस राष्ट्र का निर्माण कर सकता है ? किस देश का गौरव हो सकता है ? इस प्रकार की विचार-धारा पर तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों की नैतिकता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

अतः ऐसे पतित और रूढ़ समाज का उत्थान परम कर्तव्य बन जाता है। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण से सामाजिक वैषम्य की बढ़ोतरी होती है। देशी परम्पराओं, मर्यादाओं और रीतियों का उल्लंघन होता है। इसीलिए देशी कपड़ों और वस्त्रों को पहनने का अत्यधिक आग्रह इस काव्य में किया जाता है। इससे आत्म-विश्वास एवं आत्माभिमान के साथ-साथ आर्थिक रूप से किंचित मात्रा में स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है। इसी कारण से इस काव्य में पश्चिमी सभ्यता का मजाक उड़ाया गया। इस सभ्यता से आक्रान्त 'नवीन वर्ग' सामाजिक पतन के गर्भ में जाते हुए भी 'भ्रम की भाँग खवाई' के 'लाज की गगरि फोरी देत' हैं।<sup>३</sup> इसीलिए 'पेटलून', 'कोट' और 'कलकठ' से सुस-

१. द्विवेदी काव्य-माला, पृ० २१७ एवं २१६।

२. हृदय तरंग, पृ० १२०।

३. वही०, पृ० १३६।



जिजित 'गिटपिट' करने वालों की भत्सना करने के साथ ही कवि समस्त भारतीय जनता को स्वदेशी वस्त्र की ओर प्रेरित करता है—

करहु मन मातृभूमि अनुराग ।

करनों काज करन सो सीखी कोरी गिटपिट त्याग ।

जो परदेश-वस्तु छिन-भंगुर तिन पर डारहु आग ॥

निज कर रची वस्तु सेवहु नित तजि मत्सर मद राग ।

चलहि अधिक दिन जो करि देखहु कमती लागहि लाग ॥

घोरि एकता रंग परस्पर खेलहु द्विल मिल फाग ॥

सख डोल ढप लैकै गावहु निज उन्नति को राग ॥<sup>१</sup>

वंग-भंग के बाद सन् १९०६ में रचित 'स्वदेश वान्धव' की इस कविता से युग के कवियों की जागरूकता का प्रमाण स्पष्ट होता है। गांधी जी के स्वदेशी आन्दोलन का यह पूर्वाभास ही नहीं अपितु नवीन विचार-धारा का यह वह परम्परा-सूत्र है, जिसको आगे गांधीजी ने सशक्त अभिव्यक्ति दी। स्पष्ट है कि द्विवेदीयुगीन ब्रजभाषा काव्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य के इस सन्दर्भ में तत्कालीन राजनीतिज्ञों से कुछ पग आगे ही था।

(२) खड़ी बोली काव्य में सामाजिक आव-बोध

'भारत भारती' में गुप्त जी ने देश के प्राचीन समाज और उसकी व्यवस्था का भव्य चित्र उपस्थित करने के पश्चात् उसके पतन के कारणों को भी प्रस्तुत किया था। सामाजिक पतन का कारण हमारा लोभ, मद, मोह और अकर्मण्यता रही है। आलस्य और अनिश्चयात्मक प्रवृत्ति ने भव्य भारत का विनाश किया। जिस भारत की स्तुति स्वयं देव करते आये हैं और जिस भारत की भूमि पर वे आने को मचल जाते थे, उस भारत में महाभारत हुआ और एक प्रकार से भारत का पतन उसी दिन से प्रारम्भ हुआ। इस प्राचीन घटना के सन्दर्भ में कवि ने आधुनिक लोभ और मद से चूर समाज को चेतावनी दी।<sup>२</sup> मिथ्याभिमान, स्वार्थ एवं ईर्ष्या आदि विघटनात्मक तत्त्वों से भरे समाज में आलस्य के सिवा और हो ही क्या सकता है? कवि 'खंकर' ने कदाचित् इसीलिए 'आलसी निरूपण' किया। उनके—'आस्तिक आलसी', 'विशुद्ध आलसी', 'धर्मध्वजा आलसी', 'कुसीद आलसी', 'उद्दण्ड आलसी',

१. हृदय तरंग, पृ० ५५।

२. भारत भारती, पृ० ६६।



‘वाग्बीर आलसी’, ‘औघड़ आलसी’ तथा ‘अक्खड़ आलसी’ सामाजिक यथार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों के मूल रूप हैं जो घटपड़ों में रचित हैं ?<sup>१</sup>

भारतीय समाज आदर्श से पतन, धर्म से अधर्म, सत्य से असत्य, भद्रता से बभ्रता, श्रद्धा-भक्ति से आडम्बर की प्रक्रिया में ही अपने अस्तित्व को जीवित रखता आ रहा है। हमारे चिन्तन की प्रणाली, हमारे कार्य-व्यापार और हमारे व्यवहार के मानदण्ड सभी कुछ कुण्ठित हो चुके हैं। कभी-कभी कवि का मन ऐसे पतन और जान-बूझकर भी और अधिक ह्रास की ओर गतिशील समाज के प्रति आस्था नहीं रख पाता—

हमारी रगों में भरी है बुराई, खुटाई सभी बात में है समाई।

हमें भूल सी अब गयी है भलाई, हमें देखकर है कलपती सचाई।

हमीं हाथ हैं बेढबों का बँटाते, हमीं बेतरह हैं अड़गे लगाते।<sup>२</sup>

इस खुटाई और ‘बुराई’ से भरे समाज में कहां ‘शर्मा’ वेद पढ़ें, ‘वर्मा’ लड़ना जाने, ‘गुप्त’ धन गाढ़ें या अन्य सामाजिक उत्थान की बात करें, यहाँ तो सभी मानसिक एवं शारीरिक रूप से दास बन चुके हैं। उड़ परम्पराओं से ग्रस्त इस समाज पर ‘भारत-माता’ विलाप करती हैं—

दुग्ध पान कर पले हुए थे अब क्यों पीने लगे खराब ?

पहले तो तुम बड़े सौम्य थे अब क्यों होने लगे खराब ?

+

+

+

हिन्दू हो, पर हिन्दूपन का कुछ भी तुम्हें न रहता ध्यान,

धन्य ! बनाते हो भारत को मानो काला इंगलिस्तान।<sup>३</sup>

इस अनास्था को प्रकट करने के बाद भी अधिकांश काव्य में कवियों की अपार एवं अडिग आस्था ही अभिव्यक्त होती रही। इस युग के काव्य की यह विशेषता है कि इसमें कुंठित कवियों को स्थान न मिला। सामाजिक ह्रास या पतन से विरत होकर कवि आत्मोन्मुखी अथवा पलायनवादी नहीं हुए। वे सर्वथा समाजोन्मुखी रहे। हिन्दी कविता का यह प्रथम युग है जो इस प्रकार के नवीन आदर्श पर अडिग रहा। गांधी जी के आस्थावान दर्शन ने इन्हें अवश्य बल प्रदान किया, किन्तु जागरूकता, आत्मचिन्तन, आत्मविश्लेषण तथा निज दायित्व की व्यावहारिक पकड़ इन कवियों के कर्म एवं इनकी

१. शंकर सर्वस्व, पृ० ३६९-७१।

२. सरस्वती, मार्च १९२०, पृ० १६२।

३. ‘वृद्धा का विलाप’ : रामचरित उपाध्याय, सरस्वती, मार्च १९१४, पृ० १५८-५९।



साधना की धुरी रही। इनके सामने विघटित समाज के करुण दृश्य तो थे पर इनका आत्म-विश्वास इन्हें निरन्तर जागे बढ़ाता रहा —

हमको नहीं है ज्ञान भी अब हाय ! निज उद्देश का,  
लेते सभी सह, है नहीं कुछ ध्यान भी निज वलेश का ।  
दिन गिन रहे हैं मौत के, उद्योग उद्यम छोड़ के,  
बैठे हुए हैं मोह से आत्मीयता हम जोड़ के ॥

+                      +                      +

सब भाँति यद्यपि लोक में अबनति हमारी हो रही,  
पर यह नहीं, उद्योग से हम हो न सकते हों वही ।  
पाकर सुसिचन नीर का, सूखे हुए भी तरु कभी,  
हैं प्राप्त कर लेते पुनः निज पूर्व की शोभा सभी ॥<sup>१</sup>

सामान्यतः सामाजिक कविताएँ तो सभी कवियों ने इस युग में रचीं परन्तु नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' ने जिस व्यंग्य की तीव्र और तेज नोंक से समाज के कोढ़ को कुरेदा, वह प्रशंसनीय है। आर्य-समाजी विचार-धारा के प्रबल समर्थक होने के कारण उनके नवीन आधुनिक बौद्धिकता का प्रसाद भी प्राप्त था जिसके आधार पर वे समय-समय पर समाज के कुत्सित अंगों की भर्त्सना करते रहते थे। 'हमारा ह्रास', 'हमारा अधः पतन', 'भारत माता का निरीक्षण', 'तागड़दिन्ना नागरवेल' तथा अन्य आर्य-समाजी विचार-धारा की कविताएँ जैसे—'भारतोदय' आदि 'शंकर' जी की अविस्मरणीय कविताएँ हैं।

सामाजिक ह्रास और भारतीयता के पतन का एक और कारण पश्चिमी सभ्यता का सम्पर्क भी है। इस सभ्यता और इस भाषा ने हमें मानसिक एवं शारीरिक रूप से दास बनाया है। इससे आक्रान्त लोग एक तो स्वयं भारतीयता और देश के हित को भुलाते हैं साथ ही अन्य देशवासियों को पथभ्रष्ट कराने में सहायक भी होते हैं। इस युग के कवियों के मन में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान अथवा पश्चिम से कोई द्वेष अथवा उनके विरुद्ध किसी प्रकार की दुर्भावना न थी किन्तु पश्चिम के अन्धानुकरण के वे विरोधी थे। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर कहा जा सकता है कि यह विरोध सर्वथा उचित भी था। यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि ये कवि संकुचित विचार-धारा के नहीं थे, अपितु वे सच्चे और पहले राष्ट्रवादी थे। अतः उन्होंने इस सभ्यता और 'सभ्य समाज' का विरोध खूब जमकर किया। सन् १९०५ में गिरधर शर्मा

१. 'हमारा ह्रास' : सियारामशरण गुप्त, सरस्वती, अक्टूबर १९१३, पृ० ५५५।



ने 'कलंकी को ऐड़स' में पश्चिमी सभ्यता पर रूपक बाँधकर जिस प्रबुद्धता के साथ द्विवेदीयुगीन काव्य की जागरूकता का प्रतिनिधित्व किया है, वह निश्चय ही सराहनीय है। चन्द्रमा (कलंकी) की छाड़ में कवि लिखता है—

रे दोषाकार ! पश्चिम बुद्धि ।

कैसे होगी तेरी बुद्धि ?

तब उजास में जो सो जाये,

बहुधा उसे रोग हो जाये ।

धधवा पकड़ हाथ से मस्तक

रोवे वह दो चार रोज तक ॥

सँभल जरा, यह है अब आया

कृष्ण पक्ष मेरा मन आया ।

अब तू दिन दिन हो कर क्षीण

तम में हो जावँगा लीन ॥<sup>१</sup>

'कृष्णपक्ष' की लाक्षणिकता से व्यंजित आत्म-विश्वास से युक्त इन कवियों ने इस सभ्यता पर चारों ओर से प्रहार करना आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में 'आर्यपंच का आल्हा', 'पंचपुकार'—'शंकर'; 'पंचपुकार का उपसंहार'—मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि कविताएँ उल्लेखनीय हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने 'हैट के गुण' कविता में प्रकारान्तर से इस सभ्यता पर यथार्थ मिश्रित व्यंग्य किया है जो वस्तुतः दर्शनीय है—

बीट से बचाती मारपीट से बचाती है,

यह अपढ़ देहातियों में भय उपजाती है ।

सिर पर हैट रख चाहे जो अनर्थ करो,

हैट यह ईश्वर की दृष्टि से बचाती है ॥<sup>२</sup>

जब यह 'हैट' ईश्वर की नज़र से बचाने वाली है तो मानव या देश की क्या परवाह? स्वार्थ और आत्मलिप्सा में रत ये हैटधारी अंग्रेजों के प्रताप से अभिभूत तथा उनसे प्रसाद रूप में नौकरी या उच्च पद पाने की अदम्य कामना में 'खुशामदी टट्टू' बने फिरते हैं। मान-अभिमान, आत्म-गौरव इत्यादि सब कुछ इस 'उच्च पद' हेतु त्यागकर वे विदेशियों के लिए 'प्रभु से ऊँचा

१. सरस्वती, दिसम्बर १९०५, पृ० ४६० ।

२. मानसी, पृ० २५ ।



अधिक ताड़ भी कभी न होगा, बली आपसे अधिक साँड भी कभी न होगी !  
'वेद-मंत्रों' का उच्चारण करते फिरते हैं। कवियों ने इस पर विक्षोभ प्रकट किया और इस 'नोकरशाही' की भर्त्सना की—

अहह, देव, यह है कैसा विपरीत जो  
मानव तजकर मान, आत्म-गौरव तथा  
ज्ञान-रंक-सा तुच्छ उच्च पद-अंक के

आश्रय को है अस्थिर, व्याकुल विश्व में<sup>१</sup>  
इसके साथ की तत्कालीन तथाकथित 'देशवासियों' के प्रति भी इन्होंने जनता को जागरूक बनाये रखा। ऐसे 'देशसेवी' प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी इसी वेश में मिलते हैं—

अगुआ बनूँ, जेल में पड़ के, निकलूँ पिण्ड छड़ाय,  
बैठ-बैठ कर नर-यानों पे पट पट पूजा पाय-  
हुमक हूँ-हूँ हुंकारूँगा !  
किसी से कभी न हारूँगा ।<sup>२</sup>

गाँधी जी के अछूतों-द्वार को भी इन्होंने वाणी दी। कवि 'शंकर' ने 'पंच प्रपंच' में प्रचलित 'बरादरी-साम्राज्य' के पाखंडियों के घृणित कार्य-व्यापार को उधेड़ा और उनकी अछूतों के प्रति अनुदारता पर कठोर व्यंग्य किये। रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'अछूत की आह' चतुष्पदी लिखकर अपना कर्त्तव्य निभाया। उनकी इस कविता में यद्यपि इतिवृत्तात्मकता ही अधिक है तथापि अछूतों के प्रति कवि-हृदय का स्वाभाविक अनुराग स्पष्ट हो ही जाता है।<sup>३</sup>

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इन कवियों ने समाज के सभी तत्त्वों का विश्लेषण किया। देश और जाति के हित के लिए अपने देश की वेश-भूषा पर इन कवियों को गर्व था। 'हैट' धारी सभ्यों की तो इन्होंने भर्त्सना की ही साथ ही स्वदेशी वस्त्रों के भावात्मक एवं आर्थिक पक्ष पर भी विचार किया गया। हमारे लिए ये वस्त्र 'हैट' एवं 'पेटलून' से कहीं अधिक पवित्र एवं पावन हैं। स्वदेशी वस्त्र या वस्तु राष्ट्र के उत्थान और आत्माभिमान के लिए आवश्यक हैं। कवि 'शंकर' ने 'राखी बाँध लीजिए' समस्या पूर्ति में इसी भाव को स्पष्ट किया। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने इस दिशा में युग के दृष्टि-कोण को अग्र पक्तियों में स्पष्ट किया—

१. 'उच्चपद' : लोचनप्रसाद पाण्डेय, सरस्वती, फरवरी १९१३, पृ० ११३।

२. शंकर सर्वस्व, पृ० १६८।

३. सरस्वती, अक्टूबर १९१६, पृ० २३२।



खारा अपना जल पियो मधुर पराया त्याग,  
सीठें को मीठा कर 'पूर्ण' देश अनुराग ।

+ + +  
हैं दुःखित अति दीन वस्त्र के बुनने वाले,  
धीरे-धीरे हुनर समय के हुआ हवाले ।  
भरा देश में हाय निकम्मा कपड़ा सारा,  
तुमने ही कोरियों, जुलाहों को बम मारा ।<sup>१</sup>

### नारी-जागरण एवं नारी-स्वातन्त्र्य

सामाजिक भाव-बोध के इस नये परिप्रेक्ष्य में भारतीय नारी का परम्परागत रुढ़ वातावरण से उद्धार हुआ । कहा जा सकता है कि यह कार्य आलोच्य-युग के आधुनिक युग-बोध की सर्वाधिक सशक्त एवं समृद्ध देन है । नारी को सर्वोच्च सम्मान यदि भारत में मिला है तो रुढ़िग्रस्त समाज द्वारा उसे उपेक्षा की गहरी खाइयों में भी ढकेल दिया गया । आलोच्य-काल की स्वातन्त्र्य भावना ने नारी की रीतिकालीन वासना-पुत्री से सहयोगिनी और सहधर्मिणी का सम्मानित पद प्राप्त करवाया । युगों से पिसती आयी नारी अब सामाजिक और राष्ट्रीय उत्थान का आवश्यक अंग एमक्षी जाने लगी । चूहे-चक्की में धुटती नारी अब समाज-सेविका का रूप धारण करने लगी और पुरुषों का मुँह ताकने वाली नारी अब पुरुषों का पथ-प्रदर्शन करने लगी । द्विवेदीयुगीन नारी विषयक दृष्टिकोण पर टिप्पणी करते हुए कतिपय आलोचकों ने कहा है कि द्विवेदी-युग ने रोती बिलखती नारी को अनाथालय प्रदान किया ।<sup>२</sup> 'प्रिय-प्रवास', 'पथिक', 'मिलन', 'साकेत', 'पत्रावली', 'प्रेम-पथिक', 'शिशिर पथिक', 'वीरसतसई', 'वीरपंचरत्न' आदि रचनाओं की नारियाँ यदि अनाथालय की नारियाँ हैं तो आधुनिक स्वतन्त्र नारी का स्वरूप क्या है ? यह स्वीकार करना पड़ता है कि आलोच्य-युग की नारी-आँखों देखी, स्वस्थ, बौद्धिक, उत्तरदायित्वपूर्ण, आत्माभिमान पूर्ण, स्वतन्त्र एवं स्वावलम्बी नारी है—छायावादी कवियों की वायवी कल्पना लोक की नारी नहीं है । प्रस्तुत युग में नारी-स्वातन्त्र्य को सामाजिक और राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के समानान्तर ही स्वीकार किया गया । यही कारण है कि प्रारम्भिक विधवा-उद्धार भावना आगे चलकर उन्मुक्त, भाव-प्रवण एवं आदर्श प्रणय में विकसित हो जाती है । संक्षेप में नारी विषयक विचार-धारा को इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया ।<sup>३</sup>

१. पूर्ण संग्रह, पृ० २१५-१६ ।

२. छायावाद : डॉ० नामवर सिंह, पृ० ४२ ।

३. दे०, अध्याय चार, पाँच और सात भी ।



सामाजिक कुप्रथाओं से संतप्त नारी को सहज मानवीय घरातल पर लाने के लिए इन कुप्रथाओं का डटकर विरोध इस काव्य में हुआ है। यथा—महा-वीरप्रसाद द्विवेदी की 'कान्यकुब्ज अबला विलाप', 'बाल विधवा विलाप', श्रीधर पाठक की 'महिला परिषद् के गीत', 'आयें सुन्दरी', 'निबल अबला', 'सती समाज'; 'सनेही' की 'दहेज की कुप्रथा' तथा 'शंकर' की 'विधवा विलाप' आदि रचनाओं में नारी के आदर्श रूप एवं परम्परा का भव्य चित्रण किया गया साथ ही उसकी तत्कालीन दुरावस्था पर क्षोभ प्रकट किया गया। युगों से निरन्तर होने वाले अन्यायों के कारण भारतीय नारी पर जो बीती, उसके कारणों को सामाजिक रूढ़िग्रस्तता में ढूँढकर उन्होंने समाज का पर्दा-फाश किया। इस परम्परा को जीवित रखने वाले धनिक और धर्म के पण्डों को व्यंग्योक्तियों से कवियों ने कुरेदा और उनमें तिलमिलाहुट पैदा करने के साथ ही नारी-जगत में भी एक क्रान्ति उत्पन्न की। नारी-शिक्षा पर जोर देकर इन्होंने राष्ट्रीयता के आन्दोलन में नारी के योगदान के महत्त्व को विस्तार-पूर्वक आँका। कवि 'शंकर' इसी सन्दर्भ में भगवान से प्रार्थना करते हैं—

विदुषी उपजै, समता न तजै, व्रतधार भजै, सुकृती वर को,  
सधवा सुधरै, विधवा उभरै, सकलंक करै न किसी घर को,  
दुहिता न बिकै, कुटनी न टिकै, कुलबोर धिकै, तरसै दर को ।<sup>१</sup>

कविवर गुप्त ने प्राचीन नारियों के गरिमामय व्यक्तित्व और गौरव को 'भारत भारती' में अत्यन्त मार्मिक शब्दों में व्यक्त करके आधुनिक नारियों को उद्बोधित किया। ऐतिहासिक नारी-रत्नों के आदर्शों की महानता को भी गुप्त जी ने काव्यबद्ध किया। उनकी 'पत्रावली' के दो पत्रों—'अहिल्या-बाई का पत्र (राघोबा के नाम)', 'राजकुमार रूपवती का पत्र (महाराणा राजसिंह के नाम)' में देश और राष्ट्र, जातीयता और जातीय गौरव तथा आदर्श एवं पवित्रता पर आत्मोत्सर्ग करने वाली भारतीय नारी का सफल एवं मार्मिक चित्रण प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है। राजकुमारी रूपवती महाराणा राजसिंह की लिखती हैं—

मेरा क्या मत है मनीषि ! मुझसे क्या पूछते हो भला ?  
पूछो आत्म-सुकीर्ति से कि जिसकी है व्योम में भी कला !  
क्षत्राणी भय से कि लोभ-वश हो जो धर्म को छोड़ती ।  
तो सम्बन्ध अवश्य ही जनकजा लंकेश से जोड़ती ॥<sup>२</sup>

१. शंकर सर्वस्व, पृ० ३७ ।

२. सरस्वती, अप्रैल १९१८, पृ० १८८ ।



इससे पूर्व आचार्य द्विवेदी ने सन् १९०० की 'सरस्वती' में 'द्रोपदी वचना-वली' में भारतीय नारी का आदर्श के प्रति जागरूक रूप प्रस्तुत किया था। तत्कालीन नारी-समाज के लिए प्राचीन पौराणिक एवं ऐतिहासिक नारियाँ प्रेरणा एवं आदर्श की स्रोत बनीं। सुभद्राकुमारी चौहान के लिए राधा का आत्माभिमान प्रेरणा बना।<sup>१</sup> अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने आर्य-बाला' का गुणगान किया, तो गिरधर शर्मा ने 'भामिनिओ', 'कुलकामिनिओ' को 'उद्बोधन' दिया। इसी सन्दर्भ में नारी को आत्म-विश्वास की भावना में परिपुष्ट कराने के लिए 'वीरपंचरत्न' और 'वीरसतसई' आदि रचनाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। तत्कालीन उथल-पुथल के युग में नारी के विभिन्न रूपों की कल्पना की गयी। नारी समाज की प्रेरणा और संचालिका शक्ति मानी गयी। वह गिरे और पतित समाज का उद्धार कर सकती है। वह पुरुषों को आदर्श की ओर अग्रसर कर सकती है। यही कारण है कि रामनरेश त्रिपाठी की 'नारी' की जागरूकता पुरुषों से कहीं आगे है, वह पथभ्रष्ट एवं भ्रान्त पुरुषों को सत्पथ पर ले जाने की अद्वितीय क्षमता रखती है—

कैसा ही हो उच्च भावना पर उद्योग बिना हे प्रियवर।

निरी कल्पना से तट परसे पारावार नहीं सकते तर।<sup>२</sup>  
इसीलिए परिवार, सुख और आत्मतोष में रत पुरुषों को वह राह सुझाती है—

सेवा है महिमा मनुष्य की, न कि अति उच्च विचार द्रव्य-बल,

मूल हेतु रवि के गौरव का, है प्रकाश ही न कि उच्चस्थल।<sup>३</sup>

ऐसी प्रबुद्ध नारियों की कृतसंकल्पता समाज पर आयी हुई किसी भी महान् विपत्ति का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहती है। सामाजिक उन्नयन और राष्ट्रीय भावोन्मेष की समृद्धि में भारतीय 'बालाएँ' पीछे हट नहीं सकतीं—

गोलों की बौछार पड़े, हो तोप मशीनों की भरमार।

करें क्रूर नौकर दिल भर कर, हम पर निशि दिन अत्याचार।

बाधाओं के दुर्गम गिरि बन खड़े हों बाँध कतार।

चुनी गयी हो पथ में चाहे तीखे कांटों की दीवार।

किन्तु न भारतीय बालाएँ पीछे पैर हटावेंगी।

निश्चय अपने साहस से अरि-दल को धूल मिलावेंगी।<sup>४</sup>

१. 'मानिनी राधा' : सुभद्राकुमारी चौहान, माधुरी, अक्टूबर १९२२, पृ० ३५६।

२. स्वप्न, पृ० ३३।

३. वही, पृ० ३६।

४. राष्ट्रीयता की झंकार : स० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पृ० २२।



इस प्रकार राष्ट्रीयता और समाज हेतु बलिदान के लिए तत्पर एवं प्रतिज्ञा-रत नारी का स्वरूप द्विवेदीयुगीन काव्य में धीरे-धीरे विकसित हुआ। नारी को जिस सम्मान, समानता और स्वतन्त्र्य की भावना से इस युग ने देखा, वह निश्चय ही आधुनिक युग-बोध का स्पष्ट प्रभाव है।

### आर्थिक परिस्थितियाँ तथा किसान एवं मजदूर

उपयुक्त युग-बोध के सन्दर्भ में किसान, मजदूर तथा सामान्य दरिद्र जनता के महत्त्व एवं उनकी आर्थिक कृशता पर भी इस काव्य में विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस वर्ग-विशेष के प्रति अभिव्यक्त प्रबुद्ध दृष्टि-कोण का मूल्यांकन सही सन्दर्भ में तभी हो सकता है, जब तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों, नेताओं और कांग्रेस की नीतियों को समझा जाये। पहले भी इस दिशा में पर्याप्त रूप से कहा जा चुका है। यहाँ केवल एक सन्दर्भ ही यथेष्ट होगा। उस समय कांग्रेस एकमात्र राजनीतिक दल था जो जनता का पथ-प्रदर्शन कर रहा था। उसकी पहुँच सन् १९२०-२२ तक सीमित ही थी। सन् १९२२ के प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलता का मूल कारण यही सीमित एवं अस्पष्ट दृष्टिकोण था।<sup>१</sup> इसके विपरीत विदेशी शासन का आर्थिक शोषण दिनोदिन बढ़ता जा रहा था। इसका सर्वाधिक प्रभाव गरीब जनता पर पड़ रहा था। अंग्रेज अत्यन्त निरंकुशता से भारत के किसानों, मजदूरों का दमन कर रहे थे। तत्कालीन नेताओं का ध्यान इस समस्या के इस मूल की ओर नहीं जा रहा था। सन् १९०० तक काव्य में भी सामान्यतः इस वर्ग की उपेक्षा होती रही। द्विवेदी-युग के कवियों का ध्यान सर्वप्रथम इस ओर आकृष्ट हुआ। भारतेन्दु-युग से आगे बढ़कर इस युग ने एक स्पष्ट उद्देश्य—शोषण से मुक्ति, स्वातन्त्र्य तथा स्वराज्य की प्राप्ति आदि को अपना चरम आदर्श बनाया।

### (१) ब्रजभाषा-काव्य की कृषक-मजदूर विषयक प्रबुद्धता

ब्रजभाषा-काव्य में इस नवीन युग-बोध, जागरूकता और उत्तरदायित्व के निभाने की कितनी शक्ति थी, यह 'कविरत्न' की ग्रामीण जीवन, आर्थिक शोषण तथा कृषक-वर्ग की उपेक्षा से प्रेरित कविताओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'कविरत्न' निश्चय ही आलोच्य ब्रजभाषा-काव्य के अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। 'कविरत्न' आधुनिक शिक्षा को ग्रहण करने के पश्चात् 'आधुनिक युग-बोध' से परिचित होते हुए भी सरल ग्रामीण जीवन बिता रहे थे। अतः उन्हें ग्रामीण जीवन की रम्य विहंगमियों का प्रत्यक्ष अनुभूत परिचय था। यद्यपि उनकी मृत्यु सन् १९१८ में ही हुई थी तथापि उन्होंने



जिस प्रबुद्धता, जागरूकता एवं आधुनिक युग-बोध का परिचय दिया, वह निश्चय ही उन्हें तत्कालीन समस्त राजनीतिज्ञों से आगे रख देता है। वे यह स्पष्ट रूप से कहते हैं—

एलेलबी निपुण प्लीडर विज्ञ बी० ए० ।

एमे प्रसिद्ध धनवन्त सामोद हीए ॥

कांग्रेस जात प्रतिवर्ष छटा प्रकासी ।

पै ना कछू सुनत निर्धन ग्रामवासी ।

का वे नहीं बसत भारतवर्ष माहि ?

किम्बा कछू सुनन को तिण सत्व नाहि ?

छाये जहाँ अस अपार कठोर नेम !

कैसे बड़े कहहु तत्र स्वदेश-प्रेम ?<sup>१</sup>

एकमात्र राजनीतिक दल कांग्रेस की इस तत्कालीन अस्पष्टता, किकतंव्यविमूढ़ता एवं उसके सीमित आयामों को देश के वरिष्ठ नेताओं ने वर्षों पश्चात् स्वीकार किया, किन्तु एक दरिद्र ग्रामवासी कवि ने उसी समय इस स्थिति का विश्लेषण, अत्यन्त सहज, सरल एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया। इसीलिए शोषण और उत्पीड़न से त्रस्त भारतमाता की बंदना अत्यन्त कष्ट शब्दों में करके, कवि यथार्थ को अभिव्यक्ति देता है।<sup>२</sup> ऐसी दीनहीन दशा में भारत के करोड़ों व्यक्तियों का जीवनयापन कैसे होता है ? कर्ज और रहन की चक्की में पिसी जा रही जनता कब तक धैर्य धारण कर सकती है। कवि 'शंकर' 'धीर धरे ना' समस्यापूति में इस कष्ट तथ्य की ओर संकेत करते हैं।<sup>३</sup>

शासन की दुरनीति के साथ ही प्रकृति के प्रकोप से ये 'नीम मुर्दा जान' कितने दिनों तक जीवित रह सकते हैं ? आये दिन की मुखमरी, महामारी, रोग, प्लेग इत्यादि के प्रकोप से इन लोगों के आदर्श कहाँ तक टिक सकते हैं ? इसी सन्दर्भ में नाथूराम शंकर शर्मा तथा महावीरप्रसाद द्विवेदी ने महामारी और दुष्प्रसन्न के कष्ट चित्रण प्रस्तुत किये हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'बुद्ध-चरित' में इस नवीन वैचारिक क्रान्ति को सफल रूप से प्रस्तुत किया है। बुद्ध का कष्टासिक्त मन किसानों, गरीबों तथा दारिद्र्यग्रस्त जनता की दुर्दशा देख द्रवित हो उठता है। अम के अनुपात में उनको प्राप्त अल्प सुखों पर वे विक्षुब्ध हो उठते हैं। तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस अनूदित रचना के यह अंश सटीक बन पड़े हैं।

१. हृदय तरंग, पृ० १२२-२३ ।

२. वही०, पृ० ५३ ।

३. शंकर सर्वस्व, पृ० ३५१ ।



(२) खड़ी बोली काव्य में कृषक-मजदूर विषयक प्रबुद्धता

प्रस्तुत युग के भाव-बोध की प्रमुख वाहिका होने के कारण खड़ी बोली काव्य में कृषक मजदूरों और देश की आर्थिक परिस्थितियों का विशद् विवेचन किया गया। कवि 'पूर्ण' ने भारतीय आर्थिक व्यवस्था और उसके स्रोतों का विश्लेषण किया। भारत कृषि-प्रधान देश है, अतः उसकी समस्त आर्थिक उन्नति कृषि और कृषक पर ही निर्भर है। उन्होंने कपास के फूलों को देश के लिए 'कोहनूर' तक कह दिया, किन्तु वे यह स्पष्ट देख रहे थे कि इन आर्थिक स्रोतों को अंग्रेज सोख रहे हैं। देशी जनता सोखी जा रही है तथा उसकी उन्नति और समृद्धि के लिए कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। उन्होंने लोक-जीवन के अपने ज्ञान पर आधारित निम्न पंक्तियों में इस विडम्बना का चित्रण किया है—

भैंसी की जब मर गयी पड़िया, चतुर अहीर,  
कम्मल की पड़िया दिखा लगा काढ़ने क्षीर।

लगा काढ़ने क्षीर, भैंस भेसड़ बेचारी,

यही समझती रही यही पुत्री है प्यारी।

नहीं स्वदेशबन्धु, बात यह ऐसी बँसी,

ही मानुष तुम सही किन्तु ही सोई भैंसी।<sup>१</sup>

देशी जनता को 'भैंसी' समझ 'क्षीर काढ़ने' वाले लोगों को 'चर्खे के संगीत' से उत्तर नहीं दिया जा सकता। कवि 'पूर्ण' गान्धी जी के इस संगीत का विरोध करते हुए औद्योगीकरण का स्पष्ट समर्थन करते हैं। कवि 'पूर्ण' की भविष्य-दृष्टा वाणी स्पष्ट कहती है—

है अति भारी भूल धगर कोरी कलकल है,

दूरदशिता नहीं इसी में सारा बल है।

कल से सकल विदेश सबल, निष्कल निर्बल है।

भारतखंड ! कल बिना तुझे, हा कैसे कल है।<sup>२</sup>

कवि ने आने वाले 'मशीनी-युग' की आवश्यकता एवं अनिवार्यता को स्पष्ट करके अपनी दूरदशिता का परिचय दिया है। आजकल तो 'चर्खा' केवल गान्धी जयन्ती इत्यादि पर ही चलाया जाता है वरन् औद्योगीकरण की ही 'कलकल' सुनाई पड़ती है।

इस काव्य में शोषण और उत्पीड़न से त्रस्त दुःखित जनता की करुणा और विवशता को प्रभूत मात्रा में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। इस प्रकार के चित्रणों से खड़ी बोली के कवियों ने निश्चय ही युग का प्रतिनिधित्व किया।

१. पूर्ण संग्रह, पृ० २१३।

२. वही०, पृ० २१६।



कवि रामनरेश त्रिपाठी ने यदि दरिद्रता और उदासीनता के 'आमोद-प्रमोद' में पल्लवित हो रहे दीन-जनों का कर्षण चित्रण 'पथिक' में किया तो कवि 'शंकर' ने 'रंक-रोदन'; 'सनेही' ने 'दीन की आह'; मुकुटधर पाण्डेय ने 'हृदय' और 'निराला' ने 'अधिवास' रचनाओं को इस परम्परा में प्रस्तुत किया। अन्तिम दो कविताओं में कवि अपनी समस्त चेतना को दीन-दुःखियों के दुःख में विलीन करना चाहते हैं। देश पर समय-समय पर आ पड़ने वाले प्राकृतिक प्रकोपों से त्रस्त जनता की कर्षण कथा को भी कवियों ने मार्मिक ढंग से चित्रित किया। उदाहरण के लिए 'संवत् १९५३-५४'—'शंकर'; 'वर्तमान दुर्भिक्ष'—केशवप्रसाद मिश्र (सरस्वती, जनवरी १९१४); 'वर्तमान दुर्भिक्ष—'कृषक बन्धु' (सरस्वती, मार्च १९१४) तथा 'भारत भारती'—(वर्तमान खण्ड)—मैथिलीशरण गुप्त आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त कवि 'हरिऔध' ने भी अपने चौपदों में इन दीन जनों की आहों का कर्षण क्रन्दन छन्दोबद्ध किया है।

इस खड़ी बोली कविता में 'कृषक' और 'राम' से अधिक महत्त्व प्राप्त किया। 'कृषक वधुएँ' 'राधा' और 'सीता' से अधिक पूजित रहीं। कृषक जीवन की उदारता, सहनशीलता तथा उनके आदर्श, त्याग एवं संयम समस्त समाज के लिए अनुकरणीय बन गये। उनकी उपेक्षा करने वालों पर इन कवियों ने व्यंग्य वाणों की वर्षा की। कृषक के प्रति इनकी समस्त भावुकता, कल्पना, बौद्धिकता एवं रचना-शक्ति एक साथ प्रवाहित हुई। इसीलिए 'साकेत' की उमिला और राम, 'प्रियप्रवास' की राधा तथा 'राम-चरित चिन्तामणि' के राम एवं भरत सभी कृषक-शिक्षा की आवश्यकता, कृषक-उत्थान की अनिवार्यता तथा उनके महत्त्व को समझते हैं। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त ने गिरमिट प्रथा से पीड़ित किसान को 'किसान' काव्य में वाणी दी तो कृषक की अनाथावस्था, कर्षणा, बेवसी, परवशता और घुटन को सियारामशरण जी ने 'अनाथ' में प्रस्तुत किया। युग की कृषक विषयक विचार-धारा को स्पष्ट करने के लिए कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं—

कामताप्रसाद गुरु का अंग्रेजी कवि 'ग्रे' की 'एलिजी' का अनुवाद 'ग्रामीण विलाप' सन् १९०८ की 'सरस्वती' में छपा था। यह कविता भावी दिशाओं की ओर संकेत कही जा सकती है। इस कविता में कवि उदार, व्यापक एवं यथार्थ दृष्टि से उपेक्षित कृषक वर्ग की ओर प्रवृत्त हुआ है—

इनके हँसिये देख फसल मस्तक नाती थी,  
पड़ी कड़ी भी भूमि जोत से घबराती थी।  
क्या ही होकर मगन चलाते थे ये निज हल,  
दब जाता था कठिन चोट के नीचे जंगल।



किन्तु शोषित और अशिक्षित होने के कारण—

पर विद्या ने हमें भेद निज नहीं बताया,  
जीवन भर अज्ञान-तिमिर में वास कराया ।  
प्रतिभा इनकी रही रंकता-दोष दबाये,  
इनके मन के भाव सुखद सुचि विकास न पाये ।<sup>१</sup>

कवि मैथिलीशरण गुप्त भी किसानों के जीवन की दुर्दशा का चित्रण 'भारतीय कृषक' में इसी भाँति करते हैं—

यहाँ कहाँ विज्ञान, रसायन भी सोती है,  
हुआ हमारे लिए एक दाना भी सोती है ।  
+ + +  
बनता है दिन-रात हमारा रुधिर पसीना,  
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छोना ।  
हा हा खाना और सर्वदा आँसू पीना,  
नहीं चाहिए नाथ ! हमें अब ऐसा जीना ।<sup>२</sup>

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' सामाजिक वैषम्य की इस विडम्बना से द्रवित होकर प्रश्न करते हैं—

श्रम किसका है मगर मोज हैं कौन उड़ाते ।  
है खाने को कौन, कौन उपजा कर लाते ॥  
किसका बहुता रुधिर, पेट हैं कौन बढ़ाते ।  
किसकी सेवा और कौन हैं मेवा खाते ॥<sup>३</sup>

इस 'दारुण वैषम्य' पर कवि का 'साम्यवाद' की ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक ही है ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि युग-बोध के सन्दर्भ में ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली के कवियों ने अप्रतिम जागरूकता का परिचय दिया । सामाजिक भाव-बोध की धारा में सामाजिक उत्थान, रुढ़िग्रस्तता का त्याग, नारी स्वातन्त्र्य एवं सम्मान की भावना तथा सामान्य जनता-जनार्दन के प्रति आधुनिक बौद्धिकतावाद से प्रभावित यह दृष्टि निश्चय ही प्रशंसनीय है । हिन्दी काव्य-धारा के आधुनिक वैचारिक स्तरों के मूल में इन सभी भावनाओं और विचारों का स्पष्ट अवलोकन किया जा सकता है ।

१. सरस्वती, मार्च १९०८ ।

२. सरस्वती, मई १९१६ ।

३. राष्ट्रीय मंत्र, पृ० १६ ।



### धार्मिक परिप्रेक्ष्य

आधुनिक समय में बुद्धिवाद और तत्कालीन दरिद्रता, गरीबी, भुखमरी और विदेशी आततायी नीतियों के सन्दर्भ में न तो भक्तिकालीन अलौकिक साकार-निराकार से ही कवि-मन सन्तुष्ट होता था और न ही रीतिकालीन समाज-विरोधी 'अलौकिक' वासना और 'केलि-विलास' से ही कवि आकर्षित हुआ। भारतेन्दु-युग की आधुनिकता में यद्यपि देश-भक्ति की नयी भावना का सूत्रपात हुआ था तथापि उसमें धार्मिक भावना का स्वरूप मध्यकालीन ही था। कदाचित् यही कारण है कि उस युग में आधुनिकता का सम्पूर्ण भाव-बोध प्रसारित न हो सका। द्विवेदी-युग ने परम्परागत धार्मिक भावना को नवीन क्रान्तिपूर्ण स्वर प्रदान किया। इस काव्य में यदि 'पूर्ण' ने शंकर के अद्वैत की व्याख्या की तो 'हरिऔध' ने अवतारवाद का नवीन एवं बौद्धिक स्वरूप भी प्रस्तुत किया।

#### (१) ब्रजभाषा काव्य में धार्मिक भाव-बोध

इन नवीन क्रान्ति के स्वरो को ब्रजभाषा के उन उपालम्भ गीतों में देखा जा सकता है जिनमें कवि तत्कालीन भारत की दीन-हीन अवस्था पर ईश्वर और ईश्वरता पर शंकालु हो उठता है। इसी शंका से आगे चलकर ईश्वरता का बौद्धिक स्वरूप मानव-सेवा और मानवीयता प्रस्तुत किया गया। 'हरिऔध' की 'श्रीकृष्ण शतक', 'प्रेमाम्बुप्रवाह', 'प्रेमाम्बुवारिधि' आदि रचनाओं में भक्ति और धर्म का परम्परागत स्वरूप प्राप्त होते हुए भी कहीं-कहीं नवीनता का भी आग्रह है। 'रसकलस' में 'प्रियप्रवास' के कृष्ण की परिकल्पना का स्पष्ट आभास मिलता है। इसी प्रकार 'कविरत्न' परम्परागत भक्ति-भावना को स्वीकार करते हुए भी अपने उपालम्भों में नवीन भाव-बोध की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। केवल 'रत्नाकर' ही एक ऐसे कवि कहे जा सकते हैं जिन्होंने परम्परा का त्याग नहीं किया। आधुनिकता के भाव-बोध से प्रभावित आलोच्य ब्रजभाषा-काव्य में नवीनता का आग्रह निम्न उद्धरणों से स्पष्ट है।

कवि दुःखी है कि ईश्वर का वह रूप, जो गीता में वर्णित है—दुःख और दारिद्र्य से भक्त-जनों का उद्धार करने वाले ईश्वर कदाचित् अपनी परम्परा, कर्तव्य एवं मर्यादा ही भूल गये हैं। वे दयामय अपनी दया को बिसर गये हैं। कवि सहसा कह उठता है कि हे प्रभु तुम 'बेसाख' हो गये हो, तुम्हारा तो 'पानी' ही उतर गया है। कहाँ गीता के प्रवचनकर्ता कृष्ण और कहाँ अब, जब भारत रसातल में विलीन होने को आया तो वे 'शेष शय्या' पर 'लक्ष्मी' के साथ आनन्दविभोर हो सो रहे हैं। देश की तत्कालीन परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए 'कविरत्न' भगवान को उपालम्भ देते हुए कहते हैं—



सबै धान बाईस पसेरी नित तोलन सों काम ।

बलिहारी नहि विदित तुम्हें कछु ऊँच नीच कौ नाम ॥

+

+

+

जगत-पिता कहवाय भये अब ऐसे तुम बेपीर ।

दिन दिन दुगुन बढ़ावत जो नित द्रोह-द्रोपदी-चीर ॥

जुग कर जोरि प्रार्थना ये ही निज माया धरि राखौ ।

‘सत्य’ दीन दुखियन को हित अब सद्य हृदय अभिलाषौ ॥<sup>१</sup>

वास्तव में भगवान से जगत् की दुर्दशा का वर्णन कहाँ तक किया जाये और पूरी एवं सच्ची बात भी तो कही नहीं जा सकती—

साँची तुमहि सुनावत जो ह्रम, चौकत सकल समाज ।

अपनी जाँघ उधारे उधरति बस अपनी ही लाज ॥<sup>२</sup>

कवि ने इन पंक्तियों में परम्परागत धार्मिक विश्वास और नवीन बौद्धिकता, दोनों को सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है। ‘कविरत्न’ निश्चय ही आलोच्य ब्रजभाषा-काव्य के सर्वाधिक प्रतिभासम्पन्न प्रबुद्ध कवि थे।

इस प्रकार इस युग के ब्रजभाषा-काव्य की परम्परागत भक्ति के स्वरूप में आधुनिकता के प्रभाव से एक नवीन व्यंग्य और चोट की कसमसाहट एवं तिलमिलाहट का आभास प्राप्त होता है। पहले भक्त व्यक्तिगत दुःख आदि के लिए भगवान से प्रार्थना करते थे अथवा उनसे झगड़ते थे। अब कवि समाज और देश के दुःख को ही व्यक्तिगत दुःख समझता है। उसका मोक्ष और उसकी गति इहलोक के ही सुख—सामाजिक एवं राष्ट्रीय सुख, में निहित होता जा रहा है। आधुनिक भावबोध की यह महत्त्वपूर्ण देन है, जिसके आधार पर द्विवेदी-युग की धार्मिक भाव-धारा में क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन हुए। यही कारण है कि ‘पूर्ण’ जैसे पूर्ण भक्त एवं सनातनधर्मी व्यक्ति भी इस नवीन बौद्धिकता से अछूते न रह सके। उनके भक्ति-काव्य में भी यत्र-तत्र यह भावना—भगवान का समाज एवं राष्ट्रगत रूप, उभर आयी है। दयानन्द सरस्वती और आर्य-समाजी बौद्धिकता का मजाक तक उड़ाने के पश्चात् भी वे इस प्रबल धारा-प्रवाह को रोक नहीं सके।<sup>३</sup>

## (२) खड़ी बोली काव्य में धार्मिक भाव-बोध

इस विकास की सर्वप्रथम सशक्त वाणी देने वाले खड़ी बोली के प्रबुद्ध

१. हृदय तरंग, पृ० ३६।

२. वही०, पृ० ३८।

३. देखिए पूर्ण संग्रह, पृ० १८८।



कवि 'हरिऔध' जी हैं। भगवान के प्रति परम्परागत धारणा को प्रस्तुत करने के बाद उन्होंने 'रसकलस' में राधा और कृष्ण की 'मोहक मूर्ति' को भिन्न सौन्दर्य से अभिविक्त किया। गीता को ही आधार मानकर उन्होंने 'प्रिय-प्रवास' की भूमिका में स्पष्ट शब्दों में लिखा— ".... कृष्ण को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं। जो सज्जन इस विचार के हों वे मेरे प्रेमान्बुप्रश्रवण, प्रेमान्बुप्रवाह और प्रेमान्बुवारिध नामक ग्रन्थों को देखें, उनके लिए यह ग्रन्थ नहीं रचा गया है।"<sup>१</sup> यह एक क्रान्तिकारी विचारधारा थी किन्तु इसका समर्थन बहुमत से हुआ। युग के अधिकांश कवि इसी विचारधारा को ञाने बढ़ाते रहे। 'मिलन' में रामनरेश त्रिपाठी धर्म और ईश्वर की युग-धर्म-सम्मत नवीन व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

ईश्वर-भक्ति, लोक-सेवा है एक अर्थ दो नाम।

वन में वस कैसे हो सकता है मनजोचित काम ॥

जगती में सुख शान्ति बढ़ाना देकर निज श्रम शक्ति

मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरि-भक्ति।<sup>२</sup>

इस प्रकार नवीन सन्दर्भ में समाज एवं राष्ट्रविरोधी धार्मिक तत्त्वों, धार्मिक रुढ़िग्रस्तता एवं धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों का इन कवियों ने ढटकर विरोध किया। कवि 'शंकर' की 'अंधेरखाता', 'सलोने का आल्हा', 'शंकर क्रन्दन', 'दीवाली नहीं दिवाला है' इत्यादि कविताएँ इस दिशा में कटु व्यंग्य एवं आक्रोश से भरी हुई हैं। सामाजिक विगलन को उधेड़ कर रखना तो 'शंकर' अपना कर्तव्य ही मानते थे। इसके साथ ही राष्ट्र एवं देश के सुधार हेतु भगवान से प्रार्थनाएँ भी इस युग में काफी हुईं। इन कविताओं में भक्ति की अनन्यता और ईश्वर पर अटल विश्वास तथा देश की 'पुरातनता' एवं तत्कालीन दुर्दशा के चित्रण के साथ ही उसके सुधार एवं उद्धार की भावना भी मिलती है।<sup>३</sup> धर्म की आड़ में चलने वाले साधुओं की अकर्मण्यता और उनके पाखण्ड पर भी कवियों ने चोट की। वैराग्य और विरक्ति की महानतम भावना को किस प्रकार इन तथाकथित वैरागियों, साधुओं एवं सन्तों ने अपने लोभ, मोह, काम और धनलिप्सा का साधन बनाया, इसका रहस्योद्घाटन तो इस युग के प्रायः प्रत्येक कवि एवं लेखक ने किया है। उदाहरण के लिए एक उद्धरण प्रस्तुत है—

हसे ही कहते हैं वैराग्य ?

१. प्रियप्रवास (भूमिका), पृ० ३०।

२. मिलन, पृ० ५।

३. राष्ट्रीय बीणा (भाग २), पृ० १६।



क्रोध कमण्डलु, मोह-माल, कर लिया द्रोह का दण्ड,  
लोभ लंगोट बाँध फैलाते हो प्रचण्ड पाखण्ड ।  
तन में भस्म रमाई, करके भस्म सभी घर-बार,  
अब चिमटा ले निकल पड़े हो करने जग-उद्धार ।

.....  
धन्य धन्य अष्ट्यात्म-शक्ति को, धन्य मुक्ति की युक्ति ।  
बहुत हो चुकी गुरुडम-लीला, अब इससे मुँह मोड़,  
बाबा जी, अब बन मनुष्य तू, वनमानुष-पन छोड़ ।<sup>१</sup>

राष्ट्र-सेवा, समाज-सेवा, दीन-जन-उद्धार, ऐक्य की भावना आदि ही  
इस युग का धर्म, भक्ति एवं ईश्वर है । पग-पग पर कवि इसी रूप में भगवान  
और उसके विराट् तत्त्व को देखता है । संसार की समस्त दीनता में ही  
भगवान का वास एवं उसी में उसकी प्राप्ति है । एक प्रकार से यह द्विवेदी-युग  
के 'धर्म' का नारा था । इसीलिए कवि रामनरेश त्रिपाठी की प्रसिद्ध कविता  
'अन्वेषण' में 'किसी के आँसू' में बहने वाले प्रभु को धन और मान में ढूँढ़ने  
का प्रयत्न व्यर्थ ही दीखता है—

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था ।  
पर तू बसा हुआ था फ़रहाद कोहकहन में ॥

.....  
बेबस गिरे हुआँ के तू बीच में खड़ा था ।  
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में ॥<sup>२</sup>

ठीक इसी भाव की पुष्टि करते हुए मुकुटधर पाण्डेय 'दीन हीन के  
अश्रुनीर में' और 'पतितों के परिताप' में ही जीवन की सिद्धि को प्राप्त  
करते हैं—

देखा मैंने यहीं मुक्ति थी  
यहीं भोग था, यही भुक्ति थी,  
घर में ही सब योग युक्ति थी,  
घर ही था निर्वाण ।<sup>३</sup>

मन्तन द्विवेदी गजपुरी, रूपनारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, 'सनेहो'  
श्रीधर पाठक इत्यादि सभी प्रमुख कवियों की धार्मिक भावना का प्रधान स्वरूप

१. 'स्वामी जी' : बद्रीनाथ भट्ट, सरस्वती, जुलाई १९१७, पृ० १ ।

२. मानसी, पृ० २ ।

३. 'विश्वबोध', सरस्वती, दिसम्बर १९१७, पृ० ३२६ ।



यही है। धर्म राष्ट्र हेतु है और राष्ट्र धर्म हेतु। धर्म स्वार्थ और आत्मपरि-  
तुष्टि ही तक सीमित नहीं है, यह इस युग की नवीन विचार-धारा थी।

रवीन्द्र की 'गीतांजलि' के प्रभाव से भक्ति-भावना को जो नवीन रहस्यमयता  
प्राप्त हुई उसमें भी मानवतावाद का स्वर प्रधान है। मन्दिर, मसजिद या  
गिरिजे के भीतर भगवान को रिझाना या उनकी भक्ति करना अब कवियों को  
युक्तिसंगत नहीं लगता। देश के कृषकों, मजदूरों तथा दरिद्र लोगों की सेवा  
ही भगवद्भक्ति है, उनके 'धाम' ही भगवद्धाम हैं।<sup>1</sup> खड़ी बोली काव्य की  
उपयुक्त धार्मिक भाव-धारा के विकास में भक्ति और धर्म का यह नवीन  
स्वरूप उपयुक्त ही था। कहा जा सकता है कि यह सहज एवं स्वाभाविक  
विकास था जिसकी पूर्वपीठिका में ब्रजभाषा-काव्य के उपालम्भ गीतों की  
परम्परा थी। प्रसाद, 'निराला', मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त,  
शुकुटधर पाण्डेय आदि की धार्मिक भावना को इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता  
है। 'साकेत' के राम और 'प्रियप्रवास' के कृष्ण भी इसी स्वरूप में उपस्थित  
होते हैं। अतः आस्तिकता का निर्वाह करते हुए भी इस युग का धार्मिक  
भाव-बोध अधिक बुद्धिसंगत, मनोवैज्ञानिक एवं सहज ग्राह्य है। इस युग में  
आस्तिकता, मानवीयता के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त हुई।

### निष्कर्ष

इस समग्र विवेचन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि युग-बोध के  
सन्दर्भ में आलोच्य-काल की खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य-धाराएँ सफल  
रहीं। कवियों ने आधुनिक बौद्धिकतावाद, यथार्थवाद एवं आदर्शवाद का  
समन्वित स्वरूप, भारतीय समन्वय की सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल ही  
स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति में 'आत्मा' को प्राधान्य मिला है जिसके  
फलस्वरूप जीवन और जगत् के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण को ही प्रायः  
प्रमुखता दी जाती रही। आधुनिक भौतिक युग ने परम्परागत विश्वासों के  
प्रति जिस विद्रोह को उपस्थित किया था, उसमें इस प्रकार की दृष्टि को  
अधिक महत्त्व प्राप्त नहीं हो सका। व्यावहारिक जगत में भी इस प्रकार के  
दृष्टिकोण की उपयुक्तता की सीमाएँ युगों से स्पष्ट होती आ रही थीं। अतः  
आलोच्य-काव्य में इस नवीन पश्चिमी विचार-धारा के फलस्वरूप भौतिकतावाद  
एवं विज्ञानवाद आदि को प्रश्रय मिला तथापि उस पर 'आत्मा' के अंकुश  
को भी स्वीकारा गया जो भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल ही है।  
इसी परम्परा में परम्परागत पारलौकिक दृष्टिकोण को इहलौकिकता के परि-  
प्रेक्ष्य में ही मूल्यांकित किया गया। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से ये कवि पश्चिमी

१. विशेष विस्तार के लिए देखिए अध्याय तीन (स्फुट भक्ति एवं नीति)।



ज्ञान-विज्ञान से अधिक प्रभावित रहे तथापि उसमें भारतीयता के स्वर ही अनुगुंजित हुए। ब्रजभाषा और खड़ी बोली काव्य-धाराओं ने यथासम्भव एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हुए जन-जीवन का प्रतिनिधित्व किया। प्राचीन परम्परागत दृष्टिकोणों के कारण कतिपय स्थलों पर जो प्रतिक्रियावादी तत्त्व प्राप्त होते हैं, वे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं तथा उनकी संख्या भी नगण्य ही है। संक्षेप में कहा जाये तो छायावादी एवं छायावादोत्तर हिन्दी काव्य के भाव-बोध की प्रायः सभी दिशाओं का संकेत इस काव्य में प्राप्त होता है। यह काव्य सम्पूर्ण अर्थ में आधुनिक काव्य है। □



## अध्याय—सात

### काव्य-रूप

काव्य-रचना के बाह्य स्वरूप एवं आकार को ही उसका रूप कहा जाता है। स्वरूप के आधार पर काव्य के प्रमुखतः तीन रूप माने जाते हैं—प्रबन्ध, मुक्तक तथा गीति। प्रबन्ध-काव्य में कथा रहती है और उसका स्वरूप विस्तृत एवं वर्णनात्मक रहता है। उसके अन्तर्गत विभिन्न पद्यों का पूर्वापर सम्बन्ध सुनिश्चित होता है। मुक्तक-काव्य में प्रत्येक छन्द अर्थ की दृष्टि से सम्पूर्ण एवं स्वतन्त्र रहता है। अतः उसमें किसी पूर्वापर सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं रहती। गीति-काव्य मुक्तक से भिन्न प्रकृति का होता है। उसमें कवि की वैयक्तिक अनुभूति का स्वर अपेक्षाकृत अधिक मुखर होता है। गीति-काव्य में रचियता के भावों की तीव्रता और आत्मपरक दृष्टिकोण का समावेश होता है। उसके छन्दों में संगीत की-सी लय और गति होती है। आधुनिक काल में काव्य का यह सर्वाधिक व्यवहृत रूप है।

इस अध्याय में आलोच्य-युग के खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य का विश्लेषण उपर्युक्त तीन काव्य-रूपों के अन्तर्गत करना अभीष्ट है।

#### प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध-काव्य के प्रायः दो भेद—महाकाव्य एवं खण्डकाव्य, किये जाते हैं। महाकाव्य में यदि जीवन और युगदृष्टि की समग्रता का वर्णन विस्तार से होता है, तो खण्ड-काव्य में जीवन के किसी विशिष्ट अंग या पक्ष का ही वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। महाकाव्य का आकार यदि विस्तृत होता है तो खण्ड-काव्य का आकार सीमित होता है। प्रबन्धात्मक गुण के आधार पर प्रबन्ध-काव्य का एक और भेद 'कथात्मक कविता' है। महाकाव्य और खण्ड-काव्य की अपेक्षा इसका स्वरूप अत्यन्त लघु होता है। इसमें किसी प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध व्यक्ति अथवा घटना का वर्णन किया जाता है। प्रायः इसमें प्रेम, वीरता, युद्ध, आदर्श आदि का ही समाख्यानपरक चित्रण होता है। इसके वर्णनों में संक्षिप्तता और संश्लिष्टता रहती है।

#### (१) महाकाव्य

भारतीय काव्यशास्त्रियों—भामह, दण्डी, रुद्रट, विश्वनाथ आदि ने महाकाव्य के स्वरूप पर विस्तार से विवेचन किया है। वस्तुतः महाकाव्य के स्वरूप का विकास भी अन्य काव्य-रूपों की भाँति युग और समय के साथ-साथ



होता रहा है। काव्य-रूप, रचना का बाह्यकार होते हुए भी रचना के अन्तर से पूर्णतया सम्बन्धित रहता है। इसलिए जीवन और जगत् के प्रति कवि की विशिष्ट दृष्टि से उसकी रचना को आकार-प्रकार मिलता है। यह जीवन का सामान्य नियम है। यही कारण है कि पश्चिम में भी अरस्तू से लेकर आधुनिक काल तक महाकाव्य विषयक विचार-धारा का विकास होता रहा।

हमारे यहाँ आचार्य विश्वनाथ की महाकाव्य विषयक विचार-धारा को विशेष मान्यता प्रदान की गयी है। सामान्यतः विश्वनाथ के महाकाव्य के लक्षणों और पाश्चात्य विचार-धारा के समन्वित रूप से ही आधुनिक महाकाव्य के लक्षणों का निर्धारण किया गया है। हम यहाँ विश्वनाथ तथा आधुनिक विद्वानों द्वारा मान्य लक्षणों का विवेचन करेंगे। आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लिए निम्न तत्त्व आवश्यक माने थे—

१. सगं वद्ध होना चाहिए।
२. नायक देवता या उच्च वंश का धीरोदात्त गुणसम्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए।
३. शृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक अंगीरस होना चाहिए।
४. कथानक लोकविश्रुत, इतिहास प्रसिद्ध एवं नाटक की सन्धियों से युक्त होना चाहिए।
५. महाकाव्य का फल अर्थ, काम अथवा मोक्ष होता है।
६. प्रारम्भ में नमस्कृति आदि आशीर्वचन या वस्तु का निर्देश होना चाहिए।
७. कहीं-कहीं पर खल-निन्दा और सज्जन-प्रशंसा होनी चाहिए।
८. इसके सगं की संख्या आठ अथवा आठ से अधिक हो।
९. एक सगं में एक ही छन्द प्रयुक्त हो तथा अन्त में छन्द परिवर्तन हो। कहीं-कहीं किसी सगं में एकाधिक छन्दों का भी प्रयोग हो सकता है।
१०. सगं अधिक लघु अथवा दीर्घ नहीं होने चाहिए तथा सगन्त में आगामी कथा की सूचना भी होनी चाहिए।
११. इसमें सन्ध्या, सूर्य, रजनी, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग वियोग, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मंत्र, पुत्र आदि का व्यापक वर्णन होना चाहिए।
१२. इसका नाम कवि, चरित अथवा चरित-नायक के नाम पर आधारित हो सकता है।<sup>१</sup>

महाकाव्य विषयक पश्चिमी विचार-धारा अरस्तू की विचार-धारा से अत्यधिक प्रभावित रही है। अरस्तू ने महाकाव्य को 'किसी गम्भीर कार्य का



वर्णनात्मक शैली तथा एक ही छन्द विशेष में अनुकरण (जीवन का) माना है, जिसका आधार मूलतः नाटकीय होगा।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त इसमें एकाधिक कथाएँ भी हो सकती हैं। इसका आन्तरिक तत्त्व उदात्त एवं सघटन नैतिक आदर्श पर होना चाहिए। इसके आगे अन्यान्य पश्चिमी विद्वानों ने इस विषय पर विचार-विनिमय किया जिसमें महाकाव्य में शैली की महत्ता, कथानक की महानता, वस्तु-व्यापार की गम्भीरता तथा उदात्त सन्देश आदि पर बल दिया गया। इन्होंने महाकाव्य को युग-जीवन की प्रतिनिधि रचना के रूप में भी स्वीकार किया है।

हिन्दी के अन्यान्य विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप-निर्धारण में प्रायः इन दोनों विचार-धाराओं के समन्वय को ही अधिक मान्यता प्रदान की है। आधुनिक जीवन और युग के अनुकूल महाकाव्य के लक्षण निर्धारण के लिए यह समन्वय आवश्यक ही है। इसीलिए आधुनिक काल में सामान्यतः महाकाव्य के निम्न लक्षण मान्य हुए—

१. महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महत्ती काव्य-प्रतिभा।

२. गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व।

३. महाकार्य और युग-जीवन का समग्र चित्रण।

४. सुसंघटित जीवन्त-कथानक।

५. महत्त्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्र।

६. गरिमामय उदात्त शैली।

७. तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रस-व्यंजना।

८. अतवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता।<sup>२</sup>

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकाव्य के लिए आजकल बाह्याकार तथा अन्य गौण रूढ़ियों—नमस्क्रिया, सर्ग संख्या, खल-निन्दा, सज्जन-प्रशंसा आदि का उतना महत्त्व नहीं माना जाता जितना उसके उद्देश्य, कथानक वस्तु-निर्वाह, चरित्र, शैली, प्रवाह, गति, गाम्भीर्य, प्रभावान्विति, युग-जीवन प्रतिनिधित्व आदि पर बल दिया जाता है। यहाँ पर विशेष रूप से आधुनिक महाकाव्य तथा जन-जीवन को दृष्टि में रखकर ही विवेचन करना अभीप्सित है। आधुनिक जन-जीवन का घरातल इतना विस्तृत एवं जटिल हो गया है कि उसकी समग्रता को एक कृति में समेटना वस्तुतः सम्भव नहीं है। प्राचीन

१. आलोचना : इतिहास तथा सिद्धान्त—एस०पी० खत्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० ५८।

२. साहित्य कोष, भाग १, पृ० ५७६ तथा हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप : डॉ० शम्भुनाथ सिंह, पृ० १०८-१७।



और आधुनिक जीवन और समय की इस भिन्नता पर टिप्पणी करते हुए इसीलिए डब्ल्यू० एम० डिवसन ने कहा है कि आधुनिक मानव-जीवन के क्षितिज इतने विस्तृत एवं विशद हो चुके हैं कि एक महाकाव्य में ही उनको समेटना सम्भव नहीं दिखता। कवि का दृष्टिकोण चाहे कितना ही विस्तृत एवं व्यापक क्यों न हो, वह 'होमर' की भाँति अन्यान्य इतिहासों को सम्बद्ध करके अपने युग-जीवन की समस्त ज्ञानराशि को प्रस्तुत नहीं कर सकता।<sup>1</sup> अतः आधुनिक महाकाव्यों में कवि जितनी कुछ युग-जीवन की समग्रता उपस्थित कर सकता है, वह श्लाघनीय ही कहा जायेगा।

आलोच्य-काल की ब्रजभाषा काव्य-धारा में पूर्ववर्ती ब्रजभाषा काव्य की भाँति किसी महाकाव्य की रचना नहीं की गयी। वस्तुतः ब्रजभाषा काव्य मुक्तक प्रधान ही रहा और उसने इस युग के जीवन-बोध को प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयत्न किया। खड़ी बोली काव्य-धारा नवीन जीवन और समाज की प्रमुख वाणी थी। उसमें इस युग में तीन महाकाव्यों की रचना हुई— 'प्रियप्रवास', 'रामचरित चिन्तामणि' तथा 'साकेत'। 'साकेत' का प्रकाशन यद्यपि आलोच्य-युग की सीमा-परिधि के बाद ही हुआ तथापि उसकी मूल प्रेरणा इसी युग में सन्निहित है। इसका प्रथम सर्ग 'सरस्वती' जून १९१६ ई० में छप भी चुका था (सन् १९२५ तक इसका अधिकांश भाग लिखा भी जा चुका था)। अतः इसको इस विश्लेषण के अन्तर्गत रखा जा रहा है। महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों को ध्यान में रखकर इन महाकाव्यों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा रहा है—

#### (क) परम्परा का निर्वाह

महाकाव्य के कतिपय परम्परागत लक्षणों का तीनों महाकाव्यों में समावेश हुआ है। यह परम्परागत लक्षण प्रायः बाह्याकार विषयक गौण रूढ़ियों से ही सम्बन्धित हैं। 'रामचरित चिन्तामणि' में परम्परागत रूढ़ियों का सर्वाधिक समावेश हुआ है। वस्तुतः इस महाकाव्य का आधार वाल्मीकि रामायण होने के कारण ही ऐसा हुआ। तीनों महाकाव्यों में आठ से अधिक सर्गों की समाविष्टि हुई है। 'प्रियप्रवास' में १७, 'रामचरित चिन्तामणि' में २५ तथा 'साकेत' में १२ सर्ग हैं। छन्द-विधान की दृष्टि से भी कवियों ने छन्द-परिवर्तन पर विशेष ध्यान रखा है। प्रारम्भिक तमस्क्रिया को 'साकेत' की 'सरस्वती' वन्दना और 'रामचरित चिन्तामणि' के मंगलाचरण आदि में देखा जा सकता है। रस की दृष्टि से रामचरित चिन्तामणि का प्रधान रस वीर है, जो सर्वथा परम्परा अनुमोदित है। अन्य वर्णन-रूढ़ियों में सज्जन-प्रशंसा तथा खल-निन्दा



आदि इन तीनों महाकाव्यों में कहीं-न-कहीं हुई है। इसके अतिरिक्त इन तीनों महाकाव्यों के कथानक प्रसिद्ध पौराणिक चरित्रों पर आधारित हैं। तीनों के नायक भी धीरोदात्त हैं। इन तीनों महाकाव्यों का नामकरण प्रमुख पात्र — 'रामचरित चिन्तामणि', प्रमुख घटना— प्रियप्रवास' तथा प्रमुख घटनास्थल— 'साकेत' के आधार पर ही किया गया है। संक्षेप में कहा जाये तो इन तीनों महाकाव्यों में प्रायः न्यूनाधिक परम्परागत लक्षणों-वर्णन रूढ़ियों का जाने-अनजाने पालन किया गया है।

**'रामचरित चिन्तामणि'**

कहा जा सकता है कि 'रामचरित चिन्तामणि' ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें कवि ने परम्परा से सम्बद्ध होने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इस पूर्वाग्रह और आधुनिक विचार-धारा के सम्मिश्रण से इस काव्य में महाकाव्योचित गरिमा, गाम्भीर्य, प्रवाह और सुसंघटित वस्तु-विन्यास का सर्वथा अभाव दीखता है। आधुनिकता को अपनाने के फेर में कवि ने रामकथा के मूल स्वरूप को स्थल-स्थल पर अप्रासंगिक वर्णनों से बोझिल कर दिया है। यहाँ तक कि कथा के कई मार्मिक स्थलों की उपेक्षा भी कर दी गयी है। सर्ग-विभाजन की परम्परा को निभाने के लिए कवि ने आवश्यकता से अधिक निरंकुशता से काम लिया है। हनुमान का लंका-गमन, लंका-दहन, हनुमान-सीता भेंट आदि को कवि ने तीन सर्गों<sup>१</sup> में वर्णित किया है, तो भरत-राम मिलन को कतिपय<sup>२</sup> छन्दों में ही समेटा गया है। युग-जीवन की समग्रता को समेटने के लिए कवि ने स्थल-स्थल पर उपदेश देने का प्रयास किया है। राजनीति, देश-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम आदि की नवीन भाव-धारा का समावेश इस काव्य में सर्वथा अनुपयुक्त ढंग से किया गया है। कथानक के इन नवीन प्रसंगों को कवि की मौलिकता न कह कर कवि का दुराग्रह ही कहा जा सकता है। वस्तुतः कलात्मक परिपक्वता और समुचित वस्तु-संघटन के अभाव में कवि अपने उद्देश्य में असफल ही रहा है। महाकाव्य के रूप में 'रामचरित चिन्तामणि' के पास जितना व्यापक घरातल था, उतना अन्य महाकाव्यकारों के पास नहीं था। तथापि सम्पूर्ण रामकथा को समेटने के पश्चात् भी कवि सफल महाकाव्य की रचना करने में असमर्थ ही रहा है। इससे एक तथ्य स्पष्ट सामने आता है कि महाकाव्य के लिए कथा-सूत्र की अत्यधिक व्यापकता की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कलात्मक प्रस्तुतीकरण तथा सुसंघटन की है।

१. रामचरित चिन्तामणि : रामचरित उपाध्याय, सर्ग १५, १६ तथा १७।
२. वही० सर्ग ६ छन्द ६२-६३ (राम के अनेक प्रश्नों का उत्तर कवि ने भरत की ओर से मात्र दो छन्दों में देकर इस भेंट को समाप्त किया है।)



(ख) नवीन उद्भावनाएँ

## १. 'प्रियप्रवास'

कथानक :—

महाकाव्योचित कथानक की दृष्टि से 'प्रियप्रवास' का कथा-सूत्र अधिक विस्तृत नहीं है। यह कथा भागवत् के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में आयी कृष्ण-कथा पर आधारित है। कृष्ण ब्रज में रह रहे हैं। अक्रूर उन्हें मथुरा ले जाने के लिए आते हैं। कृष्ण के मथुरागमन पर समस्त ब्रजभूमि दुख और विषाद के महासमुद्र में निमग्न हो जाती है। कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। उनके लौटने की कोई आशा नहीं है। कृष्ण को नन्द-यशोदा और गोप-गोपियों की याद सताती है। वे अपने प्रिय सखा उद्धव को ब्रजवासियों का ढाँढ़स बँधाने के लिए ब्रज भेजते हैं। उद्धव से वे यह भी कहलवाते हैं कि वे समय पाकर शीघ्र ही ब्रज आयेगे। कथा के इस परम्परागत सूत्र को 'हरिऔध' जी ने इस काव्य का आधार बनाया है। पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—“इसकी कथा-वस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबन्ध काव्य के लिए भी अपर्याप्त है। अतः प्रबन्ध काव्य के सब अवयव इसमें कहीं से आ सकते हैं।”<sup>१</sup> शुक्ल जी का यह कथन किंचित मात्रा में सत्य ही प्रतीत होता है। 'प्रियप्रवास' में महाकाव्योचित घटनाओं की विरलता के कारण अनावश्यक विस्तार से कथा के प्रवाह और गाम्भीर्य को निश्चय ही क्षति पहुँची है। 'प्रियप्रवास' की चरम घटना कृष्ण का मथुरागमन, पाँचवें सर्ग में सम्पन्न हो जाती है। अन्य बारह सर्गों में उनके प्रवासजन्य विरह के विविध रूप तथा स्मृति रूप में उनके गत जीवन को उपस्थित किया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से घटनाओं को प्रस्तुत करने से कवि ने जिस नवीनता और नाटकीयता को लाने का प्रयास किया है, वह पूर्णतया सफल नहीं कहा जा सकता। महाकाव्य में कथानक को सुसंघटित होना ही चाहिए, परन्तु उसके महदुद्देश्य की गरिमा में बाधा उपस्थित होती है। प्रश्न उठ सकता है कि क्या कथानक की इस लघुता और घटना-विरलता के कारण इसके महाकाव्यत्व की महत्ता कम होती है? यदि इस तथ्य को परम्परागत लक्षणों के आधार पर ही केवल आंका जाये तो कदाचित् इसकी महत्ता किंचित् मात्रा में कम हो जायेगी। परन्तु 'प्रियप्रवास' के महाकाव्यत्व की निर्धारणा उसमें निहित सन्देश तथा कवि के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही होनी चाहिए न कि परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर। नये युग के परिवर्तित परिवेश में शास्त्रीय परीक्षण कृतिकार के साथ अन्याय ही होगा। अतः प्रस्तुत विवेचन में इस काव्य की मौलिकता पर दृष्टिपात किया जायेगा।



### सन्देश

‘प्रियप्रवास’ के रचियता का सर्वप्रथम उद्देश्य यह था कि परम्परागत रीतिकालीन कलुषित वातावरण से तथा भक्तिकालीन अलौकिकता की पार-लौकिक सीमाओं से कृष्ण और राधा के भव्य स्वरूप को मुक्त करके उन्हें आधुनिक जन-जीवन की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं के अधिक निकट लाकर रखा जाये। कृष्ण इस काव्य में महापुरुष के रूप में उपस्थित हुए हैं। ये न कि अपने परम्परागत पुष्टि मार्गीय अलौकिक रूप में उनका जीवन-चरित प्रत्येक भारतीय के लिए बया, विश्व के प्रत्येक मानव के लिए अनुकरणीय एवं प्रेरणाप्रद है। सामान्य जीवन के प्रेम को विश्व-प्रेम में परिणत करना ‘प्रिय-प्रवास’ की एक महती उपलब्धि है। वैयक्तिक सुख को त्यागकर देश और जाति की सेवा का सन्देश देते हुए कृष्ण कहते हैं—

बिना न त्यागे ममता स्व-प्राण की ।  
बिना न जोखों ज्वलदग्नि में पड़े ॥  
न हो सका विश्व-महान-कार्य्य है ।  
न सिद्ध होता भव-जन्म हेतु है ॥<sup>१</sup>

मानवतावाद ही इस काव्य का प्रधान स्वर है। ईश्वरत्व की रक्षा मानवत्व की प्रतिष्ठापना से ही सम्भव है। कृष्ण के इस स्वरूप की महिमा गोपजन उद्धव को समझाते हैं—

भू में सदा मनुज है बहु-मान पाता ।  
राज्याधिकार अथवा धन-द्रव्य-द्वारा ॥  
होता परंतु वह पूजित विश्व में है ।  
निस्स्वार्थ भूत-हित औ कर लोक-सेवा ॥<sup>२</sup>

ऐसे ही व्यक्तियों का प्रेम विश्व-प्रेम में परिणत होता है। ऐसे प्रेमी का विरहजन्य दुःख उसे समस्त विश्व के दुःख को समेटने की प्रेरणा देता है। अतः आधुनिक युग के आदर्शवादी दृष्टिकोण तथा बौद्धिकतावाद से प्रभावित ‘हरिऔध’ जी राधा के प्रेम और विरह को विश्व-प्रेम एवं विश्व-वेदना में परिणत कर देते हैं। राधा को अपने प्रिय के दर्शन समस्त चराचर जगत् में मिलते हैं। वह उद्धव से कहती है—

हो जाने से हृदय-तल का भाव ऐसा निराला ।  
मैंने न्यारे परम् गरिमावान दो लाभ पाये ।  
मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा ।  
मैंने देखा परम् प्रभु को स्वीय-प्राणेश ही में ।

१. प्रियप्रवास, पृ० १८१ ।

२. प्रियप्रवास, पृ० २०३ ।



पायी जाती विविध जितनी वस्तुएँ हैं सबों में ।

जो प्यारे को अमित रंग और रूप में देखती हूँ ।

तो मैं कैसे न उन सब को प्यार जी से करूँगी ?

यों है मेरे हृदय-तल में विश्व का प्रेम जागा ।<sup>१</sup>

ऐसी अवस्था में राधा एक पुजारिन के रूप में विश्व को एक मंदिर समझ कर समस्त प्राणियों की सेवा-अर्चना में नवीन नवधाभक्ति लेकर प्रवृत्त होती है ।<sup>२</sup> आधुनिकता के प्रभाव से भक्ति और ईश्वर का यह स्वरूप निश्चय ही अत्यन्त व्यापक एवं विराट् है। कवि ने इस अत्यन्त लघु कथा-सूत्र के इस प्रकार तत्कालीन जन-जीवन के उपयुक्त जिस संदेश को प्रस्तुत किया है, वह निश्चय ही महाकाव्योचित है। 'हरिऔध' जी ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से तत्कालीन नास्तिक युग को आस्तिकता का संदेश दिया तथा आस्तिक जन को विवेक, बुद्धि और समयानुकूलता की ओर प्रेरित किया। यह कार्य अपने-आप में निश्चय ही अद्वितीय है क्योंकि 'प्रियप्रवास' के रचनाकाल के समय देश की स्थिति दीन-दुखियों की सेवा की ही माँग करती थी न कि मध्यकालीन भक्ति की।

#### प्रस्तुतीकरण

'प्रियप्रवास' की द्वितीय उल्लेखनीय उपलब्धि कथानक के मार्मिक स्थलों का भावपूर्ण मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करना है। इस प्रवृत्ति से ही प्रेरित होकर कवि ने अपने काव्य का प्रारम्भ परम्परागत नमस्क्रिया, मंगलाचरण आदि से नहीं किया। कृष्ण अन्य गोपजनों के साथ गायें चराने के उपरान्त ब्रज में लौट रहे हैं, उनके वेणु नाद से सध्याकालीन प्रकृति मंत्रमुग्ध-सी दिखती है। अतः इस सन्ध्याकालीन प्रकृति के भव्य चित्रण के साथ ही काव्य का प्रारम्भ हुआ है। भावी घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में महाकाव्य का यह प्रारम्भ नाटकीय एवं रोचक है। इससे न केवल भावी घटनाओं का आभास-सा होता है, अपितु कृष्ण के उदात्त एवं कृतसंकल्प चरित्र की भी झाँकी प्रस्तुत होती है। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण को 'भागवत' के कृष्ण की भाँति अक्रूरागमन का ज्ञान नहीं है। वे दिन के थके-माँदे व्यक्ति की भाँति आकर घर में खा-पी कर सो जाते हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि घर में कोहराम मचा हुआ है। माता यशोदा की ममता खुलकर रो भी नहीं सकती। इसलिए कि वहाँ थके-माँदे सो रहे कृष्ण जग न जायें। वह बस हिचकियाँ लेकर ही रह जाती हैं। सोते श्याम के मनोहर रूप को देख-देख कर उसके मन की ममता और कंस के निमन्त्रण से त्रस्त उसके आशंकित मन का अतद्बन्ध कवि ने मनोवैज्ञानिक ढँग

१. प्रियप्रवास, पृ० ३०६।

२. वही०, संग १६।



से चित्रित किया है।<sup>१</sup> इसी प्रकार कवि ने राधा के विरह का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया है। राधा की चारित्रिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए कवि ने विरह को ऊहापोह में परिवर्तित नहीं किया है। स्वाभाविकता की रक्षा के लिए उन्होंने मनोविज्ञान का आश्रय लिया है। विरह-वेदना में राधा विभिन्न फूलों, पेड़ों और पौधों से बातें करती हैं। अपने मन की व्यथा उनसे कहती हैं। उनसे सहानुभूति की आशा रखती हैं। कवि ने मौलिक ढंग से राधा के विरह को, उसके और 'अलि', 'कोकिल', 'कालिंदी', 'मुरली', 'श्याम-घटा' इत्यादि के संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।<sup>२</sup>

इस प्रकार 'भागवत' के इस सूक्ष्म कथा-सूत्र को कवि ने अपनी कल्पना से अधिक सजीव और मार्मिक बना दिया है। कथानक में यत्र-तत्र नाटकीयता के प्रवेश से रोचकता में भी अभिवृद्धि हुई है। अक्रूरगमन का उल्लेख किया जा चुका है। इसी प्रकार उद्धव का ब्रजागमन भी नाटकीय ढंग से ही होता है। उद्धव के रथ को तथा दूर से उन्हें देखकर ब्रजवासियों के मन में विभिन्न भावों का प्रसार होता है। रथ मात्र के दर्शन से जनता को लगता है कि कृष्ण आ गये हैं, फिर तो जो जहाँ है, वह वहीं से दौड़ पड़ता है। जब उन्हें वास्तविकता का ज्ञान होता है, तो उनके विषाद की कल्पना नहीं की जा सकती।<sup>३</sup> इससे निश्चय ही कथानक में गति आ गयी है।

'हरिऔध' जी की एक और मौलिकता यह है कि उन्होंने कृष्ण के अलौकिक कृत्यों के बौद्धिक समाधान प्रस्तुत किये हैं। तत्कालीन बौद्धिकता एवं वैज्ञानिक प्रगति के कारण कृष्ण के अलौकिक कृत्यों को यथावत् प्रस्तुत करने से कवि के महत् उद्देश्य को निश्चय ही क्षति पहुँचती, अतः उन्होंने कृष्ण को एक अद्वितीय प्रतिभा सम्पन्न बौद्धिक के रूप में प्रस्तुत किया। वह वेणु-नाद के मोहक संगीत की सहायता से कालिया दमन करता है। दावाग्नि से ब्रजवासियों को वह अपनी वीरता और बुद्धि से ही बचाता है। इस प्रकार प्रसिद्ध 'गोवर्धन धारण' की भी बौद्धिक व्याख्या कवि ने प्रस्तुत की है।<sup>४</sup> कृष्ण कर्मठ, जन-नायक, मृदु-स्वभावयुक्त, त्यागी, वीर, प्रबुद्ध, सेवाभावयुक्त आदर्श पुरुष के रूप में जन-मन के हार हैं। राज-पुत्र होकर भी वे ब्रज की समस्त जनता की आँखों के तारे हैं।

१. प्रियप्रवास, सर्ग ३।

२. वही०, सर्ग १५।

३. वही०, सर्ग ६।

४. वही०, सर्ग १२।



**महाकाव्यत्व**

संक्षेप में कहा जाये तो 'प्रियप्रवास' रूढ़िवद्धता से विमुक्त नवीन युग की चेतना का काव्य है। कतिपय कारणों से उसके वस्तु-संघटन और घटना-वर्णन में शिथिलता का समावेश हुआ है। इसके होते हुए भी यह रचना आलोच्य-युग की प्रतिनिधि रचना है। इसमें द्विवेदी-युग की वैचारिक एवं बौद्धिक प्रगति का सरस आकलन हुआ है। इसके नायक का स्वरूप निश्चय ही महाकाव्योचित है। इसमें निहित संदेश युग-युगान्तर के लिए प्रेरणाप्रद है। इस काव्य में मानवतावाद के जिस नवीन स्वर का उद्घोष हुआ, वह आधुनिक साहित्य में विकसित हो रहा है। भक्ति और ईश्वर की जो व्याख्या 'हरिऔध' जी ने इस काव्य में प्रस्तुत की उसका महत्त्व आज भी घटा नहीं है। वह भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का विराट् स्वरूप है। अतः इस रचना के दोषों का उद्घाटन मात्र करके इसके महाकाव्यत्व को अस्वीकार करना उपर्युक्त समस्त मौलिकताओं के प्रति अन्याय होगा। आधुनिक सन्दर्भ में देखने से 'प्रियप्रवास' में रोचकता और सरसता का अभाव नहीं है। युग की बौद्धिकता से उसमें प्रभावान्विति की कमी नहीं है। संस्कृत वृत्तों में रचित इसकी शैली में गरिमा का सर्वथा अभाव नहीं है। कदाचित् ऐसी ही रचनाओं को ध्यान में रखकर आचार्य दण्डी ने कहा था—

न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति ।

यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयतिद्विदः ॥

'महाकाव्य के लिए जितने वर्णनीय विषय बताये गये हैं उनमें यदि कुछ कवियों के वर्णन नहीं भी किये गये हों, परन्तु जिनका वर्णन किया गया हो, उतने विषयों के वर्णन से ही यदि श्रोता तथा अध्येता आदि रसपुष्टि का अनुभव करते हों को वह न्यूनता नहीं मानी जायगी।'<sup>१</sup> इस दृष्टि से 'प्रिय-प्रवास' निश्चय ही आधुनिक युग का एक महाकाव्य है।

**२. 'साकेत'**

**कथानक—**'प्रियप्रवास की भाँति इस महाकाव्य का कथानक भी प्रख्यात है। 'साकेत' की मूल प्रेरणा युगानुयुग से उपेक्षिता उर्मिला का साहित्यिक उद्धार है। राम-कथा के इस मार्मिक स्थल की उपेक्षा वाल्मीकि से लेकर गुप्त जी के पूर्व तक सभी कवियों ने की। आलोच्य-युग में आधुनिक विवेक और बुद्धि के प्रभाव से साहित्यिकों का ध्यान इधर आकर्षित हुआ। फलतः हिन्दी साहित्य को एक अमर कृति 'साकेत' की उपलब्धि हुई। 'प्रियप्रवास' पर किये गये कथानक विषयक आक्षेपों का प्रक्षालन इस काव्य में पूर्णतया संभव हो

१. हिन्दी काव्यादर्श : आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र—चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम परिच्छेद, श्लोक २०, पृ० २२।



गया। गुप्तजी भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक थे, अतः उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक गौरव की एक गरिमामयी कथा—‘राम-कथा’ को अद्वितीय मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया। प्रचलित कथानक में नवीनता के प्राण स्फुरण करना कुशल कवियों का ही काम है। गुप्तजी ने ‘साकेत’ की कथा का प्रारम्भ क्षत्यन्त नाटकीय ढंग से किया है। काव्य के नायक-नायिका, लक्ष्मण-उर्मिला के आदर्श दाम्पत्य-जीवन से कथा का प्रारम्भ होता है। भावी घटनाओं का पूर्वाभास सांकेतिक ढंग से कवि प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात् प्रचलित राम वन गमन, दशरथ-मरण, भरत-राम मिलन आदि घटनाओं का संयोजन कवि ने प्रत्यक्ष रूप से किया है। तत्पश्चात् काव्य की नायिका उर्मिला के विरह का विशद् चित्रण करने के उपरान्त शेष कथा उर्मिला के माध्यम से कुछ स्मृति रूप में और कुछ हनुमान के माध्यम से ‘साकेत’ में ही प्रस्तुत की गयी है। सम्पूर्ण विरह-काव्य की समाप्ति उर्मिला-लक्ष्मण के करुण मिलन पर होती है, जो इस परम्परागत कथा में नवीनता का समावेश है।

#### शंका समाधान

गुप्त जी के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कथानक विषयक दो-एक शंकाओं का समाधान अपेक्षित है। गुप्त जी का उद्देश्य उर्मिला की विरह-गाथा को अमर बनाना था। अतः काव्य के मुख्य उद्देश्य तथा कथानक के प्रवाह और समुचित संघटन के लिए कथा को उर्मिला पर ही केन्द्रित करना चाहिए था? ऐसा करने से दो कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं, एक तो प्रचलित राम-कथा में कई मौलिक परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ती। जिसे संभवतः गुप्त जी जैसे भारतीय संस्कृति के श्रद्धालु अनुचित ही समझते। दूसरी कठिनाई गुप्त जी की व्यक्तिगत समस्या है। गुप्त जी परम् राम-भक्त थे। अतः कथानक में यत्र-तत्र उनके मन में राम और उर्मिला के मध्य द्वन्द्व उत्पन्न होता है। इसीलिए कैकेयी प्रसंग, दशरथ मरण, रामवनगमन, भरत-आगमन, चित्रकूट-प्रसंग को विस्तार से एवं मनोयोग से चित्रित किया गया है। तत्पश्चात् नवम सर्ग के आगे कथा उर्मिला-केन्द्रित है। वस्तुतः गुप्त जी ने इन विभिन्न प्रसंगों में उर्मिला को कहीं भुलाया नहीं है, अपितु गम्भीर रूप से सोचा जाये तो इन विभिन्न प्रसंगों से गुप्त जी उर्मिला-विरह के मुख्य उद्देश्य को चरम सीमा पर खींच लाये हैं। यह गुप्त जी की अप्रतिम देन है। इन प्रसंगों में कैकेयी प्रसंग तथा चित्रकूट-प्रसंग कथा के सम्यक् प्रवाह एवं निर्वाह के लिए आवश्यक ही हैं। दूसरी ओर इन दो प्रसंगों का उर्मिला से विशिष्ट सम्बन्ध भी है। प्रथम प्रसंग से उसके सुखी दाम्पत्य-जीवन पर कुठाराघात होता है, तो दूसरे प्रसंग से रही-सही खाशा पर तुष्टारापात। अतः उसकी विरहावस्था का वास्तविक प्रारम्भ चित्रकूट की असफल वार्त्ता के पश्चात् ही



होता है। गुप्त जी ने इस प्रसंग के तुरन्त बाद कथा को उर्मिला-केन्द्रित करके काव्य में अद्वितीय प्रभावोत्पादकता का समावेश किया है। इन प्रसंगों के विस्तृत वर्णन से कवि का एक और उद्देश्य भी रहा है। आधुनिक बौद्धिक युग में तुलसी की सरस्वती-प्रेरित कैकेयी को निर्दोष कहने वाले व्यक्तियों की संख्या कम ही है। अतः गुप्त जी ने कैकेयी-प्रसंग तथा चित्रकूट-प्रसंग के माध्यम से कैकेयी का भी समुचित उद्धार किया है। कवि की यह देन भी अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्नता की द्योतक है।<sup>१</sup> अतः इन दो प्रसंगों से काव्य में महाकाव्योचित गरिमा का समावेश हुआ है। राम कथा भारत की इतनी लोकप्रिय कथा है कि उसमें तनिक सा विचलन हमें सहन नहीं। अन्यथा अन्य प्रसंगों, दशरथ-मरण, भरत-आगमन आदि से कथानक-संघटन में विशेष क्षति नहीं पहुँची है।

#### प्रस्तुतीकरण

कथानक के इस सुव्यवस्थित रूप के अतिरिक्त गुप्त जी ने घटनाओं का प्रस्तुतीकरण सर्वथा सफल ढँग से किया है। काव्य में सर्वत्र प्रवाह और अबाध गति का निर्वाह देखा जा सकता है। गुप्त जी की यह विशेषता है कि वे घटनाओं अथवा पात्रों को सांकेतिक या नाटकीय ढँग से प्रस्तुत करते हैं। इससे कथा में रोचकता और कथानक में सत्यात्मकता का समावेश होता है। उदाहरण के लिए भावी संघर्ष और विरह को सांकेतिक ढँग से वे प्रथम सर्ग में चित्र-रचना के प्रसंग में प्रस्तुत करते हैं—

रंग फेला लेखनी आगे झुकी।

एक पीत तरंग-रेखा-सी बही

और वह अभिषेक घट पर जा रही।<sup>२</sup>

इसी प्रकार उर्मिला का प्रवेश भी प्रथम सर्ग में नाटकीय ढँग से हुआ है—

अरुण-पट पहने हुए आह्लाद में

कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?<sup>३</sup>

इस प्रश्न के उत्तर में वे उर्मिला का रूप वर्णन करते हैं। जिससे प्रभावोत्पादकता का समावेश हुआ है। द्वितीय सर्ग में रघुकुल के भविष्य पर छाते वाली घोर कलंक रात्रि का पूर्वाभास कवि इन पंक्तियों में देता है—

अरुण सन्ध्या को आगे ठेल,

देखने को कुछ नूतन खेल,

सजे विधु की बेंदी से भाल,

यामिनी आ पहुँची तत्काल।<sup>४</sup>

१. विशेष विस्तार के लिए दे० अध्याय तीन।

२. साकेत, पृ० २३।

३. वही०, पृ० १०।

४. वही०, पृ० ४३।



इस प्रकार के वर्णन, संकेत और नाटकीय प्रस्तुतीकरण काव्य में स्थल-स्थल पर देखे जा सकते हैं। इन सब कारणों से यह काव्य महाकाव्योचित गरिमा, प्रवाह, उदात्तता, सामर्थ्य एवं प्राणवत्ता से परिपुष्ट है।

सन्देश

‘साकेत’ में महाकाव्योचित संदेश की उदात्तता भी गरिमामय ढंग से अभिव्यक्त की गयी है। गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति का मंथन कर जो कुछ युग-जीवन के लिए उपयुक्त एवं उचित पाया, उसे इस काव्य के माध्यम से अमर कर दिया। ‘हरिऔध’ जी की भाँति राम को महामानव न मानकर अवतार के रूप में स्वीकार करते हुए<sup>१</sup> भी उन्हें आधुनिक बौद्धिकता और विवेक से मण्डित किया है। उनके राम आधुनिकता के प्रभाव से मानव को ही ईश्वरत्व प्रदान करने के लिए अवतरित हुए हैं, वे इस भू को स्वर्ग बनाने का संकल्प रखते हैं—

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।<sup>२</sup>

निश्चय ही यह आधुनिकता का प्रभाव है, जिससे राम-कथा को नवीन दिशा की प्राप्ति हुई है। आधुनिक जन-जीवन और राष्ट्रीयता के प्रभाव को भी इस कथा में अभिव्यक्ति मिली है। स्वतन्त्रता के इस युग में राम स्व-प्रतिष्ठापित राजा न होकर जनता द्वारा मनोनीत राजा हैं—वन जाते समय इस तथ्य की ओर जनता राम का ध्यान आकर्षित करती हुई उन्हें वन जाने से रोकती है जो निश्चय ही लोक से अलग हटकर गाँधी जी की प्रजातन्त्र सम्बन्धी मान्यता का ही अनुमोदन है—

राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना,

करो न तुम यों ! लोकमत अनसुना।<sup>३</sup>

राम को जनता और राज्य के आदर्श सम्बन्धों का पूर्ण ज्ञान है। अतः वे तथा उनके द्वारा मनोनीत भरत अथवा शत्रुघ्न जनता के सुख-दुःख का पूर्ण ध्यान रखते हैं।<sup>४</sup> उमिला अपनी विरहावस्था में भी कृषक वर्ग की महत्ता, उनके बलिदान, उनकी कर्मठता और उनके सेवाभाव को नहीं भूलती है।<sup>५</sup> इसी प्रकार आधुनिक नारी-स्वातन्त्र्य की भावना का परिचय वे सीता के

१. साकेत, प्रथम सर्ग।

२. वही०, पृ० २१६।

३. वही०, पृ० ११२।

४. वही०, सर्ग ५ तथा ११।

५. वही०, सर्ग ६।



माध्यम से अष्टम सर्ग में देते हैं। सीता वन में आकर स्वावलम्बन की भावना से आह्लाहित है।

सांस्कृतिक गौरव की परम्परा में गुप्त जी ने जिस सन्देश को प्रस्तुत किया है, वह निश्चय ही सार्वभौमिक है। प्रेम, कर्तव्य, द्वेष-त्याग, उत्तर-दायित्व, सद्वृत्तियों का प्रसार, मर्यादा का पालन, समष्टि के लिए व्यष्टि का उत्सर्ग, अनुराग-विराग, भक्ति-मुक्ति, समन्वय, विश्वबन्धुत्व, सह-अस्तित्व की भावना, कर्म और ज्ञान, नीति और समाज आदि के अनेक सन्देश इस महाकाव्य में समाहित हैं। युग-जीवन की समग्रता का आकलन इससे अधिक और क्या हो सकता है? प्राचीन और नवीन के समन्वय पर आधारित नवीन मानव और नवीन समाज की प्रतिष्ठापना ही तो आधुनिक भारत और विश्व का चरम ध्येय है। गुप्त जी ने भारतीय सांस्कृतिक गरिमा को अंशतः नवीन व्यापकता और महाकाव्योचित महत्त्व एवं गम्भीर स्वरूप प्रदान किया है। 'साकेत' आधुनिक जीवन और जन मानस की आशाओं, अभिलाषाओं और इच्छाओं का उदात्त प्रतिफलन है।

### उर्मिला

अन्त में इस महाकाव्य की मूल प्रेरणा, उर्मिला के स्वरूप को भी संक्षेप में प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा। उर्मिला की जो उपेक्षा युगानुयुग से होती आ रही थी, उसका प्रक्षालन गुप्त जी ने अकेले ही कलात्मक, सरस एवं प्रभावोत्पादक ढंग से किया। वस्तुतः मानव-मन की गह्वराइयों में पैठकर ही यह महान् कार्य सम्भव हो सका। गुप्त जी की अपार श्रद्धा, विलक्षण कवि-प्रतिभा तथा उनकी कर्मठता ने उर्मिला के विरह के अँभुओं को सरयू के माध्यम से समस्त जन-जीवन तक पहुँचाया। उर्मिला परम्परागत विरहिणी नहीं है। वह आधुनिक युग की सचेत नारी है, उसके पीछे 'प्रियप्रवास' की राधा का आदर्श है। वैज्ञानिक युग में सस्ती भावुकता और ऊहापोह से काम नहीं चलता। भावुकता के पीछे विवेक, कर्मनिष्ठा, त्याग, आदर्श, विश्वज-नीनता, कर्तव्य-परायणता आदि होनी चाहिए तभी उससे महान् कार्य हो सकते हैं। उर्मिला की व्यथा भवभूति से लेकर 'साकेत' तक निरन्तर होती रही है। विरह उर्मिला के लिए वह 'हीर कनी' है, जिसमें से अनुभव और युग-जीवन की नवीन रश्मियाँ फूटती हैं। गुप्त जी ने उर्मिला का चित्रण अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है। परम्परागत विरह-वर्णन की प्रणाली, ऋतु-वर्णन आदि को स्वीकारने के बाद भी कवि ने जिस मौलिक दृष्टि से वर्णन किया है, वह सर्वथा युगान्तरकारी है। उर्मिला की मनःस्थिति का कवि ने सूक्ष्म चित्रांकन किया है। जो आधुनिक नारी-मनोविज्ञान पर आधारित है, वह



बैठे-ठाले की कल्पना नहीं। उमिला की समस्या ही इतनी कष्ट है कि उससे सहज ही पाठक द्रवित हो उठता है—

मैं पिजड़े में पड़ी हुई हूँ किन्तु खुला है द्वार भी

.....

सुध बुध हर ली, किन्तु दिया है काल ज्ञान विचार भी।<sup>१</sup>

कर्त्तव्य और भावना का यह भीषण द्वन्द्व ही उसकी मनोव्यथा का मूल कारण है। सीता का कथन 'मिला न वन ही न भवन ही तुझको' इस तथ्य को और स्पष्ट करता है। कर्त्तव्य की वेदी पर उमिला अपने जीवन के मधुरतम अंश को बलिदान कर देती है। एक ओर उसकी मनोव्यथा उसे प्रिय से मिलने, वन में जाने को प्रेरित करती है, तो दूसरी ओर उसका कर्त्तव्य और आदर्श उसे रोकता है।<sup>२</sup> वह निःसहाय होकर कष्ट शब्दों में पूछती है—'ऊषा-सी आयी जग में, सन्ध्या सी क्या जाऊँ' किन्तु उसका आत्माभिमान तभी उसे विचलित होने से रोकता है। वह अपनी दीन अवस्था एवं अपने स्वाभिमान को प्रकट करते हुए कहती है—'दैव्य से न दबूँ कभी, वह दीन मैं'।<sup>३</sup> वह लक्ष्मण की विवशता को भली-भाँति जानती है। अपने आत्म-संयम और त्याग से वह उसको प्रोत्साहित ही करना चाहती है। इसीलिए भेंट होने पर भी वह उससे कहती है—

मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी

मैं बाँध न लूंगी तुम्हें तजो भय भारी।<sup>४</sup>

त्याग की इस सहृदी भावना पर आधारित उमिला का यह विरह मार्मिक होते हुए भी साधारण विरह मात्र नहीं है। विरह की वेदना ने उसे सह-अस्तित्व विश्व-बन्धुत्व, सेवा-भावना आदि के अधिक निकट ला दिया है। उसकी संवेदना का स्वर मनुष्य तो मनुष्य, जड़ प्रकृति तक विस्तृत है।<sup>५</sup> वह परम्परागत नायिकाओं की भाँति प्राकृतिक तत्त्वों को कोसती-डाँटती नहीं है। उसके मन में ईर्ष्या की भावना का उदय नहीं होता। उसकी सहृदयता मकड़ी जैसे कीड़े-मकोड़े तक प्रवाहशील है।<sup>६</sup> गुप्तजी की कलात्मक अभिव्यञ्जना का पूर्ण परिचय उमिला के चित्रण में प्रस्तुत होता है। कवि ने जिस मौलिकता से प्रकृति के माध्यम से उमिला के विरह को अभिव्यजित किया है, वह अद्वितीय है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

१. साकेत, पृ० २७६।

२. वही०, पृ० ३२३।

३. वही०, पृ० ३०३।

४. वही पृ० २४६।

५. वही०, सर्ग ६।

६. वही०, सर्ग ६।



उर्मिला की मनोव्यथा का एक विराट् प्रकृति-साम्य देखिए—

तम फूट पड़ा, नहीं अटा  
यह ब्रह्माण्ड फटा, फटा, फटा<sup>१</sup>

इसके विपरीत प्रकृति-वैषम्य का एक चित्र प्रस्तुत है—

हाय ! न आया स्वप्न भी धीर गयी यह रात,  
सखि, उडगण भी उड़ चले, अब क्या गिनूं प्रभात ।<sup>२</sup>

उर्मिला की स्मृति बार-बार उसे व्यथित करती रहती है, इसका एक विराट् प्राकृतिक प्रतीक द्रष्टव्य है—

किसने मेरी स्मृति को बना दिया है निशीथ में मतवाला,  
नीलम के प्याले में बुद-बुद देकर उफन रही वह हवा ।<sup>३</sup>

उर्मिला का चित्रण भी कवि ने छायावादी सूक्ष्म चित्रांकन-पद्धति से किया है—

कुश देह, विभा भरी भरी  
धृति सूखी, स्मृति ही हरी हरी ।<sup>४</sup>

कवि ने चित्रण में सर्वत्र उर्मिला की चारित्रिक गरिमा को ध्यान में रखा है । उसकी प्रत्येक उक्ति में उसके चरित्र की गम्भीरता और कर्तव्यनिष्ठा की स्पष्ट झलक प्राप्त होती है । शिशिर ऋतु में वह शिशिर से वन में न जाने की प्रार्थना करती है, क्योंकि उसका प्रियतम वहाँ वास कर रहा है । शिशिर के वन में जाने से उसके प्रियतम को कोई कष्ट हो, यह वह नहीं सह सकती । एक ओर वह अपने आदर्श प्रेम को प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर वह अपनी दयनीय स्थिति को भी अभिव्यक्त करती है । इस प्रकार के चित्रण कवि की प्रतिभा-सम्पन्नता के ज्वलन्त उदाहरण हैं—

शिशिर, न फिर, गिरि-वन में,  
जितना मांगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में,  
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में ।<sup>५</sup>

### महाकाव्यत्व

इस प्रकार यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि 'साकेत' में महाकाव्योचित समस्त गुणों का समावेश हुआ है । कथानक एवं घटनाओं का सुगठित रूप, उद्देश्य की गरिमा, युग-जीवन की सभ्यता का समावेश, चरित्र-चित्रण की सफलता, नवीन अभिव्यञ्जना शैली एवं कौशल, अबाध प्रवाह, गत्यात्मकता एवं सरस प्रभावान्विति आदि उपयुक्त तत्त्वों को 'साकेत' में देखा जा सकता है । 'साकेत' निश्चय ही विवेच्य-काल का सर्वसम्पन्न एवं सफल महाकाव्य है ।

१. साकेत, सर्ग १०, पृ० ३२२ ।

२. वही०, सर्ग ६, पृ० २६५ ।

३. वही०, पृ० ३०१ ।

४. वही०, सर्ग १०, पृ० ३२१ ।

५. वही०, नवम सर्ग, पृ० २८७ ।



## खण्ड काव्य

खण्डकाव्य में जीवन की किसी घटना, किसी पात्र अथवा किसी भाव-विशेष का चित्रण समाख्यानमूलक ढंग से होता है। महाकाव्य की भांति इसमें कथानक का विस्तार अथवा अवान्तर कथाओं का समावेश नहीं होता। कथा में एकात्मक अन्विति का होना आवश्यक है। सुसम्बद्ध एवं सुगठित आरम्भ, विकास, चरम सीमा तथा निश्चित उद्देश्य इसके कथानक की विशेषताएँ हैं। इसमें गीतात्मकता, नाटकीयता, भावप्रवणता तथा तीव्रानुभूति आदि का समावेश भी होता है। वर्णन-विस्तार के स्थान पर इसमें भावात्मकता अधिक होती है। इसका आकार भी निश्चय ही महाकाव्य से लघु होता है। प्रायः इसकी रचना एक ही छन्द में होती है। संग संख्या अथवा संगवद्धता के नियम की भी कोई अनिवार्यता इसमें लागू नहीं होती।<sup>1</sup>

आलोच्य-काल में खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा, दोनों काव्य-धाराओं में खण्डकाव्यों की रचना हुई। खड़ी बोली में खण्डकाव्यों की संख्या अत्यधिक है। ब्रजभाषा में उल्लेखनीय खण्डकाव्य 'रत्नाकर' जी के 'गंगावतरण' और 'उद्धवशतक' काव्य हैं। यहाँ पर इन दो काव्यों के अतिरिक्त खड़ी बोली के खण्डकाव्यों में से प्रतिनिधि खण्डकाव्यों—'जयद्रथ वध', 'मौर्य विजय', 'मिलन', 'पथिक', 'ग्रन्थि' का समग्र विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा। अन्य खण्डकाव्यों की प्रवृत्ति प्रायः इन्हीं खण्डकाव्यों की परम्परा में विकसित हुई।

## खड़ी बोली के खण्ड काव्य

### (१) वस्तु-विन्यास

उपर्युक्त खड़ी बोली के खण्डकाव्यों के कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं काल्पनिक, तीनों प्रकार के हैं। 'जयद्रथ वध' का कथानक महाभारत के जयद्रथ-वध प्रसंग पर, तो 'मौर्य विजय' की कथा ऐतिहासिक चन्द्रगुप्त मौर्य तथा यूनानी राजा सिल्युकस के भारत-आक्रमण पर आधारित है। अन्य शेष काव्य कल्पित कथानकों पर आधारित हैं। 'जयद्रथ वध' इस युग का सर्वाधिक प्रिय खण्डकाव्य है। इसकी कथा सुचिन्तित एवं सुगठित है। कथानक का विस्तार रोचक ढंग से हुआ है। इस काव्य की कथा में आरम्भ, विकास, चरम सीमा तथा उद्देश्य-प्राप्ति की चारों विकास-स्थितियों का सम्यक् निर्वाह हुआ है। प्रायः अन्य सभी खण्डकाव्यों में इस क्रम को अपनाने के सफल प्रयास किये गये हैं किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से वे इतने सफल खण्डकाव्य नहीं हैं। 'मिलन' और 'पथिक' दोनों की कथाएँ प्रेम और राष्ट्रीय भावना के समन्वित आधार पर विकसित हुई हैं। दोनों में कवि के प्रकृति-चित्रण की प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ है। 'ग्रन्थि' को आत्मपरक खण्डकाव्य



कहा जा सकता है। इसमें कथा-सूत्र अत्यधिक सूक्ष्म और विरहाकुल भावोद्रेक का संगुम्फन अधिक हुआ है। घटनाओं के विकास-क्रम की दृष्टि से 'जयद्रथ वध' तथा 'मौर्य विजय' की घटनाएँ स्पष्ट एवं मूर्त्त हैं। अतः इनमें कवियों ने वर्णनात्मकता की ओर अधिक ध्यान न देकर मुख्यतया कथा के प्रवाह और उसकी अबाध गति को ही ध्यान में रखा है। यों भी खण्डकाव्यों में महाकाव्योचित वर्णनात्मकता सम्भव नहीं होती। कवियों ने पात्रों के मनोभावों का चित्रण करने के प्रयास भी किये हैं। 'जयद्रथ वध' में कवि ने अभिमन्यु, उत्तरा, सुभद्रा, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि की मनःस्थितियों का सुन्दर वर्णन किया है। पुत्र-मृत्यु पर अर्जुन के क्रोध और जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है।<sup>१</sup> 'मौर्य विजय' में राष्ट्र-रक्षा हेतु कटिबद्ध चन्द्रगुप्त तथा उसकी सेना के उत्साह का चित्रण गुप्त जी के अनुज ने भी सुन्दर ढंग से किया है।<sup>२</sup>

रामनरेश त्रिपाठी के दोनों खण्डकाव्यों की घटनाओं का विकास सम्यक् रूप से हुआ है। 'मिलन' के युवक और विजया का आदर्श देश-प्रेम कवि ने जिन घटनाओं के माध्यम से चरम सीमा तक पहुँचाया है, वे घटनाएँ सुचिन्तित हैं। 'पथिक और पथिक-प्रिया' के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण 'जयद्रथ-वध' और 'मौर्य विजय' के छात्रों का विकसित रूप है। इन दोनों खण्डकाव्यों में खड़ी बोली के भाव-सौन्दर्य और सूक्ष्म प्रकृति-चित्रांकन की सफलता का परिचय सहज ही प्राप्त होता है। 'मिलन' में पति-पत्नी के बीच हिंसा और अहिंसा का वाद-विवाद भी सुन्दर बन पड़ा है। त्रिपाठी जी के इस काव्य पर गान्धीवाद का प्रभाव नहीं है, जैसा कि 'पथिक' में देखा जा सकता है। काव्य का नायक अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति के पक्ष में है। उसका उद्देश्य देश की समस्त जनता को जगाना है। किसान, मजदूर तथा सामान्य जनता-जनार्दन की अपार शक्ति को लेकर ही अन्यायी राजा का अन्त हो सकता है। त्रिपाठी जी ने इस काव्य में प्रकृति के सुन्दर वर्णन भी प्रस्तुत किये हैं, किन्तु उनसे कथा के प्रवाह और विकास में बाधा उत्पन्न नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल ही दरिद्र जनता के दुःख और उनकी दयनीय अवस्था का भी चित्रण मार्मिक ढंग से किया गया है। इन चित्रणों में छायावादी काव्य की सूक्ष्मता और कलात्मकता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।<sup>३</sup> इस चित्रात्मकता, अमूर्त्त-विधान तथा

१. जयद्रथ वध, पृ० ३२-३४।

२. मौर्य विजय, पृ० १२ आदि।

३. मिलन : रामनरेश त्रिपाठी, साहित्यभवन, प्रयाग, १९७४ वि०; पृ० २४।



सूक्ष्म चित्रांकन का विकास आगे 'ग्रन्थि' आदि काव्यों में विशेष रूप से देखा जा सकता है। 'पथिक' असहयोग आन्दोलन से प्रेरित खण्डकाव्य है। गान्धी-वाद का पूर्ण प्रभाव इस काव्य में देखा जा सकता है। प्रकृति का प्रेम 'पथिक' को प्रिया, देश एवं समाज से विमुक्त कराता है। 'पथिक' का मन प्रकृति की विविध रूपात्मकता और चेतन-अचेतन सत्ता में ही लीन होना चाहता है। कवि ने इस काव्य का प्रारम्भ भी नाटकीय ढंग से प्रकृति-चित्रण के माध्यम से किया है—

राग-रथी, रवि-राग-पथी अविराग-विनोद-वसेरा।

प्रकृति-भवन के सब विभवों से सुन्दर सरस सवेरा।

एक दिवस अति मुदित उदधि के बीच-विचुम्बित तीरे :

सुख की भाँति मिला प्राची से आ कर धीरे-धीरे।<sup>१</sup>

इस भव्य पृष्ठभूमि में कवि जब पथिक-प्रिया का चित्रण करता है तो वह और अधिक प्रभावोत्पादक बन पड़ता है। चित्रण में नवीन सौन्दर्य-भावना का परिचय भी स्पष्ट है—

कवि के स्वप्न-समान विश्व के विस्मय-सी अभिरामा।

सिन्धु-गोद में लय से पहले तरंगिता सरिता-सी।<sup>२</sup>

यह चित्रण छायावादी अमूर्त-विधान का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। साधु से प्रबोधित हो पथिक देश-सेवा और देशोद्धार के लिए प्रवृत्त होकर गान्धी जी की नीति का अनुसरण करता हुआ देश को अन्यायी राजा के चंगुल से छुड़वाता है। काव्य के अन्त में कवि ने अनेक घटनाओं—पथिक-प्रिया की मृत्यु, पथिक-पुत्र की हत्या, पथिक-घर का जलना, जनता का आक्रोश, राजा और उसके मंत्रियों की मनःस्थिति आदि को समुचित ढंग से निभाया है। यह काव्य आधुनिक युग-जीवन के अत्यन्त निकट है। कवि ने प्रकारान्तर से तत्कालीन विदेशी राज्यसत्ता की विभिन्न नीतियों का उद्घाटन भी किया है। राजा की शिक्षा-नीति का चित्रण देखिए कितना सटीक है—

'प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो शक्ति जाये मिट मन की'

शिक्षा का उद्देश्य यही है, नीति यही शासन की।

'चरितहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी'

है यह भाव निरंकुश नृप का 'सदा अनीति सहेगी'।<sup>३</sup>

संवादात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में इस कथन की प्रभावोत्पादकता में नाटकीयता का समावेश हुआ है। संक्षेप में ये दोनों खण्डकाव्य सफल कहे जा सकते हैं।

१. पथिक, पृ० १।

२. वही, पृ० २।

३. वही०, पृ० ४३।



## ३२४ | द्विवेदीयुगीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन

‘ग्रन्थि’ खण्डकाव्य का स्वरूप इन सबसे भिन्न है। ‘पथिक’ एवं ‘मिलन’ का कथानक यदि विचारात्मक है तो इसका कथानक भावात्मक है। इसका कथानक अत्यन्त सूक्ष्म है। इसकी घटनाओं के बाह्य स्वरूप का भी विशेष महत्त्व नहीं है। यह काव्य एक प्रेम वंचित भावुक हृदय की व्यथा और व्याकुलता का काव्य है। प्रसाद जी के ‘प्रेम पथिक’ का कथानक भी निश्चय ही काल्पनिक एवं सूक्ष्म है, किन्तु उद्देश्य की उदात्तता से उसमें विशेष प्रभावान्विति का समावेश हुआ है। उनका प्रेम लौकिक धरातल तथा व्यक्ति-प्रेम से विश्व-प्रेम की ओर उन्मुख है। आत्म-विस्तार की जो ध्वनि उस काव्य में है, उससे उसमें प्रबन्धत्व के गुण स्थायी प्रभाव डालने में अधिक समर्थ होते हैं। ‘ग्रन्थि’ में यह सम्भव नहीं हो पाया है। इसमें घटनाओं का कोई स्पष्ट तारतम्य नहीं है। इसकी घटनाओं में संयोग का ही स्वर प्रधान है। संयोग से नायक की नौका डूबती है तो संयोग से एक सुन्दरी से उसकी भेंट होती है। इसी प्रकार प्रेम का उद्भव होता है तो विरह की ज्वाला से नायक का मन भी पीड़ित हो उठता है। नायक के जीवन के एक अंग की कथा होने से इसको खण्डकाव्य कहा जा सकता है किन्तु कथानक की दृष्टि से इसका स्वरूप अत्यन्त क्षीण और असम्बद्ध है और ‘प्रेम पथिक’ की सी उद्देश्य की गरिमा का इसमें अभाव है। ‘ग्रन्थि’ की विशेषता कवि की चित्रांकन-क्षमता है। संयोग और वियोग दोनों का चित्रण कवि ने जिस नवीन पद्धति से किया, वह छायावादी काव्य की सुस्पष्ट भूमिका है। मनोवेगों के चित्रण, अप्रस्तुत विधान तथा प्रकृति का सूक्ष्म अन्वेषण इस काव्य के प्रधान गुण हैं। उदाहरण के लिए नायक की हर्षोन्मत्त भावनाओं का चित्रण देखिए कवि ने किस प्रकार किया है—

इन्दु की छबि में, तिमिर के गर्भ में,  
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में,  
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल  
सुमन की स्मित में, लता के अधर में।  
निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही  
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा,  
एक पल, निज स्नेह-श्यामल दृष्टि से  
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।

इस प्रकार ‘ग्रन्थि’ में चित्रमयता, लाक्षणिकता और अभिव्यंजना की नवीन शैली का समावेश हुआ।

### (२) प्रवाह और गति

संक्षेप में द्विवेदीयुगीन इन खण्डकाव्यों में प्रायः कथानक और घटनाओं का विकास समुचित और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। वर्णनात्मकता



के साथ ही साथ इन खण्डकाव्यों में भावनाओं और मनोवेगों के चित्रांकन की प्रवृत्ति का सम्यक् विकास देखा जा सकता है। भावात्मकता के प्रवेश के कारण इन खण्डकाव्यों में विशेष गति और लय का भी समावेश हुआ। 'जयद्रथ वध' के प्रवाह का उल्लेख किया जा चुका है। हरिगीतिका छन्द में रचित इस काव्य की गति आलोच्य-युग के सभी काव्यों के लिए प्रेरणा का विषय रही। तथापि 'मौर्य विजय' में इस गति का आंशिक अभाव देखा जा सकता है। 'मिलन' और 'पथिक' में भावी गीतात्मकता के स्वरूप का पूर्वाभास प्राप्त होता है। वस्तुतः इन दोनों खण्डकाव्यों में भावात्मक स्थलों के आधिक्य के कारण गीतात्मकता के लिए विशेष स्थान था। 'पथिक' के कतिपय प्रकृति-चित्रणों में विशेष नाद-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है, किन्तु ऐसे स्थलों की संख्या अधिक नहीं है। 'ग्रन्थि' खण्डकाव्य भावात्मकता पर ही आधारित है। अतः कवि ने नवीन चित्रण-प्रणाली और अलंकरण के माध्यम से काव्य में लय और गति का प्रयोग किया है। शब्दों की ध्वन्यर्थ व्यंजना के प्रति भी कवि सचेष्ट देखा जा सकता है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि 'जयद्रथ वध' से 'ग्रन्थि' तक आलोच्य-काल के खण्डकाव्यों में प्रौढ़ता, संगीतात्मकता, भावात्मकता, नाटकीयता तथा विशिष्ट प्रभावान्विति का समावेश हुआ। इन गुणों का विकास तत्कालीन अन्य खण्डकाव्यों—'किसान', 'अनाथ', 'प्रेम पथिक' आदि तथा आगे के खण्डकाव्यों—'पंचवटी' आदि में देखा जा सकता है।

### (३) रूढ़ि-त्याग

बाह्याकार विषयक रूढ़ियों—नमस्क्रिया, मंगलाचरण, सर्ग-विभाजन, छन्द-विधान आदि के सम्बन्ध में कवियों ने शास्त्रीय वन्धनों को अस्वीकार करते हुए स्वच्छन्दता का परिचय दिया है। 'जयद्रथ वध' में यदि सात सर्ग हैं तो 'ग्रन्थि' सर्ग-विहीन खण्डकाव्य है। इसी प्रकार 'मिलन' परिच्छेदों में विभाजित है तो 'पथिक' सर्गों में। 'जयद्रथ वध' में हरिगीतिका छन्द का तुकान्त प्रयोग हुआ है तो 'ग्रन्थि' में पीयूषवर्षी का भिन्न तुकान्त प्रयोग। इसी प्रकार सरसी और सार छन्द में क्रमशः 'मिलन' और 'पथिक' की रचना हुई है। नामकरण की दृष्टि से भी कवियों ने कहीं प्रमुख घटना—'जयद्रथ वध', 'मौर्य विजय', 'मिलन'; कहीं प्रमुख पात्र—'पथिक'; तो कहीं भूल भाव—'ग्रन्थि' का आधार ग्रहण किया है। अतः यह स्पष्ट है कि कवियों ने सामान्यतः परम्परागत रूढ़ियों को स्वीकार नहीं किया, अपितु सुविधानुसार अपनी इच्छा का अनुसरण करते हुए उपयुक्त प्रणालियों का अवलम्बन किया।



### ब्रजभाषा के खण्डकाव्य

रत्नाकर जी का 'गंगावतरण' ब्रजभाषा के खण्डकाव्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उल्लेख्य कृति है। 'रत्नाकर' जी का 'गंगावतरण' काव्य, खण्डकाव्य के आकार की दृष्टि से निश्चय ही बृहद् प्रबन्धात्मक आकार लिये हुए है। इसका कथा-सूत्र विशद् है किन्तु उसमें महाकाव्यात्मक समग्रता नहीं है। सगर-पुत्रों के उद्धार के लिए गंगा का पृथ्वी पर अवतरण एक घटना होने के कारण इसे खण्डकाव्य ही कहा जा सकता है, भले ही इसका आकार बृहद् हो। भगीरथ की तपस्या तथा गंगा के अवतरण एवं उसके माहात्म्य की यह कथा प्रायः वर्णनात्मक ही है। कथा के अधिकांश प्रसंग शिथिल ही कहे जा सकते हैं, तथापि कवि-प्रतिभा के दर्शन यत्र-तत्र मिल जाते हैं। गंगा-अवतरण के अलौकिक दृश्यों को कवि ने अत्यन्त मनोयोग से चित्रित किया है। इनमें चित्रमयता, नाद-सौन्दर्य तथा गति एवं प्रवाह के विशेष दर्शन होते हैं। 'रत्नाकर' जी ने मनोभावों का चित्रण भी कहीं-कहीं सुन्दर किया है। साठ हजार पुत्रों की एक साथ मृत्यु का समाचार जब महाराज सगर को प्राप्त हुआ तो उनका शोक-विह्वल चित्र अत्यन्त स्वाभाविक दीखता है—

भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग विराये ।

बज्राघात सहस्र साठ संगहि सिर धाये ॥

कद्यौ कण्ठ नहि वैन न नैननि आंसु प्रकास्यौ ।

आनन भाव-विहीन गाँव ऊजड़ लौ भास्यौ ॥<sup>१</sup>

इसी प्रकार 'गंगावतरण' के समय शिवजी की आतुरता तथा उनके मनोभावों का सुन्दर चित्रण किया गया है। शिवजी को क्योंकि गंगा को अपनी जटाओं में स्थान देना है और गंगा जैसी वेगवती अलौकिक नदी के भार को सहन करना है अतः उसके लिए अनुकूल तैयारियाँ भी करनी अपेक्षित हैं। इसीलिए शिवजी—

आतुर चले उमंग-भरे भंगहु नहि छानी ।<sup>२</sup>

और—

बाधम्बर को कलित कच्छ कटि-तट सौ नाध्यौ ।

सेसनाग को नागबन्ध तापर कसि बाँध्यौ ॥

व्याल-भाल सौं भाल बाल-चंदहि दूढ़ कीन्यौ ।

जटा-जाल को झाल-व्यूह गह्वर करि लीन्यौ ॥

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण), पृ० २३१ ।

२. वही०, पृ० २४५ ।



मुंडमाल यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए ।

गाड़ि मूल सूंगी डमरू तापर लटकाए ॥

बर बाहुनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि ।

बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय भिनि ॥<sup>१</sup>

कथा के इस स्वरूप को 'रत्नाकर' जी ने वाल्मीकि 'रामायण' तथा 'ब्रह्म-वैवर्त' पुराण' आदि से लिया है।<sup>२</sup> कथानक की शिथिलता अन्तिम पाँच सर्गों में अधिकांशतः परिलक्षित होती है। नवम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक कथा का अनावश्यक विस्तार खटकता है। कदाचित् कवि ने गंगा के महत्त्व आदि के चित्रण के लिए ही ऐसा किया हो, तथापि खण्डकाव्य के दृष्टिकोण से कवि को इसमें सफलता नहीं मिली है।

खड़ी बोली की कथात्मक कविताएँ

लाला भगवानदीन की रचना 'वीर-पंचरत्न' की प्रायः सभी रचनाओं में कथात्मक तत्त्व प्रधान तथा गीतात्मकता और सामिकता गौण है। कवि का दृष्टिकोण आदर्श की स्थापना की ओर अधिक उन्मुख है, कलात्मक सौष्ठव की ओर कम। इसीलिए यह आख्यानक गीति अथवा बैलेड नहीं माना जाता<sup>३</sup> क्योंकि इनमें भावात्मकता की अपेक्षा वस्तुपरक दृष्टि को प्रधानता दी गयी है। आख्यानक गीति में भावना प्रधान होती है तथा घटना और पात्र उसके माध्यम। इसके विपरीत कथात्मक-कविता में वृत्त-वर्णन प्रधान होता है और भावना गौण।<sup>४</sup> इस तथ्य को 'रंग में भंग' के एक उद्धरण से स्पष्ट किया जा सकता है—लालसिंह के भरसना भरे कथन से लज्जित चित्तौड़ के राज-कवि 'बारू' ने अपने आप अपना सिर काट दिया—

एक छोटी-सी रुधिर की उष्ण धारा वह गई,

और हाहाकार करती समिति विस्मित रह गई।

झटित खण्डित मुण्ड उनका भू-लुठित होने लगा,

शूल-मूलक भूल मानों धूल में घोने लगा।<sup>५</sup>

घटना का यह चित्रण वर्णनात्मक होने के कारण प्रभावोत्पादक नहीं कहा

१. रत्नाकर ग्रन्थावली (गंगावतरण), पृ० २५१।

२. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला—डॉ० विश्वम्भरनाथ भट्ट, पृ० १७५-७८।

३. 'वीर पंचरत्न' की भूमिका में कवि ने स्वयं इन रचनाओं को 'कविताएँ' ही कहा है।

४. आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएँ : डॉ० निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १९६३ ई०, पृ० ३१५।

५. रंग में भंग, पृ० १६।



जा सकता। इसका स्वरूप कथापरक अधिक भावात्मक कम ही है।

लाला भगवानदीन ने 'वीर-पंचरत्न' में 'वीर-बालक' के अन्तर्गत राम-लक्ष्मण, राम-कृष्ण, लव-कुश, अभिमन्यु, बभ्रुबाहन, आल्हा-ऊदल आदि; 'वीर क्षत्राणी' के अन्तर्गत तारा, पद्मा, कलावती, वीरा बाई, किरण देवी, वीरमती वा वीरा, दुर्गावती; 'वीर-माता' के अन्तर्गत सुमित्रा, कुन्ती, रेणुका आदि तथा 'वीर-पत्नी' के अन्तर्गत रायमती, जसमा, नीला तथा कमला आदि की कथाओं का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस रचना में 'वीर प्रताप' में महाराणा प्रताप के ओजस्वी जीवन की कथा को वर्णित किया। इन रचनाओं में कहीं-कहीं पर कवि ने वीर रस का परिपाक सुन्दर ढँग से किया है। उदाहरण के लिए नीलदेवी की वीरता का उद्धरण प्रस्तुत है—

खीचि कटारी निज चोली से, झपटि शरीरहि दिया पछार।

सब के देखत आनन-फानन, छाती में धँस गयी कटार ॥

छाती फार रक्त से रंजित मुख में दिया कटारहि डाल।

बोली 'इसका बोसा लेकर निज मन का अरमान निकाल' ॥<sup>१</sup>

भैथिलीशरण गुप्त की 'विकट भट', 'शक्ति', 'गुरुकुल' आदि रचनाओं को इस प्रकार की कविताओं का विकसित रूप कहा जा सकता है। इनमें नाटकीयता तथा यथासंभव प्रवाह एवं गति का भी समावेश हुआ है। यही कारण है कि उनको आख्यानक गीति भी कहा गया है।<sup>२</sup> 'विकट भट' में एक क्षत्रिय वंश की तीन पीढ़ियों तक के स्वाभिमान और क्षात्र-धर्म की उदात्तता का वर्णन किया गया है, तो 'शक्ति' महिषासुर-वध पर आधारित है। इन दोनों रचनाओं में नाटकीयता का सुन्दर स्वरूप देखा जा सकता है, साथ ही भाषा की स्वच्छता एवं प्रवाहमयता भी द्रष्टव्य है—

ओठों से हटा के रिक्त स्वर्ण-सुरा-पात्र को,

सहसा विजयसिंह राजा जोधपुर के,

पोकरण वाले सरदार देवीसिंह से

खास दरबार में यों बोले—'देवीसिंह जी,

कोई यदि रूठ जाय मुझसे तो क्या करें?'<sup>३</sup>

बार-बार पूछे जाने पर देवीसिंह का क्षत्रीत्व एक साथ उबल पड़ता है, तो वह कह उठता है—

१. वीर-पंचरत्न, पृ० ३३२।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० ६८।

३. विकट भट, पृ० ३।



‘जोधपुर की तो फिर बात ही क्या, वह तो  
रहता है मेरी कटारी की पतली में ही,  
मैं यों ‘नवकोटी मारवाड’ को उलट दूँ’  
कहते हुए यों ढाल सामने जो रखी थी,  
बायें हाथ से उन्होंने उलटी पटक दी ?’

भावों के नाटकीय प्रस्तुतीकरण से ये रचनाएँ विशेष रोचक बनी हैं। गति और प्रवाह को पुनरावृत्ति अलंकार के माध्यम से गुरुकुल में ‘गुरु तेगबहादुर’ की आवृत्ति में देखा जा सकता है। कहा जा सकता है कि आख्यानक गीति ‘झाँसी की रानी’ निश्चय ही इसी परम्परा का विकसित रूप है। लोचनप्रसाद पाण्डेय की ‘मेवाड़ गाथा’ में भी इसी प्रकार की वीर-रसात्मक कथात्मक कविताओं का समावेश हुआ है। संक्षेप में कहा जाये तो इस प्रकार की कविताओं का प्रारम्भ वृत्त-वर्णन से प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर इनमें नाटकीयता तथा गीतात्मकता का भी प्रवेश हुआ। तथापि आख्यानक गीति के अनुकूल गीतात्मकता और भावात्मकता का प्रवेश इन कविताओं में पूर्णरूपेण सम्भव नहीं हो पाया।

कथात्मक कविताओं का एक और रूप ‘पंचतंत्र’ आदि से ली गयी उप-देशात्मक कथाओं पर आधारित कविताएँ हैं। इनमें उल्लेखनीय कविताएँ कवि ‘शंकर’ की ‘वायस-विजय’, महावीरप्रसाद द्विवेदी की ‘जाम्बुकी-न्याय’ तथा रूपनारायण पाण्डेय की ‘वनविहंगम’ हैं। ये कथाएँ भी वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत की गयी हैं तथा इनके मूल में भी उपदेश-ग्रहण की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

खड़ी बोली काव्य-धारा में कथात्मक कविताओं का एक अन्य स्वरूप भी प्राप्त होता है। इनमें तत्कालीन समस्याओं, सामाजिक छद्मप्रस्तुति, राष्ट्रीय जागरण, देश-प्रेम, सांस्कृतिक गरिमा आदि को विषय बनाकर कविताएँ लिखी जाती थीं। इनमें कथा-सूत्र कहीं स्पष्ट तो कहीं अत्यन्त क्षीण हुआ करता था। कहीं-कहीं प्रतीकात्मक ढँग से भी कवि अपने उद्देश्य की सिद्धि करता था। जैसे कवि ‘पूर्ण’ की रचना ‘वसन्त वियोग’ का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कवि ने एक भव्य उद्यान की वासंतिक शोभा और पतझड़ से उत्पन्न उसकी दारुण अवस्था का मार्मिक वर्णन कथात्मक ढँग से किया है। यह उद्यान, इसकी वासंतिक छटा तथा इसके पतझड़ की करुण कथा क्रमशः भारत, भारत की सांस्कृतिक गरिमा तथा उसके ह्रास से उत्पन्न भारत की करुणावस्था



के प्रतीक हैं। राष्ट्रीय नवोन्मेष से प्रेरित सूक्ष्म कथा-तत्त्व के लिए गुप्त जी की 'भारत-भारती' रचना उल्लेखनीय है। इसमें प्रायः छन्दों में क्षीण कथात्मक सम्बन्ध है। कवि ने भारतीय सांस्कृतिक गरिमा, इतिहास की भव्यता तथा तत्कालीन पतन को एक निश्चित वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। 'भुसहुसे हाली' से प्रेरणा प्राप्त कर इस लम्बे कथात्मक काव्य का निर्माण किया गया। उदाहरण के लिए एक छन्द प्रस्तुत है—

अबला जनों का आत्म-बल संसार में वह था नया,  
चाहा उन्होंने तो अधिक क्या, रवि-उदय भी रुक गया ?  
जिस क्षुब्ध मुनि की दृष्टि से जल का विहग भू पर गिरा  
वह भी सती के तेज-सम्मुख रह गया निष्प्रभ निरा ।<sup>१</sup>

इस छन्द में एक साथ दो पौराणिक कथाओं का समावेश हुआ है। इसी प्रकार की एक लम्बी कथात्मक कविता रामनरेश त्रिपाठी की 'विधवा-दर्पण' है। इसमें राष्ट्रीयता, आदर्श दाम्पत्य जीवन, कर्तव्य-परायणता आदि का प्रतिपादन एक दम्पति की सरस एवं मार्मिक कथा के माध्यम से किया गया है। कवि के स्थान पर इसमें 'दर्पण' वाचक का काम करता है। कथा में नाटकीयता, सूक्ष्म चित्रांकनता एवं प्रवाह का विलक्षण समावेश हुआ है।<sup>२</sup> इसी प्रकार 'शंकर' कवि की 'अविद्यानन्द का व्याख्यान' कविता सामाजिक कुरीतियों और तत्कालीन रुढ़िग्रस्त समाज पर एक कथात्मक व्यंग्य है।

शिल्प की दृष्टि से प्रायः इन सभी कविताओं की शैली वर्णनात्मक एवं वस्तुनिष्ठ रही। अधिकांश कविताओं का कथा-सूत्र सुस्पष्ट एवं प्रख्यात रहा। कवियों ने यथासंभव प्रवाह और गति लाने के भी प्रयास किये। 'विकट-भट', 'शक्ति', 'भारत-भारती' आदि रचनाओं के अतिरिक्त प्रायः सभी रचनाओं का आकार अधिक विशद नहीं है। कविताओं में प्रायः अलंकरण एवं चमत्कार की प्रवृत्ति का अभाव-सा दिखता है। छन्द की दृष्टि से इनमें मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया। लाला भगवानदीन ने 'वीर-पंचरत्न' में उर्दू की बहरों का आश्रय लिया।

**ब्रजभाषा की कथात्मक-कविताएँ**

शैली, आकार, स्वरूप एवं शिल्प की दृष्टि से ब्रजभाषा में रचित कथात्मक कविताएँ खड़ी बोली की कथात्मक कविताओं से भिन्न नहीं। प्रारम्भ में खड़ी बोली के समान इसमें भी पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं पर कविताओं

१. भारत-भारती, पृ० १४।

२. मानसी : संग्रहकर्ता—श्री गोपाल नवेडिया, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, १९३४ ई०, पृ० ५६।



की रचना हुई। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की 'वामन', 'शकुन्तला जन्म', 'रम्भा शुक संवाद', 'लक्ष्मी', 'रामचन्द्र जी का धनुर्विद्या-शिक्षण' आदि कविताएँ इसी कोटि की हैं। कवि 'पूर्ण' की 'राम-रावण-संग्राम' कथात्मक कविता भी उल्लेखनीय है। वस्तुतः 'सरस्वती' के संपादक की प्रेरणा से ही इन 'कथात्मक-चित्र-कविताओं' का प्रणयन हुआ था। खड़ी बोली की कथात्मक कविताओं की भाँति प्रायः इन रचनाओं का उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक तत्त्वों की सरस अभिव्यक्ति अथवा किसी उपदेश एवं आदर्श की व्यंजना रहता था।

कवि रामचन्द्र शुक्ल की 'शिशिर पथिक' एक उच्चकोटि की कथात्मक कविता है। इसमें कथा का उद्देश्य समाज-सापेक्ष प्रेम, तथा कर्तव्य-निष्ठा का प्रतिपादन है। कथा का वर्णन नाटकीय शैली तथा संवादात्मक ढँग से किया गया है। वर्णनों की सूक्ष्मता और चित्रांकनता के कई सुन्दर स्थल इसमें प्राप्त होते हैं। प्रकृति के कतिपय संश्लिष्ट चित्र भी इस कविता में द्रष्टव्य हैं। उपदेश-ग्रहण की दृष्टि से सूक्ष्म कथात्मक सूत्र लिये 'कविरत्न' की 'सरिता' पर रचित कविता भी उल्लेखनीय है। 'सरिता' की आत्मकथा के माध्यम से कवि ने जीवन की निस्तारता का उपदेश दिया है। 'कविरत्न' जी की सर्वाधिक उल्लेखनीय कथात्मक-कविता 'भ्रमरदूत' है। यद्यपि यह रचना अपूर्ण है, तथापि इसमें कथात्मक-कविता का स्वरूप सुरक्षित है। प्रसिद्ध 'भ्रमरदूत' प्रसंग पर आधारित इस कविता में कृष्ण-विरह से विदग्ध माता यशोदा तथा ब्रजवासियों की करुणावस्था की कथा का चित्रण किया गया है। तत्कालीन राष्ट्रीयता और समाज-सुधार की भावना का इस कथा पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। कवि ने 'भ्रमरदूत' के परम्परागत पात्रों के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप में तत्कालीन जन-जागरण और सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का उद्घाटन किया है। माता यशोदा तो भारतमाता के स्वरूप में विलख-विलख कर भारतीय ह्रास की दारुण कथा का वर्णन गोप-गोपिकाओं तथा ब्रज के प्रतीक बनाकर करती हैं। कथ्य की नवीनता और वर्णन की विदग्धता एवं मार्मिकता से इस कथा को ब्रजभाषा काव्य में विशेष स्थान प्राप्त है।

मात्र कथा बहने के उद्देश्य से भी ब्रजभाषा में कविताओं की रचना हुई। प्रसाद जी की 'अयोध्या का उद्धार', 'वन मिलन' तथा 'प्रेम राज्य' इसी कोटि की कविताएँ हैं। 'अयोध्या का उद्धार' में कुश द्वारा उजड़ी अयोध्या के फिर से बसाये जाने की कथा, 'वन-मिलन' में वियोग की लम्बी अवधि के बाद शकुन्तला और दुष्यन्त के मिलन की कथा तथा 'प्रेम राज्य' में विजयनगर के वीर राजा सूर्यनेतु, उसके कुचाली सेनापति, उसकी मृत्यु, उसके पुत्र का एक भील के यहाँ रहने तथा भील-पुत्री ललिता से उसके विवाह आदि की कथा है। इन कथाओं में वर्णनात्मकता होते हुए भी एक विशिष्टता यह है कि



अधिकांश कथा संवादात्मक ढंग से प्रस्तुत की गयी है। इससे कथा में नाटकीय रोचकता का समावेश हुआ है। अंतिम कविता में प्रसाद जी ने देश-प्रेम का एक गीत भी कथा के बीच में रखा है। यह निश्चय ही इस कथात्मक कविता की मौलिकता है। इन तीनों कविताओं में 'प्रकृति-चित्रण' भी कवि ने यथेष्ट मात्रा में किया है, जिसमें कला और भाव की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय विशिष्टता नहीं है। चित्रण में प्रायः वस्तु-परिगणन की प्रवृत्ति का ही प्राधान्य है।<sup>१</sup> प्रसाद जी की अन्य कविताओं की सूक्ष्म चित्रांकनता का इन कविताओं में अभाव ही है।

इन कविताओं में 'शिशिर-पथिक', 'भ्रमरदूत' तथा 'प्रेम-राज्य' के अतिरिक्त शेष कविताओं का स्वरूप सीमित ही है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की कविताओं में प्रायः कथा का सूत्र चित्र में चित्रित पात्रों अथवा भावों तक ही सीमित रहा। यद्यपि उन्होंने कहीं-कहीं परम्परागत अलंकृत वर्णन का भी सहारा लिया तथापि इनमें रोचकता का प्रायः अभाव ही है। छन्द-वैविध्य की दृष्टि से भी इन कविताओं में किसी नवीन अथवा मौलिक प्रयोग के दर्शन नहीं होते। मात्रिक एवं वर्णिक दोनों छन्दों का प्रयोग इनमें किया गया। इन कथात्मक-कविताओं पर खड़ी बोली कथात्मक-कविताओं का स्पष्ट प्रभाव होते हुए भी इनकी रचना अधिक नहीं हुई। सम्भवतः ब्रजभाषा की मुक्तक प्रवृत्ति के कारण ही ऐसा हुआ हो।

### मुक्तक-काव्य

मुक्तक-काव्य में प्रबन्ध-काव्य की भाँति पूर्वापर सम्बन्ध की अनिवार्यता नहीं रहती है। मुक्तक स्वतः पूर्ण एवं स्व-अर्थ व्यंजक होते हैं। मुक्तक की विशेषता, संक्षिप्तता और निरपेक्ष सत्ता के अतिरिक्त सरसता भी होती है। इसमें समग्र जीवन अथवा जीवन के किसी खण्ड का चित्रण न होकर मात्र एक विशिष्ट स्थिति, भाव या विचार का ही चित्रण होता है। हिन्दी साहित्य में मुक्तक की परम्परा रीतिकाल में अत्यन्त प्रशस्त रूप में देखी जा सकती है। आलोच्य-युग की खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा काव्य-धाराओं में मुक्तकों की रचना प्रभूत मात्रा में हुई। वस्तुनिष्ठ एवं वर्णनात्मक मुक्तकों से आत्मपरक मुक्तकों की विकास-स्थिति इस काव्य में देखी जा सकती है।

### (१) खड़ी बोली के मुक्तक

भाषा के प्रारम्भिक प्रयोगात्मक प्रयास के वर्षों से ही खड़ी बोली काव्य में मुक्तकों की रचना प्रारम्भ हुई थी। तरकालीन सभी विषयों—'चींटी' से

१. चित्राधार ('वन-मिलन' एवं 'प्रेम-राज्य'), पृ० ६३, ६४, ७६, ८१, ८२ इत्यादि।



‘समुद्रपर्यन्त’ पर मुक्तकों की रचना हुई। गत अध्ययनों में विवेचित खड़ी बोली-काव्य के वर्ण विषयों एवं उसकी विचार-धाराओं एवं भावनाओं का वर्णन कवियों ने प्रायः मुक्तकों में किया। द्विवेदी-युग में ‘पूर्ण’, ‘हरिऔध’, मैथिली-शरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल ‘सनेही’, कामताप्रसाद गुरु, गोपालशरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट, नाथूराम शंकर शर्मा आदि सभी कवियों ने प्रकृति, मानव, देश, समाज, धर्म, भक्ति, नीति, ईश्वर, उपदेश, नख-शिख विषयक तथा अन्य आत्मपरक मुक्तकों की रचना की। प्रारम्भिक वर्षों में इन मुक्तकों का स्वरूप वर्णनात्मक ही रहा तथापि इनमें कहीं-कहीं अलंकृत रूपों के भी दर्शन होते हैं। ‘कविता-कलाप’ में संकलित गुप्त जी तथा ‘शंकर’ के कतिपय मुक्तक इस कोटि में आते हैं। कवि ‘पूर्ण’, कामताप्रसाद गुरु तथा स्वयं द्विवेदी जी ने भी इस प्रकार के अलंकृत मुक्तकों की रचना की थी किन्तु इन मुक्तकों की परम्परा का अधिक विकास नहीं हुआ।

मुक्तकों का एक और स्वरूप इस युग में ‘हरिऔध’ तथा ‘मनेही’ ने प्रस्तुत किया। इनमें बोलचाल तथा उर्दू-फारसी की शब्दावली के अतिरिक्त उर्दू बहरों के माध्यम से चमत्कारपूर्ण अभिव्यंजना का समावेश हुआ है। संक्षिप्त और चुटीली बात कहना इन मुक्तकों की विशेषता है। ‘हरिऔध’ के ‘चोखे-चौपदे’, ‘चुभते चौपदे’ तथा ‘त्रिशूल-तरंग’, ‘स्वतन्त्रता की झंकार’, ‘राष्ट्रीय वीणा’ आदि में संकलित ‘सनेही’ के अन्यान्य मुक्तकों में यह स्वरूप देखा जा सकता है। विषय की दृष्टि से इनमें सम-सामयिक विषयों की ही प्रमुखता है। कहीं-कहीं पर उपदेश, जीवन की निस्सारता, नीति आदि विषयों की भी समाविष्टि हुई है। इस प्रकार के एक मुक्तक का उदाहरण प्रस्तुत है—

लुग्री से छीन लो घर-बार जीवन प्राण धन मेरा।

ये आँखें फोड़कर सारा जला दो तन बतन मेरा ॥

हमारा बाग मिट्टी में मिला दो घूर कर डालो।

मेरे प्यारे खिलौने को भी चकनाचूर कर डालो ॥

हमें परवा नहीं, इसका न लेंगे बदला हम अपना।

अगर कुछ लेंगे बदले में तो लेंगे होमल्ल अपना ॥<sup>१</sup>

मुक्तकों का एक और रूप सूक्तियों और अन्योक्तियों का भी मिलता है। इस प्रकार के मुक्तकों की रचना रामचरित उपाध्याय ने ‘सूक्तिमुक्तावली’

१. स्वतन्त्रता की झंकार, संग्रहकर्ता—जीतमल लूणिया, हिन्दी साहित्य मन्दिर, बनारस १९२२ ई०, पृ० ४८।



में की थी। 'शंकर सर्वस्व', 'पूर्ण संग्रह', 'द्विवेदी-काव्य-माला' आदि ग्रन्थों में भी ऐसी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें प्रायः जीवन और जगत् के तथ्यों का निरूपण किया जाता था। इस प्रकार के मुक्तकों का कोई सुनिश्चित विकास आगे नहीं हुआ। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और कवि नाथूराम शंकर शर्मा ने क्रमशः वेदान्त तथा आर्यसमाजी विचार-धारा को भी मुक्तकों में अभिव्यक्ति दी। प्रायः इनका स्वरूप विश्लेषणात्मक, प्रशंसात्मक अथवा विचार-प्रधान ही रहता था। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का एक मुक्तक द्रष्टव्य है—

जो नाम रूपवाला घूँघट है मेरे मुख पर,  
देखो इसे हटाकर मेरी छटा अपार।  
है कीन प्राण प्यारा ! है कीन प्राण प्यारा !  
मैं ही रंगीला साईं, मैं ही छवीली दारा !  
होठों की लालिमा हूँ, केशों की कालिमा हूँ,  
हूँ अंग-अंग में ही शृंगार का सँवारा।

.....1

विचारप्रधान मुक्तकों के अतिरिक्त भावप्रधान मुक्तकों की भी यथेष्ट मात्रा में रचना होती रही। इन मुक्तकों में कवि की वैयक्तिकता का समावेश हुआ। आलोच्य-काव्य में 'पूर्ण', 'शंकर', मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त तथा 'हरिऔध' आदि ने भावप्रधान मुक्तकों की रचना की है। इन मुक्तकों में भक्ति-भावना, आत्म-निवेदन, ईश्वर से देशोद्धार की याचना, देश के गत गौरव का वर्णन तथा वर्तमान की दयनीय स्थिति की कष्टाभिव्यक्ति आदि का समावेश हुआ। उदाहरण के लिए कवि प्रसाद के एक भावप्रधान मुक्तक से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

विश्व के नीरव निर्जन में।

जब करता हूँ बेकल, चंचल, मानस को कुछ शांत,  
होती है कुछ ऐसी हलचल, तब होता है भ्रांत,  
भटकता है भ्रम के वन में,

विश्व के कुसुमित कानन में।

जब लेता हूँ आभारी हो, वल्लरियों से दान,  
कलियों की माला बन जाती, अलियों का हो गान,  
विकलता बढ़ती हिम-कन में,

विश्वपति, तेरे आँगन में।<sup>१</sup>

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १८१।

२. 'अव्यवस्थित' : जयशंकर प्रसाद, माधुरी, दिसम्बर, १९२३ ई०, पृ० ५२६।



इसी प्रकार कवि 'शंकर' भावपूर्ण शैली में ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—

मत-जाल जलें, छलिया न छलें, कुल फूल फलें, तज मत्सर को,  
अघ दम्भ दबें, न प्रपंच फबें, गुरु मान नवें, न निरक्षर को,  
सुमरें जप से, निरखें तप से, सुर-पादप से, तुष्ट अक्षर को,  
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता, कवि शंकर को ।<sup>१</sup>

भावप्रधान मुक्तकों में धीरे-धीरे प्रवाह और गति का समावेश होता गया। फलतः परवर्ती काल में मुक्तकों में सरसता और गीतात्मकता का भी स्वरूप प्राप्त होता है। परिमाण की दृष्टि से इस प्रकार के मुक्तकों की संख्या कम ही है। इसका कारण यह है कि गीतात्मकता से ये मुक्तक गीतिकाव्य के अधिक निकट हो जाते हैं।

इस युग के खड़ी बोली के मुक्तकों में प्रायः वर्णनात्मकता का ही प्राधान्य रहा जब कि ब्रजभाषा के भावप्रधान मुक्तकों में गीतात्मकता का सरस स्वरूप प्रारम्भ से ही प्राप्त होता है। कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के मुक्तकों में यदि कहीं गति और प्रवाह की मात्रा अधिक प्राप्त होती है तो वह चमत्कार-प्रधान उक्ति-वैचित्र्यमय मुक्तकों में ही है। 'हरिऔध' और 'सनेही' के उपयुक्त मुक्तकों तथा 'शंकर' के कतिपय मुक्तकों में इस तथ्य को देखा जा सकता है।

## (२) ब्रजभाषा के मुक्तक

ब्रजभाषा-काव्य मुक्तक-प्रधान काव्य रहा है। आलोच्य-काल में इसमें मुक्तकों की रचना प्रभूत मात्रा में हुई। वस्तुनिष्ठ एवं आत्मपरक दोनों प्रकार के मुक्तकों को इस काव्य में देखा जा सकता है।

परम्परागत अलंकृत एवं चमत्कार शैली में कवि 'पूर्ण', भगवानदीन, 'हरिऔध' तथा 'शंकर' के मुक्तकों को लिया जा सकता है। 'रसकलस' में 'हरिऔध'; 'नवीन बीन' में भगवानदीन तथा 'शंकर सर्वस्व' में कवि 'शंकर' के इस प्रकार के प्रयोगों का काफी परिचय प्राप्त होता है। कवि 'पूर्ण' ने भी 'पूर्ण संग्रह' में इस प्रकार के वर्णन किये हैं। प्रायः इन वर्णनों में प्रेम और प्रकृति ही विषय रहे। उदाहरण के लिए कवि 'दीन' का ताजमहल-वर्णन द्रष्टव्य है—

कंधों वासुकी को अंड खंड हूँ पर्यौ है आभ,  
चारिहू मीनार सो सपोलन समाज है ।  
चारि भुजा धारि के विराजो किधौ भूतनाथ,  
जमुना निकट वहै सोई नागराज है ।



‘दीन कवि’ कौंधी वीर दन्तयुत देखियतु,  
 ब्रजतट इन्द्रगज मस्तक ढराज है ।  
 जग के समस्त सौंघ संधन को सिरताज,  
 भारत में राजि रह्यो आगरे को ताज है ।<sup>1</sup>

इन वर्णनों में मौलिकता और भावप्रवणता का सम्मिश्रण कम, परम्परागत दूर की कौड़ी फेंकने का प्रयत्न अधिक दिखता है। कहीं-कहीं सुन्दर भावभिव्यंजना भी प्राप्त होती है। श्रीधर पाठक के ‘नयनों’ का एक चित्र देखिए—

अनियारे आयत बड़े कजरारे दोउ नैन  
 अचक आय जिय में गड़े काढ़े ढीठ कढ़ैन ।<sup>2</sup>

कवि दुलारेलाल भार्गव की ‘दुलारे दोहावली’ आलोच्य-काल के मुक्तक-काव्य का एक मार्ग-चिह्न है। उसमें प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। कलात्मकता तो उसकी बिहारी के टक्कर की है।

ब्रजभाषा मुक्तक-काव्य का दूसरा स्वरूप वियोगी हारि की ‘वीर सतसई’ में प्राप्त होता है। तत्कालीन राष्ट्रीयता और देश-प्रेम से प्रेरित होकर कवि ने उपयुक्त लघु-कथाओं के आधार पर इन मुक्तकों की रचना की है। कहा जा सकता है कि ये मुक्तक कथाश्रित मुक्तक हैं। वीर कथानकों के अतिरिक्त सामाजिक और राष्ट्रीय भावधारा के अन्तर्गत अन्य मुक्तकों की रचना ‘पूर्ण’ ‘शंकर’ तथा ‘कविरत्न’ ने भी की है। ‘शंकर’ के इन मुक्तकों में यदि व्यंग्य की तीव्रता है तो ‘कविरत्न’ के मुक्तकों में प्रायः करुण भाव-धारा का अबाध स्रोत बहता है। स्वतन्त्रता की अभिलाषा रखने वाला कवि गुलाम देश को देखकर भाव-विह्वल हो उठता है—

देशाभिमानहि समोद पयोधि बोरी ।  
 फेर्यो समेटि चित सेवन-वृत्ति ओरी ॥  
 खोयो स्वजीवन बिना कछू नाम काम ।  
 स्वातन्त्र-प्रेम तजि हाय भये गुलाम ॥<sup>3</sup>

मुक्तकों की इसी परम्परा में देश के स्तुतिपरक मुक्तक भी आते हैं।

प्रकृति-चित्रण की भव्य परम्परा का जो सूत्रपात इस काव्य में हुआ, वह अधिकांशतः मुक्तकों में ही रचा गया। इन मुक्तकों को भाव-प्रधान मुक्तक कहना संगत होगा। इनमें कवियों ने प्रकृति के कण-कण का सूक्ष्म चित्रांकन

१. नवीनवीन-नदी में दीन, पृ० ७४-७५।

२. मनोविनोद : श्रीधर पाठक, पद्मकोट, प्रयोग, १९१७ ई०, पृ० १४०।

३. हृदय तरंग, पृ० १२२।



स्वानुभूति के आधार पर किया। इन मुक्तकों में खड़ी बोली मुक्तकों की अपेक्षा गीतात्मकता का अधिक समावेश हुआ। इस प्रकार के वर्णन प्रमुखतया श्रीधर पाठक, 'कविरत्न', 'पूर्ण', भगवानदीन तथा प्रसाद ने किये हैं। 'कविरत्न' के चित्रणों में यदि सूक्ष्मता है तो प्रसाद जी के चित्रणों में आध्यांतरिकता का पुट अधिक परिलक्षित होता है। प्रसाद जी के चित्रण का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

राते नैन कीन्है तू कहाँ ते मदमाते पिक,  
सीखीं यह बातें नेक धीर धरिके कहो ॥  
सुनत न और की गूँत कछु और ही,  
'प्रसाद' कौन बात जो अधीरता इतो गहो ॥  
किसुक बिसेखि, कचनार को निरेखि, तेहि,  
डार बैठि ऐंठि कौन रँगराते ह्वै रहो ॥  
हेरौ मलयानिल, वसन्तहि को टेरो, हौ,  
लगाये घुन कौन की कही तो कौन को चहौ ॥<sup>१</sup>

आलोच्य-काव्य में उपदेशात्मक एवं नीतिपरक सूक्तियों और अन्योक्तियों की भी रचना हुई। कवि 'पूर्ण' ने 'अन्योक्ति विलास' में अनेक अन्योक्तियों की रचना की। भगवानदीन, दुलारेलाल भार्गव, 'शंकर', 'हरिऔध', 'पूर्ण' तथा 'कविरत्न' ने भी अनेक नीतिपरक अथवा उपदेशात्मक मुक्तकों की रचना की। 'कविरत्न' का एक नीतिपरक मुक्तक प्रस्तुत है—

सूखि आँग सूड़ी हलत, मुँह में एक न दाँत ।  
बूढ़ भयौ लाठी गही, तऊ न आशा जात ॥<sup>२</sup>

इन कवियों ने भक्तिपरक मुक्तकों की भी रचना की है। 'हरिऔध' के 'श्रीकृष्णशतक', 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' तथा 'प्रेमाम्बु-प्रस्रवण' आदि में कृष्ण-गोपी प्रेम, भक्ति, विरह आदि का स्वरूप मुक्तकों में देखा जा सकता है। कवि 'पूर्ण', 'कविरत्न', 'शंकर' तथा 'दीन' आदि ने भी अन्यान्य भक्तिपरक मुक्तकों की रचना की है। खड़ी बोली की भाँति इन मुक्तकों में भी कहीं-कहीं भक्ति-सिद्धान्त आदि का विवेचन किया गया जिनसे ये मुक्तक विचारप्रधान हो गये हैं। कवि 'पूर्ण' के वेदान्तदर्शन का एक उद्धरण देखिए—

याही भाँति 'पूरन' जू यद्यपि कहत लोग,  
व्यापक जगत माहि ब्रह्म संग माया है,

१. चित्राधार, पृ० १७६।

२. हृदय तरंग, पृ० १८४।



सार को विचारै माया ब्रह्म सों बिलग नाही,

होत ज्यों पुरुष सों बिलग नाहि छाया है ।<sup>१</sup>

विचारप्रधान मुक्तकों के अन्तर्गत 'कविरत्न' की 'प्रेम कली' रचना भी आती है। इसमें कवि ने प्रेम की महत्ता स्वीकारते हुए मानव-जीवन के लिए उसकी आवश्यकता तथा उसके स्वरूप का वर्णन किया है। कवि श्रीधर पाठक ने भी इसी परम्परा में प्रेम की महत्ता को 'प्रेम संगीत' में विवेचित किया है। 'कविरत्न' ने प्रेम की व्यापकता और उसके स्वरूप का देखिए कैसे निरूपण किया है—

अगम अगाध अपार सबदमय पारा वारा ।

मनु मधि जग हित सुधा कलस विधि सदय निकारा ॥

बसीकरण मुद भरन ओघ अघ दरन सदा के ।

अकथित अमित प्रभावपूर्ण मनुमन्तर बाँके ॥<sup>२</sup>

इस विवेचन के अन्त में कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के मुक्तकों में जो प्रवाह और भावप्रवणता वाद में विकसित हुई, वह ब्रजभाषा के मुक्तकों में प्रारम्भ से ही प्राप्त होती है। वस्तुतः इसका प्रमुख कारण ब्रजभाषा की भाषागत सुघड़ता ही है। इन दोनों में छन्द की दृष्टि से अधिक नवीनता का परिचय नहीं मिलता। परम्परागत कवित्त, सर्वैया, छप्पय, दोहा आदि के अतिरिक्त इनमें संस्कृत के वर्णिक वृत्तों का भी समावेश हुआ। उर्दू की बहरों और अंग्रेजी की चतुष्पदियों का यथासम्भव प्रयोग कवियों ने किया। युग के परवर्ती काल में भावना की प्रगाढ़ता और गीति-काव्य के प्राधान्य के कारण इन छन्दों का अधिक प्रचार न हुआ। नये मिश्रित तथा मुक्त छन्दों ने छन्द विषयक परम्परा को आगे चलकर बदल दिया। समग्र-रीति से कहा जाये तो इन दोनों काव्य-धाराओं के मुक्तकों में जहाँ वस्तुनिष्ठ एवं वर्णनात्मक मुक्तकों का परिचय प्राप्त होता है वहाँ भावप्रधान, प्रवाहयुक्त और गतिशील मुक्तकों की सुन्दर परम्परा प्राप्त होती है।

### गीति-काव्य

गीति सामान्यतः अंग्रेजी के 'लिरिक' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। 'लिरिक' का अर्थ है—लय और संगीतयुक्त पद्यबद्ध रचना। गीति काव्य, प्रबन्ध और मुक्तक से इसी अर्थ में भिन्न है। संगीत और लय के अतिरिक्त गीति-काव्य स्वानुभूतिमूलक ही होता है। गीतिकार का उद्देश्य घनिष्ठ और

१. पूर्ण संग्रह, पृ० १८८-८९।

२. हृदय तरंग, पृ० ५८।



अनावृत आत्माभिव्यंजन ही होता है।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त गीति-काव्य में उन रचनाओं का भी समावेश होता है, जिनमें कवि की अनुभूति और आत्माभिव्यंजना भिन्न माध्यम से व्यक्त हुई हो। जैसे भक्त कवियों के पद और उपालम्भ काव्य आदि। गीति-काव्य की एक और विशेषता इसकी संवेगात्मक एकता है। इसमें प्रायः किसी भाव, परिस्थिति या विचार का चित्रण होता है। आलोच्य-काल के प्रारम्भिक वर्षों में खड़ी बोली काव्य चूँकि प्रयोगात्मक अवस्था में था, अतः उसमें काव्य के इस अत्यन्त परिष्कृत एवं कलात्मक रूप की सम्भावना नहीं हो सकती थी, तथापि लोकगीतों तथा उर्दू काव्य के प्रभाव से कवियों ने काव्य में गीति-तत्त्व लाने के जो प्रयास किये उनसे आगे चलकर उत्कृष्ट गीति-काव्य की रचना सम्भव हो सकी।

### (१) खड़ी बोली का गीति-काव्य

डॉ० श्रीकृष्णलाल के अनुसार आलोच्य-युग में गीति-काव्य के इतिहास की प्रथम सीढ़ी कविता में एक पंक्ति की पुनरावृत्ति है। इस प्रकार की पुनरावृत्ति प्रायः लोकगीतों में देखी जा सकती है और इन्हीं से प्रेरित होकर कवियों ने अपनी रचनाओं में इस शैली का अनुसरण किया।<sup>२</sup> इस प्रकार के प्रयोग कवि नाथूराम शंकर शर्मा ने 'पंचपुकार', 'तागड़दिसा नागर बेल', 'नीकरशाही', 'सम्मुखोद्गार' आदि कविताओं में किये थे। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी इस प्रकार का प्रयोग 'पंचपुकार का उपसंहार' नामक कविता में किया था। वस्तुतः इस प्रकार का प्रारम्भिक प्रयोग १९०५ ई० की 'सरस्वती' में छपी 'स्वदेश-प्रीति' कविता में देखा जा सकता है—

चेतो, जागो, होश सँभालो  
कमर बाँधकर हो तैयार,  
सब स्वदेशवासी जन मिलकर  
देशोन्नति की करो पुकार ॥  
+        +        +  
सहानुभूति, सचाई, धीरज,  
अपना इष्टदेव निर्धार  
सब स्वदेशवासी जन मिलकर  
देशोन्नति की करो पुकार ॥<sup>३</sup>

१. हिन्दी साहित्य कोष, भाग १, पृ० २६२।

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृ० १०७।

३. 'स्वदेश-प्रीति' : चण्डिकाप्रसाद अवस्थी—सरस्वती, अक्टूबर १९०५, पृ० ३७६।



इसके अतिरिक्त उस काल में अंग्रेजी कविताओं के अनुवादों तथा उर्दू की गज़ल के वजन पर लिखी कविताओं को भी गीति-काव्य की पृष्ठभूमि के स्वरूप में स्वीकार किया जा सकता है। उर्दू गज़ल के अन्यानुप्रास-क्रम पर आधारित कवि 'शंकर' की 'प्रचण्ड प्रतिज्ञा' से एक उद्धरण प्रस्तुत है—

फलेगी प्राणदा खेती किसानों के कुमारों की,  
बढ़ेगी सम्पदा पूँजी खरे दूकानदारों की।  
बढ़ा देगी कलाकारी कमाई शिल्पकारों की,  
बड़ाई लोक में होगी प्रतापी होनहारों की।<sup>१</sup>

इसी प्रकार अंग्रेजी कवि टी० एस० मूर की एक कविता का अनुवाद भी द्रष्टव्य है। भावाक्षिप्त कविताओं की पूर्वपीठिका में इस प्रकार के अन्यान्य अनुवाद 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों में प्रकाशित होते रहे।

रहा न कुसुम, कली भी कोई  
रह न गयी है इसके पास।  
सहानुभूति दिखाने अथवा  
करने को सुस्नेह विकास।

+ + +  
इसी तरह मैं भी उठ जाऊँ  
मित्रादिक जब जावें वीत।  
मित्रमण्डली की माला से  
मोती से जब टूटें मोत ॥<sup>२</sup>

खड़ी बोली गीति-काव्य के पीछे उपर्युक्त भावाक्षिप्त वर्णन के अतिरिक्त राष्ट्रीय गीतों की परम्परा कवि श्रीधर पाठक से प्राप्त हुई थी। 'भारतगीत' में इस प्रकार के अनेक गीत देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए देखिए कवि 'शान्ति' का आह्वान कैसे करता है—

आ आ जा आजा, शान्ति ! शक्तिदा आ जा  
चर अचर-विश्व-अभ्रात भक्तिदा, आ जा  
+ + +  
भू व्योम-सोम-रवि-रोम-रोम में छा जा  
अणिमादि-मयी, ओ अणु अणु बीच अमा जा<sup>३</sup>

कहा जा सकता है कि इन विभिन्न सोपानों से होकर ही आलोच्य-काल में

१. शंकर सर्वस्व, पृ० ८७।

२. 'लास्ट रोज ऑफ़ समर' ('ग्रीष्म का अन्तिम गुनाव') अनु०—हरिवल्लभ,  
सरस्वती, जून १९०८, पृ० २६५-६६।

३. भारतगीत, पृ० १२-१३।



गीति-काव्य का विकास हुआ जो आगे चलकर मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा-नन्दन पंत तथा कवि 'निराला' में जाकर कलात्मक सौन्दर्य की चरम सीमा पर पहुँचा। आलोच्य-युग के द्वितीय उत्थान-काल के मध्य से गीति-काव्य की रचनाओं की परम्परा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हुई। गीति-काव्य के प्रायः सभी प्रमुख रूपों को इस काव्य में देखा जा सकता है।

गीति-काव्य का सर्वाधिक व्यवहृत रूप आध्यांतरिक गीति-काव्य है। इसमें कवि की भाव-विह्वलता, अनुभूति तथा उसकी वैयक्तिकता का प्राधान्य रहता है। इसमें कवि बाह्य से अन्तर की ओर उन्मुख रहता है। आलोच्य-काल की खड़ी बोली कविता में बँगला और अंग्रेजी कविताओं के प्रभाव से जिस वैयक्तिकता का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी अधिकांश रचनाएँ इसी कोटि की हैं। प्रायः इन कविताओं में कवि के मन की सूढ़ अनुभूतियों तथा उसके कल्पना-वैभव के सम्मिश्रण से सुन्दर अभिव्यंजना की सृष्टि होती है। इन गीतियों में कवि प्रकृति के माध्यम से अथवा प्रकृति के मानवीकरण से भी अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। मुकुटधर पाण्डेय की 'कुररी के प्रति'; प्रसाद की 'किरण', 'विषाद', 'दीप'; पंत की 'छाया', 'पल्लव', 'बीच-विलास' आदि इसी प्रकार की आध्यांतरिक गीति-रचनाएँ हैं। इन कविताओं को सम्बोधन-गीति भी कहा जाता है। आध्यांतरिक गीतियों के अन्तर्गत कवि की रहस्यात्मक भावनाओं का भी समावेश होता है। इस प्रकार की गीतियों में मैथिलीशरण गुप्त की 'कवि-चतुष्टय'<sup>१</sup>, 'खेल'<sup>२</sup>, 'स्वयमागत'<sup>३</sup>, 'हाट'<sup>४</sup>, मुकुटधर पाण्डेय की 'विश्वबोध'<sup>५</sup>, 'रूप का जादू'<sup>६</sup>, 'लज्जा व्रस्त'<sup>७</sup>, बदरीनाथ भट्ट की 'सदगुरु प्रार्थना'<sup>८</sup>, सियारामशरण गुप्त की 'अनुरोध'<sup>९</sup>, प्रसाद की 'अव्यवस्थित'<sup>१०</sup> तथा 'निराला' की 'दूर'<sup>११</sup> आदि

१. सरस्वती, जनवरी १९१८, पृ० ३५।
२. सरस्वती, अक्टूबर १९१८, पृ० १७६।
३. सरस्वती, नवम्बर १९१८, पृ० २२८।
४. सरस्वती, नवम्बर १९१९, पृ० २२५।
५. सरस्वती, दिसम्बर १९१७, पृ० ३२६।
६. सरस्वती, मई १९१८, पृ० २२५।
७. सरस्वती, अप्रैल १९२०, पृ० २२५।
८. वही०, पृ० १८३।
९. माधुरी, नवम्बर १९२३, पृ० ४०१।
१०. माधुरी, दिसम्बर १९२३, पृ० ५२६।
११. माधुरी, जनवरी १९२४, पृ० ७५८।



रचनाएँ भी सम्मिलित हो सकती हैं। उदाहरण के लिए कवि मुकुटधर के संबोधन-गीति 'कुररी के प्रति' से एक अंश प्रस्तुत है—

बता मुझे ऐ विहग विदेशी, अपने जी की बात,  
पिछड़ा था तू कहीं, आ रहा जो कर इतनी रात।  
निद्रा में जो पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द,  
अन्य विहग भी निज खेतों में सोते हैं सानन्द।  
इस नीरव-घटिका में उड़ता है तू चिन्तित गात,  
पिछड़ा था तू कहीं हुई क्यों तुझको इतनी रात।<sup>1</sup>

गीति-काव्य की दूसरी प्रसिद्ध शैली शोक-गीत की है। इन गीतियों में कवि-मन के दुःख और विशाद को अभिव्यक्ति मिलती है। सन् १९०४ में 'पितृ-वियोग' नामक शोक-गीत 'सरस्वती' में छपा था। आलोच्य-काल की शोक-गीत परम्परा की यह प्रारम्भिक रचना कही जा सकती है। इसमें स्वानुभूति का संस्पृश स्पष्ट झलकता है—

मातृ-कलत्र-बंधु-भागिनी औ नातेदारों का सब भार  
मेरे अति असमर्थ शीश पर गिरा, सकूँ कैसे संभार।  
पीरुषहीन सहाय न कोई भ्रष्ट भवन हो जावैगा।

प्राणाधार पिता ! विघनों से मुझको कौन बचावैगा।<sup>2</sup>

इसके पश्चात् कवि 'ग्रे' की 'एलिजी' का रूपान्तर 'ग्रामीण विलाप' शोक-गीत नाम से कामताप्रसाद गुरु ने सन् १९०८ की 'सरस्वती' में छपवाया था। शोक-गीतोचित भावना का तीव्र संवेग कवि प्रसाद के 'आँसू' काव्य में देखा जा सकता है। इसी कोटि में मुकुटधर के 'आँसू' तथा पंत के 'आँसू' गीत भी आते हैं। प्रायः इन गीतों का आधार विरह-जन्य दुःख, सांसारिक निस्सारता एवं दुःख तथा ध्यक्तिगत विषाद आदि रहता है। प्रसाद जी के 'आँसू' काव्य का एक उद्धरण प्रस्तुत है—

झंझा झकोर गर्जन था  
बिजली थी, नीरद माला  
पाकर इस शून्य हृदय को  
सबने आ घेरा डाला।  
घिर जातीं प्रलय घटाएँ  
कुटिया पर आकर मेरी  
तम-चूर्ण बरस जाता था  
छा जाती अधिक अँधेरी।<sup>3</sup>

१. कवि भारती : सं० पं० सुमित्रानन्दन पंत आदि, पृ० २७८।

२. 'पितृ-वियोग' : जनन्तराम पाण्डेय, सरस्वती, जुलाई १९०४, पृ० २२४।

३. आँसू, पृ० १५-१६।



इसीलिए यह 'घनीभूत पीड़ा' दुर्दिन में आँसू बनकर बरसने लगी। इस पीड़ा और इन आँसुओं में इन कवियों को जीवन और जगत् की विषाद् अनुभूति होती रही। इसीलिए इस पीड़ा और विषाद् से कवि कुंठित न होकर संवेदना और सहृदयता के साथ और अधिक अनुभूतियों को ग्रहण करना चाहते हैं, भले ही यह अनुभूतियाँ दुःखप्रद क्यों न हों। वे जीवन को अधिक निकटता से ग्रहण करना चाहते हैं। उनमें समर्पण की अपार भावना सन्निहित है। इसीलिए कवि मुकुटधर पाण्डेय आँसुओं में निमग्न होना चाहते हैं—

मेरे जीवन की लघु तरणी,  
आँखों के पानी में तर जा।  
मेरे उर का छिपा खजाना,  
अहंकार का भाव पुराना,  
बना बाज तू मुझे दिवाना,  
तप्त स्वेद-बूंदों में ढर जा।<sup>१</sup>

गीति-काव्य की तीसरी महत्त्वपूर्ण शैली राष्ट्रीय गीतों की है। वस्तुतः आलोच्य-युग में राष्ट्रीय-गीतों की संख्या सर्वाधिक है। महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, 'पूर्ण', 'हरिऔध', 'सनेही', भगवानदीन, सियारामशरण गुप्त एवं प्रसाद आदि प्रायः सभी कवियों ने राष्ट्रीय-गीतों की रचना की। इन गीतों में कवियों ने भाव-विह्वल होकर देश का सुन्दर प्रशस्ति-गान किया है। इसी के अन्तर्गत कई गीतों में प्रकृति का देश के अंग-रूप में भी चित्रण किया गया। एक उद्धरण प्रस्तुत है—

जय देश ! जय देश !  
जय जय प्यारे देश ! रम्य हमारे देश !  
हिमगिरि ऊँचे मस्तकवाला  
है तेरा दृढ़ पहरवाला  
गर्जन जलनिधि करें निराला  
रिपुओं के मद हरने वाला  
तू प्राकृत दुर्गेश  
जय देश ! जय देश ! जय जय०<sup>२</sup>

१. 'उद्गार', सरस्वती, अप्रैल १९१८, पृ० २१२।

२. 'राष्ट्रीय-गान' : गिरिधर शर्मा, सरस्वती, दिसम्बर १९२०, पृ० २८१।



इस प्रकार के गीतों पर उर्दू की गजल-शैली का भी प्रभाव पड़ा। कवि 'पूर्ण' का एक उद्धरण देखिए—

कभी हिन्द में भी कमाल था तुम्हें याद हो कि न याद हो,  
यही आप अपनी मिसाल था, तुम्हें याद हो कि न याद हो।  
कला विद्या नीति में, पेशों में ये समस्त भूमि के देशों में,  
मानों चक्रवर्ती भुआल था। तुम्हें.....<sup>1</sup>

कवि श्रीधर पाठक ने संस्कृत काव्य-परम्परा में तथा बँगला के वन्देमातरम की शैली में भी राष्ट्रीय गीतों की रचना की। इस परम्परा में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी कतिपय गीतों की रचना की।

इन प्रमुख गीति-शैलियों के अतिरिक्त व्यंग्य-गीति का स्वरूप कवि 'शंकर' की 'कृष्णोत्कर्ष' तथा कवि 'सनेही' की 'कविराज से सम्बोधन' रचनाओं में देखा जा सकता है। प्रायः व्यंग्य-गीतियों का अधिक प्रचलन इस काव्य में नहीं हुआ। कवि 'शंकर' की एक और रचना 'गर्भ रण्डा-रहस्य' है जिसमें प्रबन्धात्मक व्यंग्य-गीति का स्वरूप देखा जा सकता है। यह रचना सामाजिक रूढ़िप्रस्तुता पर एक तीखा व्यंग्य है। इसके अतिरिक्त कवि मैथिलीशरण गुप्त की 'पत्रावली' में पत्र-गीति का स्वरूप प्राप्त होता है। इसमें संकलित अधिकांश पत्र 'सरस्वती' में छपे थे। इन पत्र-गीतियों में भारतीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक गौरव को प्रस्तुत किया गया। इनका भी प्रचलन अधिक न हो पाया। ब्रजभाषा की पद-शैली पर आधारित भक्तिरस-प्रधान विनय के पदों की रचना कवि 'शंकर' ने अपनी 'गीतावली'<sup>2</sup> में की। कवि 'शंकर' के इन पदों में गीतात्मकता का समुचित निर्वाह हुआ है। पं० बदरीनाथ भट्ट ने भी कतिपय पदों की रचना की है।

संक्षेप में कहा जाये तो आधुनिक खड़ी बोली-काव्य का एक विशिष्ट अंग गीति-काव्य है। आलोच्य-काल में प्रायः सभी प्रचलित गीतियों का सूत्रपात हो चुका था। युग के परवर्ती काल में उत्कृष्ट गीतियों की भी रचना हुई। गीति-काव्य का व्यापक प्रसार द्विवेदी-युग के बाद विशेष रूप से देखा जा सकता है, तथापि इस काव्य-रूप की व्यवस्थित परम्परा के बीज इस युग में पुष्पित-फलित भी हो चुके थे।

## (२) ब्रजभाषा का गीति-काव्य

हिन्दी में गीति-काव्य की अन्यतम परम्परा वैष्णव-भक्तों की मार्मिक

१. पूर्ण संग्रह, पृ० २३८।

२. शंकर सर्वस्व (गीतावली)।



भक्ति-भावना से पूर्ण पदों में प्राप्त होती है। भक्ति-काल में कृष्णोपासक भक्तों ने विभिन्न राग-रागिनियों पर आधारित अन्यान्य गेय पदों की रचना की थी। संगीत, स्वानुभूति और काव्य का इन पदों में अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। रीतिकाल में गेय पदों की धारा क्षीण हो गयी। भारतेन्दु की विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्नता से ब्रजभाषा में गीति-काव्य का फिर से प्रसार होने लगा। आलोच्य-काल में ब्रजभाषा की माधुरी और गेयात्मकता से प्रेरित होकर कवियों ने इस परम्परा को और विकसित किया। खड़ी बोली की प्रारम्भिक कर्कशता के समक्ष इन पदों और गीतियों का विशेष महत्त्व है। सामान्य रूप से इस काव्य में निम्न प्रकार की गीतियों की रचना हुई—

भक्तिकालीन गेय पदों की परम्परा में 'हरिऔध' और 'कविरत्न' ने सुन्दर पदों की रचना की है। इनमें भक्ति-भावना के साथ-साथ कवि की वैयक्तिकता का भी सुन्दर सम्मिश्रण हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से 'कविरत्न' के उपालम्भ पद निश्चय ही मार्मिक बन पड़े हैं। इनमें कहीं तत्कालीन परिस्थितियों के सुधार की भावना का प्रभाव है,<sup>१</sup> तो कहीं व्यक्तिगत सुख-दुःख<sup>२</sup> का समावेश हुआ है। कवि की मार्मिक अनुभूतियों का स्वर इन दोनों प्रकार के पदों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'हरिऔध' जी के 'प्रेमाम्बु-वारिधि' में मध्यकालीन भक्ति-भावना का पूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है। इनमें गेयता और प्रवाह का भी सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। इसी सन्दर्भ में उनकी ब्रजभाषा-गीतियों का एक और संकलन 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' भी उल्लेखनीय है। समग्र रूप से कहा जाये तो इन पदों पर सूर, नन्ददास तथा मीरा के पदों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। जयशंकर प्रसाद ने भी भक्ति-भावना से प्रेरित होकर कुछ गीतों की रचना की है। इनका प्रयोग उनके प्रारम्भिक नाटकों में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए एक गीत देखिए—

हे शिव, धन्य तुम्हारी माया ।

जेहि बस भूलि भ्रमत हैं सबही सुर अरु असुर निकाया ।

भानु भ्रमत अरु बहत समीरन प्रकट जीव समुदाया ॥

तव महिमा को पार न पावत जेहि पर करहु न छाया ।

दास दीनता देखि दयानिधि बेगि करहु अब दाया ॥<sup>३</sup>

आध्यात्मिक गीतियों का स्वरूप भी इस काव्य में प्राप्त होता है। कवि

१. हृदय तरंग, पृ० ३६ ।

२. वही०, पृ० ३४ ।

३. चित्राधार (बभ्रु वाहन), पृ० ३६ ।



प्रसाद ने अपने नाटकों में (चित्राधार में संकलित) इस प्रकार के कई सुन्दर गीतों की रचना की। 'कविरत्न' और 'हरिऔध' के कतिपय पदों में भी इसका स्वरूप देखा जा सकता है। इस प्रकार के गीतों में कवि अपने अन्तः प्रदेश में बैठकर भावनाओं का चित्रण करता है। 'कविरत्न' का प्रसिद्ध उपा-लम्भ गीत 'भयो क्यों यह अनचाहत को संग' इसका एक सरस उदाहरण है। कवि प्रसाद के 'उर्वशी' नाटक का एक मार्मिक गीत प्रस्तुत है—

हियो यह भयो नदी बरसाती,

उभड़ि पड़यो कुल-कूल छोड़िके भूले सबै संघाती।

निसदिन बेग बढ़यो बहिवे को हौंस न हिये समाती,

लपटि तरुन ते पतित कियो वह विकल भयी लगि छाती।

पायो सुख ना मलिनता बाढ़ी वही दिवस वहि राती,

भवसागर के प्रबल लहर में धारा नितहि समाती। हियो० ।<sup>१</sup>

'चित्रधारा' में इसी प्रकार के कई अन्य गीत भी प्राप्त होते हैं।<sup>२</sup>

गीति-काव्य का दूसरा स्वरूप इस काव्य में राष्ट्रीय भावना से प्रेरित गीतों का है। श्रीधर पाठक को सर्वप्रथम राष्ट्रीय गीत लिखने का श्रेय मिलता है। उनकी परम्परा में 'कविरत्न' ने देश के स्तुतिपरक गीतों में देश की भव्य परम्परा का सुन्दर चित्रण किया है। श्रीधर पाठक के राष्ट्रीय गीतों में 'गीत-गोविन्द' तथा बँगला शैली के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'भारतगीत' में इस प्रकार के कई गीतों की रचना हुई है। इनमें कहीं प्रकृति के भव्य रूप के माध्यम से देश की प्रशंसा की-गयी है<sup>३</sup>, कहीं देशी जनता को चिर आलस्य और अज्ञान की नींद से जगाने का प्रयत्न किया गया है<sup>४</sup>, तो कहीं भारत की ओर से 'स्वराज्य-स्वागत'<sup>५</sup> किया गया है। कवि सत्यनारायण 'कविरत्न' का एक राष्ट्रीय गीत प्रस्तुत है। कवि तत्कालीन स्वातन्त्र्य-भावना से प्रेरित होकर भारतमाता को सम्बोधित करके लिखता है—

मजुहासिनी, मधुरभासिनी, सुख विकासिनी, वरदा पावनि।

तीस कोटि मुख अट्हास करि, दुरजन हिय अति भय उपजावनि॥

साठि कोटि भुज गहि असि तीखी, तरलित दुति दस दिसि दमकावनि।

को कहि सकत तोहि अबला मा ! तू सबला रिपु जिय धरकावनि॥

+

+

+

+

१. वही० (उर्वशी), पृ० १७-१८।

२. वही०, पृ० १५, २०, ४१।

३. भारतगीत, पृ० १३, २७, २८।

४. वही०, पृ० ५०-५१।

५. भारतगीत, पृ० ४१।



रविकर सज्जित सँवारि चिर तुषार क्रीट धारिणी ॥

विलसत सन्ताप हारि बुधि सुधारिणी ॥<sup>१</sup>

अन्त में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा-काव्य में गीति-काव्य की दृष्टि से अधिक नवीनता अथवा मौलिकता का प्रसाद न हो पाया। कदाचित् उसका कारण यह रहा कि ब्रजभाषा को सहज ही शब्द-माधुर्य और लालित्य प्राप्त है, अतः उसमें विशेष गीतात्मकता लाने के नवीन प्रयास न हुए।

उपर्युक्त काव्य-रूपों के अतिरिक्त इस युग में गीति-नाट्यों की भी रचना हुई। खड़ी बोली में कवि प्रसाद ने 'करुणालय', मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' तथा कवि 'पूर्ण' ने ब्रजभाषा में 'चन्द्रकुमार भानु कला नाटक' की रचना की। आलोच्य-काल में इस काव्य-रूप का अधिक प्रचार न हुआ। इसका कारण काव्य में नाटकीय तत्त्व का समावेश है। कवियों ने विभिन्न रचनाओं में नाटकीय शैली का विशद प्रयोग किया। प्रबन्ध रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोगों की अधिक सम्भावना रहती है 'प्रियप्रवास', 'जयद्रथ वध', 'विकट भट', 'रंग में भंग', 'साकेत', 'पंचवटी', 'रामचरित चिन्तामणि', आदि खड़ी बोली की प्रबन्ध रचनाओं में इस शैली का सुन्दर निर्वाह देखा जा सकता है। इसी प्रकार ब्रजभाषा में नाटकीय शैली का प्रयोग 'उद्धवशतक', 'गंगावतरण', 'भ्रमरद्वत' आदि रचनाओं में हुआ। कवि प्रसाद ने भी 'वन-मिलन', 'प्रेम-राज्य' तथा 'अयोध्या का उद्धार' कथात्मक कविताओं में इस शैली का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है। कहा जा सकता है कि इसी कारण से गीति-नाट्यों की ओर इन कवियों का ध्यान कम ही गया। अन्य काव्य-रूपों में चम्पू काव्य के अन्तर्गत कवि 'पूर्ण' की 'राम रावण-विरोध' रचना उदाहरण स्वरूप रखी जा सकती है।

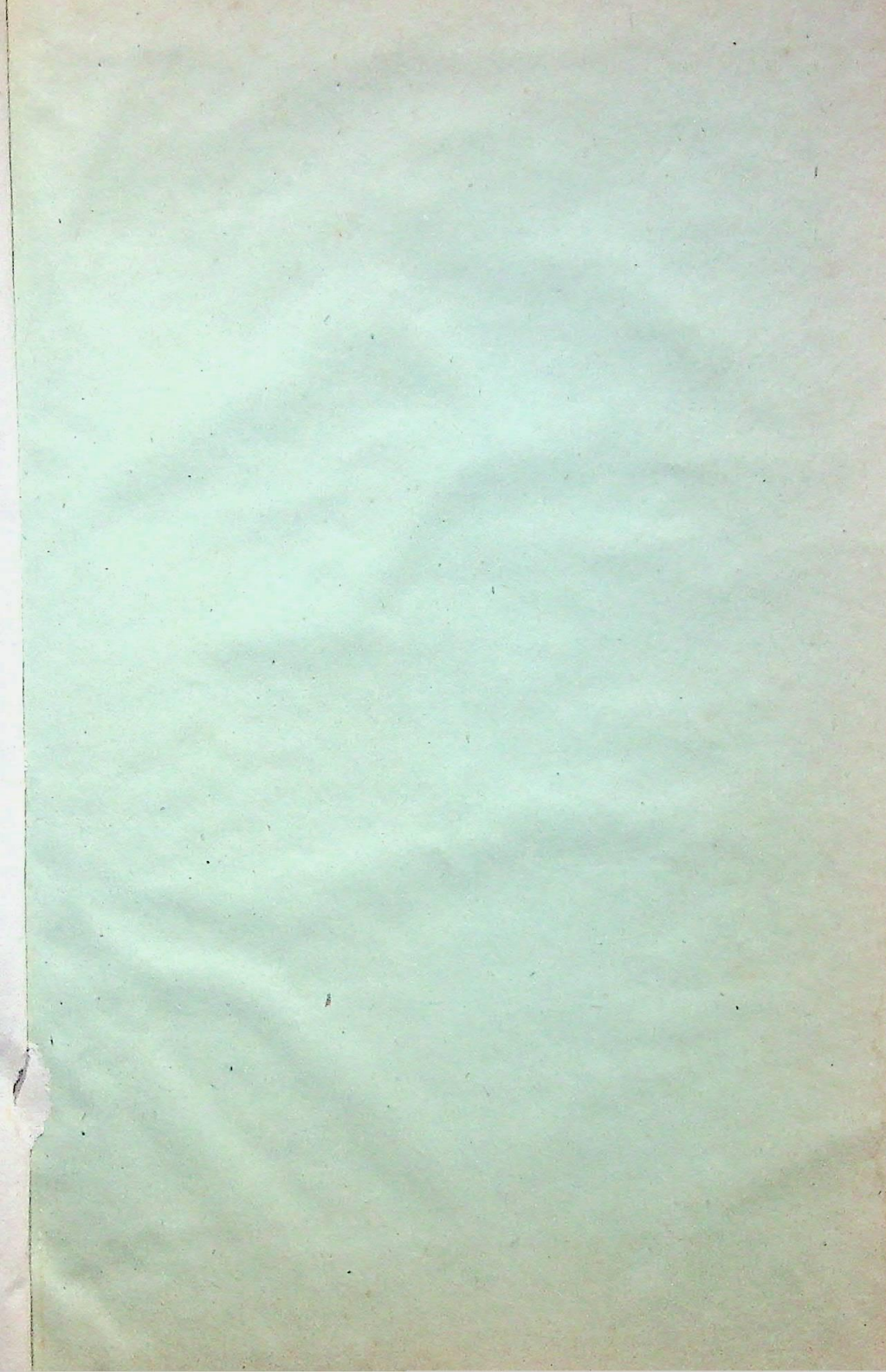
### निष्कर्ष

इस विवेचन के अन्त में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युग में प्रायः सभी काव्य-रूपों के दर्शन होते हैं। इस काव्य में संस्कृत काव्य-रूपों की परम्परा का जहाँ कुछ दूर तक निर्वाह किया गया, वहाँ पश्चिमी काव्य-रूपों का भी प्रभाव इस पर पड़ा। प्रबन्ध-काव्यों में परम्परागत रुढ़ियों का अधिकांश में त्याग किया गया। बाह्य रूप-विद्या की रुढ़ियों पर कवियों ने ध्यान कम ही दिया। प्रायः आन्तरिक गठन और नवीन भाव-बोध के अनुकूल ही प्रबन्ध रचनाओं की सृष्टि हुई। मुक्तक और गीति-काव्य में इस विविधता को अधिक मुखर रूप से देखा जा सकता है। ब्रजभाषा के रीतिकालीन मुक्तक



काव्य से आगे बढ़कर कवियों ने खड़ी बोली और ब्रजभाषा, दोनों में नवीन उद्भावनाओं का समावेश किया। इनमें भी बाह्य रूढ़ियों की अपेक्षा आन्तरिक व्यवस्था पर दृष्टि केन्द्रित की गयी। गीति-काव्य में खड़ी बोली-काव्य निश्चय ही ब्रजभाषा से आगे रहा। पश्चिमी और उर्दू-काव्य के प्रभाव से नवीन गीतियों की जो रचना इस काव्य में हुई, वह ब्रजभाषा में संभव न हो पायी। ब्रजभाषा अपनी परम्परागत गीति-शैली के ही निकट रही। यद्यपि कुछ नवीन प्रयोगों का समावेश इसमें भी हुआ, तथापि उसकी मात्रा अधिक नहीं है। समग्र रूप से कहा जाये तो आलोच्य-युग की इन दोनों काव्य-धाराओं में सुन्दर एवं कलात्मक काव्य-रूपों का समुचित विकास हुआ। इस विकास के अधिकांश में आधुनिकता ही प्रवाहशील रही। कवियों ने परम्पराओं का यथासम्भव त्याग स्थान-स्थान पर किया। काव्य-रूप की दृष्टि से यह युग एक समर्थ एवं समृद्ध युग था। □













जन्म : अगस्त २४, १९४० (श्रीनगर-  
कश्मीर)

शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी) जम्मू-  
कश्मीर विश्वविद्यालय, डी० फिल०  
(१९६७) इलाहाबाद विश्वविद्यालय

परिचय : डॉ० रोशनलाल ऐमा हिन्दी  
साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से सहायक  
सम्पादक के रूप में सम्बद्ध हुए और  
'हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की विवरणा  
त्मक सूची' सम्पादित की जिसे हिन्दी  
साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने प्रकाशित  
किया । सन १९७१ से १९७७ तक  
तक आप इस्लामिया कालेज फार  
विमेन, सौपोर (कश्मीर) में हिन्दी  
प्रवक्ता रहे । १९७७ में आप कश्मीर  
विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में  
प्रध्यापक नियुक्त हुए । सम्प्रति वहीं  
वरिष्ठ रीडर के पद पर कार्यरत ।

अभिरुचि : शिक्षण एवं अनुसंधान के  
अतिरिक्त आधुनिक कविता, नाटक  
तथा अनुवाद कार्य में विशेष रूप से  
सचेष्ट । हिन्दी रंगमंच तथा अनुवाद  
कला पर कई पुस्तकें प्रकाश्य ।





કન્દુ પ્રકાશન

૧૪/૧૧૨ અચલ તાલાવ, અલોગદ-૨૦૨૦૦૧ ।